

आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

ग्रन्थाङ्कः ५७

ओकोपाह्वयम्बकविरचितं हिरण्यकेश्याह्निकम्

आचारभूषणम् ।

एतत्पुस्तकमानन्दाश्रमस्थपण्डितैः संशोधितम् ।

तच्च

हरि नारायण आपटे

इत्येतैः

पुण्याख्यपत्तने

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८३०

ख्रिस्ताब्दाः १९०८

शिकारा राजशासनानुसारेण स्वायत्तीकृताः)

पह्नितं रूपकचतुष्टयम् । (४० ४ आ० ६)

आदर्शपुस्तकोल्लेखपत्रिका ।

—:***:—

अस्याऽऽचारभूषणाख्यग्रन्थस्य पुस्तकानि यैः परहितैकपरतया संशो-
धनार्थं दत्तानि तेषां नामादीनि पुस्तकानां संज्ञाश्च कृतज्ञतया प्रदर्श्यन्ते—

(क.) इति संज्ञितम्—रत्नागिरिसमीपस्थशिरगांवग्रामनिवासिनां कै०वे०

रा० रा० कृष्णमहृ द्वात्ये इत्येतेषाम्—अस्य लेखन-
कालः शके १७७४

(ख.) इति संज्ञितम्—पुण्यपत्तनस्थानां वे० शा० रा० रा० वासुदेव-
शास्त्री अभ्यंकर इत्येतेषाम् ।

समाप्तेयमादर्शपुस्तकोल्लेखपत्रिका ।

अथ हिरण्यकेश्याह्निकाचारभूषणविषयानुक्रमणिका ।

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|--|-------------|---|-------------|
| मङ्गलम् | १ | तत्र स्थलविचारः | १२ |
| आह्निकशब्दनिर्वचनम् ... | १ | मस्तकाच्छादनादि- ... | १३ |
| स्वाविरोधिपारक्याचारग्रह- णम् | १ | दिङ्गनियमः... .. | १३ |
| प्रतिदिनकर्तव्यविचारः ... | १ | यज्ञोपवीतनिवेशः | १३ |
| आचारवतः प्रशंसा... .. | २ | यज्ञोपवीतं कर्णे निवेशनीयम् | १३ |
| निवासयोग्यस्थलविचारः... | २ | कर्णे निधानमेकवस्त्रविषयम् | १४ |
| ब्राह्ममुहूर्ते व्युत्थानम् ... | २ | निवीताकरणे यज्ञोपवीत- त्यागः | १४ |
| अजपाजपविचारः | २ | छायादिषु मलत्यागनिषेधः | १४ |
| व्युत्थानोत्तरं दर्शनीयानि... | ३ | उपानद्वर्जनादि | १४ |
| अदर्शनीयानि | ३ | सूर्याद्यभिमुखं मलत्यागनि- षेधः | १५ |
| ब्राह्ममुहूर्ते निद्रानिषेधस्त- त्प्रायश्चित्तं च | ३ | रात्रौ दूरदेशवर्जनम् ... | १५ |
| ब्राह्ममुहूर्ते कर्तव्यप्रयोगः... | ४ | प्रक्षालनोदकस्य हस्ते ग्रहण- निषेधः | १६ |
| अजपाजपसंकल्पः । पूर्वजप- स्य निवेदनम् | ४ | उदकाभाव उपद्रवे च सृ- च्छौचः | १६ |
| प्रातःस्मरणे पञ्चायतनस्तो- त्रम्... .. | ४ | मूत्रपुरीषयोर्देशमर्यादा ... | १६ |
| रामचन्द्रस्तोत्रम् | ७ | पाषाणादिना मलशोधनव- र्जनादि | १६ |
| आत्मस्वरूपचिन्तनस्तोत्रद्व- यमाचार्यकृतम् | ८ | अथ शौचविधिः | १६ |
| द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम् ... | ८ | गन्धलेपक्षयावधिशौचविधिः | १७ |
| कूर्मपुराणोक्तश्लोकाः ... | १० | जले क्षालननिषेधः... .. | १७ |
| गुर्धभिवादनम् | ११ | सृत्स्थानशोधनम् | १७ |
| ब्रह्मविद्यासंप्रदायप्रवर्तकना- रायणाद्यात्मगुर्वन्तस्मरणम् | ११ | सृत्तिकाया वर्णभेदेन विशेषः | १७ |
| ब्रह्मचारिणो विशेषः ... | ११ | वर्ज्या सृदः | १८ |
| मूत्रपुरीषोत्सर्जनम्... .. | १२ | क्षालने दक्षिणहस्तनिषेधः | १८ |
| | | पादादीनां शोधनविधिः ... | १८ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---------------------------------|-------------|---------------------------------|-------------|
| पादेन पादक्षालनवर्जनम् । | १८ | ज्वरितादीनामुष्णोदकेनाप्या- | |
| तत्रैव दिङ्निमित्तः | १८ | चमनम् । | २६ |
| देशकालव्यवस्थया शौचविधिः | १८ | वस्त्रपूतजलग्रहणप्रकारः ... | २६ |
| शौचविध्यतिक्रम प्रायश्चित्तम् । | १८ | देवतापूजादिकर्ममात्रे वस्त्रपू- | |
| सूत्रप्रमाणम् | १९ | तजलग्रहणे प्रकारः ... | २७ |
| गृहस्थादिभेदेन सूदा क्षालन- | | आचमने वर्ज्यानि | २८ |
| संख्या | १९ | आचमने यज्ञोपवीतित्वम् । | २८ |
| शौचविधौ वामपादस्य पूर्वं | | उत्तरीयवाससो नित्यत्वं तदनु- | |
| क्षालनम् । | १९ | कल्पश्च | २९ |
| स्त्रीशूद्रयोरर्धविधिः ... | १९ | दर्भपाणिविधानम् । ... | २९ |
| तत्रैव विवाहिताविवाहितभे- | | आचमने पात्रादिविशेषः ... | ३० |
| देन व्यवस्था | १९ | आचमननिमित्तानि तदनुक- | |
| शौचविधिप्रशंसा | २० | ल्पश्च | ३० |
| गण्डूषप्रकारस्तत्संख्यानियमश्च | २१ | आचमनापवादः | ३३ |
| अथाऽऽचमनम् । | २१ | आचमनकर्तुः प्रशंसा ... | ३३ |
| जान्वन्तरा हस्तस्थापनम् । | २१ | अकरणे प्रत्यवायः | ३३ |
| हृदयंगमजलग्रहणम् । ... | २१ | अथ दन्तधावनम् । ... | ३४ |
| तत्रैवावयवेषु जलस्पर्शः ... | २१ | तत्र प्रशस्तानि काष्ठानि ... | ३४ |
| तत्रैव निबद्धशिखत्वादिधर्मः | २२ | काष्ठमानम् । | ३४ |
| केशवादिस्मार्ताचमनप्रकारः | २२ | कामनाभेदेन काष्ठभेदप्रकारः | ३५ |
| अशक्तस्याऽऽचमनम् । ... | २३ | काष्ठादिमन्त्रणमन्त्रः ... | ३५ |
| दक्षिणकर्णस्पर्शेनाऽऽचमन- | | वर्ज्यकाष्ठानि | ३५ |
| सिद्धिः | २३ | दन्तधावने वर्ज्यास्तिथयः.... | ३५ |
| आचमने मन्त्राः | २३ | दन्तकाष्ठाद्यलाभेऽनुकल्पः | ३५ |
| आचमनयोग्यजलम् । ... | २४ | दन्तधावने पत्राण्यपि ... | ३६ |
| भूमिगतजलस्य पवित्रतादि- | | अथ शौचविधिप्रयोगः ... | ३६ |
| विचारः | २४ | आचमनप्रयोगः | ३७ |
| महानदीनां रजोदोषाभावः | २४ | तत्रैव निमित्तादिविचारः... | ३८ |
| आचमने निषिद्धं जलम् । | २४ | दन्तधावनप्रयोगः | ३९ |
| एकहस्तेनाऽऽचमनजलग्रहण- | | स्वीकृत्यम् | ४० |
| निषेधः | २५ | | |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|-------------|--|-------------|
| तत्कर्तृकोपलेपनरङ्गवह्न्यादि | ४० | देवर्षिपितृतर्पणं स्नानाङ्गम्. | |
| मार्जन्याद्युल्लङ्घने दोषः ... | ४१ | तत्र जर्तिलसंज्ञका एव | |
| दंपत्योः प्रेमप्रशंसा... .. | ४१ | तिला ग्राह्याः | ४६ |
| पतिसहभावत्वेन पत्युः प्रवा- से पत्न्या दानादिषु स्वात- न्त्र्यम् | ४१ | तिलस्थापने विशेषः | ४६ |
| सुवर्णपवित्रादिविधिः ... | ४१ | तर्पणे दिङ्निमित्तः | ४६ |
| सुवर्णपवित्रे परिमाणाभावः | ४२ | जीवत्पितृकस्य कृष्णतिलनि- षेधः | ४७ |
| अन्यधृतस्य धारणे निषेधः | ४२ | तिलालाभेऽनुकल्पः ... | ४७ |
| प्रातःस्नानप्रशंसा | ४२ | आर्द्रवाससः कर्माणि जले कर्तव्यानि... .. | ४७ |
| जलमर्यादा | ४२ | वस्त्रोदकप्रदानं तन्मन्त्रः | ४७ |
| रूयादिसंनिधौ तन्निषेधः ... | ४३ | जीवत्पितृकस्य निषेधः ... | ४७ |
| भुक्त्युत्तरं स्नाननिषेधः ... | ४३ | शिखोदकस्य मूमौ निषेध- नम्... .. | ४७ |
| स्नानं स्त्रीणामशिरस्कम् ... | ४३ | वस्त्रपीडनानन्तरमाचमनं दर्भ- त्यागश्च | ४७ |
| नेत्रादिरोगग्रस्तानामपि ... | ४३ | यक्ष्मतर्पणं तन्मन्त्रश्च ... | ४७ |
| स्नानप्रकारः | ४३ | वस्त्रेण शरीरामार्जनं तज्जलेन देवतादितृप्तिः | ४८ |
| अघमर्षणे विशेषः | ४४ | आर्द्रवाससा विण्मूत्रत्यागे प्रायश्चित्तम् | ४८ |
| स्नाने सूर्याभिमुखता सर्वसा- धारणी | ४४ | अशक्तावङ्गमार्जनम् ... | ४८ |
| स्नानाकरणे प्रायश्चित्तम् ... | ४४ | उष्णोदकेन स्नानप्रकारः... | ४८ |
| नित्यनैमित्तिकस्नानयोर्युग- पत्प्रवृत्तौ तन्त्रम् | ४४ | स्नानविशेष उष्णोदकनिषेधः | ४८ |
| अथ माघस्नानविचारः ... | ४५ | उष्णोदकस्नाने मन्त्रविशेष- निरूपणम् | ४८ |
| कर्ममात्र एकवस्त्रवद्वीपादी- नां वर्जनम् | ४५ | गृहस्नाने तर्पणादिनिषेधः... | ४९ |
| द्वीपलक्षणमन्तरालस्वरूप च अन्तराले प्रतिप्रसवः ... | ४५ | उष्णोदकस्नाने विशेषस्तद्वि- धिश्च | ४९ |
| प्रातःस्नानाकरणेऽपकर्षः ... | ४६ | पञ्चविधं स्नानं तत्स्वरूपं च | ४९ |
| तद्दोषपरिहारार्थं रविवासरे प्रातःस्नानावश्यकता ... | ४६ | स्नानाशक्तौ पूर्ववस्त्रत्यागः | ५० |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|-------------------------------|-------------|----------------------------------|-------------|
| स्नानप्रशंसा | ५० | शिरसः प्रावरणवर्जनं सप्र- | |
| स्नातस्यास्पृष्टस्पर्शने पुनः | | तिप्रसवम् | ५६ |
| स्नानम् | ५० | ब्राह्मणादिवर्णभेदेन वस्त्रवि- | |
| अथ यज्ञोपवीतम् | ५० | शेषनिरूपणम् | ५६ |
| तल्लक्षणम् | ५० | स्वयंधौतेन कर्माधिकारः... | ५६ |
| यज्ञोपवीतधारणसंख्या ... | ५० | अहतलक्षणम् | ५६ |
| यज्ञोपवीतनिर्माणप्रकारः ... | ५० | शुक्लवस्त्रप्रशंसा | ५६ |
| तद्धारणमन्त्रः | ५१ | आविकादीनां धारणे निषेधः | ५६ |
| विधवादिरचितसूत्रादिनिषेधः | ५२ | प्रावरणे प्राशस्त्यम्... .. | ५६ |
| शरीरे तत्स्थापनविधिः ... | ५२ | अनुत्तरीयस्य कर्ममात्रनिषे- | |
| ब्रह्मचारिणां धारणे संख्या. | ५२ | धस्तदनुकल्पश्च | ५६ |
| धारणे प्रकारः | ५२ | नग्नकथनं तस्य कर्मानधिका- | |
| यज्ञोपवीतादिलक्षणम् ... | ५२ | रता च | ५६ |
| तत्र मन्त्रादिकथनम् ... | ५२ | रोगिणो नग्नत्वाभाव एकव- | |
| यज्ञोपवीतमितिमन्त्रस्याथर्व- | | स्त्रत्वेऽपि | ५७ |
| वेदीयस्य ग्रहणे मौञ्जीविचारः | ५२ | धौतवस्त्रालाभेऽन्येषामनुज्ञा | ५७ |
| निवीतकरणे निमित्तानि ... | ५३ | जीवत्पितृकस्योत्तरीयादिनि- | |
| यज्ञोपवीतस्य निष्कासने नि- | | षेधः | ५७ |
| मित्तानि | ५३ | निषिद्धवस्त्रनिरूपणम् ... | ५७ |
| ञ्चुटितत्यागो जले | ५४ | शुष्कीकरणाय स्थापने दिङ्- | |
| यज्ञोपवीतस्य सर्वस्य नाशो | | नियमः | ५७ |
| प्रायश्चित्तम् | ५४ | नीलीवस्त्रस्य वर्जनं स्त्रीणां | |
| यज्ञोपवीतानां प्रत्येकमभिम- | | कर्मविशेषेऽनुज्ञा | ५७ |
| न्त्रणम् | ५४ | कर्मभेदेन भिन्नानि वस्त्राणि | ५७ |
| अथ वस्त्रपरिधानम् ... | ५५ | कम्बलादिषु नीलीरागो न | |
| उत्तरीयाधोवाससो वैपरीत्य- | | दुष्यति | ५८ |
| वर्जनम् | ५५ | विधवानां नीलीवस्त्रनिषेधः | ५८ |
| धारणसमये वस्त्रप्रोक्षणम्... | ५५ | कच्छत्रयप्रकारः | ५८ |
| कुसुम्भादिरञ्जितस्य निषेधः | ५५ | पञ्चकच्छप्रकारः | ५८ |
| धारणयोग्यवस्त्रविचारः ... | ५५ | शुष्कवस्त्राभाव आर्द्रानुज्ञा... | ५८ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|----------------------------------|-------------|----------------------------------|-------------|
| संमोगार्थं धृतस्य कर्मानर्हता | ५८ | स्त्यम् | ७२ |
| बस्त्रशुद्धिः | ५८ | श्रौतादिभस्माभावे तदुत्पाद- | |
| प्रातःस्नानप्रयोगः ... | ५९ | नप्रकारः | ७२ |
| मन्त्रार्थज्ञानफलाधिक्यप्रशंसा | ६१ | शूद्रादिस्पृष्टभस्मनोऽधार्यत्वम् | ७३ |
| घरुणप्रार्थनामन्त्रभाष्यम् ... | ६१ | स्त्रयादीनां विशेषः | ७३ |
| तीर्थावाहनमन्त्रभाष्यम् ... | ६२ | भस्मधारणमन्त्राः | ७३ |
| अघमर्षणमन्त्रभाष्यम् ... | ६२ | शुद्धवैदिकस्य भस्मधारण- | |
| आचमनमन्त्रभाष्यम् ... | ६३ | प्रशंसा | ७३ |
| अघमर्षणोत्तरस्नानमन्त्रभा- | | भस्मधारणे नित्यत्वविचारः | ७३ |
| ष्यम् | ६८ | गोपीचन्दनस्य काम्यत्व उप- | |
| आचमनमन्त्रभाष्यम् ... | ६९ | निषन्निरूपणम् | ७७ |
| स्नानोत्तरपठनीयमन्त्रभाष्यम् | ७० | अभ्यङ्गादिषु गोपीचन्दन- | |
| अथ तिलकधारणम् ... | ७१ | निषेधः | ८० |
| तत्रोर्ध्वपुण्ड्रविधानम् ... | ७१ | भस्मधारणस्य नित्यत्वे बृह- | |
| प्रशस्ता मृदः | ७१ | ज्जाबालोपनिषत्कथनम्... | ८१ |
| काम्यपरत्वेन तिलकानां वर्णाः | ७१ | आयुधादिधारणनिषेधः ... | ८३ |
| तत्तदङ्गुलीभिर्धारणे काम्य- | | तप्तमुद्राग्रहणनिषेधः ... | ८३ |
| निरूपणम्... .. | ७१ | भस्मधारणप्रयोगः | ८५ |
| दीपादिवत्तिलकस्याऽऽकार- | | भस्मलापनोपयोगिमन्त्रभा- | |
| भेदः | ७१ | ष्यम् | ८५ |
| तिलकपरिमाणम् | ७१ | अथ संध्यासमयनिरूपणम् | ८८ |
| केशवादिनामभिस्तत्तदङ्गेषु | | संध्यादिकर्मणामत्यागः ... | ८८ |
| तिलकधारणम् | ७१ | आचमने विशेषः | ८८ |
| तिलकार्थं वस्तुभेदः ... | ७२ | देशनियमो वाङ्नियमश्च ... | ८८ |
| कर्मभेदेन तिलकभेदः ... | ७२ | जपे धर्मविशेषः | ८८ |
| उर्ध्वपुण्ड्रादिव्यवस्था ... | ७२ | बहिःसंध्याप्रशंसा | ८८ |
| अत्र रुयादीनां विशेषः ... | ७२ | स्थलभेदेन संध्यायां फलभेदः | ८९ |
| ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य श्राद्धे निषेधः | ७२ | अकरणे प्रत्यवायः | ८९ |
| वैदिकानां भस्मपुण्ड्रप्रशंसा | ७२ | संध्यापदार्थनिर्वचनम् ... | ८९ |
| श्रौतादिभस्मनां पूर्वपूर्वप्राश- | | संध्यात्रैविध्यम् | ८९ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|-----------------------------------|-------------|--------------------------------|-------------|
| संध्यायामुत्तमादिकालः ... | ८९ | अर्घ्योत्तरं प्रदक्षिणा ततो ज- | |
| संध्यास्वरूपनिरूपणं संध्याया | | लस्पर्शनम् | ९९ |
| नित्यत्वं च... .. | ९० | जपार्थमासनं काम्यभेदेन त- | |
| संध्योपासनेतिकर्तव्यताविचारः | ९२ | त्प्रकारः | ९९ |
| प्राणायामनिरूपणम् ... | ९२ | वर्ज्यान्यासनानि | ९९ |
| संध्यायाः संकल्पनिरूपणम् | ९३ | तत्र पुत्रवतो विशेषः ... | १०० |
| मार्जनार्थं जलग्रहणे पात्रवि- | | गायत्र्यावाहनमन्त्रः ... | १०० |
| चारः | ९३ | गायत्रीछन्दादिमन्त्रपठनम् | १०० |
| वामहस्ते जलधारणनिषेधः | ९३ | जपे दिगादिनियमः ... | १०० |
| ऋगन्ते मार्जनविधानं तत्रा- | | जपे स्थितिविशेषनिरूपणम् | १०० |
| ङ्गुलिविचारः | ९४ | जपे संख्याकथनमनध्याये | |
| उदकामिमन्त्रणमन्त्रः ... | ९४ | विशेषः | १०० |
| पाणौ ग्रहणस्य मन्त्रः ... | ९५ | जपमालाविचारः | १०० |
| उक्तमार्जने मन्त्रविशेषः ... | ९५ | जप उपांश्वादिविचारः ... | १०० |
| मार्जने मन्त्रान्तरादि ग्राह्यमि- | | जपे नियमाः | १०१ |
| ति पूर्वपक्षः | ९५ | जपे करस्थापने विशेषः ... | १०१ |
| तच्छाखान्तरविषयमिति स- | | कराच्छादन आर्द्रवस्त्रनिषेधः | १०१ |
| माधानम् | ९५ | जपे स्थलम् | १०१ |
| ऋषिदैवतच्छन्दोविचारो हि- | | जपप्रशंसा | १०२ |
| रण्यकेशिनां तत्पठने बलव- | | गायत्रीविसर्जनम् | १०२ |
| त्प्रमाणाभावश्च | ९५ | उपस्थाने बौधायनसूत्रम् ... | १०२ |
| अर्घ्यप्रदानम्... .. | ९७ | उपस्थान ऊर्ध्वबाहुत्वादि... .. | १०२ |
| इदमेव प्रधानम् | ९८ | अथ दिक्प्रत्युपस्थानम् ... | १०२ |
| अर्घ्यदानप्रकारः | ९८ | मुन्याद्यभिवादनम् | १०२ |
| अर्घ्ये मन्त्रपठनप्रकारः ... | ९८ | संध्याकरणे प्रत्यवायः ... | १०३ |
| जपेऽप्येवम् | ९८ | क्वचित्संध्यायामकरणे दोषा- | |
| जलालाभेऽपि धूल्याऽर्घ्यदानम् | ९८ | भावः... .. | १०३ |
| अर्घ्ये मुक्तहस्तता | ९८ | संध्याकालातिक्रमे प्रायश्चि- | |
| स्थलेऽर्घ्यदाने विशेषः ... | ९९ | त्तम्... .. | १०३ |
| तत्रेषन्नम्रतादि | ९९ | माध्याह्निकाकरणे कालवि- | |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|-------------------------------------|-------------|--------------------------------|-------------|
| शेषः | १०३ | स्तत्प्रायश्चित्तं च | ११७ |
| सूतकिनां संध्योपासनविधिः | १०३ | पितृपाकोपजीविनोऽग्न्यमा- | |
| रोगिणः संध्यायां विशेषः ... | १०४ | वेऽपि दोषाभावः... .. | ११८ |
| प्रातःसंध्याप्रयोगः... .. | १०४ | होमोत्तरं गुरुमङ्गलादिवीक्ष- | |
| संध्यावन्दनमन्त्राणां भाष्यम् | १०५ | णम् | ११८ |
| ओमित्येकाक्षरमितिमन्त्रे स्वीयं | | घृतावलोकनम् | ११८ |
| व्याख्यानम् | १०५ | गोकण्डूयनादि | ११९ |
| भाष्याभावे कारणकथनम् | १०५ | अभिवादनविचारः | ११९ |
| प्राणायाममन्त्रभाष्यम् ... | १०७ | अभिवादने नामग्रहणविचारः | ११९ |
| जलादिमन्त्रणमन्त्रभाष्यम् | १०७ | वृद्धाभिवादनम् | ११९ |
| जलपानमन्त्रभाष्यम् | १०८ | अभिवादने स्वनामग्रहणम्. | ११९ |
| गायत्र्यावाहनमन्त्रभाष्यम् | १०८ | प्रवासागतस्याभिवादनम् ... | ११९ |
| यदह्लादित्यादिमन्त्रभाष्याभा- | | काम्यमभिवादनम् | ११९ |
| वात्स्वीयं व्याख्यानम् ... | १०८ | अभिवादने हस्तादिनिवेशनं | |
| उपस्थानमन्त्राणां भाष्यम् | ११२ | वर्णभेदेन | १२० |
| गायत्रीविसर्जनमन्त्रभाष्यम् | ११३ | एकहस्तेनाभिवादननिषेधः. | १२० |
| स्तुतोमयेतिमन्त्रे स्वीयं व्याख्या- | | प्रत्युत्थायाभिवादनम् ... | १२० |
| नम् | ११४ | प्रत्यभिवादनमाशीश्च ... | १२० |
| अन्तश्चरतीत्यत्र भाष्यम् ... | ११५ | प्लुतत्वादिविचारः... .. | १२० |
| औपासने स्वयंहोमविधानम् | ११५ | वर्णभेदेन प्रत्यभिवादनभेदः | १२१ |
| विवाहाग्नेर्धारणे नित्यत्ववि- | | प्रत्यभिवादनाभिज्ञो नाभि- | १२१ |
| चारः | ११६ | वाद्यः... .. | १२१ |
| होमकालो होमद्रव्यं च ... | ११६ | प्रत्यभिवादनाकरणे दोषः... .. | १२१ |
| आहुतिदेवताः | ११६ | कुशलप्रश्नादिविचारः ... | १२१ |
| होमप्रयोगः | ११६ | श्रोत्रियादिनाऽसंभाष्य गम- | |
| अग्निधारणाभावे प्रत्यवायः | ११६ | ननिषेधः | १२१ |
| अन्तरितहोमद्रव्यदानम् ... | ११७ | स्त्रीणां प्रश्नप्रकारः | १२२ |
| अग्न्यधारणे प्रायश्चित्तम् ... | ११७ | अभिवाद्यनिरूपणम् ... | १२२ |
| अशक्तं प्रति विशेषः... .. | ११७ | श्रोत्रियलक्षणम् | १२२ |
| विधुरस्याग्न्यधारणे विशेष- | | वयोन्यूनत्वेऽपि हीनवर्णेना- | |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---------------------------------|-------------|-----------------------------------|-------------|
| मिवाद्यो ब्राह्मणः... | १२२ | भाष्यम् | १३५ |
| शूद्राभिवादाने दोषः | १२३ | चतुर्वेदारम्भमन्त्रभाष्यम् ... | १३८ |
| गुर्वाद्युपसंग्रहणम् ... | १२३ | ब्रह्मयज्ञफलसाधकमन्त्रभा- | |
| उपसंग्रहलक्षणम् ... | १२३ | ष्यम् | १४० |
| गुर्वादिलक्षणम् ... | १२३ | ब्रह्मयज्ञाङ्गनमो ब्रह्मणेमन्त्र- | |
| मातुः सर्वापेक्षया विशेषः... | १२४ | भाष्यम् | १४१ |
| आचार्यस्य विशेषः | १२४ | समित्कुशपुष्पाद्याहरणम् ... | १४२ |
| अभिवादाने वर्ज्याः .. | १२४ | स्वयमानीतस्य ग्रहणम् ... | १४२ |
| स्त्रीणामभिवादाने विशेषः... | १२५ | शूद्रानीतस्य निषेधः | १४२ |
| अभिवादाने विशेष उच्चस्था- | | कुशग्रहणकालः | १४२ |
| नात् | १२५ | कुशग्रहणमन्त्रः | १४३ |
| अभिवादानप्रशंसा | १२५ | वर्ज्या दर्माः... .. | १४३ |
| अभिवादानप्रयोगः | १२६ | पुष्पादिमत्त्वेन कुशानां नाम- | |
| नमस्कारलक्षणम् | १२६ | भेदः | १४३ |
| स्त्रीकर्तृकः पञ्चाङ्गनमस्कारः | १२६ | कुशालाभे प्रतिनिधयः ... | १४३ |
| अथ द्वितीयभागकृत्यम्... | १२७ | तुलसीग्रहणनिषेधकालः ... | १४३ |
| तत्र वेदाभ्यासः समिदाद्या- | | तुलसीग्रहणमन्त्रः | १४४ |
| हरणम् | १२७ | गलितपत्रानुज्ञा | १४४ |
| अथ ब्रह्मयज्ञः | १२७ | पुष्पादेः पर्युषितता तत्प्रति- | |
| ब्रह्मयज्ञस्वरूपं तत्कालश्च... | १२७ | प्रसवः | १४४ |
| ब्रह्मयज्ञ इतिकर्तव्यता ... | १२८ | पुष्पादिस्थापनप्रकारः ... | १४४ |
| पठनीयविचारः | १२९ | बिल्वग्रहणनिषेधकालः ... | १४५ |
| अनध्याये विशेषः | १२९ | पुष्पवान्नमस्कारानर्हः ... | १४६ |
| ब्रह्मयज्ञेऽनध्यायनिर्वचनम्. | १३० | अन्यसत्ताकपुष्पादिग्रहणम् | १४६ |
| ब्रह्मयज्ञप्रशंसा | १३० | पुष्पादेः पूजार्थं याञ्जानिषेधः | १४६ |
| ब्रह्मयज्ञफलसिद्ध्यर्थं मन्त्र- | | तृतीयभागकृत्यम् | १४६ |
| पठनम् | १३० | पोष्यवर्गार्थमर्थसाधनम् ... | १४६ |
| वेदाद्यारम्भपठनविचारः ... | १३१ | पोष्यवर्गकथनम् | १४६ |
| ब्रह्मयज्ञप्रयोगः | १३४ | धनसाधनं यथावृत्ति कार्यम् | १४६ |
| ब्रह्मयज्ञप्रयोगसूचकमन्त्र- | | धनार्जनवृत्तिः | १४६ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|-----------------------------|-------------|----------------------------------|-------------|
| कलौ ब्राह्मणवृत्तिः... | ... १४७ | क्रियास्नानं तद्विधिश्च | ... १५५ |
| स्वधर्मानुष्ठानप्रशंसनम् | ... १४७ | गौणस्नानविचारः ... | ... १५६ |
| चतुर्थभागकृत्यम् ... | ... १४७ | अथ सारस्वतस्नानम् | ... १५६ |
| मृदाहरणम् ... | ... १४७ | गायत्रं स्नानम् ... | ... १५६ |
| क्षौरविचारः क्षौरकालः | ... १४७ | अशक्तानां विशेषः | ... १५६ |
| क्षौरनिषिद्धकालः ... | ... १४८ | मध्याह्नस्नानस्य नित्यत्वम्... | १५७ |
| संक्रान्तिविशेषपादादिनिषेधः | १४८ | आश्रमभेदेन तत्प्रकारः | ... १५७ |
| क्षौरविहितकालः ... | ... १४८ | स्नानार्थं ग्राह्याणि वस्तूनि... | १५७ |
| सिंहगुर्वादिषु विशेषविधानम् | १४९ | निषिद्धगोमयप्रकारः | ... १५७ |
| क्षौरादौ जप्यश्लोकः | ... १४९ | मृत्तिकागोमयादिस्नानप्रकारः | १५७ |
| श्मश्रुवापनप्रकारः ... | ... १४९ | अथ मध्याह्नसंध्या ... | ... १५९ |
| नापिताय देयप्रकारः | ... १४९ | मध्याह्नसंध्याया गौणकालः | १५९ |
| स्नाने भेदः ... | ... १५० | अल्पद्वादश्यादावपकर्षः | ... १५९ |
| नित्यादिस्नानानां लक्षणानि | १५० | धनुःसंक्रान्तौ माध्याह्निका- | |
| चण्डालादिस्पर्शनिमित्तक- | | पकर्षः ... | ... १६० |
| स्नानानि ... | ... १५१ | मध्याह्नसंध्याप्रयोगः | १६० |
| नैमित्तिकस्नानं शीतोदकेनैव | १५१ | मध्याह्नसंध्योक्तमन्त्रभाष्यम् | १६१ |
| पुत्रजन्मनिमित्तकं स्नानम् | १५१ | अथ तर्पणं तस्य नित्यत्ववि- | |
| रात्रौ नद्यादिगमनाशक्तस्य | | चारः ... | ... १६३ |
| स्नानम् ... | ... १५२ | तर्पणीयाः पितरः ... | ... १६३ |
| अशौचमध्ये पुत्रजन्मनिमि- | | तर्पणविधिः ... | ... १६४ |
| त्तकं स्नानम् ... | ... १५२ | तत्राञ्जलिप्रकारः ... | ... १६४ |
| ग्रहणस्नानम् ... | ... १५२ | यज्ञोपवीत्यादिना देवादितर्प- | |
| परार्थस्नानप्रकारः ... | ... १५२ | णम् ... | ... १६४ |
| काम्यस्नानानि ... | ... १५३ | पितृषु दिङ्निधयः ... | ... १६५ |
| समुद्रस्नानं सेतौ तु विशेषः | १५३ | तर्पणप्रकारः... | ... १६५ |
| अभ्यङ्गादिवर्जने वारादि | १५४ | स्थलतर्पणे विशेषः... | ... १६५ |
| तैऋविशेषेण प्रतिप्रसवः | ... १५४ | तर्पणे हस्तधार्याणि वस्तूनि | १६५ |
| अभ्यङ्गस्नान उक्ततिथ्यादि | १५४ | तर्पणे मालाधारणनिषेधः | १६६ |
| तिलामलकस्नानम् ... | ... १५५ | | |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|--|-------------|---|-------------|
| इदं च सतिलं तदभावेऽन्या- नुज्ञा १६६ | १६६ | तत्र त्रैकालिकदेवपूजाविधा- नम्... .. १७५ | १७५ |
| तिलस्थापनप्रकारः... .. १६६ | १६६ | पूजायां मन्त्रप्रकारः ... १७६ | १७६ |
| देवर्ष्याद्यक्षताविशेषः ... १६६ | १६६ | तत्र देवताविचारः ... १७६ | १७६ |
| जर्तिलप्रकारः १६६ | १६६ | कलौ हरिहरयोः पूजा ... १७७ | १७७ |
| गोत्रनामोच्चारणम् १६७ | १६७ | शिवनाभिलक्षणम्... .. १७७ | १७७ |
| तिलतर्पणनिषिद्धदिवसाः तत्प्रतिप्रसवः १६७ | १६७ | शालग्रामादिष्वावाहनविचारः १७७ | १७७ |
| जीवात्पितृकस्य तिलतर्पणनि- षेधः १६८ | १६८ | बाणलिङ्गस्य प्रतिष्ठाद्यभाष- स्तत्स्वरूपं च १७८ | १७८ |
| संक्षेपतर्पणविचारः १६९ | १६९ | शङ्खपूजा १७८ | १७८ |
| तर्पणावसानाञ्जलिप्रकारः... १६९ | १६९ | कलशे तीर्थावाहनम् ... १७९ | १७९ |
| ब्रह्मयज्ञात्तर्पणस्य भिन्नत्व- विचारः १६९ | १६९ | पञ्चायतनस्थापनविचारः ... १७९ | १७९ |
| अञ्जलिविचारः १७० | १७० | पूजाधिकारिणः १७९ | १७९ |
| यमतर्पणं दीपोत्सवचतुर्द- श्याम् १७१ | १७१ | शालग्रामादिसंख्याप्रकारः... १८० | १८० |
| भीष्मतर्पणं माघशुक्लाष्टम्याम् १७१ | १७१ | स्त्रीशूद्राणां शालग्रामस्पर्शे नाधिकारः १८० | १८० |
| तर्पणप्रशंसा १७१ | १७१ | अर्चनव्यवस्था १८० | १८० |
| यावत्तर्पणं वस्त्रपीडनं न कार्यम् १७२ | १७२ | पूजोपचारविचारः १८० | १८० |
| सूर्यायार्घ्यस्तन्मन्त्रश्च ... १७२ | १७२ | उपचारद्रव्याणि १८१ | १८१ |
| अथ तर्पणप्रयोगः १७३ | १७३ | दुग्धस्नाने ताम्रपात्रानुज्ञा... १८२ | १८२ |
| देवादितर्पणम् १७३ | १७३ | गन्धोदकस्नानम् १८३ | १८३ |
| यमतर्पणम् १७४ | १७४ | वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य स्नानं पार- दलिङ्गपरम् १८३ | १८३ |
| वस्त्रधावनतत्पीडनप्रकारः... १७५ | १७५ | प्रतिमास्नाने विशेषः ... १८३ | १८३ |
| आर्द्रवस्त्रस्य स्कन्धे स्थापन- निषेधः १७५ | १७५ | वस्त्रालंकारादिसमर्पणम् ... १८३ | १८३ |
| अथ देवपूजा १७५ | १७५ | उपवीतालंकाराणां निर्माल्य- त्वाभावः... .. २८३ | २८३ |
| | | तुलसीप्रकारः १८४ | १८४ |
| | | बिल्वप्रकारस्तदलाभेऽन्यानुज्ञा १८४ | १८४ |
| | | त्याज्यानि पुष्पाणि ... १८५ | १८५ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|-------------|---|-------------|
| देवताभेदेन केतक्यादिसमर्पणनिषेधः... | १८५ | पूजापद्धतिगृह्यपरिशिष्टम्... | २१८ |
| पुष्पसमर्पणप्रकारः... | १८६ | पूजोत्तरकृत्यम् ... | २१८ |
| धूपे स्वकृता आर्याः... | १८६ | पूजाप्रयोगः ... | २१९ |
| दीपविधिः ... | १८६ | पूजाप्रयोगोक्तमन्त्रभाष्यम् | २२२ |
| नैवेद्यपात्रविचारस्तत्समर्पणं च | १८६ | वरुणमन्त्रभाष्यम् ... | २२३ |
| नैवेद्यग्रहणे किञ्चिद्विचारः... | १८७ | पुरुषसूक्तभाष्यम् ... | २२३ |
| फलदक्षिणादि ... | १८७ | नमः सोमाय चेति शं च म इति मन्त्रभाष्यम् | २२९ |
| आरार्तिकम्... | १८७ | अवान्तरमन्त्रभाष्यम् ... | २३१ |
| गीतनमस्कारमन्त्रपुष्पम् ... | १८७ | पञ्चायतनगायत्रीमन्त्रभाष्यम् | २३४ |
| शिवप्रियाणि पुष्पाणि ... | १८८ | वृद्धयशौचादौ देवार्चनविचारः | २३५ |
| विष्णुप्रियाणि पुष्पाणि ... | १८८ | स्पर्शं विना तत्पूजाप्रकारः | २३५ |
| सूर्यप्रियाणि ... | १८९ | गुरुपूजा ... | २३९ |
| गणेशप्रियपुष्पाणि... | १८९ | इति हिरण्यकेश्याह्निके ... | |
| देवीप्रियाणि ... | १८९ | पूर्वार्धानुक्रमणिका समाप्ता | २४० |
| पूजान्ते जपः ... | १८९ | अथाहः पञ्चमभागकृत्यम् | २४० |
| पूजासंभारस्थापनप्रकारः ... | १८९ | पञ्चमहायज्ञविचारः ... | २४० |
| स्तोत्रपाठः ... | १९० | देवाद्याहुतिप्रकारः ... | २४० |
| शिवपूजायां रुद्राक्षधारणप्रकारः ... | १९० | पञ्चमहायज्ञलक्षणानि ... | २४१ |
| केवलहरिहरयोः पूजने बौधायनसूत्रम् ... | १९० | ब्रह्मयज्ञस्य कृतत्वादन्वेषामितिकर्तव्यताविचारः ... | २४२ |
| रुद्राभिषेके बौधायनसूत्रम् | १९३ | वैश्वदेवान्दिन्नत्वमन्येषां यज्ञानाम् ... | २४५ |
| ब्राह्मणानां पूज्यदेवताविचारः | २०३ | उपवासेऽपि वैश्वदेवकर्तव्यविचारः ... | २४५ |
| शिवप्रसादग्रहणविचारः ... | २०९ | वैश्वदेवस्याऽऽत्मसंस्कारप्रकारः ... | २४५ |
| शिवप्रसादग्रहणे संग्रहश्लोकाः स्वीयाः ... | २१४ | भिन्नपाकोपजीविना जीवित्पितृकेण वैश्वदेवस्य मिन्नत्वेन करणम् ... | २४६ |
| अथ शङ्खलक्षणम् ... | २१७ | | |
| शङ्खोदकस्नानमाहात्म्यम् ... | २१७ | | |
| घण्टालक्षणम् ... | २१७ | | |
| तीर्थस्य हस्तेन ग्रहणनिषेधः | २१८ | | |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|-------------|--|-------------|
| विभक्तानां भ्रातृणां वैश्वदेव- भिन्नत्वम् २४६ | २४६ | बलिदानानन्तरं तदनवलो- कनम् २५५ | २५५ |
| अविभक्तविधुरकर्तृकविचारः २४६ | २४६ | अनग्निकस्य विशेषः ... २५६ | २५६ |
| देशान्तरस्थितसर्वेषां विचारः २४७ | २४७ | विद्यार्थ्यादीनां विशेषः ... २५६ | २५६ |
| प्रातर्बालानां सिद्धेऽन्नेऽग्नौ कु- कुटाण्डप्रमाणान्नत्यागः... २४६ | २४६ | होम्यद्रव्यस्यावान्तरविचारः २५७ | २५७ |
| स्त्रीणां विशेषः २४८ | २४८ | भस्मनि होमप्रकारः ... २५८ | २५८ |
| प्रवासेऽन्नाभावे जलेन कर्त- व्यताविचारः २४८ | २४८ | परिषेकक्रमकारिका ... २६० | २६० |
| वैश्वदेवस्य देशविचारः ... २४९ | २४९ | वैश्वदेवप्रयोगः २६० | २६० |
| वैश्वदेवकालविचारः ... २४९ | २४९ | वैश्वदेवमन्त्रभाष्यम् ... २६४ | २६४ |
| सूर्यास्तानन्तरं वैश्वदेवकर- णम्... .. २५० | २५० | विधुरवैश्वदेवमन्त्रभाष्यम्... २६६ | २६६ |
| वैश्वदेवीयोऽग्निः २५० | २५० | अथ भिक्षादानम् २६७ | २६७ |
| वैश्वदेवारम्भकालः ... २५१ | २५१ | भिक्षालक्षणम् २६७ | २६७ |
| अग्न्यायतनप्रकारः... .. २५१ | २५१ | ग्रासप्रमाणम् २६७ | २६७ |
| होम्यद्रव्यम् २५१ | २५१ | अतिथिलक्षणम् २६७ | २६७ |
| उपवासे भक्ष्यवस्तुना होमः २५१ | २५१ | वैश्वदेवात्प्रागतिथिप्राप्तौ ... २६७ | २६७ |
| उदकेनोदक एव २५२ | २५२ | भिक्षाधिकारिणः २६८ | २६८ |
| वैश्वदेवार्थं व्रतग्रहणे विचारः २५२ | २५२ | यतिभिक्षायां नियमाः ... २६८ | २६८ |
| हस्तेन होमे विशेषः ... २५२ | २५२ | भिक्षाप्रकारः २६८ | २६८ |
| होमकाले सव्यकरस्य हृदि स्थापनम् २५३ | २५३ | प्राक्प्रणीतादिभिक्षाविचारः २६८ | २६८ |
| बद्धशिखत्वादिनियमः ... २५३ | २५३ | आतिथ्याकरणे प्रत्यवायः... २७० | २७० |
| अवदानबलिप्रमाणम् ... २५३ | २५३ | मण्डलादिकरणं पात्राधो- भागे २७० | २७० |
| बलिहरणं सूपसृष्टान्नेन ... २५३ | २५३ | ब्रह्मचारिणो विशेषः ... २७१ | २७१ |
| बलिदेशसंस्कारः २५३ | २५३ | अशक्तौ भिक्षादानप्रकारः २७१ | २७१ |
| बलिपरिषेचनप्रकारः ... २५३ | २५३ | शतहस्तावधि भिक्षान्ननयनम्. २७१ | २७१ |
| बलिदानप्रकारस्तत्स्थानानि २५४ | २५४ | अन्यस्मै भिक्षादाननिषेधः २७२ | २७२ |
| भूतबलिविचारः २५५ | २५५ | हस्तेन भिक्षादाननिषेधः ... २७२ | २७२ |
| | | आहारमात्रादधिकभिक्षानि- षेधः २७२ | २७२ |
| | | गुर्वादिभ्यस्तत्प्रदानानुज्ञा ... २७३ | २७३ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|-------------|---|-------------|
| अतिथिभोजनम् | २७३ | उच्छिष्टपरित्याग आज्यादि- वर्जनम् | २८६ |
| अतिथिपूजनम् | २७३ | भोजने कालविशेषनिषेधः... | २८६ |
| क्षत्रियाद्यतिथौ विशेषः ... | २७४ | भार्यासंनिधौ भोजननिषेधः | २८७ |
| अन्नाभावे प्रकारः | २७४ | सहभुक्तिप्रतिप्रसवः ... | २८७ |
| अन्नदाने पात्रविचाराभावः | २७५ | वामहस्तेनैकहस्तेन च भोज- नजलपानयोर्निषेधः ... | २८७ |
| मनुष्ययज्ञलक्षणं श्रुतौ ... | २७५ | जलपानप्रकारः | २८७ |
| भोजनविधिस्तत्कालश्च ... | २७६ | पात्रस्थितान्ननमस्कारः ... | २८८ |
| रात्रौ भोजनावश्यकता ... | २७६ | प्राणाहुतिनियमा अङ्गुलिन- यमश्च | २८८ |
| भोजनारम्भे द्विराचमनम् ... | २७६ | प्राणाहुत्युत्तरं मौनविसर्ज- नम्... .. | २८९ |
| भोजनविधिः | २७६ | चित्राहुत्युद्धरणम् | २९१ |
| भोजने कर्तव्यताप्रकारः ... | २७६ | प्राणाहुत्युत्तरं कृत्यम् ... | २९१ |
| तत्र दिङ्निियमः | २७७ | पात्रस्य भूमौ स्थापनं यन्त्रि- कायाश्च | २९१ |
| भोजनसमय आसनम् | २७८ | पदार्थभक्षणक्रमः | २९१ |
| भोजनपात्रम् | २७८ | एकपङ्क्तिभोजननिषेधस्तत्प्रति- प्रसवः | २९२ |
| पलाशपत्रे गृहिणो भो- जननिषेधः | २७९ | भोजनसमये रजस्वलाशब्द- श्रवणे तत्प्रायश्चित्तम् ... | २९२ |
| कांस्यपात्रविचारस्तत्प- रिमाणम् | २७९ | केशादिद्रूषितान्नत्याग- स्तत्प्रतिप्रसवश्च | २९२ |
| प्रशस्तानि पात्राणि | २७९ | एकपङ्क्तौ बहुसमुदाये प्रथमतो भोजननिषेधः | २९२ |
| निषिद्धानि पात्राणि | २७९ | रजस्वलादिदृष्टान्नत्यागः ... | २९३ |
| ताम्रपात्रनिषेधस्तद्विचारश्च | २८० | उलूखलादिशब्दपर्यन्तमभो- जनम् | ३९३ |
| परिवेषणप्रकारः | २८० | अभक्ष्याः पदार्थाः | २९३ |
| केषांचिद्धस्तदत्तानां निषेधः | २८१ | | |
| धारया परिवेषणे दोषविचारः | २८१ | | |
| पात्रे पदार्थनिवेशनम् | २८२ | | |
| नैवेद्यनिवेदनमन्त्रः... .. | २८३ | | |
| नित्यश्राद्धस्वरूपम्... .. | २८३ | | |
| अवान्तरसंकल्पादि... .. | २८३ | | |
| गोग्रासनिवेदनम् | २८३ | | |
| भोजनसमये निषिद्धाचार- कथनम् | २८४ | | |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|----------------------------------|-------------|-------------------------------|-------------|
| प्रतिपदादितिथिषु अभक्ष्याः | | सगर्भाहस्तेन पाकादिकरणे | |
| पदार्थाः | २९३ | निषेधः | ३०५ |
| भोजने कर्तव्यविशेषः ... | २९४ | आत्मार्थपाकनिन्दनम् ... | ३०५ |
| मुखशब्दादिनिषेधः ... | २९४ | पात्रनिष्काशनं तत्संमार्जन- | |
| अभक्ष्यान्तराणि | २९४ | प्रकारः | ३०६ |
| अभोज्यान्नानि | २९६ | भोजनप्रशंसा तदुत्तरकृत्यम् | ३०६ |
| पुनरुपनयनप्रयोजकान्नानि | २९८ | तुलसीदलभक्षणम्... .. | २०६ |
| बलिदानाकरणे प्रायश्चित्तम् | ३०० | अन्नपरिपाकार्थमीश्वरस्मर- | |
| आपोशनाकरणे प्रायश्चित्तम् | ३०० | णम्... .. | ३०६ |
| भोजनकाले परस्परं स्पर्शं | | ताम्बूलभक्षणम् | ३०७ |
| प्रायश्चित्तम् | ३०० | आहारशुद्धौ फलाधिक्यम् | ३०८ |
| निषीतादिना भोजने प्राय- | | भोजनप्रयोगः | ३०८ |
| श्चित्तम् | ३०० | भिक्षादानमन्त्रभाष्यम् ... | ३११ |
| नीलवस्त्रधारणेन भोजने | | भोजनप्रयोगस्थमन्त्रभाष्यम् | ३१२ |
| परिवेषणे च प्रायश्चित्तम् | ३०० | षष्ठभागकृत्यम् | ३१६ |
| भोजनकाले मूत्राद्युत्सर्गे प्रा- | | अन्नपरिणमनप्रकारः ... | ३१६ |
| यश्चित्तम् | ३०१ | दिवास्वापनिषेधः | ३१७ |
| शब्ददुष्टान्नभक्षणे प्रायश्चि- | | पुराणपठनम् | ३१७ |
| त्तम्... .. | ३०१ | सप्तमभागकृत्यम् | ३१८ |
| केशकीटादिदुष्टान्नभक्षणे प्रा- | | तत्र कर्तव्यविचारः... .. | ३१८ |
| यश्चित्तम् | ३०१ | वृथाशास्त्रव्यासङ्गनिषेधः ... | ३१८ |
| भिन्नभाजनभोजने... .. | ३०२ | सामयाचारिकधर्मकथनम्... .. | ३२० |
| भोजनसमये क्षुतादिसत्त्वे ... | ३०२ | अष्टमभागकृत्यम् | ३२४ |
| परिवेषणसमये रजोदर्शने... .. | ३०३ | लोकयात्राकथनम् | ३२४ |
| भोजनं सायंप्रातः कार्यम् ... | ३०३ | पादुकावर्जनं कर्मविशेषे ... | ३२५ |
| भोजनोत्तरकर्माणि... .. | ३०३ | श्राद्धभोजिनां संध्यावन्दने | |
| गण्डूषाचमनादि | ३०३ | विशेषः | ३२५ |
| गृहवर्तिसर्वरसाद्यभक्षणम्... .. | ३०४ | सायंसंध्याकालो होमकालश्च | ३२५ |
| पाककरणे प्रशस्ताः... .. | ३०५ | सायंसंध्योत्तरं शिवपूजा ... | ३२५ |
| पाककरणे त्याज्याः... .. | ३०५ | सायंभोजनप्रकारः | ३२६ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|-------------------------------|-------------|--------------------------------|-------------|
| सायंकालीनातिथिः ... | ३२६ | रतौ निवीतं शिखाग्रन्थिवि- | |
| सायंवैश्वदेवे विशेषः ... | ३२६ | सर्जनं च | ३४० |
| रात्रौ भोजने निषिद्धदिनानि | ३२७ | रजोदर्शनात्प्रागपि गमनानुज्ञा | ३४० |
| सोमवारे विशेषः | ३२७ | अननुकूलरमणीवर्जनम् ... | ३४० |
| ध्रुवमण्डले ब्रह्मोपस्थानं | | चन्दनादिसमर्पणम्... .. | ३४० |
| तन्मन्त्रभाष्यं च | ३२७ | ताम्बूलवस्तुसंग्राहकः स्वीय- | |
| अथ पत्नीधर्माः | ३३० | श्लोकः | ३४१ |
| दीपलापनप्रकारः | ३३२ | कान्ताया भर्तुर्नमस्कारपूर्वकं | |
| दीपतैलादिस्पर्शनिषेधः ... | ३३२ | शय्याधिरोहणम् | ३४१ |
| दीपप्रलोपनं पुरुषस्य निषि- | | बहिःसंभोगः | ३४१ |
| द्धम् | ३३२ | अथ रतिस्तत्र दिनशुद्ध्यादि- | |
| स्त्रीधर्मविषयेऽष्टधा भागेषु | | प्रकारः | ३४२ |
| स्वीयाः संग्रहश्लोकाः ... | ३३३ | संभोगोत्तरं कृत्यम् | ३४४ |
| अथ शयनम् | ३३४ | ऋतौ गर्भसंभवात्स्नानमवान्त- | |
| तत्र दिङ्निर्णयः | ३३४ | रनियमाश्च... .. | ३४४ |
| रात्रिसूक्तपाठः | ३३४ | रत्युत्तरं सहशय्यानिषेधः | ३४५ |
| नर्मदादिप्रार्थनामन्त्राः ... | ३३४ | स्त्रीणां कामशास्त्रादिपठनप्र- | |
| शयनस्थानस्य शुचित्वादि | ३३५ | कारः | ३४६ |
| शयनीये वर्जनीयानि ... | ३३५ | रतिवस्त्रस्य कर्मान्तरेऽनुपयो- | |
| प्रदोष उत्तररात्रौ च पठनम् | ३३५ | गित्वम् | ३४६ |
| रतिकालः | ३३५ | रतिप्रशंसा स्त्रीनियमविशेषाश्च | ३४७ |
| पर्यङ्कलक्षणम् | ३३५ | रतिवर्जदिनादि | ३४७ |
| रतिकृत्यं तत्र ग्राह्याणि नि- | | स्वीयकान्ताप्रशंसा... .. | ३४८ |
| षिद्धानि च दिनानि ... | ३३६ | रात्रिसूक्तभाष्यम् | ३४९ |
| ऋतुकाले रत्यकरणे प्रत्यवायः | ३३७ | विष्णुर्योनिमितिमन्त्रभाष्यम् | ३५३ |
| अनृतावपि गमनप्रकारः ... | ३३८ | सन्नाम इतिमन्त्रे स्वीयभाष्यम् | ३५४ |
| संभोगकृत्यानि | ३३८ | स्वप्ननिर्णयः | ३५५ |
| दीपनिर्वापणप्रकारः ... | ३३८ | आह्निककृत्याकरणे प्रत्यवा- | |
| रतौ स्त्रीणामनपराधिता ... | ३३९ | यस्तत्करणे फलम् ... | ३५३ |
| कान्तालंकरणम् | ३३९ | | |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|--|-------------|--------------------------------------|-------------|
| नियमविशेषकथनार्थं प्रकी- र्णप्रकरणम् ३६० | | श्राद्धारम्भसमयनिरूपणम् | ३८५ |
| पक्षकृत्य एकादशीनिरूप- णम् ३६२ | | तत्र देवताः ३८५ | |
| तत्राधिकारिणः ३६३ | | अक्षय्यतृतीयायां विशेषः ... ३८५ | |
| श्राद्धदिने विशेषः ३६५ | | मातामहादिश्राद्धम्... .. ३८६ | |
| श्रवणद्वादश्यामुपोषणविधिः ३६६ | | षण्णवत्यः ३८७ | |
| मासकृत्ये मासिकश्राद्धे सूत्रम् ३६६ | | अथ दैविके रामनवमीनिर्णयः ३८७ | |
| दर्शश्राद्धम् ३७६ | | उत्सर्जनोपाकर्मनिर्णयः ... ३९० | |
| तत्र द्रव्याणि ३७६ | | कृष्णजन्माष्टमीविचारः ... ३९१ | |
| कर्तृभोक्त्रोर्लक्षणानि ... ३७७ | | अथ शुद्धिकरणम् ३९२ | |
| अग्नौकरणादि ३७८ | | पात्रशुद्धिर्वस्त्रशुद्धिश्च ... ३९३ | |
| श्राद्धे वर्ज्यानि ३७९ | | मुञ्जादिशुद्धिः ३९४ | |
| ऋतुकृत्यम् ३७९ | | धान्यशुद्धिः... .. ३९४ | |
| संवत्सरकृत्यम् ३८० | | शरीरशुद्धिः... .. ३९९ | |
| सांवत्सरिकश्राद्धम्... .. ३८० | | रजस्वलाशुद्धिः ३९५ | |
| श्राद्धाङ्गभूततर्पणनिर्णयः... ३८० | | अथ दोषापवादाः ३९५ | |
| श्राद्धतिथिनिर्णयः ३८३ | | अथ नैमित्तिके ग्रहणस्नानादि ३९५ | |
| अथैकोद्दिष्टम् ३८५ | | नैमित्तिकोपवासाः... .. ३९५ | |
| | | अनध्यायनिरूपणम् ३९७ | |
| | | तदपवादप्रकरणम् ४०३ | |
| | | शाखाभेदप्रकरणम् ४०४ | |
| | | प्रकरणसंग्राहकाः श्लोकाः ४१६ | |
| | | ग्रन्थसमापनम् ४१७ | |
| | | मङ्गलम् ४१८ | |

इत्याचारभूषणाविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

ओकोपाह्वयम्बकविरचितं

हिरण्यकेश्याह्निकमाचारभूषणम् ।

तत्र पूर्वार्धे प्रथमः किरणः ।

[*शेषविभूषणमीडे शेषाशेषार्थलाभाय ।
दातुं सकलमभीष्टं फलमीष्टे यत्कृपादृष्टिः] ॥ १ ॥
साम्बं शंभुं गणपतिं सत्याषाढं प्रणम्य च ।
श्रीमद्रामं सत्यभामां पितरं मातरं क्रमात् ॥ २ ॥
ओकोपाह्वरुयम्बकोऽहमाह्निकं नातिविस्तृतम् ।
सूत्रवृत्ती उपाश्रित्य तनोम्याचारभूषणम् ॥ ३ ॥

तत्राऽऽह्निकशब्दोऽह्ना निर्वृत्तमित्यर्थे तेन निर्वृत्तम्, [पा.५-१-७९]
इत्यनुशासनादूठप्रत्ययान्ततया व्युत्पन्नत्वात्प्रतिदिनविहितकर्ममात्रपरः।

आह्निकं दिननिर्वृत्ते भोजने नित्यकर्मणि ॥ इति विश्वाच्च ।

तदपि स्वगृह्योक्तमावश्यकमित्युक्तमाचाररत्ने गृह्यपरिशिष्टे—

बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य यावत्प्रचोदितम् ।

तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत् ॥ इति ।

स्वगृह्याविरोधिपारक्यमपि तथेति तत्रैव कर्मप्रदीपे—

यन्नाऽऽम्नातं स्वशाखायां पारक्यमविरोधि च ।

विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत् ॥ इति ॥

सर्वशाखाप्रत्ययमेकं कर्मेति न्यायेन सर्वान्प्रत्यविशेषेण शास्त्रप्रवृत्तेः
पूर्वतन्त्रे जैमिनिनोक्तत्वात् । विवृतं चैतदाकरे तत्रैव यज्ञकाण्डे—

आपस्तम्बादिभिरपि स्वसूत्राभावतस्तथा ।

बोधायनोक्तं कर्तव्यमन्यथा पतितो भवेत् ॥ इति ।

प्रतिदिनं कर्तव्यमप्यनेकविधमित्याह पराशरः—

स्नानं संध्याजपो होमो देवतानां च पूजनम् ।

आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट् कर्माणि दिने दिने ॥ इति ।

* स पुस्तकेऽयं श्लोको न विद्यते ।

तत्र स्नानं तत्पूर्वभाविनां ब्राह्ममुहूर्तोत्थानहितचिन्तनादीनां सर्वेषा-
मुपलक्षणमिति तद्याख्यातारः । आचारावश्यकता हिरण्यकेशिधर्मप्रश्ने—

अथातः सामयाचारिकान्धर्मान्व्याख्यास्यामः । इति ।

अथशब्द आनन्तर्यार्थः । अतःशब्दो हेत्वर्थः । समयाचारप्राप्ताः
सामयाचारिकास्तानिति तद्याख्यातारो महादेवदीक्षिताः । आपस्तम्ब-
धर्मप्रश्नेऽपि—अथातः सामयाचारिकान्धर्मान्व्याख्यास्यामः । इति ।
अथशब्द आनन्तर्यार्थे । अतःशब्दो हेतौ । उक्तानि श्रौतस्मार्तकर्माणि
तानि च वक्ष्यमाणान्धर्मानपेक्षन्ते । कथम् । आचान्तेन कर्तव्यं यज्ञोप-
वीतिना कर्तव्यं पवित्रपाणिना कर्तव्यमिति वचनादाचमनादीन्यपेक्षन्ते ।

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।

इतिवचनात्संध्यावन्दनमपीति तद्याख्यातारो हरदत्तमिश्राः । विस्त-
रश्च तत्रैव द्रष्टव्यः । एतस्यावश्यमनुष्ठेयताव्यतिरेकमुखेणोक्ता भार-
तटीकायां पुराणे—

वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वाऽपि महेश्वरे ।

आचारविमुखं मूढं न पुनाति कदाचन ॥ इति ।

तत्र ब्राह्मणस्य वासयोग्यं स्थानं धर्मप्रश्ने-प्रभूतैधोदके ग्रामे यत्राऽऽ-
त्माधीनं प्रयमणं तत्र वासो धर्म्यो ब्राह्मणस्य । इति । प्रभूतमेधः काष्ठ-
मुदकं च यस्मिन्ग्रामे तस्मिन्ब्राह्मणस्य वासो धर्म्यः । तत्रापि यत्राऽऽ-
त्माधीनं प्रयमणं प्रायत्यं मूत्रपुरीषपादप्रक्षालनानि यत्राऽऽत्माधीनानि
तत्र । यत्र कूपेष्वेवोदकं तत्र बहुकूपेऽपि न वस्तव्यम् । ब्राह्मणग्रहणा-
द्वर्णान्तरस्यानियमः । स च शुचिना कार्य इत्यप्युक्तं तत्रैव—देवता-
नामभिधानं चाप्रयतः । इति । अप्रयतः सन्देवतानामग्न्यादीनां नामाभि-
धानं वर्जयेत् । अभिधानमित्यपि वा एष एवार्थ इति व्याख्या । पवित्रः
प्रयतः पूत इत्यमरः । न प्रयतोऽप्रयतोऽशुचिः । तत्प्रकारमाहाऽऽचार-
रत्नेऽङ्गिराः—

उत्थाय पश्चिमे यामे रात्रिवासः परित्यजेत् ।

प्रक्षाल्य हस्तपादास्यान्युपस्पृश्य हरिं स्मरेत् ॥ इति ।

अत्राजपाजपसंकल्पोऽपि कार्यः ।

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी ।

तस्याः संकल्पमात्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः ॥

इत्युक्तेः ।

इयं चोक्ता सूतसंहितायां यज्ञवैभवखण्डे सप्तमाध्याय आत्ममन्त्र-
त्वेन साऽहमितिरूपा—

अथ वा प्राणसंचारः सकारः परिकीर्तितः ।
हकारोऽपानसंचारो देहे देहवतां सदा ॥
एवं यस्तु विजानाति मन्त्रमाचार्यपूर्वकम् ।
सोऽजपन्नपि हंसाख्यं जपत्येव न संशयः ॥
ईदृशीमजपां विद्यामास्तिक्याद्गुरुभक्तितः ।
यो विजानाति पापानि बुद्धिपूर्वकृतानि च ॥
तस्य नश्यन्ति सर्वाणि नात्र कार्या विचारणा ॥ इति ।

इह विस्तरस्तु तत्रैव टीकादौ ज्ञेयः । ततः श्रोत्रियादिकमवलोक-
येन्न तु पापिष्ठादिकं तदाह माधवीये कात्यायनः—

श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितं तथा ।
प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥
पापिष्ठं दुर्भगामन्धं नग्नमुत्कृत्तनासिकम् ।
प्रातरुत्थायः यः पश्येत्तत्कलेरुपलक्षणम् ॥ इति ।

अत्र निद्रानिषेध आचारत्ने स्मृतिरत्नावल्याम्—

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी ।
तां करोति तु यो मोहात्पादकृच्छ्रेण शुध्यति ॥ इति ।

धर्मप्रक्षे तु अस्तोदितयोः प्रसुप्तस्य प्रायश्चित्तं दर्शितम्—सूर्या-
भ्युदितोऽहनि नाश्रीयाद्वाण्यतोऽहस्तिष्ठेत्सूर्याभिनिष्ठोऽनाश्वान्वाग्यत
आसीत् श्वोभूत उदकमुपस्पृश्य वाचं विसृजेदातमितोः प्राणमायच्छे-
दित्येके । इति ।

सुप्ते यस्मिन्नस्तमेति सुप्ते यस्मिन्नुदेति च ।

अंशुमानाभिनिष्ठु(र्मु)क्ताभ्युदितौ तु यथाक्रमम् ॥

अनाश्वानभुञ्जानो यावदङ्गानां ग्लानिर्भवति तावत्प्राणमायच्छेत्प्रा-
णवायुमाकृष्य धारयेत् । प्राणायामान्कुर्यादित्येके मन्यन्ते । शक्त्यपेक्षो
विकल्प इति तद्याख्याविस्तरस्तु तत्रैव द्रष्टव्यः । गृह्यप्रश्नव्याख्यायां
मातृदत्ता अपि प्राणायामश्चोभयत्र धर्मेषूक्तो विकल्पेन स्यादित्याहुः ।
दुःस्वप्नदर्शनेऽप्येवमित्युक्तं तत्रैव—स्वप्नं वा पापकं दृष्ट्वा । इति । पापक-

स्वप्नो दुःस्वप्नो मर्कटास्कन्दनादिस्तं वृष्टेति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता ।
आचारकिरणे तु—

रात्रेस्तु पश्चिमो यामो मुहूर्तो ब्राह्म उच्यते ।

इति पितामहोक्तेरन्तिमयामोऽपि ब्राह्ममुहूर्त इत्युक्तम् । सोऽपि
प्रदोषे(ष)पश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासरतो भवेत् ॥

इति दक्षवचनाद्वेदाध्ययनपर इति ज्ञेयम् ।

अथ प्रयोगः । कर्ता ब्राह्मे मुहूर्ते समुत्थाय रात्रिवासस्त्यक्त्वा हस्त-
पादौ प्रक्षाल्य गण्डूषान्कृत्वा वक्ष्यमाणप्रकारेणाऽऽचम्य

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।

यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ इति,
अतिनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम् ।

स्मरामि पुण्डरीकाक्षं तेन स्नातो भवाम्यहम् ॥

इति वामनपुराणोक्तमानसस्नानश्लोकं, तथा—

शारदाभ्रातिशुभ्राङ्गं चन्द्रार्धमुकुटोज्ज्वलम् ।

स्मरामि तं महादेवं तेन स्नातो भवाम्यहम् ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्ततच्छ्लोकं च पठित्वाऽनेन पूर्वैद्युर्यथासंकल्पि-
ताजपागायत्रीजपाख्येन कर्मणा भगवन्तो गणेशब्रह्मविष्णुमहेशजीवात्म-
परमात्मगुरवः प्रीयन्तां न मम । ॐ तत्स०र्पणमस्तु । इति प्राक्तनाज-
पाजपं निवेद्य सुमुखश्चेत्यादि देशकालौ संकीर्त्याद्य सूर्योदयमारभ्य
श्वः सूर्योदयपर्यन्तमहोरात्रयोजाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थात्रये ज्ञानतोऽज्ञानतो
वा षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकोच्छ्वासनिःश्वासाभ्यां सोऽहंरूपा-
भ्योर्भैव गणेशब्रह्मविष्णुमहेशजीवात्मपरमात्मगुरुप्रीत्यर्थं यथायथोक्तसं-
ख्याभेदं तत्तद्द्वेषु तत्तद्देवतायथायथस्थानं हंसमन्त्रेणाजपागायत्रीजप
महं करिष्य इत्यजपाजपसंकल्पं कुर्यात् । प्रथमारम्भे तु न निवेदनं
प्रागसंकल्पितत्वात् । अत्र तु विवाहोत्तरं भर्त्रनुज्ञयैव स्त्रीणामप्यधि-
कारः । ततः स्वहितचिन्तनं कार्यम् ।

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं

सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम् ।

उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्ड-

माखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि चतुराननवन्द्यमान-

मिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम् ।

तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं

पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय ॥ २ ॥

प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोक-

दावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम् ।

अज्ञानकाननविनाशनहव्यवाह-

मुत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य ॥ ३ ॥

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम् ।

प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत्प्रयतः पुमान् ॥ ४ ॥

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं

सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम् ।

विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोभिरामं

संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ १ ॥

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं

गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।

खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं

संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं

वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम् ।

नामादिभेदरहितं षडभावशून्यं

संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ ३ ॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य

श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति ।

ते दुःखजातं बहुजन्मचिन्त्यं (संचितं)

हित्वा पदं यान्ति तदेव शंभोः ॥ ४ ॥

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै

नारायणं गरुडवाहनमञ्जनाभम् ।

ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं

चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना

पादारविन्दयुगुलं परमस्य पुंसः ।

नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य
 पारयणप्रवैणविप्रपरायणस्य ॥ २ ॥
 प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तं
 प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।
 यो ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिगजेन्द्रघोर-
 शोकप्रणाशमकरोद्धृतशङ्खचक्रः ॥ ३ ॥
 श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातः प्रातः पठेद्विजः ।
 लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥ ४ ॥
 प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
 रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनूर्यजूषि ।
 सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
 *ब्रह्माहरात्म कमलाक्षमचिन्त्यरूपम् ॥ १ ॥
 प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभि-
 ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नुतमर्चितं च ।
 वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं
 त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥ २ ॥
 प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं
 पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च ।
 तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं
 गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥ ३ ॥
 श्लोकत्रयमिदं मानोः प्रातः प्रातः पठेद्विजः ।
 सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः परमं सुखमाप्नुयात् ॥ ४ ॥
 प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां
 सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम् ।
 दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां
 रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ॥ १ ॥
 प्रातर्नमामि महिषासुरचण्डमुण्ड-
 शुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम् ।

* क पुस्तके समासे—ब्रह्मा चाश्च हरश्चेति तथा त आत्मा स्वरूपं यस्मात्तथा । अकारो वासुदेवः स्यादिति कोशः । कमलाक्षं पद्मनेत्रमेवेरूपम् ।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनशीललीलां
 चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम् ॥ २ ॥
 प्रातर्भजामि भजतामखिलार्तिहन्त्रीं
 धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम् ।
 संसारबन्धनविमोचनहेतुभूतां
 मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः ॥ ३ ॥
 श्लोकत्रयमिदं देव्याश्चण्डिकायाः पठन्नरः ।
 सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ ४ ॥

इत्याचाररत्नोदाहृतविष्णुपुराणोक्तानि यथाभक्ति पठेत् । किञ्च

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं
 मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम् ।
 कर्णावलम्बिचलकुण्डलशोभिगण्डं
 कर्णान्तदीर्घनयनं नयना*भिरामम् ॥ १ ॥
 प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं
 रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः ।
 यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं
 सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः ॥ २ ॥
 प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दं
 पद्माङ्कुशादिशुभरेखिशुभावहं मे ।
 योगीन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं
 शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः ॥ ३ ॥
 प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम
 वाग्दोषहारि कलुषं सकलं निहन्ति ।
 यत्पार्वती स्वपतिना सह भोक्तुकामा
 प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप ॥ ४ ॥
 प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं
 नीलाम्बुदोत्पलसिततररत्ननीलाम् ।

* क. पु. समासे-ध्यायतां जीवानां स्वपदं प्रति यन्नयनं कृपाकटाक्षेणैव सन्नयनं प्रापन्नं तेनाभिरामं परमसुन्दरमित्यर्थः ।

आमुक्तमौक्तिकविशेषविभूषणाढ्यां
 ध्येयां समस्तमुनिभिर्जनिमृत्युहन्त्रीम् ॥ ५ ॥
 यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेत
 नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः ।
 श्रीरामकिंकरजनेषु स एव मुख्यो
 भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम् ॥ ६ ॥

इत्याचारार्काद्युदाहृतश्रीरामपञ्चरत्नम् । तथा—

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
 सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
 यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिमवेति नित्यं
 तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ॥ १ ॥

प्रातर्भजामि मनसा वचसामवाच्यं
 वाचो विभान्ति *सकलं यदनुग्रहेण ।
 यन्नेति नेति निर्गमानिगमैरजग्मु-
 स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥ २ ॥

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
 सन्मात्रपूर्णमखिलं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
 यस्मिन्निदं जगदशेषविशेषमूर्ते
 रज्ज्वां भुजंगम इव प्रविभाति तं वै ॥ ३ ॥
 श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम् ।
 प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ॥ ४ ॥

+प्रातः स्मरामि परिपूर्णमनन्तमेकं
 सच्चित्सुखाकृतिनिजानुभवैकवेद्यम् ।

* क. पु. समासे—क्रियाविशेषणमिदम् । + क. पु. समासे—नन्वयं पादः षष्ठश्लोकारम्भेऽप्यत्राग्रे
 वक्ष्यत इति तत्रानेन सह पौनरुक्त्यं स्यादिति चेत्सत्यम् । तत्त्वंपदार्थपरत्वेन तदभावात् । तत्रा-
 यमायस्तत्पदार्थशोधनपरः । स तु षष्ठश्लोकारम्भगस्त्वंपदार्थशोधनपर इति सच्चित्सुखाकृतीत्यादि
 एकं परं परमसूक्ष्ममित्यादि च तथैव वाक्यशेषान्निर्णीयते । सच्चित्सुखाकृतीति सत्यं ज्ञानमन्तं ब्रह्मेति
 तत्पदलक्ष्यस्वरूपबोधकम् । एकं परं परमसूक्ष्ममित्यादि चादृश्यमव्यवहार्यमित्यादि तु त्वंपदलक्ष्यस्व-
 रूपबोधकमिति तु प्रसिद्धमेव । ततः परिपूर्णमनन्तमेकमिति त्रिपादी तूभयस्वरूपयोरप्यन्यूनान-
 तिरिक्तत्वेनाखण्डवाक्ययोग्यतिबोधनपरैवेति नैवात्र दोषावकाशः ।

आरब्धविश्वजननस्थितिभङ्गलीलं
 ब्रह्माद्वयं तदखिलश्रुतिमौलिगम्यम् ॥ १ ॥
 प्रातर्भजामि तमहं निजमाययेदं
 सृष्ट्वा जगत्तदनुविश्य विचित्रशक्तिः ।
 जीवात्मनेन्द्रियमनोगुणबुद्धिसाक्षी
 यो लीलया विहरते सततं महेशः ॥ २ ॥
 प्रातर्नमामि *दहरात्मतया स्फुरन्तं
 प्रत्यक्तया पृथु तटस्थतया स्फुरन्तम् ।
 अन्तर्नियामकतया स्थितमङ्गभाजा-
 माधारकारणविवर्ततया स्फुरन्तम् ॥ ३ ॥
 प्रातः श्रये तमिह जाग्रति विश्वसंज्ञं
 स्वप्नोदये तदुररीकृततैजसाख्यम् ।
 प्राज्ञं सुषुप्तिसमये च शिवं तुरीये
 तत्त्वेन चिन्तयतमाद्यमनात्मवस्तु ॥ ४ ॥
 प्रातर्नमामि गुरुशास्त्रविचारलब्ध-
 तत्त्वंपदार्थसहजैक्यतया दृशोच्चैः ।
 मोहान्धकारमवधूततया स्फुरन्तं
 स्वात्मानमेव सुदृढं निजबोधरूपम् ॥ ५ ॥
 प्रातः स्मरामि परिपूर्णमनन्तमेक-
 मेकं परं परमसूक्ष्ममुपाधिगून्यम् ।
 सत्यन्वरूपममलं च विशुद्धतत्त्वं
 ब्रह्मैव सत्यमिति निर्गुणमद्वितीयम् ॥ ६ ॥

* क. पु. समासे—दहरात्म । यद्यपि दहरात्मतया हृदयावच्छेदेन भासमानाहंकारसाक्षि-
 तया भासुरमपि । अन्तरित्यादि । अङ्गिति । देहिनाम् । अन्तः । य आत्मनि तिष्ठन्नित्यादिश्रुते-
 रन्तर्यामितया स्थितमपि यतः । आधारेत्यादि । आधारोऽविद्याचित्तमबन्धाभिव्यः काल एव
 यावद्दृश्ये भासमान इदमंशः कारणं मूलाज्ञानम् । विवर्त आकाशादिकार्यप्रपञ्चते(स्ते)षां भावत-
 (स्त)था तथा मदान्धकारमहोरगादिभिराच्छादितत्वाद्धा(?)रवदस्फुरन्तमत एव पृथु व्यापकं ब्रह्म
 यथा स्यात्तथा । प्रत्यगिति । द्वैतप्रातिकूल्येन भासमानचित्त्वेनेत्यर्थः । तटोति । अस्फुटम् । नदी-
 तटद्रुमवद्भक्तत्वेनाप्रकटमेतादृशं तं परमात्मानं नमामीत्यन्वयः । प्रातः श्रयेदित्यादि । तत्त्वेनेत्यादि ।
 हे शिष्य त्वमपि । अकारेकारवाच्यविष्णुकमलाभयोगे परमुत्कटं कं सुखमित्यर्थः । नामेत्यादि ।
 अनामरूपं यथा स्यात्तथा । तमाद्यं चिन्तयेति संबन्धः ।

प्रातर्भजामि शिवतत्त्वमजं पुराण-

माद्यन्तशून्यमभयं स्वपरप्रकाशम् ।

सर्वात्मकं सदसतोः परमार्थतत्त्वं

ब्रह्मैव सत्यमिति निर्गुणमद्वितीयम् ॥ ७ ॥

निर्गुणब्रह्मपरमां प्रातःस्मृतिमिमां शुभाम् ।

प्रातरुत्थाय पठतां भवबन्धो विनश्यति ॥

इति निर्गुणब्रह्मस्मरणात्मकमपि स्तोत्रद्वयं श्रीमत्परमहंसपरिव्राज-
काचार्यश्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादाचा-
र्यविरचितं च पठेत् ।

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।

उज्जयिन्यां महाकालमोकारममरेश्वरे ॥

केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम् ।

वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥

वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।

सेतुबन्धे च रामेशं घु(?)श्मेशं च शिवालये ॥

द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलो भवेत् ॥

इति शिवपुराणोक्तद्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम् ।

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारि-

र्भा(री भा)नुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।

गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः

कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ।

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च

मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः ।

रैभ्यो मरीचिश्चयवनश्च दक्षः कु० ॥ २ ॥

सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः

सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च ।

सप्त स्वराः सप्त रसातलानि कु० ॥ ३ ॥

सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च

सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त ॥

भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त कु० ॥ ४ ॥

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथाऽऽपः

स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेजः ।

नभः सशब्दं महता सहैव कु० ॥ ५ ॥

इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं

पठेत्स्मरेद्वा शुणुयाच्च तद्वत् ।

दुःस्वप्ननाशस्त्वह सुप्रभातं

भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात् ॥ ६ ॥

इति कूर्मपुराणोक्तश्लोकांश्च पठेत् । एवं—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

इति श्रुतेः सकलपुमर्थनिदानीभूतशास्त्रशब्दितपूर्वोत्तरकाण्डद्वयैकात्मकं वेदार्थप्रकाशस्येश्वरभक्तिवद्गुरुभक्तावपि कारणत्वोक्तेस्तदभिवादनमप्यवश्यं कुर्यात् । तदपीश्वरमारभ्य वेदार्थप्रतिष्ठापकाचार्यचक्रवर्तिपरम्परा-पूर्वकमेव । तद्यथा—

नारायणं पद्मभुवं वसिष्ठं

शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च ।

व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं

गोविन्दयोगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥

श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्म-

पादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ।

तं त्रोटकं वार्तिककारमन्य-

मस्मद्गुरुं संप्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥

इदं सर्वसाधारणमेव । ब्रह्मचारिणस्तु विशेष उक्तः स्वकीये धर्मसूत्रे—
सदा महान्तमपररात्रमुत्थाय गुरोस्तिष्ठन्प्रातरभिवादमभिवादयिता-
सावहं भो इति ।

एतद्व्याख्यातं च वैजयन्तीकारश्रीमहादेवदीक्षितकृतोज्ज्वलायाम्—
सदा प्रतिदिनं महान्तमपररात्रं रात्रेः पश्चिमे याम उत्तिष्ठन्नुत्थाय च
समीपे तिष्ठन्गुरोः प्रातरभिवादमभिवादयिताभिवादयिताऽसावहं भो
इति ब्रुवन् । असावित्यात्मनो नामनिर्देशः । यथाऽभिवादये यज्ञश-
र्माऽहं भो इतीति । तत्प्रकारश्चोक्तः स्वसूत्र एव—

दक्षिणं बाहुं श्रोत्रसमं प्रसार्य ब्राह्मणोऽभिवादयीत । इति ।

ब्राह्मणोऽभिवादयमान आत्मनो दक्षिणं बाहुं श्रोत्रसमं प्रसार्याभि-
वादयीतेति तद्याख्या । [*नच गृहिणां स्वाचार्यसंनिध्यसंभवात्कथ-
मिदं ब्रह्मचारिसाधारणमाचार्याभिवादनमिति वाच्यम् । ब्रह्मचारि-
विषयकविशेषविवक्षयैवोपक्रान्तत्वेनेष्टापत्तेः । नापि तथात्वे प्रकृतानु-
पयोगः । गृहिणोऽपि प्रतिवत्सरं वेददाढ्यार्थमाचार्यकुलनिवासस्य
विहितत्वेन तत्कालावच्छिन्नस्य तत्संभवात् । तथा च स्वसूत्रम्—

निवेशे हि संवृत्ते संवत्सरे संवत्सरे द्वौ द्वौ मासौ समाहित आचार्य-
कुले वसेद्भूयः श्रुतमिच्छन्निति श्वेतकेतुः । इति ।

तत्रेदं निरुक्तव्याख्यानम्—भूयः श्रवणमिच्छन्पुरुषो निवेशे वृत्ते
दारकर्मणि वृत्तेऽपि प्रतिवत्सरं द्वौ द्वौ मासौ समाहित आचार्यकुले वसे-
दिति श्वेतकेतुराचार्यो मन्यत इति । वस्तुतस्त्विदं केचिन्मतमेव ।
तत्रैवाग्रे प्रतिषेधात्—

तच्छास्त्रेषु विप्रतिषिद्धं निवेशे हि संवृत्ते नैयमिकाः(कानि)श्रूयन्ते
यथाऽग्निहोत्रमतिथयो यच्चान्यदेवं युक्तम् । इति । एतद्याख्याऽपि—तदिदं
श्वेतकेतोर्दर्शनं श्रुत्यादिशास्त्रेषु विप्रतिषिद्धम् । कथमित्याह हिशब्दो
हेतौ यस्मान्निवेशे वृत्ते नैयमिकानि नियमे कर्तव्यानि नित्यानि कर्माणि
श्रूयन्ते । कानि पुनस्तानि । अग्निहोत्रमतिथयोऽतिथिपूजा ।

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।

एवंगृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ॥ इति ।

अ(य)च्चान्यदेवं युक्तम् । एवंविधं श्राद्धादि । एतन्मन्तैः कर्मभिरहरा-
क्रान्तस्य शिरःकण्डूयनेऽप्यवसरो न भवति स कथं द्वौ मासौ गुरुकुले
वसेदिति ।]

इत्योकाह्मवासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुभ्यम्बकसंगृहीते सत्यापाठहि-
रण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे प्रातःस्मरणप्रकरणम् ।

ततो मूत्रपुरीषोत्सर्गं कुर्यात् । तदुक्तं धर्मप्रश्ने—

आरादवसथान्मूत्रपुरीषे कुर्याद्दक्षिणां दिशं दक्षिणापरां वा ग्रामा-
दावसथाद्वा । इति ।

अवसथो गृहं तस्य दूरतो मूत्रपुरीषे कुर्याद्दक्षिणां दिशं दक्षिणापरां
वा । द्वितीयानिर्देशादुपनिपत्येति गम्यते । दक्षिणापरा निर्ऋतिः ।

दक्षिणां दक्षिणापरां वेत्युक्तम् । अत्रावधिर्ग्रामादावसथाद्वेति यथा-
संभवमिति तद्याख्या । आराद्दूरसमीपयोरित्यमरः । माधवीये मनुरपि-

आरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावनेजनम् ।

उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत् ॥ इति ।

तद्विधिर्धर्मप्रश्ने—शिरस्तु प्रावृत्य मूत्रपुरीषे कुर्याद्भूमौ किञ्चिदन्त-
र्धाय । इति ।

दिवा रात्रौ च मूत्रपुरीषे कुर्वञ्छिरः प्रावृत्य कुर्याद्भूम्यां किञ्चि-
त्तृणादिकमन्तर्धाय न तु साक्षाद्भूमावित्युज्ज्वलाकृत् । तृणं विशिनष्टि
माधवीये वसिष्ठः—

शिरः प्रावृत्य कुर्वीत शकृन्मूत्रविसर्जनम् ।

अयज्ञियैरनाद्रैश्च तृणैः संछाद्य मेदिनीम् ॥ इति ।

अत्र वाससा शिरःप्रावरणलक्षणं शिरोवेष्टनं तु मुखनासिकाच्छादन-
पूर्वकमेव कर्तव्यम् । ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जित इति वक्ष्यमाणनिषेधात् ।

दिङ्गनियमो धर्मप्रश्ने—

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत नोच्चरेद्दक्षिणामुखः ।

उदङ्मुखो मूत्रं कुर्यात्प्रत्यक्पादावनेजनम् ॥ इति ।

उच्चारः पुरीषकर्म पादावनेजनं पादप्रक्षालनं भोजनादिषु चतुर्षु
चतस्रो दिशो नियम्यन्ते । याज्ञवल्क्यस्तु—

दिवा संध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः ।

कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥ [इति ।]

इत्युज्ज्वलाकृत् । यत्तु माधवीये मनुः—

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ।

यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥ इति,

तन्नीहारान्धकारादिजनितदिङ्गमोहादिविषयम् । याज्ञवल्क्यवाक्ये
कर्णो दक्षिणः । तदुक्तं माधवीये—

पवित्रं दक्षिणे कर्णे कृत्वा विण्मूत्रमुत्सृजेत् ।

इति स्मृत्यन्तरे पवित्रस्य दक्षिणकर्णस्थापनाभिधानाद्यज्ञोपवीत-
स्यापि तदेव स्थानं न्याय्यम् । अङ्गिरास्तु विकल्पेन स्थानान्तरमाह—

कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम् ।

विण्मूत्रे तु गृही कुर्याद्यद्वा कर्णे समाहितः ॥ इति ।

तत्र कर्णे निधानमेकवस्त्रविषयम् । तस्य शिरोवेष्टनासंभवात् । शिरो-
वेष्टनस्य तु तदा तेनैव सिद्धेश्च । तथा च सांख्यायनः—

यद्येकवस्त्रो यज्ञोपवीतं कर्णे कृत्वा मूत्रपुरीषे कुर्यात् । इति । प्रमादे
प्रायश्चित्तमाह भट्टोजिदीक्षिताह्निके भारद्वाजः—

मलमूत्रं त्यजेद्विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतकम् ।

उपवीतं तदुत्सृज्य दद्यादन्यन्नवं तदा ॥ इति ।

भाधवीयेऽङ्गिराः—

वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवार्जितः ।

कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः । इति ।

छायायां विण्मूत्रनिषेधो धर्मप्रश्ने—

छायायां मूत्रपुरीषयोः कर्म परिवर्जयेत् ॥ इति ।

न चोपजीव्यच्छायास्विति स्मृत्यन्तरदर्शनाद्यस्यां पथिकादयो विश्रा-
म्यन्ति सा गृह्यते तेन च्छत्रच्छायामेघच्छायादेरप्रतिषेधः । अत्राऽऽपस्त-
म्बीये विशेषः—

स्वां तु छायामवमेहेत् । इति ।

* छान्दसस्तुगभावः । द्वितीयाश्रुतेः प्रतिशब्दाध्याहारः । अवमेहनं
मूत्रपुरीषकर्म । अनुपजीव्यत्वान्नायं पूर्वविप्रतिषेधस्य विषय इति प्रति-
प्रसवोऽयं न भवति । तेन सति संभवे स्वामेव छायायां प्रत्यवमेढव्यमि-
त्युज्ज्वला ।

अन्योऽपि प्रतिषेध आपस्तम्बधर्मप्रश्ने—

न सोपानन्मूत्रपुरीषे कुर्यात्कृष्टे पथ्यप्सु तथा ष्ठीवनमैथुनयोः कर्माप्सु
वर्जयेदग्निमादित्यमपो ब्राह्मणं गा देवता वाऽभिमुखो मूत्रपुरीषयोः कर्म
वर्जयेत् । इति ।

स्पष्टम् । ष्ठीवनस्य श्लेष्मण उत्सर्गः, देवता प्रतिमेति तद्याख्योज्ज्वला ।
उपानहौ चर्ममये पादुके ताभ्यां सहितः सोपानत् । कृष्टे फालकृष्टस्थले

* वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षत इति सहिताया भविष्यकायां तुगभावस्य सुसाधत्वेन च्छान्द-
सत्वानुभावनं व्यर्थम् ।

पथि मार्गेऽप्यु जल इत्यर्थः । एतेनैतेषामन्तिके मूत्रपुरीषजन्येन्द्रिया-
दिस्थगन्धलेपक्षयाद्यापादकमृदादिकरणशुद्धिरपि प्रत्युक्ता । काष्ठादि-
नाऽपमार्जितस्यापि मलादेः सूक्ष्मांशस्य तत्र संपर्कावश्यकत्वात् । माध-
वीये यमोऽपि—

प्रत्यादित्यं न मेहेत न पश्येदात्मनः शकृत् ।

दृष्ट्वा सूर्यं निरीक्षेत गामग्निं ब्राह्मणं तथा ॥

रात्रौ दूरगमननिषेधो धर्मप्रश्ने—

अस्तमिते च बहिर्ग्रामान्मूत्रपुरीषयोः कर्म वर्जयेत् । इति । अस्त-
मित आदित्ये बहिर्ग्रामान्मूत्रपुरीषयोः कर्म न कुर्यादित्यर्थः । आप-
स्तम्बीये तु विशेषः—

अस्तमिते च बहिर्ग्रामादारादावसथान्मूत्रपुरीषयोः कर्म वर्ज-
येत् । इति ।

अन्तर्ग्रामेऽपि गृहस्य दूरतो न कुर्यादिति दृष्टार्थोऽयं प्रतिषेधः ।
चोरव्याघ्रादिशङ्कया निर्भयप्रदेशे नास्ति दोष इत्युज्ज्वलाकृत् । पुन-
स्तत्रैव—

शक्तिविषये न मुहूर्तमप्यप्रयतः स्यात् । इति ।

शक्तौ सत्यां मुहूर्तमप्यप्रयतो न स्यात् । आचमनयोग्यं जलं दृष्ट्वैव
मूत्रपुरीषादिकं कुर्याद्यदि तावन्तं कालं वेगं धारयितुं शक्नुयादित्यु-
ज्ज्वला । एतेन मूत्रं कृत्वेत्यादिवक्ष्यमाणे धर्मसूत्रे भोजनमैथुनरूपमप्रा-
यत्यनिमित्तान्तरं यदुक्तं तदपि व्याख्यातम् । अत्रापि शक्तौ सत्यां
कामक्षुद्वेगधारणस्य तुल्यत्वात् । एवं च ते अपि जलं कलशादौ निकटे
शय्यास्थाने च संस्थाप्यैव कर्तव्ये इति निष्कर्षः । यदि तु पत्न्यां पाक-
परिवेषणादिपरायां सत्यां संध्यावन्दनाद्यावश्यकनित्यकर्ममात्रपर्याप्तज-
लेन स्वयं रोगाद्यशक्तिवशात्तत्संपाद्याग्रे क्षुद्वेगं धारयितुं नैव शक्नोति
तदा भुक्त्यनन्तरं हस्तादिप्रक्षालनादिजललाभार्थं मुहूर्तादिकालमप्य-
प्रायत्येऽपि न क्षतिः । एवमेव कदाचिद्वृत्त्योरनुरागातिशयाद्विस्मृतो-
दकस्थापनकालिकमैथुनेऽपि द्रष्टव्यम् । यत्तु मूत्रादिचतुष्टयमपि मुहूर्त-
मध्य एव कार्यमिति सूत्रतात्पर्यवर्णनं तदुक्तोज्ज्वलाविरुद्धत्वादुपेक्षणी-
यमेवेति संक्षेपः । आचाररत्ने संग्रहे—

करस्थमुदपात्रं चेत्कुर्यान्मूत्रपुरीषयोः ।

तज्जलं मूत्रसदृशं सुरापानेन तत्समम् ॥ इति ।

एतदपवादस्तत्रैव वृद्धपराशरः—

अरण्ये निर्जने रात्रौ चोरव्याघ्राकुले पथि ।

कृत्वा मूत्रपुरीषे तु द्रव्यहस्तो न दुष्यति ॥ इति ।

द्रव्यहस्तो मृदादिहस्त इत्याचाररत्नः । गोवर्धनाह्निके स्मृत्यन्तरे—

दशहस्तं परित्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात् ।

शतहस्तं पुरीषे तु तीर्थे चैव चतुःशतम् ॥ इति ।

विस्तरस्तु माधवीय आचाररत्ने च द्रष्टव्यः ।

ततो मलशोधनमाह धर्मप्रश्ने—

अश्मानं लोष्टमार्द्रानोषधिवनस्पतीनाच्छिद्य मूत्रपुरीषयोः शुन्धनं वर्जयेत् । इति ।

अश्मानं लोष्टं चोत्खायोत्साद्य ताभ्यां गुदं लिङ्गं वा न परिमार्जयेत् । तथाऽऽर्द्धैरूर्ध्वस्थितैरोषधिवनस्पतिभिश्चोत्पाटितैः । स्वयं पतितैरार्द्धैरपि शोधने न दोषः । तथोर्ध्वस्थितैरपि शुष्कैः शोधने न दोष इत्युज्ज्वलाव्याख्या । आपस्तम्बधर्मप्रश्नेऽपि—

अश्मानं लोष्टमार्द्रानोषधिवनस्पतीनूर्ध्वानाच्छिद्य मूत्रपुरीषयोः शुन्धनं वर्जयेत् । इति ।

फलपाकावसाना ओषधयः । ये पुष्पैर्विना फलन्ति ते वनस्पतयः । आर्द्रानिति वचनाच्छुष्केषु न दोषः । उर्ध्वानितिवचनाद्वातादिनिमित्तेन भग्नेषु न दोषः । तैरश्मादिभिर्मूत्रपुरीषयोः शोधनं न कुर्यादिति तद्व्याख्योज्ज्वला । माधवीये भारद्वाजोऽपि—

अथापकृष्य विण्मूत्रं लोष्टकाष्ठतृणादिना ।

उदस्तवासा उत्तिष्ठेद्दृढं विधृतमेहनः ॥ इति ।

अत्रोक्तो लोष्टविधिर्हिरण्यकेश्यन्यपरः सूत्रे निषेधात् ।

अयं शौचविधिर्धर्मप्रश्ने—

मूत्रं कृत्वा पुरीषं वा मूत्रपुरीषलेपानन्नलेपानुच्छिष्टलेपान्नेतसश्च ये लेपास्तान्प्रक्षाल्य पादौ चाऽऽचम्य प्रयतो भवति । इति ।

मूत्रं पुरीषं वा कृत्वोत्सृज्य मूत्रपुरीषयोर्लेपास्तस्मिन्प्रदेशे स्थिताः प्रदेशान्तरे वा पतितास्तान्सर्वान्नलेपांश्चानुच्छिष्टलेपानप्युच्छिष्टलेपां-

श्चान्नलेपानपि तथा रेतसश्च ये लेपाः स्वप्नादौ मैथुने च तान्सर्वान्मृदाऽ
द्भिश्च प्रक्षाल्य पादौ च लेपवर्जितावपि प्रक्षाल्य पश्चादाचम्य प्रयतो
भवति [*अत्र प्रायत्यं तु पूर्वोदाहृते देवतानामभिधानं चाप्रयत इति सूत्रे
प्रतिषिद्धं यदप्रयतस्याग्न्यादिदेवतानामोच्चारणमपि^१ तद्व्युदासेन देवादी-
(दि)नामग्रहणयोग्यतामात्रपरमेव । अन्यथा मैथुनोत्तरमपि पूर्वरात्रे
भोजनवेदाभ्यासाद्यतिप्रसङ्गात् ।]अत्र मृत्प्रमाणस्य संख्यायाश्चानुक्तत्वा-
द्यावता गन्धलेपक्षयो भवति तावदेव विवक्षितम् । तथा च याज्ञवल्क्यः—

गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः । इति ।

देवलस्तु—यावत्स्वशुद्धिं मन्येत तावच्छौचं समाचरेत् ।

प्रमाणं शौचसंख्याया न शिष्टैरुपदर्शितम् ॥ इति ।

पैठीनसिः—मूत्रोत्सर्गे कृते शौचं न स्यादन्तर्जलाशये ।

अन्यत्रोत्सृज्य कुर्यात्तु सर्वदैव समाहितः । +इत्युज्ज्वला ।

माधवीये याज्ञवल्क्योऽपि—

गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्धिरभ्युद्धृतैर्जलैः ।

गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतन्द्रितः ॥ इति ।

यद्यरण्ये चौरैर्गृहीतसर्वस्वः प्रारब्धात्कृतमूत्रपुरीषोत्सर्गस्तदा पात्राद्य-
भावेनापामभ्युद्धरणसंभवे विशेषमाह तत्रैव विवस्वान्—

रत्निमात्रं जलं त्यक्त्वा कुर्याच्छौचमनुद्धृते ।

पश्चात्तच्छोधयेत्तीर्थमन्यथा ह्यशुचिर्भवेत् ॥ इति ।

तीर्थं शौचस्थानमित्याचाररत्नकृत् । हस्तो मुटया तु बद्धया । स
रत्निः स्यादित्यमरः । स इति च्छेदः ।

शौचयोग्यां मृत्तिकामाह तत्रैव यमः—

आहरेन्मृत्तिकां विप्रः कूलात्ससिकतां तथा ॥ इति ।

तत्रैव विशेषमाह मरीचिः—

विप्रे शुक्ला तु मृच्छौचे रक्ता क्षत्रे विधीयते ।

हरिद्रवर्णा वैश्ये तु शूद्रे कृष्णां विनिर्दिशेत् ॥ इति ।

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः ख. पुस्तकेऽपि + एताच्चिह्नस्थले वर्तते ।

१ ख. 'पि । तथा शक्तिविष[ये] न मुहूर्तमप्यप्रयतः स्यादिति च सूत्रे शक्तौ निषिद्धमप्रा-
यत्यं तत्प्राभावेन नद्योग्यतारूपं तदभावरूपं च क्रमाद्बोध्यम् । अन्य^२ । २ ख. 'त्रेऽनेन भो^३ । ३ क.
'न्धक्ष' । ४ क. 'वत्संशु' ।

उक्तविशेषासंभवे या काचिद्ब्राह्मेत्याह मनुः—

यस्मिन्देशे तु यत्तोयं या च यत्रैव मृत्तिका ।

सैव तत्र प्रशस्ता स्यात्तया शौचं विधीयते ॥ इति ।

तत्रैव विष्णुपुराणे वर्ज्या मृद्विशेषा दर्शिताः—

वल्मीकमूषकोत्खातां मृदमन्तर्जलात्तथा ।

शौचावशिष्टां गेहाच्च नाऽऽदद्याल्लेपसंभवाम् ॥

अन्तःप्राण्यवपन्नां च हलोत्खातां न कर्दमात् । इति ।

अन्तर्जलमृत्तिकाप्रतिषेधस्तु वाप्यादिव्यतिरिक्तविषय इति माधवा-
चार्या आहुः ।

वापीकूपतडागेषु नाऽऽहरेद्ब्राह्मणो मृदम् ।

आहरेज्जलमध्यात्तु परतो मणिबन्धनात् ॥

इति यमवचनात् ।

हस्तनियममाह तत्रैव देवलः—

धर्मविद्वक्षिणं हस्तमधःशौचे न योजयेत् ।

तथा च वामहस्तेन नाभेरूर्ध्वं न शोधयेत् ॥ इति ।

तत्रैव मरीचिः—तिसृभिश्चाऽऽतलात्पादौ शौध्यौ गुल्फात्तथैव च ।

हस्तौ त्वामणिबन्धाच्च लेपगन्धापकर्षणौ ॥ इति ।

पादेन पादक्षालनं निषेधति धर्मप्रश्ने—

पदा पादस्य क्षालनं वर्जयेदधिष्ठानं च । इति । एकेन पदा पादस्य
क्षालनमधिष्ठानं च वर्जयेदित्युज्ज्वला व्याख्या । दिङ्-नियमस्तु धर्मप्र-
श्नोक्तः पूर्वमेवाभिहितः । यथाविधिकृतशौचे गन्धादिश्चेन्नापगच्छति
तदाह माधवीये मनुः—

यावन्नापैत्यमेध्याक्तो गन्धो लेपश्च तत्कृतः ।

तावन्मृद्धारि देयं स्यात्सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥ इति ।

तत्रैव बोधायनः—देशं कालं तथाऽऽत्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् ।

उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ॥ इति ।

उक्तनियमातिक्रमे प्रायश्चित्तं धर्मप्रश्ने—

नियमातिक्रमे चान्यस्मिन् । इति ।

नियमानामुदङ्मुखो मूत्रं कुर्यादित्येवमादीनां व्यतिक्रमे चाऽऽतमितोः
प्राणमायच्छेदिति सर्वशेष इति व्याख्योज्ज्वला । माधवीये दक्षोऽपि—

न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचं सिद्धिमभीप्सता ।
प्रायश्चित्तेन पूयेत विहितातिक्रमे कृते ॥ इति ।

तत्रैव शातातपो मृत्प्रमाणमाह—

आर्द्रामलकमात्रास्तु ग्रासा इन्दुव्रते स्थिताः ।
तथैवाऽऽहुतयः सर्वाः शौचे देयास्तु मृत्तिकाः ॥ इति ।

मृत्संख्यामाह मनुः—

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥
एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ।
वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां च चतुर्गुणम् ॥ इति ।

बोधायनोऽपि—पञ्चापाने मृदो योज्या वामपाणौ दशेतरे ।

तिस्रस्तिस्रः क्रमाद्योज्याः सम्यक्शौचं चिकीर्षता ॥ इति ।

पादशौचे क्रमस्तु आचारार्के स्मृत्यन्तरे—

शौचाहते वामपादे पूर्वं न क्षालनं भवेत् ।
शौचे तु वामपूर्वं स्यादन्यत्र दक्षिणं सदा ॥ इति ।

आदित्यपुराणे—स्त्रीशूद्रयोरर्धमानं प्रोक्तं शौचं मनीषिभिः ।

दिवा शौचस्य निश्चयं पथि पादं विधीयते ।

आर्तः कुर्याद्यथाशक्ति शक्तः कुर्याद्यथोदितम् ।

इति रूपादेर्विशेषो दर्शितः । [* अत्रार्धमानं किं गृहस्थाणां शौचमाह ।
ब्रह्मचार्यपेक्षया ।

न यावदुपनीयन्ते द्विजाः शूद्रास्तथाऽङ्गनाः ।

गन्धलेपक्षयकरं शौचमेषां विधीयते ॥

इति पितामहस्मृतिव्याख्यानस्यात्र स्त्रीशूद्रग्रहणम कृतोद्वाहाभिप्रा-
यम् । अनुपनीतद्विजसाहचर्यादित्यकृतोद्वाहरूप्यभिप्र'यकस्य माधवा-
चार्यैः कृतत्वेनोभयविधसंदेहसंभवात् । तथा हि । माध वीयाशयाद्विवाहो-
त्तरं स्त्रीणां तु गार्हस्थ्यमेव संपन्नमिति तन्मानत एव ता सामर्थ्यं शौचमानम्]
इति प्रतिभाति । तथैतच्छौचं गृहस्थस्येति गृहस्थमानानुसारेणैव ब्रह्म-
चर्यादिद्वैगुण्याद्युक्तेस्तत्तथैव सिध्यति च । परं तु यदा विवाह एव तासा-

* अयं ग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति ।

मुपनयनं तदाऽऽ रजःप्राप्तेः प्राक्तासां ब्रह्मचर्यमेवावश्यं वाच्यम् । तत्प्रा-
ग्मैथुने प्रायश्चित्तोक्तेश्च । तस्मादनुपनीतसाहचर्याञ्चोपनीतस्य ब्रह्मचा-
रिणो यच्छौचमानं तदपेक्षया तासामर्धमानमा रजःप्राप्तेः पूर्वमित्यपि
परिस्फुरतीति । सत्यम् । एका लिङ्ग इत्यादिमनुस्मृत्युक्तगृहस्थादि-
चतुराश्रमिणामपि क्रमेणोद्वाहितसंजातरजस्कवनस्थविधवाख्यस्त्रीष्व-
र्धमानस्यैव युक्तत्वात् । कुमारीणां तु गन्धलेपक्षयमात्रस्यैवार्थप्राप्त-
त्वात् । कुमार्यादीनां पञ्चविधानामप्यासां क्रमेणोत्तरोत्तरं तत्तच्छा-
स्त्रेष्वाम्बुषाचार्याधिक्यविधानाञ्च । एवं च कुमार्या गन्धलेपक्षयान्त
ए(मे)व शौचं कार्यम् । प्रोद्वाहितया त्वा रजःप्राप्तेर्गृहस्थार्धमानेन
तदूर्ध्वं तु ब्रह्मचार्यर्धमानेन गृहस्थतुल्यमानेनैव कार्यम् । वन-
स्थाश्रमस्य तु यद्यपि कलिवर्ज्यत्वमथापि संजातपुत्रयोः परितृप्तविषय-
लालसयोर्यदि कयोश्चिद्दम्पत्योर्मैथुनत्यागमात्रस्तद्धर्मोऽनुष्ठेयः स्यात्तर्हि
तेन पुंसा वानप्रस्थवदेव त्रिगुणं शौचं कार्यम् । तथा स्त्रियाऽपि च
तदर्धमेव । विधवानां तु यत्यर्धमेव । यदि रजःप्राप्तेः प्राङ्मैथुन-
निषेधाद्वैवाज्जाते तस्मिन्वृषभदानरूपप्रायश्चित्तोक्तेश्च तावत्कालं तस्या
मैथुनत्यागरूपब्रह्मचारिर्धर्मवत्त्वेन तदर्धमानमेव शौचे(चम्) । तदूर्ध्वं तु
गृहस्थार्धमानमिति वदसि तर्हि तैत्तिरीयेतरेषां तथात्वसत्त्वेऽपि तेषां
सत्याषाढसूत्रादावुद्वाहचतुर्थदिवस एव चतुर्थीकर्मणि मैथुनाद्युक्तत्वा-
त्स्त्रीणां तु तदारभ्यापि गृहस्था [*र्धमानतैव स्यात् । तेनोत्तरोत्तरध-
र्माभिवृद्ध्युपोद्वालितपूर्वोक्तव्यवस्थैव सर्वसाधारण्येन ग्राह्या । वस्तुतस्तु
अयमपि नियमश्चित्तशुद्ध्यादिकाम्यस्थल एव स्वसूत्रानुक्तत्वात् ।
नित्यस्तु सर्वेषां हिरण्यकेशिनां सर्वासां तत्स्त्रीणां च स्वसूत्राद्युक्तो
गन्धलेपक्षयान्त एव शौच इति ध्येयम् ।] [+लेपक्षयनियमः स्पर्शनप्र-
त्यक्षात्स्यादेवाथापि गन्धक्षयस्तु गुदादौ घ्राणसंनिकर्षासंभवेन दुःसाध्य
इति तदर्थमुक्तसर्वज्ञमन्वादीष्टमृन्मानसंख्याद्येव श्रेय इति ध्येयम् ।] आनु-
शासनिक इतिकर्तव्यता दर्शिता—

शौचं कुर्याच्छनैर्धीरो बुद्धिपूर्वमसंकरम् ।

विप्रुषश्च यथा न स्युर्यथा चोरुं न संस्पृशेत् ॥

बुद्धिपूर्वं प्रयत्नेन यथा नैव स्पृशेत्स्फिचौ । इति ।

* अयं ग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति । +अयं ग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति ।

१ ख. शौचः कार्यः । २ क. तु गृ° । ३ ख. र्थः । व° । ४ ख. गुणः शौचः कार्यः ।
५ ख. र्ध ए° । ६ ख. र्ध ए° । ७ ख. ति यदि व° ।

माधवीये व्याघ्रपादः—शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।

मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथाऽऽन्तरम् ॥ इति ।

द्विविधस्यापि शौचस्य सर्वकर्माधिकारहेतुत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यां दक्षो दर्शयति—

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ।

शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥ इति ।

तदेवं हिरण्यकेशिधर्मप्रश्नव्याख्याकारमत आपस्तम्बधर्मप्रश्नव्याख्या-
तृहरदत्तमते च मृत्प्रमाणसंख्यादरो नाऽऽवश्यकः । माधवादिमते त्वाव-
श्यकः । ततो गण्डूषाः । आचाररत्ने स्मृतिरत्नावल्याम्—

पुरतः सर्वदेवाश्च दक्षिणे पितरस्तथा ।

ऋषयः पृष्ठतः सर्वे वामे गण्डूषमुत्सृजेत् ॥

मूत्रे पुरीषे भुक्त्यन्ते रेतःप्रस्रवणेऽपि च ।

चतुरष्टद्विषड्द्व्यष्टगण्डूपैः शुध्यति क्रमात् ॥ इति ।

गण्डूषो नाम प्रकृते जलेन मुखपूरणम् । शुण्डाग्रभागे गण्डूषा
द्वयोश्च मुखपूरण इत्यमरात् । प्रक्षाल्य पादौ चाऽऽचम्य प्रयतो भव-
तीति पादप्रक्षालनोत्तरमाचमनस्याव्यवधानेनैव वृत्तौ व्याख्यातत्वाद्ग-
ण्डूषानामकरणे नियमातिक्रमप्रायश्चित्तं न भवतीत्यतस्तेऽनावश्याका
इति प्रतिभाति । पारक्यमविरोधि यदिति न्यायाच्छिष्टाचाराच्च तत्करणे
त्वभ्युदय एव । इति गण्डूषाः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे शौचविधिप्रकरणम् ।

अथाऽऽचमनम् । तत्प्रकारो धर्मप्रश्ने—

आसीनास्त्रिराचामेत् । हृदयंगमाभिरद्भिस्त्रिरोष्ठौ परिमृजेदित्येके
सकृदुपस्पृशेद्द्विरित्येके दक्षिणेन पाणिना सव्यमभ्युक्ष्य पादौ शिरश्चे-
न्द्रियाण्युपस्पृशेच्चक्षुषी नासिके श्रोत्रे च । इति ।

अत्रानुकूलं स्मृत्यन्तरवशादुपाश्रीयते—आसीनः शुचौ देशेऽनासने
भोजने त्वासनेऽपि चाऽऽत्मनो दक्षिणं बाहुं जान्वन्तरा कृत्वा प्राङ्-
मुख उदङ्मुखो वा हृदयंगमा आपः करतलस्थासु यावतीषु माषो
निमज्जति तावतीः फेनबुद्बुदरहिता वीक्षिता विमुक्तकनिष्ठाङ्गुष्ठेन संह-

तोर्ध्वीकृतमध्याङ्गुलित्रयेण दक्षिणपाणिना मुखमसंस्पृशंस्त्रिराचामेत्पि-
 बेद्वाह्मणः क्षत्रियः कण्ठगा वैश्यस्तालुगाः शूद्रो जिह्वास्पृष्टाः सकृत् ।
 त्रिरोष्ठावधोलोमप्रदेशौ परिमृजेत् परिमृज्यात् । द्विरिति तुल्यवि-
 कल्पः । मध्यमाभिस्त्रिभिरङ्गुलीभिरोष्ठौ सकृद्द्विरिति तुल्यविकल्पः ।
 दक्षिणेन पाणिना सव्यं प्रोक्ष्य तथा पादौ शिरश्चेन्द्रियाण्युपस्पृशेदुद-
 केन । सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रसङ्गे परिसंचष्टे—चक्षुषी नासिके श्रोत्रे चेति ।
 इन्द्रियाणीति वचनं स्वरूपकथनमात्रम् । तत्राङ्गुष्ठानामिकाभ्यां
 चक्षुषी युगपत् । केचित्पृथक्पृथक् । अङ्गुष्ठप्रदेशिनीभ्यां नासिके ।
 अङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां श्रोत्रे । अङ्गुष्ठेनैव वा सर्वाणि खानि संस्पृशेत् ।
 अत्र पृथग्भावस्य निश्चितत्वात्पूर्वत्रापि पृथगिति युक्तम् । अत्राऽऽपस्त-
 म्बेन—अथाप उपस्पृशेत् । इन्द्रियस्पर्शनानन्तरं हस्तौ प्रक्षालयेदित्युक्तमि-
 त्युज्ज्वला व्याख्या । यद्यप्याचमने बहवः प्रकाराः सन्ति तथाऽपि
 यथाशास्त्रं व्यवस्थेति माधवाचार्यवचनाद्विरण्यकेशिनामयमेव विधिः
 सूत्रोक्तत्वादावश्यकः । तत्रापि सूत्रमात्रोक्त एव तथा । न तूज्ज्वलोक्तः
 स्मार्तः । तथा च माधवीये वृद्धपराशरोऽपि—

कृत्वाऽथ शौचं प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च मृज्जलैः ।

निबद्धशिखकच्छस्तु द्विज आचमनं चरेत् ।

कृत्वोपवीतं सव्येऽसे वाङ्मनःकायसंयतः ॥ इति ।

तत्रैव शङ्खः—शुद्धे(ध्ये)रन्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः । इति ।

अद्विरिति शेषः । अन्ततो जिह्वाप्रान्तस्पर्शनेत्यर्थः । अत एवो-
 दाहृतोज्ज्वलाकृदुक्तिः शूद्रो जिह्वास्पृष्टाः सकृदिति । अनुपनीतोऽ-
 प्येवम् ।

शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदेन युज्यते ।

इत्याचाररत्ने मनूक्तेः ।

आचमने प्रकारान्तरमाह भट्टोजिदीक्षिताह्निके व्याघ्रपात्—

केशवादित्रिभिः पीत्वा चतुर्थेन मृजेत्करम् ।

पञ्चमेन च षष्ठेन द्विरोष्ठावुन्मृजेत्क्रमात् ॥

तौ सप्तमेनापि मृजेदेकवारं तु मन्त्रवित् ।

अष्टमेन तु मन्त्रेणाप्यभिमन्त्रय जलं शुचि ॥

वामं संप्रोक्षयेत्पाणिममुना नवमेन च ।
 दक्षिणं दशमेनाङ्गुलिं वाममेकादशेन वै ॥
 मूर्धानं द्वादशेनाथ स्पृशेद्दूर्ध्वोष्ठपृष्ठकम् ।
 संकर्षणाय नम इत्यनेनाङ्गुलिमूर्धभिः ॥
 अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां संश्लिष्टाभ्यां जलैः सह ।
 नासारन्ध्रे वासुदेवप्रद्युम्नाभ्यां स्पृशेच्छुभे ॥
 अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु संश्लिष्टाभ्यां जलैः सह ।
 अनिरुद्धाय नम इति संस्पृशेदक्षि दक्षिणम् ॥
 पुरुषोत्तममन्त्रेण ताभ्यां वामं स्पृशेद्दृशम् ।
 तथाऽङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां श्लिष्टाग्राभ्यां जलैः सह ॥
 अधोक्षजनृसिंहाभ्यां श्रोत्रे द्वे संस्पृशेत्क्रमात् ।
 नाभिमच्युतमन्त्रेण ताभ्यामेव स्पृशेद्बुधः ॥
 श्रीजनार्दनमन्त्रेण तलेन हृदयं स्पृशेत् ।
 उपेन्द्रायेति मूर्धानं स्पृशेत्सजलपाणिना ॥
 सर्वाङ्गुल्यग्रभागैस्तु समाश्लिष्टैर्जलैः सह ।
 भुजौ तु हरिकृष्णाभ्यां संस्पृशेद्दक्षिणोत्तरौ ॥
 आच(चा)मेन्नित्यमेवं यो भगवन्नामभिः क्रमात् ।
 सद्यः पूतः सर्वहितेषूत्तरेष्वधिकारवान् ॥ इति ।

एवं चेदं नित्यं शुद्ध्यादिकामपरमेव स्मार्तमन्त्राचमनमिति प्रतिभाति ।
 अशक्तं प्रति तत्रैव स्मृत्यर्थसारे—

अशक्तौ त्रिः पीत्वा हस्तौ प्रक्षाल्यश्रोत्रं स्पृशेत् । इति ।

श्रोत्रं दक्षिणं कर्णम् । तथा च पराशरः—

अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा ।

एते सर्वे च विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥ इति ।

आचाररत्ने स्मृत्यर्थसारे—

तदोङ्कारेणाऽऽचमनं यद्वा व्याहृतिभिर्भवेत् ।

सावित्र्या वाऽपि कर्तव्यं यद्वा कार्यममन्त्रकम् ॥ इति ।

अत्र प्रथमपक्षस्य यतिपरत्वादन्त्यपक्षस्य स्र्यादिपरत्वाच्च मध्यमयो-
 रेव द्वयोरैच्छिको विकल्पः फलति ।

उदकं धर्मप्रश्ने—भूमिगतास्वप्स्वाचम्य प्रयतो भवति यं वा प्रयत
आचामयेत् । इति ।

आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर्भवेत् ।

अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥

अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका ।

दशरात्रेण शुध्यन्ति भूमिष्ठं च नवोदकम् । इति मनुः ।

शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् । इति याज्ञवल्क्यः ।

श्रावणे मासि संप्राप्ते सर्वा नद्यो रजस्वलाः । इति स्मृत्यन्तरमपि ।

एवंभूतदोषरहितास्वप्स्वाचम्य प्रयतो भवति । प्रायत्यार्थमाचमनं
भूमिगतास्वप्सु कर्तव्यमिति । यं वाऽप्रयतो योग्य आचामयेत्सोऽपि प्रयतो
भवति । सर्वथा स्वयं वामहस्तावर्जिताभिराचमनं न भवति । एतेन
शास्त्रान्तरोक्तं कमण्डलुधारणमाचार्यस्य नाभिमतं लक्ष्यते । अलाबुपा-
त्रेण नारिकेलपात्रेण वा स्वयमाचमनं कुर्वन्तीति तद्याख्योज्ज्वला ।
अत्रयाज्ञवल्क्यवचनोक्तो नदीरजोदोषस्तु गङ्गादीतरविषयः । तदुक्तं
विश्वादर्शटीकायां स्नानं प्रकृत्य—

स्यात्पञ्चोद्धृत्य पिण्डान्परपयसि सरित्सूतमं तास्तु वर्ज्याः

सिंहात्प्राक्कर्कटाच्चोपरि जलधिगतास्तीरनिष्ठास्तु मुक्त्वा ।

इत्यस्य व्याख्यानावसरे जपाद्यर्थं यत्कर्माङ्गं तच्च सर्वसरित्सूतमम् ।
ताश्च सरितः कर्कटादुपरि सिंहात्प्राक्श्रावणमासे वर्जनीया इत्यर्थः ।
भाद्रपदेऽपीत्येके । तत्राप्युपाकर्मात्सर्जनमरणराहुदर्शनेषु नदीस्नानमवि-
रुद्धम् । जलधिगता नदीर्मुक्त्वा तासु गङ्गायमुनासरस्वतीषु कापि रजो-
दोषो नास्तीत्यर्थः । तथा तीरनिष्ठास्तु मुक्त्वा तास्वपि समुद्रगास्वपि
रजो[दोषो]नास्तीत्यर्थ इति शङ्खवैयाघ्रपादोक्तः प्रातःस्नानविधि-
रिति । परपयसि परनिबद्धवाप्यादिजल इत्यर्थः । एतेन गङ्गादी
सर्वेषां न रजोदोषः समुद्रगासु तीरनिष्ठानामेवेति सिद्धम् । निषिद्ध-
मुदकं तत्रैव—

न वर्षधारास्वाचामेत्तथा प्रदरोदके । इति ।

पूर्वोक्तप्रकारेण प्रायत्यार्थस्याऽऽचमनस्य वर्षधारासु प्रसङ्गाभावात्पि-
पासितस्य पानप्रतिषेधोऽयमिति केचित् । अपर आह । अस्मादेव प्रति-

षेधाच्छिक्वादिस्थस्य करकादेर्या धारा तत्र प्रायत्यार्थमाचमनं न भव-
तीति । भूमेः स्वयं दीर्णः प्रदेशः प्रदरस्तत्र यदुदकं तस्मिन्भूमिगतेऽपि
नाऽऽचामेदिति तद्वाख्योज्ज्वला । प्रदरो गर्त इति मयूखः ।

पुनस्तत्रैव—

नाग्न्युदकशेषेण वृथा कर्माणि कुर्यादाचामेद्वा । इति ।

अग्निपरिचर्यायां परिसमूहने परिषेचने च यदुपयुक्तमुदकं तच्छेषेण
वृथा कर्माण्यदृष्टप्रयोजनरहितानि पादप्रक्षालनादीनि न कुर्वीत नाप्या-
चामेत् । अवृथाकर्मत्वादस्य पुनः प्रतिषेध इति तद्वाख्योज्ज्वला ।

पुनश्च—पाणिसंक्षुब्धेनोदकेनैकपाण्यावर्जितेन च नाऽऽचामेत् । इति ।

पाणिसंक्षुब्धं कुम्भादिगतं पाणिना संक्षोभितं तेनोदकेन नाऽऽचा-
मेत् । एकपाण्यावर्जितेन वामहस्तावर्जितेनापि नाऽऽचामेत् । अलाबु-
पात्रेण नालिकेरेण(नारिकेरेण)वा वैणवेन चर्ममयेन वा ताम्रमयेन
वा पात्रेण स्वयमाचमनमाचरन्ति शिष्टा इति तद्वाख्योज्ज्वला । अत्रै-
कपाण्यावर्जितेनैकहस्तसंपादितेन जलेन नाऽऽचामेदित्युक्त्यैव वामह-
स्तव्युदासे जातेऽपि यथा दक्षिणहस्तेन जलसंपादनमेकहस्तनिषेधाद्द्वामह-
स्तान्वारम्भपूर्वकमेव कर्तव्यमेव(वं) वामहस्तेनापि जलसंपादनं दक्षिणह-
स्तान्वारम्भपूर्वकं निरुक्तैकहस्तमात्रनिषेधात्प्राप्तं तद्व्युदासार्थं वामेति
प्रतिभाति । एवं चर्मपदस्य वृक्षत्वच्येव भूर्जादौ लक्षणा । अन्यथा
गत्यन्तराभावादिति दिक् । आचाररत्ने संवर्तोऽपि—

शूद्राशुच्यैकहस्तैश्च दत्ताभिर्न कदाचन । इति ।

अद्भिराचामेदिति शेषः । अशुचिरस्नातादिः । माधवीये बौधा-
यनोऽपि—

पादप्रक्षालनाच्छेषेण नाऽऽचामेद्यद्याचामेद्भूमौ स्रावयित्वाऽऽचा-
मेन्न सबुद्बुदाभिर्न क्षाराभिर्न फेनाभिर्नोष्णाभिर्न विवर्णाभिर्न कलु-
षाभिः । इति ।

भट्टोजिदीक्षिताह्निके स्मृत्यन्तरे—

शूद्राहतैस्तु नाऽऽचामेदेकपाण्याहतैस्तथा ।

न चैवाव्रतहस्तेन नापरिज्ञातहस्ततः ॥ इति ।

अव्रतोऽनुपनीतः । उष्णोदकं हेत्वन्तरेण प्रशंसति धर्मप्रश्ने—

तप्ताभिश्चाकारणात् । इति ।

तप्ताभिश्चाद्भिर्नाऽऽचामेदकारणाज्वरादौ कारणे सति न दोष इत्यु-
ज्वला व्याख्या । माधवीये यमोऽपि—

रात्राववीक्षितेनापि शुद्धिरुक्ता मनीषिणाम् ।

उदकेनाऽऽतुराणां च तथोष्णेनोष्णपायिनाम् ॥ इति ।

तत्र सूत्रे तप्ताभिरित्युक्तेः शृतशीताभिर्ज्वरिवज्जरादिवशात्तादृशै-
कोदकपायिनामाचमनेऽपि न दोषः । अत एवाऽऽपस्तम्बधर्मप्रश्नोज्ज्व-
लायां हरदत्तमिश्रा अतप्ताभिरिति वचनाच्छृतशीताभिरदोषस्तथा
चोष्णानामेव प्रतिषेधः स्मृतिषु प्रायेण भवतीत्याहुः । किं च । आच-
मनादिसर्वशास्त्रीयकर्मणि जलं वस्त्रेण संशोध्यैव ग्राह्यम् । वस्त्रपूतं
जलं पिबेदिति वचनात् । न चेदं वचनं यतिप्रकरणपठितत्वात्तत्परमे-
वेति वाच्यम् ।

अनुष्णाभिरफेनाभिः पूताभिर्वस्त्रचक्षुषा ।

हृद्गताभिरशब्दाभिस्त्रिश्चतुर्वाऽद्भिराचमेत् ॥

इति भट्टोजिदीक्षितीयाह्निके प्रचेतोवचनेन त्रैवर्णिकादिसाधारण्येन
सर्वाश्रमिणामप्याचमनोपलक्षितयावद्वैदिकव्यवहारादौ वस्त्रशोधितस्यैव
जलस्य ग्राह्यत्वविधानेन निरुक्तवचनस्यापि सर्वसाधारण्यानपायात् ।
नन्वेवमपि वस्त्रचक्षुषेत्यत्र वस्त्रवच्चक्षुरित्युपमितसमासं विधाय यथा
वस्त्रेण क्षीरादिकं शोधितं चेत्पूतं भवति तद्वच्चक्षुषा कीटादिकं
चुलके गृहीतास्वप्सु निरीक्षितं चेत्तद्राहित्यसंपादनोत्तरं ताः पूता भव-
न्तीत्येव तस्यार्थः । ततः क्व नामाऽऽपः सर्वा देवता इत्यादिश्रुतेः स्वत
एव सर्वदेवतास्वरूपत्वेन नित्यपूतानामपां वस्त्रेण शोधनतः पूतत्वसंपा-
दनावकाश इति चेन्न । वस्त्रं च चक्षुश्चानयोः समाहारो वस्त्रचक्षुस्तेनेति
समाहारे नपुंसकमिति नपुंसकलिङ्गघटकसमाहारद्वंद्वसमासस्यैव त्वत्कृ-
तोपमितसमासापेक्षया लघीयस्त्वेन गङ्गादावाचमने चक्षुषा पूताभि-
रद्भिः पात्रे समुद्धृताभिस्ताभिराचमने तु वस्त्रेण पूताभिरेव ताभिराच-
(चा)मेदिति व्यवस्थासंभवात् । न चास्तु जलान्तरे भवदाग्रहाद्यथा-
कथंचिद्वस्त्रेण शोधनं तथाऽपि गङ्गाजलादौ तावदिदमनुचितमेव ।
महामहिमत्वेन श्रुतिप्रसिद्धे वस्तुनि पवित्रीकरणेच्छोः शालग्रामादौ

प्राणप्रतिष्ठाकर्तुरिव प्रत्युत पातकापत्तिरेवेति वाच्यम् । स्कान्दे
काशीखण्डे—

वस्त्रपूतजलैर्लिङ्गं स्नापयित्वा ममामराः ।

लक्षाश्वमेधजनितं पुण्यं प्राप्नोति सत्तम(माः) ॥

इति देवान्प्रति श्रीमद्विश्वेश्वरवचनेन प्रकरणाद्गङ्गाजलस्यापि वस्त्र-
पूतत्वविधानोपलब्धेः । तज्जलान्तर्वर्तितृणादेस्तत्साम्येनाग्रहणेन प्रत्युत
राजतद्भृत्यसाम्यागणनेन राज्ञ इवान्वयव्यतिरेकाभ्यां देवतायाः परि-
तोषेण निरुक्तपुण्याधिक्यस्यैव सिद्धेः । पवित्रशिरोमणिभूतत्वेन श्रुति-
प्रसिद्धाया अपि धेनोः पयस इव गङ्गोदकस्यापि वस्त्रेण शोधनस्य
संभाविततदितरद्रव्यनिरासार्थं सुतरामपेक्षितत्वाच्च । अत एव लैङ्गेऽपि—

वस्त्रपूतेन तोयेन कार्यं चैवोपलेपनम् ।

शिवक्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा नान्यथा सिद्धिरिष्यते ॥

आपः पूता भवन्त्येव वस्त्रपूताः समुद्धृताः ।

अमुना मुनिशार्दूला आदेयाश्चाविशेषतः ॥ इति ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतेन वारिणा ।

कार्यमभ्युक्षणं चैव *धूपनं चानुलेपनम् ॥

इति च सूतेन शौनकादीन्प्रति प्रोक्षणोपलेपनाद्यपि वस्त्रपूतजलेनैवो-
पदिष्टम् । न चेदं स्कान्दादिवचनं शिवार्चनोपयुक्तजलविषयं न तु
विष्णवादिदेवतान्तरविषयमिति वाच्यम् ।

जलेन वस्त्रपूतेन यः स्नापयति केशवम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः शताब्दं मोदते दिवि ॥

इति बृहन्नारदीयवचनेन तदुक्तत्वात् । उपलक्षणमिदं देवतान्तरक्रिया-
न्तरयोरपीति दिक् । तथाऽपि न तादृशः सार्वत्रिकः शिष्टाचार इति चेरिं-
तेन । विशिष्टशिष्टचक्रवर्तिभिर्भगवत्पूज्यपादैर्देवीमानसपूजायामपि—

अतिशीतमुशीरवासितं तव पाणौ च मया निवेदितम् ।

पटपूतमिदं जितामृतं शुचि गङ्गासृतमम्ब पीयताम् ॥

* क. पु. समासे—धूपनपदेनात्राभ्युक्षणपदसाहचर्याद्यथा लोके वासन्तिकपाटलपुष्पसुवासि-
तजलेन वसन्तादौ सदस्यानां प्रोक्षणं सौरभ्यार्थं विधीयत इति प्रसिद्धमेव तद्देवस्यापि राजो-
पचारकामुकेन कस्तूर्यादिधूपसंस्थितेन यत्कार्यं धूपनं तथा यद्वाह्यणकृतनिरुक्तपुष्पोदकेनापि धूपनं
तत्सर्वं वस्त्रपूतजलेनैव कार्यमिति ज्ञाप्यत इति ध्येयम् ।

इति वस्त्रपूतमेव गाङ्गमप्युदकं समर्पितमस्तीत्यतो युक्तमेव द्विजा-
तीनां तद्धर्मपत्नीनामपि एवं सर्वं कर्म वस्त्रपूतजलैनेवेति रहस्यम् ।
एतेन ये तावदयं जैनानामेवाऽऽचारो यद्वस्त्रेण जलशोधनमिति वदन्ति
ते स्वप्नेऽप्यकलितशास्त्रहृदयाः कुबुद्धयः साधुनिन्दकाः परास्ता
इति दिक् ।

आचमने वर्ज्यानाह धर्मप्रश्ने—तिष्ठन्नाऽऽचामेत्प्रह्वो वा । इति ।

तिष्ठन्प्रह्वो वा नाऽऽचामेत् । नायं प्रतिषेधो वक्तुं शक्यते । आसी-
नस्त्रिराचामेदिति वक्ष्यति ततो यथा शयानस्याऽऽचमनं न भवति तथा
तिष्ठतः प्रह्वस्य च न भवति । एवं तर्हि नायं शौचार्थस्याऽऽचमनस्य प्रति-
षेधः । तथा च गौतमः—नाञ्जलिना पिबेन्न तिष्ठन् । इति । अपर
आह—अस्मादेव वचनात्कचित्तिष्ठतः प्रह्वस्य चाऽऽचमनमभ्यनुज्ञातं भवति ।
तेन भूमिगतास्वप्सु तीरस्यायोग्यत्व ऊरुदग्ने नाभिदग्ने वा स्थितस्याऽऽ-
चमनं भवति । गौतमे च तिष्ठन्नुद्धृतोदकेन नाऽऽचामेदिति सूत्रच्छेदा-
दुद्धृतोदकेनैव तिष्ठतः प्रतिषेध इति तद्वाख्योज्ज्वला । माधवीयेऽपि—
न तिष्ठन्निति स्थलविषयम् । जले च तिष्ठन्नाचामेत् । तथा च विष्णुः—
जान्वोरुर्ध्वं जले तिष्ठन्नाचान्तः शुचितामियात् ।

अधस्ताच्छतकृत्वोऽपि समाचान्तो न शुध्यति ॥ इति ।

धर्मप्रश्ने—नाप्सु सतः प्रयमणं विद्यते । इति । येन प्रयतो भवति
तत्प्रयमणम् । करणे ल्युट् । तदप्सु सतो वर्तमानस्य न भवति जलमध्य
आसीनोऽपि नाऽऽचामेदिति तद्वाख्योज्ज्वला । माधवीये बोधाय-
नोऽपि—

न हसन्न जल्पन्न तिष्ठन्न विलोकयन्न प्रह्वो न प्रणतो न मुक्तशिखो
नाबद्धकच्छो न बहिर्जानुकरो न वेष्टितशिरा न बद्धकक्षो न त्वर-
माणो नायज्ञोपवीती न प्रसारितपादो न शब्दं कुर्वन्स्त्रिरपो हृदयंगमाः
पिबेत् । इति ।

भृगुरपि—विना यज्ञोपवीतेन तथा धौतेन वाससा । मुक्त्वा शिखां
वाऽप्याचामेत्कृतस्यैव पुनः क्रिया । इति ।

आचमने यज्ञोपवीतित्वमुक्तं धर्मप्रश्नेऽपि—

उपासने गुरुणां वृद्धानामतिथीनां होमे जपकर्माणि स्वाध्याये भोज-
नाचमने च यज्ञोपवीती स्यात् । इति ।

गुरुणामाचार्यादीनामन्येषां च पूज्यानां वृद्धानामतिथीनां चोपासने यदा तानुपास्ते तदा होमे यागे पित्र्यादन्यत्र जपकर्मणि जपक्रियायां स्वाध्यायाध्ययने भोजनाचमनयोश्च यज्ञोपवीती स्यात् । वासोविन्यास-विशेषो यज्ञोपवीतम् । दक्षिणं बाहुमुद्धरतेऽवधत्ते सव्यमिति यज्ञोपवी-तमिति ब्राह्मणम् । वाससोऽसंभवेऽनुकल्पं वक्ष्यति । अपि वा सूत्रमे-वोपवीतार्थे । मनुस्मृतिरप्याह—

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्वं कृतं त्रिवृत् ।

उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते बुधैः ॥ इति ।

एतेषु यज्ञोपवीतविधानात्कालान्तरे नावश्यंभाव इति

तद्याख्योज्ज्वला । पुनस्तत्रैव—

नित्यमुत्तरं वासः कार्यमपि वा सूत्रमेवोपवीतार्थे । इति ।

उपासने गुरुणामित्यादिना केषुचित्कालेषु यज्ञोपवीतं विहितम् ।

इह तु प्रकरणाद्गृहस्थस्य नित्यमुत्तरं वासो धार्यमित्युच्यते । तच्च मनूक्तम् । बोधायनस्तु—कौशं सूत्रं वा त्रिवृद्यज्ञोपवीतम् । इति । अपि वा सूत्रमेव सर्वेषामुपवीतार्थं उपवीतकृत्ये भवति न वाससैवेति नियम इत्युज्ज्वला व्याख्या । माधवीये कौशिकः—

अपवित्रकरः कश्चिद्ब्राह्मणो य उपस्पृशेत् ।

अकृतं तस्य तत्सर्वं भवत्याचमनं तथा ॥

वामहस्ते स्थिते दर्भे दक्षिणेनाऽऽचमेद्यदि ।

रक्तं तु तद्भवेत्तोयं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ इति ।

मार्कण्डेयस्तु दक्षिणहस्तस्य सपवित्रतां विधत्ते—

सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम् ।

नोच्छिष्टं तत्पवित्रं तु भुक्त्वोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥ इति ।

गोभिलो हस्तद्वये पवित्रं प्रशंसति—

उभयत्र स्थितैर्दर्भैः समाच(चा)मति यो द्विजः ।

सोमपानफलं तस्य भुक्त्वा यज्ञफलं भवेत् ॥ इति ।

पवित्रकमुक्तं गृह्यप्रश्ने—

समावप्रच्छिन्नाग्रौ दर्भौ प्रादेशमात्रौ पवित्रे कृत्वाऽन्येन नरवाच्छि-त्वाऽद्भिरनुसृज्य । इति ।

द्वे पवित्रे कृत्वा कथं करोति अन्येन नखात्तृणेन काष्ठेन वा छित्त्वा करोति । कृत्वाऽद्भिरनुमृज्येति मातृदत्ताः । स्थलविषय आचमने विशेषो दर्शितः स्मृत्यन्तरे—

अलाबु ताम्रपात्रं च करकं च कमण्डलुम् ।

गृहीत्वा स्वयमाचामेन्नरो नाप्रयतो भवेत् ॥

*करकालाबुकाद्यैश्च ताम्रचर्मपुटेन च ।

स्वहस्ताचमनं कार्यं स्नेहलेपांश्च वर्जयेत् ॥ इति ।

+करपात्रे तु यत्तोयं यत्तोयं ताम्रभाजने ।

सौवर्णे राजते चैव नैवाशुद्धं तु तत्स्मृतम् ॥ इति ।

अथाऽऽचमननिमित्तानि धर्मप्रश्ने—

रिक्तपाणिर्वयस उद्यम्याप उपस्पृशेत् । इति ।

वय इति पक्षी । यो रिक्तपाणिः सन्वयस उद्दिश्य पक्षिण उद्दिश्य तस्य प्रोत्सारणाय पाणिमुद्यच्छते स तत्कृत्वाऽप उपस्पृशेत्तेनैव पाणिना रिक्तपाणिरिति वचनात्काष्ठलोष्टादिसहितस्य पाणेरुद्यमने न दोषः । केचिदुपस्पर्शनमाचमनमाहुरित्युज्ज्वला । उपस्पर्शस्त्वाचमनमित्यमरः । अन्यञ्च—

उत्तीर्य त्वाचामेत् । इति ।

उत्तीर्षाऽऽचामेन्न जलमध्य इत्यर्थो न विधेयः । पूर्वेण गतत्वात् । तस्माद्यमर्थः—यदा नदीमुत्तरति नावा प्रकारान्तरेण वा तदा तामुत्तीर्य तीरान्तरं गतः प्रयतोऽप्याचामेत् । नद्यादेरुत्तरणमपि आचमननिमित्तमिति तु शाब्दार्थ इति व्याख्या । अन्यञ्च—

श्यावान्तपर्यन्तावोष्ठावुपस्पृश्याऽऽचम्य प्रयतो भवति । इति ।

दन्तमूलात्प्रभृत्योष्ठौ तत्रालोमकप्रदेशः श्यावस्तस्यान्तः सलोमकः । तत्पर्यन्तावोष्ठावुपस्पृश्याऽऽचामेत् । ओष्ठयोरलोमकप्रदेशमङ्गुल्या काष्ठादिना वोपस्पृश्याऽऽचामेदिति । अस्मादेव प्रतिषेधाज्जायते यत्किञ्चिदपि द्रव्यमन्तरास्ये सदुच्छिष्टताया निमित्तमिति व्याख्या । अपि च—

न श्मश्रुभिरुच्छिष्टो भवत्यन्तरास्ये सद्भिर्यावन्न हस्तेनोपस्पृशति । इति ।

श्मश्रूणि यदाऽऽस्यस्यान्तर्भवन्ति तदा तैरन्तरास्ये सद्भिरुच्छिष्टो

न भवति यावन्न हस्तेनोपस्पृशति । उपस्पर्शने तूच्छिष्टो भवति । ततश्चाऽऽचामेदिति व्याख्या । अन्यञ्च—

य आस्याद्विन्दवः पतन्त उपलभ्यन्ते तेष्व्वाचमनं विहितं ये भूमौ न तेष्व्वाचामेदित्येके । इति ।

भाषमाणस्याऽऽस्यात्पतन्तो लालाबिन्दव उपलभ्यन्ते चक्षुषा स्पर्शनेन वा य उपलब्धियोग्यास्तेष्व्वाचमनं विहितम् । वेदोच्चारणे गौतमः—

मन्त्रान्ब्राह्मणमुच्चारयतो ये बिन्दवः शरीर उपलभ्यन्ते तेष्व्वाचमनं विहितम् । इति । ये बिन्दवो भूमौ पतन्ति न शरीरे तेषु नाऽऽचामेदित्येके । स्वमतं तु तेष्वप्याचामेदिति व्याख्या । अन्यञ्च—

स्वप्ने क्षवथौ शृङ्घाणिकाश्चालम्भे लोहितस्य केशानामग्नेर्गवां ब्राह्मणस्य स्त्रियाश्चाऽऽलम्भे महापथं च गत्वाऽमेध्यं चोपस्पृश्याप्रयतं च मनुष्यं नीवीं च परिधायाप उपस्पृशेत् । इति ।

स्वप्नः स्वापः क्षवथुः क्षुतं शृङ्घाणिका नासिकामलमश्रु नेत्रजलं तेषामालम्भे स्पर्शं लोहितस्य रुधिरस्य केशानां शिरोगतानां चाग्न्यादीनां चतुर्णामालम्भे महापथं च गत्वाऽमेध्यं च गोव्यतिरिक्तानां मूत्रपुरीषं ताम्बूलनिषेकादि चोपस्पृश्याप्रयतं च मनुष्यमुपस्पृश्य नीवीं प्रसिद्धा तद्योगाद्धोवासो लक्ष्यते । तच्च परिधायाप उपस्पृशेत् । केषुचित्स्नानं केषुचिदाचमनं केषुचित्स्पर्शनमात्रं यावता प्रयतो मन्यत इति व्याख्या । अत्राप्रयतत्ववाच्यापावित्र्यविशिष्टो मनुष्यः क्षत्रियादिरेव । तस्यैव त्रैवर्णिकत्वेन प्रकृताप्रायत्यसंभवात् । अन्यथा शूद्रादेः स्पर्शेऽप्यप्रायत्ये तस्य ब्राह्मणादीनां स्नानाद्यनापत्तेः । अत्र विकल्पोऽपि धर्मप्रश्ने—

आर्द्रं वा शकृदोषधीर्भूमिं वनस्पतिं चाऽऽचामेद्वा । इति ।

आर्द्रं वा शकृदुपस्पृशेत् । ओषधीर्वाऽऽर्द्रां भूमिं वाऽऽर्द्रां वनस्पतिं वाऽऽर्द्रं चाऽऽचामेद्वा । पूर्वोक्तेषु स्वल्पेषु वैकल्पिकमिदम् । एवमाचमनं सह निमित्तैरुक्तमिति व्याख्या । इह शकृद्गोरेव । तस्यैव पावनत्वात् । पुनस्तत्रैव—

केशानङ्गं वासश्चाऽऽलभ्याप उपस्पृशेत् । इति ।

केशाङ्गीन्यात्मदी(त्मी)यान्यन्यदीयानि वाऽऽलभ्य स्पृष्ट्वाऽप उपस्पृशेत् । नेदं स्नानं किं तर्हि स्पर्शनम् । केशालम्भे पूर्वमप्युपस्पर्शनं विहितम् ।

इदं तु तत्रोक्तं वैकल्पिकं शकृदाद्युपस्पर्शनं मा भूदि[ती]त्युज्जला ।
माधवीयेऽपि बोधायनः—

नीवीं विसृज्य परिधायोपस्पृशेदार्द्रं तृणं गां भूमिं गोमयं वा
संस्पृशेत् । इति ।

आचमननिमित्तानि माधवीयेऽपि मनुः—

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत् ।

पीत्वाऽपोऽध्येष्यमाणश्च वेदमश्रंश्च सर्वदा । इति ।

दक्षः—[*प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च त्रिः पिबेदम्बु वीक्षितम् ।

संस्पृष्टाङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रसृज्य ततो मुखम् ॥

अङ्गुष्ठमूलेन निर्लोमप्रदेशेनेत्यर्थ इति श्री[मद्]उपाध्यायनागदेवविर-
चित आचारप्रदीप उक्तम् ।] कूर्मपुराणेऽपि—

चण्डालम्लेच्छसंभाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।

उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यं चापि तथाविधम् ॥

आचामेदश्रुपाते वा लोहितस्य तथैव च ।

अग्नेर्गवामथाऽऽलम्भे स्पृष्ट्वाऽप्रयतमेव वा ॥

स्त्रीणामथाऽऽत्मनः स्पर्शं नीवीं वा परिधाय च । इति ।

स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषण इत्येतज्जपादिविषयमिति माधवाचार्याः । तथा
च पद्मपुराणे—

चाण्डालादीञ्जपे होमे दृष्ट्वाऽऽचामेद्विजोत्तमः । इति ।

मनुरापि—सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वाऽनृतं वचः ।

रथ्यां श्मशानं चाऽऽक्रम्य आच(चा)मेत्प्रयतोऽपि सन् ।

बृहस्पतिरपि—अधोवायुसमुत्सर्गे आक्रन्दे क्रोधसंभवे ।

मार्जारमूषकस्पर्शं प्रहासेऽनृतभाषणे ।

निमित्तेष्वेषु सर्वेषु कर्म कुर्वन्नुपस्पृशेत् । इति ।

यमोऽपि—उत्तीर्योदकमाचामेदवतीर्य तथैव च ।

एवं स्यात्तेजसा युक्तो वरुणेनापि पूजितः । इति ।

वसिष्ठोऽपि—क्षुते निष्ठीवने सुप्ते परिधानेऽश्रुपातने ।

पञ्चस्वेतेषु वाऽऽचामेच्छोत्रं वा दक्षिणं स्पृशेत् ॥ इति ।

दक्षिणकर्णस्पर्शनमाचमनासंभवे वेदितव्यमिति माधवाचार्याः ।

अथ द्विराचमननिमित्तं धर्मप्रश्ने—

भोक्ष्यमाणस्तु प्रयतोऽपि द्विराचामेद्विः परिमृजीत सकृदुपस्पृशेत् ।
इति । भोजनं करिष्यन्प्रयतोऽपि द्विराचमनं कुर्यात् । अत्र विशेषः—
द्विः परिमृजीत न विकल्पेन त्रिः । सकृदुपस्पृशेन्न विकल्पेन द्विः । प्रय-
तोऽपीतिवचनादप्रायत्ये सर्वत्रापि द्विराचमनमाचार्यस्याभिमतम् । अत्र
द्विराचामेदिति साङ्गं द्विरावर्तयेदित्येके । द्विः परिमृजेत्सकृदुपस्पृशेदित्ये-
तत्प्रायपठितस्य द्विराचामेत्[इति]एतस्यापि द्विःप्राशनमात्रपरत्वात्साङ्ग-
माचमनमात्रं विधीयते तस्याभ्यासाश्रवणात्सकृदित्येके । शास्त्रान्तरप्रा-
साभ्यासोऽपीत्यन्य इति तद्याख्योज्ज्वला । तत्रैव स्मृत्यन्तरम्—

भुक्त्वा क्षुत्वा च सुप्त्वा च ष्ठीवित्त्वोक्त्वाऽनृतं वचः ।
आचान्तः पुनराचामेद्वासोऽपि परिधाय च ॥ इति ।

माधवीये कूर्मपुराणेऽपि—

प्रक्षाल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत् ।
शुचौ देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत् ॥
ओष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वा वासोऽपि परिधाय च ।
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गे शुष्कभाषणे ॥
शयित्वाऽध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ।
चत्वरं वा श्मशानं वा समागम्य द्विजोत्तमः ॥
संध्योरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्ततः । इति ।

शुष्कभाषणं निष्ठुरभाषणम् । आचमनापवादमाह तत्रैव बोधायनः—

दन्तवदन्तलग्नेषु दन्तसक्तेषु धारणाम् ।
ग्रस्तेषु तेषु नाऽऽचामेत्तेषां संस्थानवच्छुचिः ॥ इति ।

दन्तलग्नदन्तसक्तयोर्निर्हार्यानिर्हार्यरूपेण भेदः । फलमूलादिषु विशे-
षमाह तत्रैव शातातपः—

दन्तलग्ने फले मूले भुक्तस्नेहावाशिष्टके ।
ताम्बूले चक्षुदण्डे च नोच्छिष्टो भवति द्विजः ॥ इति ।

विस्तरश्च तत्रैवाऽऽचाररत्ने च द्रष्टव्यः । एवमुक्तलक्षणस्याऽऽचम-
नस्य प्रशंसा माह माधवीये व्याघ्रपात्—

एवं स ब्राह्मणो नित्यमुपस्पर्शनमाचरेत् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत्स परितर्पयेत् ॥

अकरणे प्रत्यवायो दर्शितः पुराणसारे—

यः क्रियां कुरुते मोहादनाचम्यैव नास्तिकः ।

भवन्ति हि वृथा तस्य क्रियाः सर्वा न संशयः ॥ इति ।

नन्वग्नेर्गवां ब्राह्मणस्येति स्वसूत्रेऽग्न्यादीनां पवित्रतमानामप्यालम्भे यदाचमनं विहितं तत्राग्नेः साक्षात्स्पर्शं तस्य त्वगादिदाहकत्वसंभवेन क्रव्यादाख्यचिताम्भित्वाद्ब्राह्मणस्याप्यप्रायत्यसंभवाच्च तदौचित्येऽपि गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दशेति गोषु सर्वं प्रतिष्ठितमिति च वचनात्पत्युताधस्तादेवोक्ते माधवोदाहृतबोधायनसूत्रे आर्द्रं तृणं गां भूमिं गोमयं वा संस्पृशेदित्याचमनप्रतिनिधित्वेनापि तत्संस्पर्शस्य विहितत्वाच्च किमभिप्रायकं तत्स्पर्शनिमित्तकाचमनविधानमिति । उच्यते—मुखावच्छेदेन गवामप्यपावित्र्यस्य लोकशास्त्रोभयसिद्धत्वेन मुखशब्दितोष्ठद्वयजिह्वादन्तावच्छेदेनैव तत्स्पर्शपरत्वं तस्येति न कोऽपि विरोध इति हृदयम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढहिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषण आचमनप्रकरणम् ।

अथ दन्तधावनविधिः ।

माधवीयेऽत्रिः—मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ।

तदाऽऽर्द्रकाष्ठं शुष्कं वा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ इति ।

व्यासोऽपि—प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च मुखं च सुसमाहितः ।

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य कृत्वा जान्वन्तरा ततः ॥ इति ।

विष्णुः—कण्टकीक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशाङ्गुलसंमितम् ।

कनिष्ठाङ्गुलिवत्स्थूलं पर्वार्धकृतकूर्चकम् ॥

दन्तधावनमुद्दिष्टं जिह्वोल्लेखनिका तथा ।

सुसूक्ष्मं सूक्ष्मदन्तस्य समदन्तस्य मध्यमम् ॥

स्थूलं विषमदन्तस्य त्रिविधं दन्तधावनम् ।

द्वादशाङ्गुलिकं विप्रे काष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥

क्षत्रविद्द्रशुद्रजातीनां नवषट्चतुरङ्गुलम् । इति ।

गृह्यप्रश्ने—औदुम्बरेण दन्तान्प्रक्षालयते । अन्नाद्याय व्यूहध्वं दीर्घायुत्वाय व्यूहध्वं ब्रह्मवर्चसा व्यूहध्वं दीर्घायुरहमन्नादो ब्रह्मवर्चसी भूयासमिति । इति । उदुम्बरेण काष्ठेन दन्तान्प्रक्षालयते प्रकर्षेण शोधयत्यन्नाद्यायेत्यनेनेति मातृदत्ताः । भट्टोजिदीक्षिताह्निक आश्वलायनोऽपि—

उदुम्बरेण वाक्सिद्धिर्मवेत्प्लक्षेण वै धनम् । इति ।

माधवीयेऽङ्गिराः—भक्षयेत्प्रातरुत्थाय वाग्यतो दन्तधावनम् । इति ।

प्रक्षाल्य भक्षयेत्पूर्वं प्रक्षाल्यैव तु संत्यजेत् ।

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कषायं तिक्तकं तथा ॥

प्रातर्भुक्त्वा च यतवाग्भक्षयेद्दन्तधावनम् । इति ।

भुक्त्वा भक्षयेदिति पुनः पुनः संचर्व्य दन्तान्विशोधयेदित्यर्थः । तत्रैव कात्यायनो दन्तधावनकाष्ठाभिमन्त्रणमन्त्रं दर्शयति—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।

ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो धेहि वनस्पते ॥ इति ।

वर्ज्यं काष्ठं धर्मप्रश्ने—पालाशमासनं पादुके दन्तप्रक्षालनमिति च वर्जयेत् । इति ।

पालाशमासनादि वर्जयेत् । दन्तप्रक्षालनं दन्तकाष्ठम् । इतिशब्दः प्रकारे तेनान्यदपि गृहोपकरणं पालाशं वर्जयेदिति तद्याख्योज्ज्वला । माधवीय उशनाऽपि—

दक्षिणाभिमुखो नाद्यान्नीलं धवकदम्बकम् । इति ।

न भक्षयेच्च पालाशं कार्पासं शाकमेव च ।

एतानि भययेद्यस्तु क्षीणपुण्यः स जायते ॥ इति ।

तत्रैव वर्ज्यतिथीनाह विष्णुः—

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु चतुर्दश्यष्टमीषु च ।

नवम्यां भानुवारे च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ इति ।

यमोऽपि—चतुर्दश्यष्टमी दर्श(र्शः) पूर्णिमा संक्रमो रवेः ।

एषु स्त्रीतैलमांसानि दन्तकाष्ठं च वर्जयेत् ॥ इति ।

श्राद्धे जन्मदिने चैव विवाहेऽजीर्णदोषतः ।

व्रते चैवोपवासे च वर्जयेद्दन्तधावनम् ॥ इति च ।

व्यासोऽपि—श्राद्धे यज्ञे च नियमान्नाद्यात्प्रोषितभर्तृका ।

श्राद्धकर्तुर्निषेधोऽयं न तु भोक्तुः कदाचन ॥

अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथौ तथा ।

अपां द्वादशगण्डूषैर्विद्ध्याद्दन्तधावनम् ॥ इति ।

विश्वादर्शोऽपि—

त्यक्त्वा गण्डूषषट्कं द्विरपि कुशमृते देशिनीमङ्गुलीभिः । इति । उक्त-
काष्ठाभावे तु प्रतिषिद्धदिने वाऽपि द्विर्गण्डूषषट्कं द्वादश गण्डूषाः
कार्या इत्यर्थः । देशिनीकुशवर्ज्यमङ्गुलीभिर्वेति तट्टीकायाम् । सद्भर्मत-
त्वेऽपि—गण्डूषैर्भानुसंख्यैस्तृणदलनिचयैर्मध्यया चास्य शुद्धिः । इति ।

अत्र तृणं भूतृणं ग्राह्यम् । तथा च भावप्रकाशे निघण्टौ—

भूतृणं तु भवेच्छत्रा मालातृणकमित्यपि ।

विदाहि दीपनं रूक्षमनेत्र्यं मुखशोधनम् ॥ इति ।

आचाररत्ने स्कान्दे प्रभासखण्डे—

वर्जिते दिवसे देवि गण्डूषाश्चैव षोडश ।

तत्तत्पत्रैः सुगन्धैर्वा कारयेदन्तधावनम् ॥ इति ।

अत्र तत्तत्पत्रैर्नाम—

तिन्तिणीवेणुपृष्ठे च आम्रनिम्बौ तथैव च ।

अपामार्गश्च बिल्वश्च अर्कश्चौदुम्बरस्तथा ॥

वदरीतिन्दुकास्त्वेते प्रशस्ता दन्तधावने ॥ इति ।

सर्वे कण्टकिनः पुण्या क्षीरिणश्च यशस्विनः ।

इति च क्रमादाचारार्के नृसिंहपुराणस्य नारदस्य च वचनयोरुक्त-
वृक्षपत्रैरिति बोध्यम् । सुगन्धैरिति पत्रपरत्वे दमनकादिपत्राणि । चूर्ण-
परत्वे वैद्यशास्त्रप्रसिद्धमेव तत्तथेति विवेकः । आचाररत्ने यमः—

मध्याह्नस्नानवेलायां यो भक्षेदन्तधावनम् ।

निराशास्तस्य गच्छन्ति देवताः पितरस्तथा ॥ इति ।

विस्तरस्तु तत्रैव माधवीये च ज्ञेयः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे दन्तधावनप्रकरणम् ।

अथ प्रयोगाः । कर्ताऽऽत्महितचिन्तनानन्तरं जलपात्रमुक्तलक्षणां मृदं
काष्ठमयज्ञियं तृणं च गृहीत्वा नैर्ऋत्यां दक्षिणस्यां वा दिशि ग्रामाद्गृ-
हाद्वा दूरतो गत्वा रात्रौ तु समीप एव पूर्वगृहीततृणैर्भूमिमन्तर्धाय तत
उत्तरीयेण शिरो नासां चाऽऽवेष्ट्य निवीती पृष्ठतःकृतयज्ञोपवीत्येकवस्त्र-
श्चेद्दक्षिणकर्णकृतयज्ञोपवीतो दिशमनवलोकयन्नुपजीव्यच्छायादिव्यति-
रिक्तस्थले मौनी दिवासंध्ययोरुदङ्मुखो रात्रौ तु दक्षिणामुखोऽनुपा-
नत्को देवाद्यनभिमुख आसीनो मूत्रपुरीषोत्सर्गं कुर्यात् । ततः पूर्वगृही-

तकाष्ठेन शिश्रुगुदस्थमूत्रपुरीषयोः शोधनं कृत्वा गृहीतशिश्रु-
उत्थाय स्थानान्तरं गत्वा मूत्रपुरीषगन्धक्षयकरं पूर्वोक्तमृद्धिरद्धिश्च
वामहस्तेन शौचं कुर्यात् । स्त्रीशूद्रानुपनीता अप्येवम् । आतुरस्तु
लेपक्षयकरम् । इति शौचम् । ततः पश्चिमाभिमुखः, अ(आ)गुल्फं पादौ
वामदक्षिणावामणिबन्धं हस्तौ च जलान्तरैः पात्रान्तरेणाभ्युक्षितेन
तेनैव वा मृत्लापनपूर्वकं प्रक्षालयेत् । [*यद्यपि वाचनिकास्तु गण्डूषाः
पुरीषोत्सर्गोत्तरमष्टावेव तथाऽपि मूत्रोत्सर्गप्रयुक्तैश्चतुर्भिस्तैः सह तथा
स्वाप्राज्ञातसंभावितक्वाचित्करेतःप्रस्रवणकृतप्रासङ्गिकसिद्धिसंपादकचतु-
र्भिरपरैरपि तैः सह] षोडश गण्डूषान्कृत्वा शौचस्थानमुदकपात्रं च
प्रक्षालयेत् । मैथुनेऽप्येवमेव सामान्यतः । विशेषं त्वग्रे तत्प्रकरणे वक्ष्यामः ।
मूत्रमात्रशौचे तु गण्डूषा एव चत्वारः शिष्टं त्वित्थमेव । स्त्रीणां रजः-
शौचादिप्रकारस्तु सौभाग्यकल्पद्रुम एव विस्तरतो बोध्यः । संक्षेपतस्त्व-
त्रापि प्रकीर्णकप्रकरणे वक्ष्यते । इति पादादि शौचम् । अथाऽऽचमनम् ।
ततो विष्णुं स्मृत्वा बद्धशिखोऽनिबद्धकक्षो यज्ञोपवीती प्राङ्मुख उद-
ङ्मुखो वा शुचौ देशे भ्रूमावुपविश्य दक्षिणं बाहुं जान्वन्तरा कृत्वा
हृदयंगमा अपः करतलगासु यावतीषु माषो निमज्जति तावतीः
फेनबुद्बुदरहिता गङ्गादौ वीक्षिता उद्धृताश्चेद्ब्रह्मपूता विमुक्तकनिष्ठाङ्गु-
ष्ठेन संहतोर्ध्वीकृतमध्याङ्गुलित्रयेणैकपाण्यावर्जितेन च नाऽऽचामेदिति
स्वसूत्रनिषेधाद्दक्षिणेतरान्वारब्धदक्षिणपाणिना मुखमस्पृशञ्जशब्दमकुर्व-
न्व्याहृतिभिर्भूः स्वाहा भुवः स्वाहा सुवः स्वाहेति मूले त्वङ्गुष्ठस्य
ब्राह्ममित्यमरोक्तलक्षणेन ब्राह्मतीर्थेन त्रिः पिबेत् । ततोऽङ्गुष्ठमूलेनोष्ठौ
द्विवारमलोमकौ परिमृज्य मध्यमाभिस्त्रिभिरङ्गुलीभिरोष्ठौ सकृदुपस्पृशेत् ।
ततो दक्षिणेन पाणिना सव्यं पाणिमभ्युक्ष्य पादौ शिरश्च प्रोक्ष्याङ्गुष्ठाना-
मिकाभ्यां चक्षुषी पृथक्पृथक्पृथक्प्रदेशिनीभ्यां नासिके अङ्गुष्ठकनिष्ठी-
काभ्यां श्रोत्रे चोपस्पृशेत् । ततो हस्तौ प्रक्षालयेत् । सर्वत्रोपस्पर्शने
जलं समुच्चीयते । इदं हि सौत्रं स्मृतिविशेषप्राप्तश्रौतमन्त्रादिविशिष्टं
नित्यमाचमनं संध्यादिनित्यकर्मण्येव बोध्यम् । तस्य श्रोतकर्मत्वात् ।
नित्यकर्मत्वमत्र पूर्वोदाहृताचमनप्रयोजकापेक्षयैव ।

संध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्ततः ।

इत्युदाहृतान्माधवीये कूर्मपुराणवचनात् । अन्यथा जातेष्ट्यादिश्रौ-

* नायं ग्रन्थः ख. पुस्तके ।

तनैमित्तिककर्मारम्भेऽप्युक्ताचमनानापत्तेः । नैमित्तिके तु लोटादिशून्यहस्तकरणकपक्ष्युड्ढापननावादिकरणकनद्याद्युत्तरणप्रयोज्ये तस्मिन्सौत्रत्वात्सूत्रमात्रोक्ताचमनं सकृदेव तस्य द्विराचमननिमित्तत्वेनानुक्तत्वाच्छ्रौतकर्मत्वाभावाच्च तथाऽप उस्पृशेत्तेनैव पाणिनेति केचिदुपस्पर्शनमाचमनमाहुरिति चोज्ज्वलोक्तेः केवलं पक्ष्युड्ढापकपाणिनैवोदकस्पर्शमात्रं विज्ञेयम् । प्रायश्चित्तीये त्वाचमने शुध्यादिप्रयोजकेऽस्ति तारतम्यम् । तथा हि । अलोमकोष्ठस्पर्शं मुखस्यान्तर्गत्वा बहिर्निःसृतानां श्मश्रूणां स्पर्शं भाषणे मुखबिन्दूपलम्भे स्वापोत्तरं क्षुतोत्तरं नासिकामलस्पर्शंऽश्रुपातोत्तरमग्नेः स्पर्शं गोर्मुखावच्छेदेन स्पर्शं ब्राह्मणस्याप्रयतस्य स्पर्शं स्त्रियाः स्पर्शं वस्त्रपरिधानोत्तरं जलपानोत्तरं स्त्रीशूद्रयोरुच्छिष्टयोर्भाषणोत्तरं ष्ठीवनोत्तरमनृतवदनोत्तरमधोवाय्वपसरण आक्रोशे क्रोधोद्धमे मार्जारस्पर्शं मूषकस्पर्शं प्रहासे च निष्ठुरभाषणे कासश्वासागमे चत्वरगमनेऽपि चान्यस्मिन्नप्येवंजातीयके शास्त्रान्तरप्रसिद्धे क्षुद्रनिमित्ते सर्वत्र शुद्धोदकस्यैव स्पर्शनं कार्यम् । तदभाव आर्द्राणां भूमिगोमयौषधिवनस्पतितृणानामन्यतमं धेनुं वा संस्पृशेत् । तेषामप्यसंभवे दक्षिणश्रवणस्पर्शं एव युक्तः । स्वप्न इत्यादिप्रागुदाहृतसूत्रव्याख्याने केषुचित्स्पर्शमात्रमिति । आर्द्रं वा शकृदित्यादिसूत्रव्याख्याने पूर्वोक्तेषु स्वल्पेषु वैकल्पिकमिति चोज्ज्वलाकृद्द्रचनादक्षिणकर्णस्पर्शनमाचमनासंभवे वेदितव्यमिति प्रागुक्तमाधवाचार्यवचनाच्च । एवं स्वपरसाधारण्येन शिरस्थकेशानां नाभ्यधोभागावच्छेदेनाङ्गस्य वाससश्च स्पर्शं चाण्डालम्लेच्छभाषणे रथ्यागमने चान्यस्मिन्नप्येवंजातीयके शास्त्रान्तरप्रसिद्धे मध्यमे तन्निमित्ते प्रतिनिधिं विनैव केवलं जलस्पर्शनमेव कार्यम् । अथ कण्डूयनादिना स्वरुधिरस्पर्शं राजमार्गगमन उच्छिष्टस्य देवतादेः स्पर्शं उच्छिष्टान्नस्पर्शं केवलं श्मशानं प्रति यहच्छया गत्वा मूत्रशौचोत्तरं पुरीषशौचोत्तरं स्वप्नादिरेतःप्रमोक्षगर्भधारणसंभावेनेतरकालिकमैथुनकृतरेतःप्रमोक्षशौचोत्तरं चान्यस्मिन्नप्येवंजातीयके शास्त्रान्तरप्रसिद्धे मुख्य आचमनप्रयोजकाप्रायत्ये सूत्रमात्रप्रसिद्धं हस्तप्रक्षालनान्तं साङ्गुल्यङ्गुष्ठजलस्पर्शं व्याहृत्याद्युच्चारविधुरं सर्वत्राऽऽचमनं द्विवारमेव कर्तव्यम् । न चैवं तर्हि शौचप्रयोगोत्तरमात्राचमनप्रयोगे व्याहृतिग्रहणमनर्थकम् । तस्य मुख्याचमनसाङ्गस्वरूपमात्रकथनाभिप्रायकत्वात् । अन्यथा पुरीषोत्सर्गशुक्रोत्सर्गानन्तरमपि कृतशौचाचमनस्य

स्नानं विनैव वेदाध्ययनाद्यापत्तेः । नचेष्टापत्तिरेवाऽऽद्ये । द्वितीये तु मैथु-
नस्य ऋतुकालिकरात्रिद्वितीययाम एव विहितत्वात्तदा गर्भधारणसंभवे
निश्यप्युष्णोदकस्नानविधानात्तदसंभवे तु शौचाचमनमात्रेण शुद्धावपि
तत्कालावच्छेदेन वेदाध्ययनादेर्विहितावसरवैधुर्यात्कोक्तापत्तिरिति सांप्र-
तम् । प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासपरो भवेदिति पूर्वोदाहृतदक्षवच-
नाद्भवदुक्तरीत्यैव गर्भधारणासंभवे कृतमैथुनस्यापि शौचाचमनमात्रे-
णैव शुद्धत्वात्सुप्तस्य पूर्वरात्रे प्रदोषवशात्कदाचिन्निशीथोर्ध्वमेव व्युत्थि-
तस्य नित्यं तु रात्रेः पश्चिमयामेऽपि व्युत्थितस्य तादृशस्य तस्य स्नान-
मन्तराऽपि वेदाध्ययनादिप्रसङ्गसंभवेनोक्तापत्तेर्दुरुद्धरत्वात् । यत्तु मूत्रं
कृत्वा पुरीषं वा मूत्रपुरीषलेपानन्नलेपानुच्छिद्यलेपान्नेतसश्च ये लेपा-
स्तान्प्रक्षाल्य पादौ चाऽऽचम्य प्रयतो भवतीति प्रागुदाहृतं स्वसूत्रं शौच-
प्रकरणे तत्तु देवतानामभिधानं चाप्रयत इतिप्रभृतिपूर्वोक्तस्वसूत्रैकनिरु-
पितान्वयव्यतिरेकसिद्धाग्न्यादिदेवतानामोच्चारणयोग्यतामात्राभिप्राय-
कामिति प्रतिपादितमधस्तादेव । नो चेद्यदि तत्रोक्तानां सर्वेषामपि साम्ये-
नैव शुद्धिस्तर्हि निरुक्तरीतिकमैथुनोत्तरमपि वेदाध्ययनादिप्रसङ्गः ।
बाढमिति चेत्स्वप्ने क्षवथावित्यादिनिरुक्ताचमनविशेषविधायके प्रप-
श्चिते स्वसूत्र एव परिगृहीतानां स्वप्नादिचतुर्दशनिमित्तानामपि केवल-
मम्बुस्पर्शनमात्रेणैव तुल्यतयैव शुद्धौ केषुचित्स्नानं केषुचिदा-
चमनं केषुचित्स्पर्शनमात्रं यावता प्रयतो मन्यत इत्युज्ज्वलाव्याख्या-
नमप्रयोजकमेव स्यात् । अथैतद्धीत्या निरुक्तमैथुनस्थलेऽपि स्नान-
मेव वेदाध्ययनार्थमङ्गी करोषि तर्हि पुरीषोत्सर्गेऽपि न तद्दण्डवारि-
तम् । यश्चायं केषांचिच्छिष्टानामाचारः स तु शास्त्राविरुद्धस्तु नैवेति
नमस्कार्य एवेत्यलं पल्लवनैः । अन्यरुधिरस्पर्शं गवेतरमूत्रमलान्यतर-
स्पर्शं ताम्बूलनिषेकस्पर्शेऽपवित्रक्षत्रियवैश्यान्यतरस्पर्शं चास्मिन्नप्येवं-
विधे शूद्रादिस्पर्शादिरूपे शास्त्रान्तरप्रसिद्धेऽप्रायत्यनिमित्ते तु सचैलं
स्नानमेव विधेयम् । इति प्रागुक्तप्रायश्चित्तीयाचमनादितारम्यव्यवस्था
बोध्या । अथ वेदाध्ययनारम्भे भोजनतः पूर्वं तदुत्तरं च तथा संध्यात्रये
तदुपलक्षिते ब्रह्मयज्ञभिन्नयावद्वैदिककर्माणि निरुक्तप्रयोगरीतिकं सव्या-
हृतिकं द्विरावर्तितं मुख्यमेवाऽऽचमनं प्रायत्यपूर्वकतत्तत्कर्माधिकारकार-
णभूतं करणीयम् । इदं तु नित्यमाचमनम् । इत्याचमनम् । तत औदु-

म्बरकाष्ठं तद्भावेऽन्यदपि विहितं काष्ठं द्वादशाङ्गुलं स्वकनिष्ठिकाव-
त्स्थूलं प्रक्षालितं कृतकूर्चकमायुर्बलमिति मन्त्रेणाभिमन्त्र्य गृहीत्वाऽन्ना-
द्यायेति मन्त्रं

मुखदुर्गन्धिनाशाय दन्तानां च विशुद्धये ।

ष्ठीवनाय च गात्राणां कुर्वेऽहं दन्तधावनम् ॥

इति चोक्त्वा तेन सर्वदन्तांस्तादृशेनान्येन जिह्वां च संशोध्य काष्ठे
प्रक्षाल्य भङ्क्त्वा दूरं त्यक्त्वा प्राग्वद्गण्डूषान्वामभागे निक्षिपेत् । उक्त-
काष्ठाभावे वर्जितदिने च षोडशगण्डूषैस्तत्तत्पत्रैः सुगन्धैर्वा द्रव्यैस्त-
र्जनीवर्जाङ्गुलिभिर्दन्तादि शोधयेत् । इति दन्तधावनम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे शौचाचमनदन्तधावनप्रयोगप्रकरणम् ।

अथ पत्नीविशेषकर्तव्यमुक्तं गोवर्धनाह्निके—

प्रातःकाले तु या नारी गोमयेनानुलेपयेत् ।

प्रत्यहं सदनं साऽपि नैव दुःखानि पश्यति ।

उपलिप्य शुचौ देशे गृहमध्यमभागतः ॥

पूजयेद्गृहिणी प्रातः प्रत्यहं गृहदेवताः ।

पुत्रसौभाग्यसंपत्त्या न कदाचिद्वियुज्यते ॥

यद्गृहं राजते नित्यं रङ्गवह्नयनुरञ्जितम् ।

तद्गृहे वसते लक्ष्मीर्नित्यं पूर्णकलान्विता ॥

प्रातःकाले तु या नारी शुचिर्भूत्वा समाहिता ।

पूजयेद्द्वारदेशे तु सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ इति ।

तत्रैव तथाऽऽचाररत्ने च मार्कण्डेयः—

उदुम्बरे वसेन्नित्यं भवानी सर्वदेवता ।

अतश्च प्रत्यहं पूज्यो गन्धपुष्पाक्षताभिः ॥ इति ।

अपि च—अशून्या देहली कार्या प्रातःकाले विशेषतः ।

यस्य शून्या भवेत्सा तु शून्यं तस्य कुलं भवेत् ॥

पादस्य स्पर्शनं तत्र असंपूज्य च लङ्घनम् ।

कुर्वन्नरकमाप्नोति तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

प्रातःकाले स्त्रिया कार्यं गोमयेनानुलेपनम् ।

निशायाः प्रथमे यामे धान्यसंस्करणादिकम् ॥

कुरुते या तु मोहेन वन्ध्या जन्मनि जन्मनि ।

अकृतस्वस्तिकां या तु क्रमेह्लितां च मेदिनीम् ॥

तस्यास्त्रीणि विनश्यन्ति वित्तमायुर्यशस्तथा ।
मार्जनीं चुल्लिकां षीवं दृषदं चोपलं तथा ॥
नाऽऽक्रामेद्दुग्धिणा जातु पुत्रदारधनक्षयात् ।

शीवनं निष्ठीवनपात्रम् । दृषदुपलौ पेषणपाषाणौ । पुत्रदाराः स्नुषा
इत्यर्थः । पत्नीप्रकरणात् ।

उलूखलं च मुसलं तथा चैव रहडकम् ।

पादक्रमणात्पायीयान्नाऽऽप्नुयादुत्तमां गतिम् ॥ इति ।

पापीयानिति पुंलिङ्गमार्षम् । यद्वा पुत्रदारेति पापीयानिति चोक्त्य-
न्यथानुपपत्त्या मार्जन्याद्युल्लङ्घनं पुंसोऽपि निषिद्धमेव प्रकरणात्स्त्रिया
अपि बोध्यम् । गृहावग्रहणी देहलीत्यमरादशून्या देहली कार्ये-
त्यत्रोदुम्बर एव ग्राह्यः । दंपत्योर्हि परस्परानुकूल्ये सत्येव धर्मादित्रिवर्ग-
समृद्धिर्भवतीत्युक्तं विश्वादर्शे—दंपत्योश्चाऽऽनुकूल्ये सति सकलसमृद्धि-
र्भवेत्तत्र धर्मस्तावच्छुद्धे गृहे स्यात्तदपि शुचि भवेन्मार्जनाल्लेपनाच्चेति ।
धर्मे पत्नीसहायत्वं स्पष्टमेव दर्शितं धर्मप्रश्ने विभागप्रकरणे—जायाप-
त्योर्न विभागो विद्यते पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु । इति । कर्मार्थं द्रव्यं
जायायाश्च न पृथक्कर्मस्वधिकारः किं तर्हि सहभावेन यस्त्वया धर्मश्चरि-
तव्यः सोऽनया सहेति वचनात्तत्किं पृथग्द्रव्येणेति तद्व्याख्या । तथा पुण्य-
क्रियास्त्विति । पुण्यफलेषु स्वर्गादिष्वपि तथा सहत्वमेव । दिवि ज्योति-
रजरमारभेतामित्यादिभ्यो मन्त्रलिङ्गेभ्य इति व्याख्या । द्रव्यपरिग्रहेष्विति
द्रव्यार्जनेष्वपि सम(ह)त्वमेव । तत्पतिरर्जयति जाया गृहे निर्वहतीति योग-
क्षेमावुभावाधत्ताविति द्रव्यपरिग्रहे सहत्वमिति तद्व्याख्या । न हि भर्तु-
विप्रवासे स्त्रिया नैमित्तिके दाने स्तेयमित्युपदिशन्तीति । हि यस्माद्भर्तु-
विप्रवासे सति च्छिन्दत्प्राणि दद्यादित्यादिकदाने कृते भार्याया न स्तेय-
मित्युपदिशन्ति धर्मज्ञाः । यदि भर्तुरेव द्रव्यं स्यात्तदैव न स्तेयम् । नैमि-
त्तिके दान इति वचनाद्द्वयान्तरे संभवत्येवेति तद्व्याख्योज्ज्वला । एव-
मन्येऽपि पतिव्रताधर्माः संस्काररत्नमालासौभाग्यकल्पद्रुमयोर्द्रष्टव्याः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्थसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे पत्नीविशेषकृत्यप्रकरणम् ।

अथ सुवर्णपवित्रादिविधिः । माधवीथे शातातपः—

जपे होमेऽर्चने दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे ।

अशून्यं तु करं कुर्यात्सुवर्णरजतैः कुशैः ॥ इति ।

सुवर्णादीनां समुच्चय इत्याचाररत्नः । भद्रोजिदीक्षिताह्निके हेमाद्रौ—

अन्यान्यपि पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च ।

हेमात्मकपवित्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ इति ।

(*एतत्परिमाणनियमाभावस्तूक्तः शान्तिकमलाकरे—

यथेष्टेन सुवर्णेन कारयेदङ्गुलीयकम् । इति ।)

आचाररत्ने याज्ञवल्क्यः—

अनामिकाधृतं हेम तर्जन्यां रूप्यमेव च ।

कनिष्ठिकाधृतं खड्गं तेन पूतो भवेन्नरः ॥ इति ।

तत्रैवाऽऽश्वलायनः—

अन्यैर्धृतं न गृह्णीयात्पवित्रं तृणसंभवम् ।

हेमादयस्तु संग्राह्याः सम्यङ्निष्टप्य वह्निना ॥ इति ।

रजतधारणं त्वजीवत्पितृकविषयम् । प्रयोगपारिजाते—

उत्तरीयं योगपट्टं तर्जन्यां रजतं तथा ।

न जीवत्पितृकैर्धार्यं ज्येष्ठो वा विद्यते यदि ॥ इति ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे सुवर्णपवित्रप्रकरणम् ।

अथ प्रातःस्नानम् । माधवीये कूर्मपुराणे—

प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं वै भक्षयित्वा यथाविधि ।

आचम्य प्रयतो नित्यं प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥ इति ।

दक्षोऽपि—अस्नात्वा नाऽऽचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन ।

लालास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान् ॥

अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।

स्रवत्येव दिवा रात्रौ प्रातःस्नानेन शुध्यति ॥

अज्ञानाद्यदि वा मोहाद्रात्रौ दुश्चरितं कृतम् ।

प्रातःस्नानेन तत्सर्वं शोधयन्ति द्विजातयः ॥ इति ।

तत्र मलापकर्षप्रयोजकप्राथमिकामन्त्रकस्नाने त्रिवारं तूष्णीं निमज्ज-
नमेवाऽऽहाऽऽचारार्के मनुः—

नाभिमात्रे जले गत्वा त्रिः कुर्यान्मज्जनं ततः ।

गात्राणां क्षालनं कृत्वा सम्यक्स्नायात्ततः परम् ॥ इति ।

सम्यक्स्वस्वशाखाद्युक्तमन्त्रपूर्वकमित्यर्थः । गोमयादिविधिनेति
केचित् । अत एव सृष्टप्युक्ता चतुर्विंशतिमते—

स्नानमब्धैवतैर्मन्त्रैर्वारुणैश्च मृदा सह ।

कुर्याद्व्याहृतिभिर्वाऽपि यत्किंचेदमृचाऽपि वा ॥ इति ।

कात्यायनः—अल्पत्वान्द्रोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः ।

प्रातः संक्षेपतः स्नानं होमलोपो विगर्हितः ॥ इति ।

पराशरः—न तीर्थे रुयाकुले स्नायान्नासज्जनसमाकुले ।

दर्भहीनोऽन्यचित्तश्च न नम्रो न शिरो विना ॥ इति ।

उज्ज्वलायां मनुः—

न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नाऽऽतुरो न महानिशि ।

न वासोभिः सह स्नानं नाविज्ञाते जलाशये ॥ इति ।

माधवीये विष्णुः—ब्रह्मक्षत्रविशां चैव मन्त्रवत्स्नानमिष्यते ।

तूष्णीमेव हि शूद्रस्य स्त्रीणां च कुरुनन्दन ॥ इति ।

आचाररत्ने स्मृत्यर्थसारे—

यत्र पुंसः सचैलं स्यात्स्नानं तत्र सुवासिनी ।

कुर्वीतैवाशिरःस्नानं शिरोरोगी जटी तथा ॥ इति ।

सुवासिनीति वचनाद्विधवायाः सर्वदैव शिरःस्नानमिति कमलाकरः ।

तत्कृताह्निके स्मृत्यन्तरे—

रजोदोषद्विमित्तादि स्नानं सशिरसं भवेत् ॥ इति ।

आदिशब्दात्सूतके चाण्डालादिस्पर्शं चेत्याह सोऽपि । आचाररत्ने
जाबालिः—

अशिरस्कं भवेत्स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम् । इति ।

तत्रैव स्मृतिसारेऽपि—

चक्षुरोगी कर्णरोगी शिरोरोगी कफाधिकः ।

कण्ठस्नानं प्रकुर्वीत शिरःस्नानसमं हि तत् ॥ इति ।

स्नानप्रकारो गृह्यप्रश्ने—सगणः प्राचीमुदीचीं वा दिशमुपनिष्क्रम्य
यत्राऽऽपः सुखाः सुखावगाहास्तद्वगाह्याघमर्षणेन त्रीन्प्राणायामा-
न्कृत्वा सपवित्रैः पाणिभिरापो हि ष्ठा मयोभुव इति तिसृभिर्हिरण्य-
वर्णाः शुचयः पावका इति चतसृभिः पवमानः सुवर्जन इति चैतेनानु-
वाकेन स्नात्वा । इति । सशिष्यगणोपाध्यायः प्राचीमुदीचीं वा दिशमुप-
निष्क्रम्य यत्राऽऽपः सुखा निर्मलाः सुखस्पर्शाः सुखावगाहाः सुखेनाव-
गाह्यजल(ला) ग्राहरहितास्तद्वगाह्याघमर्षणेन सूक्तेन ऋतं च सखं

चेत्येतेन त्र्युचेन त्रीन्प्राणायामान्धारयित्वा । त्रिर्वचनमेकप्राणायामो यावत्कृत्व उक्तेन भवति तावत्कृत्वा सपवित्रैः पाणिभिरापो हि षेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति चतसृभिः पवमान इति चैतेनानुवाकेन स्नात्वेति मातृदत्ताः । क्त्वाप्रत्ययस्यान्वयस्तत्रत्याग्रिमवाक्यशेषेण सह श्रेयः । सपवित्रैः पाणिभिरिति शिष्यपाण्यभिप्रायम् । नित्यमेवेति वचनादयं विधिर्नित्यस्नाने । अत्र हिरण्यशृङ्गमिति तीर्थप्रार्थनादिमन्त्रा आरण्यके नारायणप्रश्ने द्रष्टव्याः । अघमर्षणे विशेषः संस्काररत्नमालायां स्मृतिविशेषे—

संयोज्य वारिणि घ्राणमृतं चेति त्र्युचेन तु ।

त्रिरावृत्तेन त्रीन्कुर्यात्प्राणायामान्सदा बुधः ॥ इति ।

स्नाने सूर्याभिमुखता धर्मप्रश्ने—

शनैरपोऽभ्यवेयादभिघ्नन्नभिमुख आदित्यमुदकमुपस्पृशेत्सर्वत्रोदकोप-
स्पर्शनविधिः । इति ।

शनैरवेगेन जलाशयं प्रविशेत् । प्रविश्य चाभिघ्नन्हस्तेनोदकं ताडयन्नु-
दकमुपस्पृशेत्स्नायात् । सर्ववर्णाश्रमसाधारणमेतत् । तथा चोत्तरत्र तस्य
ग्रहणमिति च तद्वाख्योज्ज्वला[*अथात्र यत्पृथिव्यामित्यादि स*शि-
शाधि, इति मन्त्रैः स्नानविधानमेतद्भाष्ये माधवीये कृतमिति तदप्याव-
श्यकम् । एवं तदुत्तर[म] आर्द्रं ज्वलतीत्यादि स्वाहान्तमन्त्रै-
राचमनमप्युक्तं तत्रैव तच्च शिष्टाचाराद्विवारमेव । अथाकार्येत्यादि
धीरा इत्यन्तमन्त्रैरपि च स्नानमुक्तं तत्रैव । तदुत्तर[म]आक्रान्तस-
मुद्र इत्यादीन्दुरित्यन्तमन्त्रजपोऽप्युक्तस्तत्रैव ।] स्नानाकरणे प्रायश्चि-
त्तमप्युज्ज्वलायां यद्ब्रह्मयज्ञाकरणे तस्य नित्यत्वेन

दिवोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।

स्नातकव्रतलोपेऽपि प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥

इति निरशनरूपमुक्तं तदेवास्यापि नित्यत्वाद्बोध्यम् । ननु प्रातःस्ना-
नस्योक्तरीत्या नित्यत्वे तत्रैव सूर्योपरागादिनैमित्तिकस्नाने कार्तिकादि-
काम्यस्नाने च प्राप्ते किं तेषामावृत्तिः प्रसङ्गस्तन्त्रं वेति चेन्न । युगपत्प्रस-
क्तत्वेनान्तिमान्यतरपक्षस्यैवेष्टत्वात् । तदुक्तं नारायणभट्टीयत्रिस्थली-
सेतौ प्रयागप्रघट्टके—प्रातःस्नानमाघस्नानयोः समानकालत्वात्तन्त्रं

भवति । स्मृतिदर्पणे तु माघस्नानेनैव नित्यस्नानसिद्धिर्गोदोहनेन नित्याप्प्रणयनवदिति प्रसङ्ग उक्तः । सर्वथा त्वेकमेव स्नानम् । एवं तत्रैव पूर्वग्रन्थेऽपि—यमलपुत्रजन्मनि जातेष्टयोर्युगपदनेकगृहदाहनिमित्तेषु च क्षामवत्यादीनां भिन्नाधिकारिणामपि श्रौते तन्त्रं दृष्टमेव । स्मार्तेऽपि संक्रान्तिव्यतीपातामावास्यादिश्राद्धानां भिन्नाधिकारिणामपि युगपत्प्रसक्तौ हेमाद्रिभिस्तन्त्रमङ्गीकृतमेवेति । अत्राधिकारिपदेन तन्निमित्तलक्षणावच्छेदकभेदात्तदवाच्छिन्नकर्तृभेद एव बोध्यते । अन्यथा गत्यन्तराभावादिति तात्पर्यम् । ननु माघस्नानादेर्नित्यत्वमेवास्तु तथा च प्रातःस्नानमपि नित्यं माघस्नानमपि नित्यम् । पृथग्विधानं तु प्रयागादितीर्थविशेषाभिप्रायकमेव । तथा च क्तोक्तविचारावसर इति चेन्न । तस्य काम्यतायास्तत्रैवोक्तत्वात् । तद्यथा । अथ प्रसङ्गान्माघस्नानविधिः । तत्र माघस्नानं नित्यकाम्यमिति केचित् । सांप्रदायिकास्तु नित्यत्वबोधकवीप्साद्यभावात्केवलकाम्यतामेव प्रतिपेदिरे । इति । तथा चामुकामुककामोऽहममुकामुकस्नानं तन्त्रेण करिष्य इति संकल्प्य स्नानं कुर्यादिति संकल्पप्रकारोऽपि तत्रैवोक्तः । तस्मात्स्नाने तन्त्रं नास्तीति प्रवादस्तु प्रायश्चित्तादिस्नानविषय एवेति दिक् । एवमेकवाससा न स्नातव्यं नापि द्वीपान्तरालयोः श्रौतादिकर्मानुष्ठेयम् । तदुक्तं संस्काररत्नमालापरिभाषायाम्—

नैकवासा न च द्वीपे नान्तराले कदाचन ।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न कुर्यादशुचिः क्वचित् ॥
परितो वेष्टितोऽद्भिस्तु द्वीप इत्यभिधीयते ।
अनावृतस्तु यो देशः सोऽन्तराल इति स्मृतः ॥ इति ।

अत्र द्वीपपदार्थो [*वाराहपुराणे निरूपितः—

न कुर्यादशुचौ देशे जपस्नानादि कर्म च ।
न द्वीपे दुर्जनानां च संनिधौ वा कथंचन ॥
तिष्ठेयुर्यत्र वै द्वीपे त्रिंशद्द्रावो ह्यनावृताः ।
तस्मिन्द्वीपेऽपि कुर्वीत पुण्यकर्माणि सर्वशः ॥
स्वल्पेऽपि पुण्यहानिः स्यादापत्तौ नैव दोषकृत् । इति ।

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थस्थले ख. पुस्तके—गोचर्ममात्रपरिमितो जलवेष्टितो देश एवेत्यभियुक्ताः । इति वर्तते ।

अनावृतदेशनिषेधो मोहाद्यभिप्रायक एव न गङ्गास्नानाद्यभिप्रायकः ।] विस्तारशालिनो देशस्य तथात्वे जम्बुद्वीपस्यैव त्याज्यत्वापत्तेरित्युक्तव्यवस्थैव युक्तेति शिवम् । कमलाकराह्निके प्रतिदिनं प्रातःस्नानाशक्तावाह दक्षः—

सप्ताहं प्रातरस्नायी द्विजः शूद्रत्वमृच्छति ।

तद्दोषपरिहारार्थं भानुवारेऽपि शस्यते ॥ इति ।

तत्रैव बोधायनोऽपि—सप्ताहं प्रातरस्नायी संध्याहीनस्त्रिभिर्दिनैः ।

द्वादशाहमग्निः स्याद्विजः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥

प्रातःस्नानं भानुवारे कुर्याद्दोषनिवृत्तये । इति ।

स्नानाङ्गतर्पणं विहितं माधवीये चतुर्विंशतिमते—

स्नानादनन्तरं तावत्तर्पयेत्पितृदेवताः ।

उत्तीर्य पीडयेद्द्वयं संध्याकर्म ततः परम् ॥ इति ।

तत्रैव कूर्मपुराणे—देवान्ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः ।

पितृन्भक्त्या तिलैः कृष्णैः स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥ इति ।

कृष्णतिलाः श्राद्धमयूखे सत्यव्रतेन दर्शिताः—

जर्तिलास्तु तिलाः प्रोक्ताः कृष्णवर्णा वनोद्भवाः ।

जर्तिलाश्चैव ते ज्ञेया अकृष्टोत्पादिताश्च ये ॥ इति ।

तत्रैवाऽऽपस्तम्बेनापि—

अटव्यां ये समुत्पन्ना अकृष्टाः फलितास्तथा ।

ते वै श्राद्धे पवित्राः स्युस्तिलास्ते न तिलास्तिलाः ॥ इति ।

हलायुधकोशेऽपि—जर्तिलः कथ्यते सद्भिररण्यप्रभवस्तिलः । इति ।

इमे रानतिला इति त्र्यम्बके प्रसिद्धा इति । आचाररत्ने स्मृत्यर्थसारे—

वामहस्ते तिलान्क्षिप्त्वा जलमध्ये तु तर्पयेत् ।

स्थले शाठ्यां तटे पात्रे रोममूले न कुत्रचित् ॥ इति ।

तत्रैव दक्षः—प्रादेशमात्रमुद्धृत्य सलिलं प्राङ्मुखः सुरान् ।

उदङ्मनुष्यांस्तर्पेत पितृन्दक्षिणतस्तथा ॥ इति ।

उदगुदङ्मुखः । दक्षिणतो दक्षिणामुखः । तत्रैव बोधायनः—

अनुतीर्थमप उपसिञ्चति । इति ।

देवानां दैवेन ऋषीणामार्षेण पितृणां पित्र्येणेत्यर्थः । माधवीये बोधायनः—

न जीवत्पितृकः कृष्णैस्त्रिलैस्तर्पणमाचरेत् । इति ।

तत्रैव मरीचिः—तिलानामप्यभावेतु सुवर्णरजतान्वितम् ।

तदभावे निषिञ्चेत्तु दूर्भैर्मन्त्रेण वा पुनः ॥ इति ।

तत्रैव हारीतः—आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ।

शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ॥ इति ।

भारद्वाजः—वस्त्रोदकमपेक्षन्ते ये मृता दासकर्मिणः ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जलं भूमौ निपातयेत् ॥ इति ।

मन्त्रस्तत्रैव—ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।

ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥ इति ।

जीवत्पितृकस्य निषेध आचाररत्ने पुराणे—

न जीवत्पितृकः कुर्याद्वस्त्रनिष्पीडनं बुधः । इति ।

अत्र प्राचीनावीती पितृदेवानां तुप्त्यर्थं तूष्णीं केशादिजलं भूमौ
स्त्रावयित्वेति प्रयोगपारिजातोक्तेः

शिखोदकं भूपतितं पिबन्ति पितरोऽखिलाः ।

ततोयममृतीभूतं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥

इति वचनाच्च शिखानिष्पीडनमपि पितृतीर्थेनैव कर्तव्यम् ।

जाबालिः—वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य निष्पीड्य सदृशं तथा ।

वामप्रकोष्ठे निक्षिप्य स्थलस्थश्च द्विराचमेत् ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—विकिरे पिण्डदाने च तर्पणे स्नानकर्मणि ।

आचान्तः सन्प्रकुर्वीत दूर्भसंत्यजनं बुधः ॥ इति ।

शौनकः—स्नानाङ्गं तर्पणं कृत्वा यक्षमणे जलमाहरेत् ।

अन्यथा कुरुते यस्तु स्नानं तस्याफलं भवेत् ॥ इति ।

तत्र मन्त्रः—यन्मया दूषितं तोयं मलैः शारीरसंभवैः ।

तद्दोषपरिहारार्थं यक्षमाणं तर्पयाम्यहम् ॥ इति ।

भट्टोजिदीक्षिताह्निके पारिजाते—

विन्यस्य दक्षिणं पादं जले वामपदं बहिः ।

उपवीती समाचामेद्विधिरेष सनातनः ॥ इति ।

ततो माधवीये गोभिलः—

पिबन्ति शिरसो देवाः पिबन्ति पितरो मुखात् ।

मध्यतः सर्वगन्धर्वा अधस्तात्सर्वजन्तवः ॥

तस्मात्स्नातो न निर्घृज्यात्स्नानशाठ्या न पाणिना ॥ इति ।

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यावन्त्यङ्गुरुहाणि वै ।

वसन्ति सर्वतीर्थानि तस्मान्न परिमार्जयेत् ॥ इति ।

जाबालिः—स्नानं कृत्वाऽऽर्धवासास्तु विष्मूत्रं कुरुते यदि ।

प्राणायामत्रयं कृत्वा पुनः स्नानेन शुध्यति ॥ इति ।

अङ्गमार्जने विशेषमाहाऽऽचाररत्ने देवलः—

अङ्गानि शक्तौ वस्त्रेण पाणिना च न मार्जयेत् ।

धौताम्बरेण वा प्रोञ्छ्य विभृयाच्छुष्कवाससी ॥ इति ।

शीतोदकस्नानाशक्तौ चैवमुष्णोदकस्नानमपि । तथा च माधवीये
षट्त्रिंशन्मते—

आपः स्वभावतो मेध्याः किं पुनर्वह्निसंयुताः ।

तेन सन्तः प्रशंसन्ति स्नानमुष्णेन वारिणा ॥ इति ।

एतदातुरस्नानविषयम् । याज्ञवल्क्यः—

वृथा तूष्णोदकस्नानं वृथा जाप्यमवैदिकम् ।

वृथा त्वश्रोत्रिये दानं वृथा भुक्तमसाक्षिकम् ॥ इति ।

यदा तु नद्याद्यसंभवस्तदाऽनातुरस्यापि उष्णोदकस्नानमनिषिद्धमि-
त्याह यमः—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।

तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ॥ इति ।

परोदकैः परकीयोदकैरित्यर्थः । तत्रैव मनुः—

मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।

अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥ इत्यादि ।

अयमभिसंधिः—स्नानविधिनोष्णोदके प्राप्ते तदपवादो वृथा ह्युष्णो-
दकस्नानमित्यादिः । तदपवादो नित्यं नैमित्तिकमित्यादिः । तदपवादो
मृते जन्मनीत्यादिरित्याचाररत्नः । माधवीये मरीचिः—

भूमिष्ठमुद्धृतं वाऽपि शीतमुष्णमथापि वा ।

गाङ्गं पयः पुनात्याशु पापमामरणान्तिकम् ॥ इति ।

उष्णोदकस्नाने मन्त्रा गृह्यप्रश्ने—

अथोष्णशीताभिरद्भिः स्नापयत्यापो हि ष्ठा मयो भुव इति तिसृभि-
र्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इति चतसृभिः पवमानः सुवर्जन इति
चैतेनानुवाकेन । इति ।

अथानन्तरं दन्तप्रक्षालनादुष्णाश्च शीताश्चोष्णशीता उष्णामिः शीता-
भिर्मिश्रिताभिरित्यर्थः । अद्भिः स्नाति । अम्बुग्रहणं काञ्जिकादेर्निवृ-
त्त्यर्थम् । आपो हि ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति चतसृभिः पवमान
इत्यनेनानुवाकेन सर्वान्ते स्नानम् । वचनादेकस्य कर्मणो बहुमन्त्रत्वम् ।
केचित्प्रतिमन्त्रं स्नानमिच्छन्ति । तत्र नास्ति प्रमाणम् । अथेति प्राक्सना-
नाभावार्थः । *अन्यथा शुचित्वात्स्नात्वैव ततो बाधेत । केचिच्छीता-
सूष्णा आनीयेत्येतस्य ग्रहणार्थं मन्यन्ते यद्याचारः प्रमाणान्तरं चास्ति
तथा नामेति मातृदत्ताः । अपि चाऽऽचाररत्न आश्वलायनः—

स्नानमध्ये त्वाचमनं तर्पणं वस्त्रपीडनम् ।

करपात्रगतं तोयं गृह्ण एतानि वर्जयेत् ॥

करपात्रगतं तोयं त्वत्र हस्तलक्षणपात्रगतं दक्षिणहस्तेन पितृतीर्थेन
पितृभ्यो देयं शिखोदकमेव वस्त्रपीडनानुगतेः ।

गृहस्नाने न कुर्वीत तर्पणं मार्जनं तथा ।

नान्तराचमनं कुर्यात्पश्चादाचम्य शुध्यति ॥

इति गोवर्धनाह्निके ।

संकल्पं सूक्तपठनं मार्जनं चाघमर्षणम् ।

देवादितर्पणं चैव गृहे पञ्च विवर्जयेत् ॥

इति संकल्पनिषेधस्तु मध्ये संकल्पकरणपरः । उष्णोदकस्नाने विशेष-
माह माधवीये व्यासः—

शीतास्वप्सु निषिच्योष्णा मन्त्रसंभारसंवृताः ।

गृहेऽपि शस्यते स्नानं तद्धीनमफलं बहिः ॥ इति ।

गौणं तु स्नानमुत्तरत्र स्वयमेव वक्ष्यतीति माधवाचार्यैरुक्तत्वात्तस्य
भगवतः पराशरस्य तद्वचो यथा—

स्नानानि पञ्च पुण्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः ।

आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥

आग्नेयं भस्मना स्नानमद्भिर्वारुणमुच्यते ।

आपो हि ठेति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजैः स्मृतम् ॥

आतपे वर्षते यत्तु स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ।

अत्र स्नात्वा तु गङ्गायां पूतो भवति मानवः ॥ इति ।

* क. पुस्तके समासे—उक्तवैपरीत्ये शुचित्वात्पवित्रत्वादेव स्नात्वैव निनिमित्तमेव स्नानं
कृत्वा ततो निनिमित्तस्नानाख्यातिरिक्तकर्मजन्यदुरितेन स्वात्मानमेव बाधेतेति ।

महोजिदीक्षिताह्निक एवमुक्तेष्वनुकल्पेषु स्नातो जपादिष्वर्हो न तु देवतार्चनादिषु तदाहाऽऽचार्यः—

प्रातः स्नातुमशक्तस्य रोगाद्यैर्वा भयेन वा ।
पूर्ववस्त्रं परित्यज्य गौणस्नानेन शुध्यति ॥
स च कर्मस्वनर्हः स्याच्छ्राद्धदेवार्चनादिषु ।
जपेत्संध्यां तथा वेदान्सोऽधीयीत यथाविधि ॥ इति ।

गोवर्धनाह्निके पराशरः—

स्नानार्थमुपगच्छन्तं देवाः पितृगणैः सह ।
वायुभूतास्तु गच्छन्ति तृषार्ताः सलिलार्थिनः ॥
निराशाः पितरो यान्ति वस्त्रनिष्पीडने कृते ।
तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥ इति ।

आचाररत्ने त्रिकाण्डमण्डनः—

दीपं शूर्पं तथा शय्यां पादत्राणं च मार्जनीम् ।
स्नानान्ते संस्पृशेद्यस्तु पुनः स्नानेन शुध्यति ॥ इति ।

दीपं देवपूजान्तर्गतभिन्नमिति गोपीनाथदीक्षिताः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे प्रातःस्नानप्रकरणम् ।

अथ यज्ञोपवीतम् ।

तदाहोज्ज्वलायां मनुः—

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृतं ॥ इति ।

आचाररत्ने विश्वामित्रः—

यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।
तृतीयमुत्तरीयार्थं वस्त्राभावे तदिष्यते ॥ इति ।

वस्त्राभावे चतुर्थकमितिपाठान्तरम् । बहूनि वाऽऽयुष्कामस्येति तत्रैव ।

यज्ञोपवीते मौञ्ज्यां च तथा कुशपवित्रके ।

ब्रह्मग्रन्थि विजानीयादन्यत्र तु यथारुचि ॥ इति ।

ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी इत्यमरः । उपवीतनिर्माणधारणविधी संस्कार-
रत्नमालायां बोधायनसूत्रे—

अथातो यज्ञोपवीतक्रियां व्याख्यास्यामः । ब्राह्मणेन तत्कन्यया

कृतं सूत्रमानीय भूरिति प्रथमां षण्णवतिं मिनोति भुव इति द्वितीयां सुवरिति तृतीयां मित्वा पलाशपत्रे संस्थाप्याऽऽपो हि षेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुच्यं पावका इति चतसृभिः पवमानः सुवर्जन इत्यनुवाकेन सावित्र्या चाभिषिच्य वामहस्ते कृत्वा त्रिःसंताड्य भूरग्निं चेत्येतैस्तिसृभिर्वलितं कृत्वा मूर्ध्वः स्वश्चन्द्रमसं चेत्येतेन ग्रथिं कृत्वोकारमार्गं नागान्यमं पितृन्प्रजापतिं वायुं सूर्यं विश्वान्देवान्नवतन्तुषु क्रमेण विन्यस्य संपूजयेद्देवस्य त्वेत्युपवीतमादायोद्वयं तमसस्परीत्यादित्याय दर्शयित्वा यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।

आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

इति धारयेदित्याह भगवान्बोधायन इति ।

विस्तरस्तु तत्रैव द्रष्टव्यः । तत्रापि सारतो यथा भृगुः—

त्रिवृदूर्ध्ववृतं कुर्यात्तन्तुत्रयमधोवृतम् ।

त्रिवृतं नूपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते ॥ इति ।

ऊर्ध्ववृतप्रकारमाह संग्रहकारः—

करेण दक्षिणेनोर्ध्वं गतेन त्रिगुणीकृतम् ।

वलितं ब्राह्मणैः सूत्रं शास्त्र ऊर्ध्ववृतं स्मृतम् ॥ इति ।

ऊर्ध्वं गतेनोर्ध्वं स्थितेन करेण दक्षिणेन त्रिगुणीकृतं सद्यद्वलितं तदूर्ध्ववृतमित्यर्थः । तन्निर्माणपरिमाणप्रकारः संस्कारकौस्तुभे स्मृत्यर्थसारे—

शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहताङ्गुलिमूलकैः ।

आवेष्ट्य षण्णवत्या तन्निगुणीकृत्य यत्नतः ॥

अब्रुलिङ्गकैस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्ववृतं तु तत् ।

अथ प्रदक्षिणावृतं सावित्र्या त्रिगुणीकृतम् ॥

त्रिरावृत्य दृढं बद्ध्वा हरिब्रह्मेश्वरान्नमेत् ।

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रमिति मन्त्रेण धारयेत् ॥ इति ।

* क. पुस्तके समासे—देहो मानुष एव षण्णवतिसंख्याकैर्मितोऽस्त्यङ्गुलैर्वेदस्त्वङ्गुलिपर्वसु द्विजवरैः संसूच्य संपठ्यते । तद्रूपो रंविरेष मेरुमनिशं सव्याकरोत्यत्र तत्कार्या षण्णवतिस्त्रिधोर्ध्ववृदियं श्रीयज्ञसूत्रे द्विजैः ॥ १ ॥ कार्पासैः किल सप्तविंशतिमितैः सूत्रैस्त्रिषुद्वन्धितं तल्लिङ्गं द्विजराजतैकघटकं यज्ञोपवीतं द्विजैः । संधार्य शिखया सहान्यसनमश्विन्यादिवृन्दोपमं नैर्माल्याद्विरहेऽतितापजमनायोगे सुखाप्तेरपि ॥ २ ॥ इति श्लोकद्वयमच्युतरचितमेव ।

विधवारचितं सूत्रमनध्यायकृतं च यत् ।

विच्छिन्नं चाप्यधोयातं मुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् ॥ इति देवलः ।

अधोयातमित्यत्र कटेरिति शेषः । वसिष्ठः—

नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपःक्षयः ।

तस्मान्नाभिसमं कुर्यादुपवीतं विचक्षणः ॥ इति ।

देवलः—उपवीतं षटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते ।

एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रविनिश्चयः ॥ इति ।

इतरयोर्गृहस्थवानप्रस्थयोः । यतिस्त्रिदण्डी । स्मृत्यन्तरे—

छेदे विनाशे वा स्नातः कन्यया निर्मितं शुभम् ।

विधवाद्याभिरथ वा सूत्रं गृह्णीत वै शुचिः ॥ इति ।

विधवेत्यापत्कल्पः । धारणे विशेषः श्रुतो—

दक्षिणं बाहुमुद्धरतेऽवधत्ते सव्यमिति यज्ञोपवीतमेतदेव विपरीतं प्राचीनावीत* संधीतं मानुषमिति । इति । निरुक्तयज्ञोपवीतनिर्माणाद्य-
शक्तौ पुनस्तत्रैव देवलः—

यज्ञोपवीतं कुर्वीत नवतन्तुसमन्वितम् ।

कार्पासं त्रिवृतं श्लक्ष्णं निदध्याद्द्वामहस्तके ॥

सावित्र्या दशकृत्वोऽद्भिर्मन्त्रिताभिस्तदुक्षयेत् ।

यज्ञोपवीतमिति वा व्याहृत्या वाऽपि धारयेत् ॥ इति ।

तूष्णीमेवोर्ध्ववृतत्वादिलक्षणविशिष्टं यज्ञोपवीतं निर्माय सावि-
त्र्याऽऽपो हि ष्ठादिभिर्मन्त्रैर्वा मन्त्रिताभिरद्भिर्दशवारं सावित्र्यैवाभ्युक्ष्य
यज्ञोपवीतं परमं पवित्रमिति मन्त्रेण व्याहृतिभिर्वा धारयेदिति स्मृत्यर्थ
इति । ननु यज्ञोपवीतं परमं पवित्रमिति यज्ञोपवीतधारणमन्त्रस्त्वाथ-
र्धणीयब्रह्मोपनिषदि प्रसिद्धस्तत्पठनं तु विना तद्वेदाध्ययनार्थं विहित-
मुपनयनान्तरमनुपपन्नम् । तथा चात्र विहितं व्याहृतिभिस्तद्धारणमेव
न्याय्यम् । अथर्ववेदाध्ययनार्थमुपनयनान्तरं तूक्तं संस्काररत्नमालायाम्—
अथ तृतीयं पुनरुपनयननिमित्तम् । तच्च सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यः सावित्र्यनू-
च्यत इति हि ब्राह्मणमिति धर्मसूत्रव्याख्यानावसर उज्ज्वलाकृतोक्तम् ।
उपनयने यत्सावित्र्या अनुवाचनं तन्मुखेन सर्वे वेदा अनूक्ता भवन्ति
अतोऽगृह्यमाणविशेषत्वादेकमेवोपनयनं सर्वार्थमिति । अस्मिन्नर्थे शास्त्रा-
यनब्राह्मणमेव पठितम् । अथर्ववेदार्थं पृथगुपनयनं वचनात्कर्तव्यम् ।

तथा च तत्रैव श्रुतम्—नान्यत्र संस्कृतो भृग्वङ्गिरसोऽधीयीत । इति ।
अन्यत्रान्यवेदार्थम् । भृग्वङ्गिरसोऽथर्ववेद इतीति चेन्न । अस्य सर्वशा-
खाग्रहणपरत्वात् । किञ्चिदध्ययने तु तद्विनाऽपि वचनादिना पत्न्यादि-
वदधिकाराच्च । एतेन संन्यासप्रैषाद्यपि तदीयं व्याख्यातम् । श्रुत्युक्तय-
ज्ञोपवीतधारणविधरणमाचाररत्ने हेमाद्रौ भारद्वाजः—

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य वामस्कन्धे निवेशितम् ।
यज्ञोपवीतमित्युक्तं दैवकार्येषु शस्यते ॥ इति ।
कण्ठावलम्बितं चैव ब्रह्मसूत्रं यदा भवेत् ।
तन्निवीतमिति ख्यातं शस्तं कर्मणि मानुषे ॥
उत्क्षिप्ते वामबाहौ च दक्षिणस्कन्धमाश्रितम् ।
प्राचीनावीतमित्याहुस्तत्पित्र्येष्वेव कर्मसु ॥

कृष्णभट्टीयेऽत्रिः—ऋषितर्पणे चाण्डालभाषणे शववाहने विष्णुत्रो-
त्सर्गे स्त्रीणां रतिसङ्गे निवीतयः ।

आचारार्के—

मन्त्रन्यस्तोपवीतं यन्नोद्धरेत्तत्कदाचन ।
मोहाद्द्विजस्तदुद्धृत्य पुनर्भन्त्रेण धारयेत् ॥

यत्तु संस्काररत्नमालायामुक्तम्—शाखाविशेषेणोपवीतस्य क्षाल-
नार्थं कण्ठादुत्तारणनिषेधापवादमाह देवलः—

मन्त्रपूतं स्थितं काये यस्य यज्ञोपवीतकम् ।
नोद्धरेच्च ततः प्राज्ञो य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥
सकृच्चोत्तारणात्तस्य प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः ।
तैत्तिरीयाः कठाः काण्वाश्चरका वाजसेयिनः ॥
कण्ठादुत्तार्य सूत्रं तु [*कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः ।
बह्वृचाः सामगाश्चैव ये चान्ये याजुषाः स्मृताः ॥
कण्ठादुत्तार्य सूत्रं तु] पुनरर्हन्ति संस्क्रियाम् ।
अभ्यङ्गे चोदधिस्नाने मातापित्रोः क्षयेऽहनि ॥
कण्ठादुत्तार्य सूत्रं तु कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः । इति ।

आथर्वणानां सूतारणं कृताकृतमर्थात् । संस्क्रियां मन्त्रेणोपवीता-
न्तरधारणम् । अभ्यङ्ग इत्येतद्वाक्यचोदितविषयेष्वेवैषा व्यवस्था ज्ञेयेति

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति ।

तैत्तिरीयादिपञ्चयाजुषाणामेवाभ्यङ्गादिनिमित्तचतुष्टयावच्छेदेनैव यज्ञो-
पवीतस्य प्रक्षालनार्थं कण्ठादुत्तारलक्षणं नित्यमुत्तारणनिषेधस्यापवाद-
मुक्तग्रन्थेन । तत्र तैत्तिरीया इति अभ्यङ्ग इति च वचनेन योऽयं निरु-
क्तोत्तारणविधिर्विवक्षितः स तु प्रक्षालनसौकर्यार्थम् । [*सर्वदाऽपि
कण्ठात्तदुत्तारणस्य रागतः प्राप्तत्वात्परिसंख्यात्मैवेति निर्विवादमेव ।
तथाचानुत्तारण एव शास्त्रस्य तात्पर्यं पर्यवस्यति पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या
इत्यादिवत् । अप्राप्ते शास्त्रमर्थवदितिन्यायात् । नन्वेवं चेत्तर्हि ऋतौ
भार्यामुपेयादित्यादीनां [ता]वत्परिसंख्याविधीनामननुष्ठेयत्वापत्ति[रिति]
चेन्न । रागाभावे त्विष्टापत्तेः ।] अत एव नैतादृशः प्रायशः कापि शिष्टा-
चारोऽपीति नैवैतत्समर्थनेऽप्यभिमन्तव्यं धार्मिकविबुधैरिति दिक् । एवं
ऋदितादियज्ञोपवीतस्य त्यागोऽप्यप्स्वेव तथा चाऽऽचाररत्ने मनुः—

मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं च नित्यशः ।

अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रतः ॥ इति ।

सर्वोपवीतनाशे तु तत्रैव हारीतः—मनोव्रतपतयस्तिस्त्र आज्याहुती-
र्हुत्वा पुनर्यथार्थं प्रतीयात् । इति । मनो मनोज्योतिरित्याद्या व्रतपतय-
स्त्वग्ने व्रत आयासीत्याद्याः । यथार्थं प्रतीयादुपनयनोक्तमार्गेण समन्त्रकं
धारयेदित्यर्थः । एतत्सर्वोपवीतनाश इति । किं च यज्ञोपवीतधारणमपि
प्रत्येकं संकल्पमन्त्रावृत्तिपूर्वकं प्रतियज्ञोपवीतं विभिन्नकृतसंस्कारपुरःसर-
मेव च कार्यम् । तदुक्तं विश्वादर्शटीकायां पराशरः—

यज्ञोपवीतमेकैकं प्रतिमन्त्रेण धारयेत् ।

आचभ्य प्रतिसंकल्पं धारयेन्मनुरब्रवीत् ॥

एकमन्त्रैकसंकल्पं धृत्वा यज्ञोपवीतकम् ।

एकास्मिंश्चुटिते सर्वं चुटितं नात्र संशयः ॥ इति ।

[+अथ यज्ञोपवीतधारणादि श्रीरामकल्पद्रुमे संस्कारकाण्डे ज्योति-
षार्णवे—

उपाकर्मणि चोत्सर्गे सूतकद्वितये तथा ।

श्राद्धकर्मणि यज्ञादौ शशिसूर्यग्रहेऽपि च ॥

नवयज्ञोपवीतानि धृत्वा जीर्णानि च त्यजेत् ।

* नायं ग्रन्थः क. पुस्तके । + धनुश्चेहान्तर्गतग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति ।

गोभिलः—धारणाद्ब्रह्मसूत्रस्य गते मासचतुष्टये ।

त्यक्त्वा तान्यपि जीर्णानि नवान्यन्यानि धारयेत् ॥

न धारयति मूढात्मा सर्वकर्मसु गर्हितः ।

मनुः—मन्त्रेण धारणं कार्यं मन्त्रेण च विसर्जनम् ।

कर्तव्यं च सदा सद्भिर्नात्र कार्या विचारणा ॥

पारिजाते—यज्ञोपवीतमन्त्रेण धारयेद्ब्रह्मसूत्रकम् ।

स्मृत्युक्तेन तु मन्त्रेण निष्काश्यं ब्रह्मसूत्रकम् ।

तत्र मन्त्रः—ब्रह्मा विष्णुमहेशाद्यास्तन्तूनां देवताः स्मृताः ।

त्यक्ष्यामि पुण्यकालेऽस्मिन्भवतां तृप्तिहेतवे ॥ इति ।

अत्र सपिण्डीश्राद्धमेव तस्यैव मुख्यत्वादिति ।] इति यज्ञोपवीतप्रकरणम् ।

अथ वस्त्रपरिधानम् । तथा च माधवीये योगयाज्ञवल्क्यः—

स्नात्वैवं वाससी धौते अच्छिन्ने परिधाय च ॥ इति ।

व्यासः—नोत्तरीयमधः कुर्यान्नोपर्यधःस्थमम्बरम् ।

नान्तर्वासो विना जातु विवसेद्दसनं बुधः ॥ इति ।

धर्मप्रश्ने—प्रोक्ष्य वास उपयोजयेत् । इति । शुद्धमपि वासः प्रोक्ष्यैवोपयोजयेद्वसीत । अपर आह—अपवित्रस्यापि वाससः प्रोक्षणमेव शुद्धिहेतुरित्युज्ज्वला । पुनस्तत्रैव—यज्ञोपवीती द्विवस्त्रः । इति । यदा द्विवस्त्रस्तदाऽन्यतरेण द्विवस्त्रः स्यात् । अपि वा सूत्रमेषोपवीतार्थमित्येष विधिस्तु न भवतीति तद्याख्योज्ज्वला । पुनः—अधोनिवीतस्त्वेकवस्त्र इति । यदा त्वध एकवस्त्रो भवति तदाऽनिवीतः स्यात् । न तस्य दीर्घस्याप्येकदेशेनोत्तरीयमिति तद्याख्या । कुसुम्भादिरञ्जितस्य निषेधस्तत्रैव—

सर्वात्रागान्वाससि वर्जयेत् । कृष्णं च स्वाभाविकम् । इति ।

कुसुम्भादयः सर्वे रागा वाससि वर्जनीया न केनचिद्रक्तं वासो विभ्रयादिति । स्वभावतः कृष्णं कम्बलादि तदपि न वसीतेति तद्याख्याज्ज्वला । प्रशस्तं तत्रैव—

अनूद्भासि वासो वसीताप्रकृष्टं च शक्तिविषये । इति ।

उद्भासनशीलमुद्भासि तदन्यदनूद्भासि । छान्दसो दीर्घः । एवंभूतं वासो वसीत च्छादयेत् । प्रकृष्टं निकृष्टं जीर्णं मलवत्स्थूलं च तद्विपरीत-

मप्रकृष्टं तादृशं च वासो वसीत शक्तौ सत्यामिति तद्याख्योज्ज्वला ।
शिरोवेदननिषेधस्तत्रैव—

दिवा च शिरसः प्रावरणं वर्जयेन्मूत्रपुरीषयोः कर्म परिहाप्य । इति ।

चकारः पूर्वापेक्षया समुच्चयार्थः । दिवा च शिरसः प्रावरणं पटा-
दिना न कुर्यात्किमविशेषेण । न मूत्रपुरीषयोः कर्म परिहाप्येति मूत्र-
पुरीषयोः क्रियां वर्जयित्वेति तद्याख्या । माधवीये भृगुः—

ब्राह्मणस्य सितं वस्त्रं नृपते रक्तमुल्बणम् ।

पीतं वैश्यस्य शूद्रस्य नीलं मलवदिष्यते ॥ इति ।

तत्रैव देवलः—स्वयंधौतेन कर्तव्याः क्रिया धर्मविपश्चिता ।

न तु रजकधौतेन नाहतेन न कुत्रचित् ॥ इति ।

नाहतेनेति समस्तं पदम् । अहतलक्षणं पुलस्त्य आह—

ईषद्धौतं नवश्वेतं सदृशं यन्न धारितम् ।

अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥ इति ।

आश्वलायनः—परिधानं सितं शस्तं वासः प्रावरणे तथा ।

पट्टकूलं यथालाभं ब्राह्मणस्य विधीयते ॥

आविकं त्रिसरं चैव परिधाने परित्यजेत् ।

शस्तं प्रावरणे प्रोक्तं स्पर्शदोषो न विद्यते ॥

भोजनं च मलोत्सर्गं कुरुते त्रिसरावृतः ।

प्रक्षाल्य त्रिसरं शुद्धं दुकूलं सर्वदा शुचि ॥ इति ।

त्रिसरमूर्णाभेदः । बोधायनः—

कर्तव्यमुत्तरं वासः पञ्चस्वेतेषु कर्मसु ।

स्वाध्यायोत्सर्गदानेषु भुक्ताचमनयोस्तथा ॥ इति ।

एतत्सर्वकर्मोपलक्षणार्थमनुत्तरीयस्य कर्ममात्रनिषेधादिति माधवा-
चार्याः । धर्मप्रश्नेऽपि—

नित्यमुत्तरं वासः कार्यम् । इति ।

व्याख्या तूक्ता प्राक् । अत्रानुकल्पो धर्मप्रश्नेऽपि—

अपि वा सूत्रमेवोपवीतार्थे । इति । व्याख्या तु प्रागुक्ता । माधवीये

भृगुः—

विकच्छोऽनुत्तरीयश्च नग्नश्चावस्त्र एव च ।

श्रौतं स्मार्तं तथा कर्म न नग्नश्चिन्तयेदपि ॥

नग्नानाह सोऽपि—नग्नो मलिनवस्त्रश्च नग्नश्चार्धपटः स्मृतः ।

नग्नस्तु दग्धवस्त्रः स्यान्नग्नः स्यूतपटस्तथा ॥ इति ।

ऊतं स्यूतमुतं चेति त्रितयं तन्तुसन्ततावित्यर्थः । तत्रैव गोभिलः—

एकवस्त्रो न भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम् । इति ।

आपस्तम्बधर्मप्रश्नेऽपि—

सोत्तराच्छादनश्चैव यज्ञोपवीती भुञ्जीत ॥ इति ।

उत्तराच्छादनमुपरिवासस्तेन यज्ञोपवीती भोजने । अपि वा सूत्रमे-
वोपवीतार्थं इत्ययं कल्पो भवतीत्येके । समुच्चय इत्यन्ये । इति तद्याख्यो-
ज्ज्वला । रोगिणस्तु नग्नत्वमनिषिद्धमित्युक्तं धर्मप्रश्ने—

नग्नो वा । इति ।

न मुहूर्तमपि स्यादिति संबध्यते शक्तिविषय इति च । घणादिना
कौपीनाच्छादनाशक्तौ न दोष इत्युज्ज्वला । धौतवस्त्रालाभे माधवीये
योगयाज्ञवल्क्यः—

अलाभे धौतवस्त्रस्य शाणक्षौमादिकानि च ।

कुतपं योगपट्टं च विवासास्तु न वै भवेत् ॥ इति ।

कुतपं योगपट्टं च धारयेदिति शेष इति माधवाचार्याः । क्षौममत-
सीसूत्रकृतं कुतपो नेपालकम्बलः । धौतेति विशेषणग्रहणाच्छाणादीन्य-
क्षालितान्यपि गृह्णीयादित्याचाररत्नः । कुतपो मृगरोमोत्थपट इत्यमरः ।
आचाररत्ने संग्रहे—

उत्तरीयं योगपट्टं तर्जन्यां रजतं तथा ।

न जीवत्पितृकैर्धार्यं ज्येष्ठो वा विद्यते यदि ॥ इति ।

निषिद्धवस्त्रं तत्रैव कृष्णभट्टीये—

ईषद्धौतं स्त्रिया धौतं शूद्रधौतं तथैव च ।

अधौतं तच्च विज्ञेयं शुष्कं दक्षिणपल्लवैः ॥ इति ।

आचारार्के शातातपः—प्रागग्रमुदग्रं वा धौतं वासः प्रसारयेत् ।

दक्षिणाग्रं पश्चिमाग्रं पुनः प्रक्षालनं भवेत् ॥ इति ।

तत्रैव काशीखण्डे—नीलि(ली)रक्तं तु यद्वस्त्रं दूरतस्तद्विवर्जयेत् ।

स्त्रीणां क्रीडार्थसंयोगे शयनीये न दुष्यति ॥ इति ।

अतस्तत्रैव भारते—अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नराधिप ।

अन्यद्रथ्यासु देवानामर्चयामन्यदेव हि ॥ इति ।

तत्रैव स्कान्दे—स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।

वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवासो विभर्ति यः ॥ इति ।

प्रतिप्रसवो गोवर्धनाह्निके विष्णुपुराणे—

कम्बले पट्टसूत्रे च नीलीरागो न दुष्यति । इति ।

आचाररत्नेऽङ्गिराः—मृते भर्तारि या नारी नीलीवस्त्रं प्रधारयेत् ।

भर्ता तु नरकं याति सा नारी तदनन्तरम् ॥ इति ।

तत्रैव कच्छत्रयं मनुराह—

नाभौ च वामकुक्षौ च पृष्ठे चैव यथाक्रमम् ।

वस्त्रप्रावरणं यत्स्यात्तत्रिकच्छमुदाहृतम् ॥ इति ।

पञ्चकच्छप्रकारोऽपि स्मृत्यन्तरे—

कुक्षिद्वये तथा पृष्ठे नाभौ द्वौ परिकीर्तितौ ।

पञ्च कच्छास्तु ते प्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभनाः ॥ इति ।

शुष्कवस्त्राभावे तत्रैव स्मृतिरत्नावल्याम्—

सप्तवाताहतं वस्त्रं शुष्कवत्प्रतिपादितम् ।

आर्द्रं चापि द्विजातीनामाहृतं गौतमादिभिः ॥ इति ।

निषिद्धं वस्त्रं धर्मप्रश्नेऽपि—स्त्रीवाससैव संनिपातः स्यात् । इति ।

एवकारो भिन्नक्रमः । स्त्रिया भोगार्थं वासः स्त्रीवासस्तेन संनिपात

एव स्यात्तेन सुप्रक्षालितेनापि न ब्रह्मयज्ञादिकमित्युज्ज्वला । सामान्यतो

वस्त्रशुद्धिस्तु विशुद्धिमयूखे—

वस्त्रधान्यादिराशीनामेकदेशस्य दूषणे ।

तावन्मात्रं समुद्धृत्य शेषं प्रोक्षणमर्हति ॥ इति ।

अशुद्धिविशेषे तु याज्ञवल्क्यः—

शोषैरुदकगोमूत्रैः शुध्यत्याविककौशिकम् ।

सश्रीफलैरंशुपट्टं सारिष्टैः कुतपं तथा ॥

सगौरसर्षपैः क्षौमम् । इति ।

अव्यूर्णामयमाविकम् । कोशसंभवं तसरीपट्टादि कौशिकम् । बल्क-
लतन्तुनिर्मितमंशुपट्टम् । श्रीफलं बिल्वफलम् । पर्वतीयच्छागरोमनिर्मितं
कुतपः । अरिष्टं फेनिलफलम् । अतसीसूत्रनिर्मितं क्षौमम् । एतच्चाधि-
कोपघाते । किञ्चिदुपघाते तु प्रोक्षणमेव । क्षालनासहतूलिकाविषये
मिताक्षरायां विशेषः—

तूलिकामुपधानं च पुष्परक्ताम्बरं तथा ।
शोषयित्वाऽऽतपे किञ्चित्करैः संमार्जयेन्मुहुः ॥
पश्चाच्च वारिणा प्रोक्ष्य विनियुञ्जीत कर्मणि ।

अतिमालिन्ये परिशोधयेदपि । आ(अ)हतानां तु प्रोक्षणाभिति स्मर-
णाद्यन्त्रनिर्मुक्तनूतनवाससां प्रोक्षणाच्छुद्धिः ।

शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम् ।

इत्यस्यापवादः शुद्धिविवेके—सप्तवाताहतं वस्त्रं शुष्कवत्प्रातिपाद्-
येत् । इति ।

इति वस्त्रधारणम् ।

अथ प्रातःस्नानप्रयोगः । तत्र कर्ता प्रातरुत्थानादिदन्तधावनान्तं
नित्यविधिं कृत्वा स्नानसामग्रीं गृहीत्वा जलसमीपं गत्वोद्धृतज-
लेन मुखं पाणी पादौ च प्रक्षाल्योदकं स्पृष्ट्वा मलापकर्षणस्नानं
तूष्णीं त्रिवारनिमज्जनपूर्वकं कृत्वा बद्धशिखो दर्भपाणिः प्राङ्मुख
आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य मम सकलपापक्षयपूर्वकं
कर्माधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातःस्नानमहं करिष्य इति
संकल्प्य प्रत्यङ्मुखस्तीर्थाभिमुखो वा

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।

भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

इति क्षेत्रपालानुज्ञां तन्मस्कारेण गृहीत्वा

सागरस्य तु निःश्वास दण्डहस्तासुरान्तक ।

जगत्स्रष्टर्जगन्मर्दिन्नमामि त्वां सुरेश्वर ॥

इति तीर्थेशं नमस्कृत्येवं मे गङ्गा इति गङ्गादिनदीः संप्राप्त्य
हिरण्यशृङ्गमिति वरुणं प्रार्थ्य हस्तेनोदकं संताड्य स्नात्वा जले
नासाग्रं नियोज्य न तु सर्वनिमज्जनं कृत्वा ऋतं च सत्यं०सुव-
रित्युपांशु पठित्वा तदन्ते प्राणमायच्छेत् । एवमन्यौ द्वौ प्राणायामौ
कृत्वाऽथाऽऽदित्याभिमुखः सन्नापो हि षेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति
चतसृभिः पवमानः सुवर्जन इत्यनुवाकेन जलस्थः सपवित्रेण पाणि-
नैव तन्मन्त्रसमुदायान्ते मार्जनं कुर्यात् । ततो द्विराचम्य यत्पृथि-
व्यामिति मन्त्रत्रयेण सर्वमन्त्रान्ते स्नात्वा पुनर्द्विवारं तूष्णीं स्नात्वाऽऽर्द्रै

१ क. 'वारं नि' । २ क. 'ल्य तीक्ष्ण' । ३ क. 'र्थ्यप्राङ्मुखस्तीर्थाभिमुखो वा ह' । ४ क.
'स्त्र आपो । ५ ख. 'र्द्रजल' ।

ज्वलतीति मन्त्रावृत्त्या द्विराचम्याकार्यकार्यवकीर्णीत्यादिना स्नात्वाऽक्रान्त्समुद्र इति पठित्वा, ततो ब्रह्मादयो ये देवास्तान्देवांस्तर्पयामि भूर्देवांस्तर्पयामि भुवर्देवांस्तर्पयामि सुवर्देवांस्तर्पयामि भूर्भुवःसुवर्देवांस्तर्पयामि । इति देवतीर्थेन प्राङ्मुखो यज्ञोपवीत्येकैकाञ्जलिना देवान्संतर्प्य, विश्वामित्रादयो य ऋषयस्तानृषींस्तर्पयामि भूर्ऋषींस्तर्पयामि भुवर्ऋषींस्तर्पयामि सुवर्ऋषींस्तर्पयामि भूर्भुवःसुवर्ऋषींस्तर्पयामि । इति प्राजापत्यतीर्थेनोद्गुमुखो निवीती द्वाभ्यां द्वाभ्यामञ्जलिभ्यामृषीन्संतर्प्य, वैशंपायनादयो ये पितरस्तान्पितृंस्तर्पयामि भूः पितृंस्तर्पयामि भुवः पितृंस्तर्पयामि सुवः पितृंस्तर्पयामि भूर्भुवःसुवःपितृंस्तर्पयामि । इति पितृतीर्थेन दक्षिणामुखः प्राचीनावीती त्रिभिस्त्रिभिरञ्जलिभिः पितृंस्तर्पयेत् । सकृद्वा सर्वत्राञ्जलिदानं श्रेयः ।

ततो ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।

ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

इति परिधानीयं निष्पीड्य शिखोदकं दत्त्वा यज्ञोपवीती

यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसंगमात् ।

तद्दोषपरिहारार्थं यक्षमाणं तर्पयाम्यहम् ॥

इति यक्ष्मर्पणं कृत्वा वस्त्रमुत्तरीयं चतुर्गुणीकृत्योर्ध्वदशं निष्पीड्य प्रकोष्ठे वाम एव संस्थाप्य वामपादं स्थले संस्थाप्य जलगदक्षिणपादमात्रः स्थल एवोपविश्य सौत्रं द्विराचमनं कृत्वा शक्तौ स्वयमेव देहे शुष्के सति अशक्तौ तु धौतेन वाससा देहं परिमृज्य शुद्धं वस्त्रं परिदध्यात् । जीवत्पितृकस्तु वक्ष्यमाण(णान्)प्राचीनावीती वैशंपायनादीनेव पितृंस्तर्पयेत् । अशक्तस्तु सूत्रमात्रोक्तं त्र्यघमर्पणमापो हि ष्ठेत्यादिपवमानान्तेन मार्जनमाचरेत् । शुष्कस्य तस्याभावे त्वार्द्रमेव वासः सप्तवारमवधूय परिधेयम् । अधो निर्मुक्तमार्द्रवस्त्रं तु चतुर्गुणमुपरिदशं स्थले निष्पीड्य द्विराचम्य तिलकं कुर्यात् । गृहे स्नानं गृहद्वाराभिमुखम् । पूर्वं संकल्पः । शीतास्वप्सूष्णास्ताः संयोज्याः । मलापऋषिस्नानादि वर्ज्यमघमर्पणतर्पणे च । मार्जने तु विकल्पः । स्नानोत्तरमेवाऽऽचमनं नाभेरूर्ध्वमार्द्रवस्त्रोत्तारणं चेति विशेषः । रात्रेर्द्वितीयतृतीययामयोर्मरणराहुदर्शनमिहानिमित्तकस्नानं चेत्पतेत्तदा गृह एव सुवर्णपवित्रपाणिर्वह्निं पश्य-

ञ्शीतोदकेनैव स्नायात् । बह्व्यभावे तु केवलमेव । पुत्रजन्मनिमित्तकस्नान-
मप्येवम् । आद्यन्तयामयोस्तु नद्यामेव । इति प्रातःस्नानादिप्रयोगः । अथैवं
स्नानोपयुक्ता ये मन्त्रास्तेषां श्रीमन्माधवीयं भाष्यं योऽर्थज्ञ इत्सकलं
भद्रमश्नुत इतिश्रुतेः सार्थानुसंधानानुष्ठातुरेव फलसाकल्यश्रवणात्तद्वैक-
ल्यपरिहारार्थं संगृह्यते । तद्यथा । जलप्रदेशे जलाधिपतिप्रार्थनार्थं
मन्त्रद्वयमाह—

हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्ये तीर्थं मे देहि याचितः ।

यन्मया भुक्तमसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः ॥

यन्मे मनसा वाचा कर्मणा वा दुष्कृतं कृतम् ।

तन्न इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता च पुनन्तु पुनः पुनः । इति ।

सुवर्णमयं शृङ्गवदुपर्यवस्थितं मुकुटं यस्यासौ हिरण्यशृङ्गस्तादृशं
वरुणं जलाधिपतिं प्रपद्ये, अनुग्रहार्थं प्राप्नोमि तादृशो वरुणस्त्वं मया
याचितः प्रार्थितः संस्तीर्थमवतरणस्थानं देहि । किं चासाधूनां पापिनां
गृहे मया यद्भुक्तं तथा पापेभ्यः पापिनां सकाशात्प्रतिग्रहश्च यः कृतः ।
अन्यदपि यद्दुष्कृतं मानसं वाचिकं कायिकं वाऽनुष्ठितं मे मदीयं तत्सर्व-
मिन्द्रादयो देवास्तदा तदा पुनन्तु शोधयन्तु । जलावस्थितदेवान्प्रति
नमस्कारमन्त्रं दर्शयति—

नमोऽग्नयेऽप्सुमते नम इन्द्राय नमो वरुणाय नमो वारुण्यै
नमोऽद्भ्यः । इति ।

आपो यस्याग्नेः सन्ति सोऽयमप्सुमाञ्जलमध्ये निगूढ इत्यर्थः । तथा-
विधायान्नय इन्द्राय वरुणाय वरुणपत्न्यै जलाभिमानिदेवताभ्यश्च नम-
स्कारोऽस्तु । निमज्जनप्रदेशे दुष्टजलापनयनमन्त्रमाह—

यदपां क्रूरं यदमेध्यं यदशान्तं तदपगच्छतात् ॥ इति ।

अपां संबन्धि यत्क्रूरं रूपं मरणकारणमावर्तादिकं यच्चामेध्यं निष्ठी-
वनादिदुष्टं यदप्यशान्तं वातश्लेष्मादिजनकं तत्सर्वमस्मिन्निमज्जनप्रदे-
शादपगच्छतु । निमज्जनमन्त्रावाह—

अत्याशनादतीपानाद्यच्च उग्रात्प्रतिग्रहात् ।

तन्नो वरुणो राजा पाणिना ह्यवमर्शतु ॥

सोऽहमपापो विरजो निर्मुक्तो मुक्तकिल्बषः ।

नाकस्य पृष्ठमारुह्य गच्छेद्ब्रह्म सलोकताम् ॥ इति ।

“ देवपितृमनुष्यादियज्ञमतीत्य भुक्तमत्याशनं देवर्षिपितृतर्पणमतीत्य पीतमुदकमतीपानमुच्छास्त्रवर्ती यः पुमांस्तस्माद्यो धनप्रतिग्रह एतैरत्याशनातिपानदुष्प्रतिग्रहैः संपादितं यत्पापं मे मदीयं तत्सर्वं वरुणो राजा जलस्वामी स्वकीयेन पाणिनाऽपनयतु । ततः पापरहितः सोऽहं रजोगुणरहितः संसारकारणरागद्वेषादिदोषनिर्मुक्तोऽत एवानुष्ठास्यमानपापरहितः स्वर्गस्योपरिभागमारुह्य ब्रह्मणा हिरण्यगर्भेण समानभोक्तृत्वं गच्छेद्गच्छेयम् । तीर्थभूतानां गङ्गादिनदीनामावाहनमन्त्रमाह—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचताऽऽ परुष्णिग्या ।

असिक्रिया मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ इति ।

गङ्गादिनद्यो यूयं परुष्णयादिभिर्नदीभिः सह मे मदीयमिमं स्तोमं स्तोत्रं शृणुत श्रुत्वाऽऽसचताऽऽगत्य जले तद्वारेण मयि च समवेता भवत गङ्गायमुनासरस्वत्यः प्रसिद्धाः शुतुद्रीति नद्यन्तरस्य संबोधनम् । मरुद्वृध आर्जीकीय इत्यन्ययोर्नद्योः । अ(?)परुष्णयाऽसिक्रिया वितस्तया सुषोमयेति पदचतुष्टयं तृतीयान्तं नदीचतुष्टयवाचकम् । जले निमग्नस्य प्राणायामार्थमघमर्षणसूक्तमाह—

ऋतं च सत्यं चाभीन्द्रात्तपसोऽध्यजायत ।

ततो रात्रिरजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥

समुद्रादर्णवाद्दधि संवत्सरो अजायत ।

अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ॥

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो सुवः । इति ।

ऋतं मानसं यथार्थसंकल्पनं सत्यं वाचिकं यथार्थभाषणम् । चकाराभ्यामन्यदापि शास्त्रीयं धर्मजातं समुच्चीयते । तत्सर्वमभीन्द्राद्भितः प्रकाशमानात्परमात्मन उत्पन्नम् । कदा समुत्पन्नमित्युच्यते तपसोऽधि स्रष्टव्यपर्यालोचनलक्षणात्तपस ऊर्ध्वम् । स तपस्तप्त्वा, इदं सर्वमसृजतेति श्रुत्यन्तरात् । यस्य ज्ञानमयं तप इति श्रुत्यन्तराच्च । ततः स्वप्रकाशात्परमेश्वराद्वात्रिरुत्पन्नाऽहोऽप्येतदुपलक्षणम् । ततस्तस्मात्परमेश्वरात्समुद्र उत्पन्नः । सामान्योक्त्या लवणोदक्षीरोददध्यादिविशेषमभिप्रेत्या-

र्णवशब्देन पुनर्विशेष्यते । अवान्तरभेदयुक्तात्समुद्रादधि ऊर्ध्वं संवत्सरो-
पलक्षितः कृत्स्नः कालः समुत्पन्नः स चोत्पादकः स परमेश्वरोऽहो-
रात्रोपलक्षितान्सर्वान्कालविशेषान्विदधत्सृजन्मिषतो निमेषादियुक्तस्य
विश्वस्य सर्वस्य प्राणिजातस्य वशी स्वामी भूत्वा वर्तते स तादृशो
धाता परमेश्वरः सूर्यादिदेवान्पृथिव्यादिलोकांश्च यथापूर्वमतीतसृष्टौ
यस्य यादृशं रूपं तादृशं तादृशमनतिक्रम्याकल्पयत् । संकल्पमात्रेण
संपादितवान् । दिवं चेत्युपात्तत्वात्सुवःशब्देन भोगविशेषो विवक्षितः ।

इति श्री सा० वि० माधवीये वेदार्थप्रकाशे याज्ञिक्युपनिषत्स्थवरुण-
प्रार्थनादिमन्त्रभाष्यम् ।

अथैकादशीमाह—

आपो हि षा० क्षस इति । हिशब्द एवकारार्थः प्रसिद्धार्थो वा ।
आपो यूयमेव मयोभुवः स्थ सुखायिभ्यो भवत । स्नानपानादिहेतुत्वेन
सुखोत्पादकत्वं प्रसिद्धम् । तास्तादृश्यो यूयं नोऽस्मानूर्जे रसाय भवदी-
यरसानुभवार्थं दधातन स्थापयत । किं च महे महते रणाय रमणीयाय
चक्षसे दर्शनाय दधातन । अस्मान्परतत्त्वसाक्षात्कारयोग्यान्कुरुतेत्यर्थः ।

अथ द्वादशीमाह—

यो वः शिवत० मातर इति । वो युष्माकं शिवतमः शान्ततमः सुखै-
कहेतुर्यो रसोऽस्ति । इहास्मिन्कर्मणि नोऽस्मांस्तस्य भाजयत । तं रसं
प्रापयत । तत्र दृष्टान्तः—उशतीरिव मातरः । कामयमानाः प्रीतियुक्ता
मातरो यथा स्वकीयस्तन्यरसं प्रापयन्ति तद्वत् । अथ त्रयोदशीमाह—

तस्मा अरं गमाम वो० च न इति । यस्य रसस्य क्षयाय क्षयेण
निवासेन जिन्वथ यूयं प्रीता भवथ तस्मै रसाय वो युष्मानरं गमामालं
भृशं प्राप्नुमः । किं च हे आपो यूयं नोऽस्माञ्जनयथ प्रजोत्पादकान्कुरुत ।
हरिः ॐ यस्य नि० जगत् । निर्ममे त० महेश्वरम् ।

उक्ता वायव्यपश्वाद्याः पञ्चमे हि प्रपाठके ।

कुम्भेष्टकामन्त्रणादीन्षष्ठे मन्त्रानुदीर्यते ॥

यदुक्तं सूत्रकारेण—हिरण्यवर्णा इत्युपहिता अभिमन्त्रयत इति तत्र
कुम्भेष्टकाभिमन्त्रणार्थानां त्रयोदशानामृचां मध्ये प्रथमामाह—हिरण्य-
वर्णाः शु०ना भवन्त्विति । आपस्तावन्निर्मलत्वेन भास्वरत्वाद्धिरण्यस-

दृशवर्णोपेताः । तथा शुचयः स्वयं शुद्धाः पावकाः आनादिना शरीरा-
दिशुद्धिहेतवश्च यास्वप्सु कश्यपाख्यः प्रजापतिरुत्पन्नो यास्वप्सु इन्द्रोऽ-
प्युत्पन्नोऽग्निं च या आपो गर्भत्वेन दधिरे तदेतन्नयं शाखान्तरगतेभ्योऽ-
र्थवादेभ्यो द्रष्टव्यम् । अत्राप्यग्ने गर्भो अपामसीति चतुर्थकाण्डे
मन्त्रान्तरमाज्ञातम् । ईदृश्यो या आपस्ताः स्योनाः सुखकारिण्योऽतोऽ-
स्माञ्जं भवन्तु सुखं प्रापयन्तु । अथ द्वितीयामाह—यासां राजा०
भवत्विति । वरुणाख्यो राजाऽपामधिपतिर्यासामपां मध्ये याति गूढः
संचरति । किं कुर्वन्, जनानां सत्यानृते अवपश्यन्पानपानादौ यो यथा-
शास्त्रमाचरति तत्सर्वमपश्यन्ताश्चाऽऽपो मधुररसं श्रोतन्ति सारयन्तीति
मधुश्चुतः । शुचय इत्यादि पूर्ववत् । अथ तृतीयामाह—यासां
देवा भवन्त्विति । दिवि द्युलोके देवा यासामपां संबन्धि सारं
भक्षं कृण्वन्ति स्वभोज्यं कुर्वन्ति । पीयूषं हि देवैः सेव्यते तच्चापां सार-
मूतम् । याश्चाऽऽपोऽन्तरिक्षे वृष्टिधारारूपेण बहुप्रकारा भवन्ति ।
याश्चाऽऽपः पृथिवीं सर्वा पयसा स्वकीयेन द्रवेणोन्दन्ति क्लेदयन्ति ।
शुक्रा निर्मलाः । ता न आप इत्यादि पूर्ववत् । अथ चतुर्थीमाह—
शिवेन मा० निधत्तेति । हे आपो यूयं शिवेन चक्षुषा शान्तया दृष्ट्या
मा पश्यत माऽवलोकयत । तथा शिवया तनुवा शान्तेन त्वदीयशरी-
रेण मे त्वचमुपस्पृशत । अहमप्यप्सुषदो जलेषु स्थितान्सर्वानप्यग्नी-
न्हुवे जुहोमि होमेन तर्पयामि । वो युष्मदीयं यद्वर्चः कान्तिर्यच्च बलं
यदप्योजो बलहेतुरष्टमो धातुस्तत्सर्वं मयि निधत्त स्थापयत । एत-
न्मूलं यथा—

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः ।

अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन्नानाम् ।

मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।

याः पृथिवीं पयसोन्दन्ति शुक्रास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यताऽऽपः शिवया तनुवोपस्पृशत त्वचं मे ।

सर्वां अग्नीं रप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो निधत्त ॥

इदमृक्चतुष्टयं पूर्वोक्तमृक्त्रयं च यद्यपि यजुर्वेदीयतैत्तिरीयाख्यस्व-
शाखीयसंहितायाः पञ्चमकाण्डे षष्ठप्रपाठकीयप्रथमानुवाके व्युत्क्रमेण
किञ्चिद्दृगन्तरव्यवधानेन च पठितं तथाऽपि प्रकृते निरुक्तस्वसूत्रसंगृ-
हीतक्रमेण लिखितं वेदितव्यम् । तथैवैतद्भाष्यमपि श्रीसायणाचार्यवि-
रचितमाधवीयवेदार्थप्रकाशाभिधं निरुक्तस्थलीयं निरुक्तरीतिकमेव
संगृहीतं बोध्यम् ।

अथैवं पवमानभाष्यमपि संगृह्यते—पवमानः सुवर्जन इत्यस्मिन्ननुवाके
प्रथमामुचमाह—

पवमानः सुवर्जनः । पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु मेति ।
यो देवः पोता सर्वेषां शोधयिता स देवः पवित्रेण शुद्धिसाधनेना-
स्मदीयजपध्यानादिना मां पुनातु शोधयतु । कीदृशः पोता, पवमानः
शोधनकुशलः, सुवर्जनः स्वर्ग एवोत्पन्नः, विचर्षणिर्विविधशोधनप्रका-
राभिज्ञः ।

अथ द्वितीयामाह—पुनन्तु मा देवजनाः । पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्व आयवः, इति ।

ये कल्पादौ स्वर्गलोकेषु समुत्पन्नत्वेन देवरूपा जना ये च स्वायं-
भुवमनुप्रभृतय ऋषयः । येऽपि स्वकर्मवशान्मनुष्यलोकमायान्तीत्यायवो
मनुष्याः सदाचारसंपन्नाः शुश्रुवांसस्ते विश्वे सर्वेऽपि धियाऽनुग्रहबु-
द्ध्या मां पुनन्तु ।

अथ तृतीयामाह—जातवेदः पवित्रवत् । पवित्रेण पुनाहि मा ।
शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूश्रनु । इति ।

हे जातवेद उत्पन्नसर्वजगदभिज्ञाग्ने देव शुक्रेण दीद्यद्दीप्त्या भास-
मानस्त्वं क्रतूश्रनु अस्मदनुष्ठेयान्कर्मविशेषाननुसृत्य पवित्रेण क्रत्वा
शोधकेन त्वत्संकल्पेन पवित्रवदस्मदनुष्ठितं कर्म शुद्धियुक्तं यथा भवति
तथा मां पुनीहि शोधय ।

अथ चतुर्थीमाह—यत्ते पवित्रमर्चिषि । अग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म
तेन पुनीमहे । इति ।

हेऽग्ने तवार्चिषि ज्वालायामन्तरा मध्ये विततं विस्तृतं यत्पवित्रं शुद्धि-
साधनं ब्रह्म प्रसिद्धमस्ति तेन वयं पुनीमहे ।

अथ पञ्चमीमाह—उभाभ्यां देव सवितः । पवित्रेण सवेन च । इदं ब्रह्म पुनीमहे । इति ।

हे सवितर्देव त्वदीयं यत्पवित्रं शुद्धिसाधनं यश्च सवः कर्मस्वस्मद्विषयं प्रेरणं ताभ्यामुभाभ्यामिदं ब्रह्म परिवृढं कर्म पुनीमहे शोधयामः ।

अथ षष्ठीमाह—वैश्वदेवी पुनती देव्यागात् । यस्यै बह्वीस्तनुवो वीतपृष्ठाः । तथा मदन्तः सध माद्येषु । वयं स्याम पतयो रयीणाम् । इति ।

सर्वदेवसंबन्धिनी या देवी शोधनकुशला साऽस्मान्पुनती शोधयन्ती, आगादागच्छतु । यस्यै यस्या देव्यास्तनुवः शुद्धिहेतवो देहविशेषा वीतपृष्ठाः कान्तस्तुतयस्तया देव्याऽनुगृहीताः सध माद्येषु ऋत्विग्भिः सह हर्षयोग्येषु कर्मसु मदन्तो हृष्यन्तो वयं रयीणां धनानां पतयः स्याम ।

अथ सप्तमीमाह—वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु । वातः प्राणेनेषिरो मयोभूः । द्यावापृथिवी पयसा पयोभिः । ऋतावरी यज्ञिये मा पुनीताम् । इति ।

विश्वेषां नराणां हितोऽग्निरादित्यो वा देवः स्वकीयरश्मिभिर्मा पुनातु । वातो वायुदेवः प्राणेनेषिरः प्राणरूपेण देहेषु गच्छन्मयोभूः सुखस्योत्पादयिता भवतु । द्यावापृथिव्यौ च ऋतावरी सत्यवत्यौ यज्ञिये यज्ञाय हिते सत्यौ पयसा जलेन पयोभिः क्षीरादिरसैश्च मां पुनीताम्

अथाष्टमीमाह—बृहद्भिः सवितस्तृभिः । वर्षिष्ठैर्देव मन्मभिः । अग्ने दक्षैः पुनाहि मा । इति ।

हे सवितः कर्मसु प्रेरकाग्ने देव मन्मभिर्मननैरस्मदनुग्रहविषयैर्मा पुनाहि । कीदृशैर्बृहद्भिर्महद्भिः पापतरणसाधनैर्वर्षिष्ठैश्चिरकालानुवृत्त्या वृद्धतमैर्दक्षैः शोधनकुशलैः ।

अथ नवमीमाह—येन देवा अपुनत । येनाऽऽपो दिव्यंकशः । तेन दिव्येन ब्रह्मणा । इदं ब्रह्म पुनीमहे । इति ।

येन शुद्धिसाधनेन देवाः पूर्वान्यजमानानपुनत । कश गताविति धातोरुत्पन्नः सकारान्तः कशःशब्दो गतिवाची । येन शुद्धिसाधनेनाऽऽपो देवता दिव्यंकशोऽपुनत दिव्यलोकविषयां गतिं शोधितवत्यः । दिव्येन द्युलोकयोग्येन ब्रह्मणा परिवृढेन तेन शुद्धिसाधनेनेदं ब्रह्मानुष्ठीयमानं परिवृढं कर्म पुनीमहे ।

अथ दशमीमाह—यः पावमानीरध्येति । ऋषिभिः संभृतं रसम् । सर्वं स पूतमश्नाति । स्वदितं मातरिश्वना । इति ।

यः पुमान्पावमानीः शोधकदेवतासंबन्धिनीरेता ऋचोऽध्येति पठति अर्थतः स्मरति वा स पुरुषः सर्वं संसारभूतं फलमश्नाति मुक्ते । कीदृशं रसमृषिभिः संभृतं मन्त्रैस्तद्भिर्जैर्मुनिभिश्च संपादितम् । अत एव पूतं शुद्धं मातरिश्वना वायुना स्वदितं स्वादु कृतम् ।

अथैकादशीमाह—पावमानीर्यो अध्येति । ऋषिभिः संभृतं रसम् । तस्मै सरस्वती दुहे । क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् । इति ।

योऽयं पुरुषः पावमानीरध्येति तस्मै पुरुषाय सरस्वती रसं दुहे । कीदृशं क्षीरादिरूपम् ।

अथ द्वादशीमाह—पावमानीः स्वस्त्ययनीः । सुदुघा हि पयस्वतीः । ऋषिभिः संभृतो रसः । ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् । इति ।

याः पावमान्य ऋचस्ताः स्वस्त्ययनीः क्षेमप्रापिकाः सुदुघाः सुदु फलं दुहानाः पयस्वतीः क्षीरादिरसहेतवश्च प्रसिद्धास्ता अस्माननुगृह्णन्त्विति शेषः । ऋषिभिर्मन्त्रदर्शिभिर्मुनिभि रसः फलसारः संभृतोऽस्मासु संपादितः । ब्रह्म मन्त्रस्तत्पाठका ब्राह्मणास्तेष्वस्मास्वमृतमविनाशिफलं हितं संपादितमस्तु ।

अथ त्रयोदशीमाह—पावमानीर्दिशन्तु नः । इमं लोकमथो अमुम् । कामान्समर्धयन्तु नः । देवीर्देवैः समाभृताः । इति ।

देवैरिन्द्रादिभिः समाभृताः संपादिताः पावमानीर्देवीः पवमानमन्त्राभिमानिन्यो देव्यो नोऽस्माकं लोकद्वयं दिशन्तु प्रयच्छन्तु । तत्रत्यान्कामान्नोऽस्मदर्थे समृद्धान्कुर्वन्तु ।

अथ चतुर्दशीमाह—पावमानीः स्वस्त्ययनीः । सुदुघा हि घृतश्रुतः । ऋषिभिः संभृतो रसः । ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् । इति ।

घृतं श्रोतन्ति क्षारयन्तीति घृतश्रुतः । अन्यत्पूर्ववत् ।

अथ पञ्चदशीमाह—येन देवाः पवित्रेण । आत्मानं पुनते सदा तेन सहस्रधारेण । पावमान्यः पुनन्तु मा । इति ।

देवा इन्द्राद्या येन पवित्रेण शुद्धिसाधनेन सदा स्वं देहं शोधयन्ति सहस्रावान्तरभेद्युक्तेन तेन साधनेन पावमान्य ऋचो मां पुनन्तु ।

अथ षोडशीमाह—प्राजापत्यं पवित्रम् । शतोद्यामः हिरण्मयम् । तेन ब्रह्मविदो वयम् । पूतं ब्रह्म पुनीमहे । इति ।

यत्पवित्रं शुद्धिसाधनं प्राजापत्यं प्रजापतिसंबन्धि शतोद्यामं दूर्ध्व-
निर्मितत्वाच्छतसंख्याकैरुद्यामैर्नाडीभिर्युक्तं हिरण्मयं पापहरणसाधनेन
द्रव्येण निर्मितं तेन तादृशेन पवित्रेण ब्रह्मविदो वेदार्थविदो वयं पूतं
ब्रह्म पूर्वमपि शुद्धं परिवृढं कर्म पुनीमहे मूयोऽपि शोधयामः ।

अथ सप्तदशीमाह—इन्द्रः सुनीती सह मा पुनातु । सोमः स्वस्त्या
वरुणः समीच्या । यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा । जातवेदा मोर्ज-
यन्त्या पुनातु । इति ।

इन्द्रः सुनीत्या शोभनफलप्रापिकया देव्या सह मां पुनातु । सोमः
स्वस्त्या क्षेमप्रापिकया देव्या सह मां पुनातु । वरुणः समीच्याऽनुकू-
लया देव्या सह मां पुनातु । यमो राजा प्रमृणाभिः प्रकर्षेण मारिका-
भिर्देवीभिः सह मां पुनातु । जातवेदा ऊर्जयन्त्या क्षीरादिरसप्रापिकया
देव्या सह मां पुनातु ।

इति श्रीसायणाचार्यविरचिते साधवीये वेदार्थप्रकाशे यजुर्ब्राह्मणे
प्रथमकाण्डे चतुर्थप्रपाठकेऽष्टमोऽनुवाकः ।

अघमर्षणं कृत्वा तत ऊर्ध्वमवगाहनार्थास्तिस्र ऋचो दर्शयति—
यत्पृथिव्याः रजः स्वमान्तरिक्षे विरोदसी । इमास्तदापो वरुणः पुना-
त्वघमर्षणः । एष भूतस्य मध्ये भुवनस्य गोप्ता । एष पण्यकृतां लोका-
नेष मृत्योर्हिरण्मयम् । द्यावापृथिव्योर्हिरण्मयः सःश्रितः सुवः । स
नः सुवः सःशिशधीति ।

पृथिव्यां वर्तमानानामस्माकं स्वं रजः स्वकीयं पापं यदस्ति । अन्त-
रिक्षे सर्वतोऽन्तरिक्षलोके विरोदसी विशेषेण रोदस्योर्द्यावापृथिव्योर्य-
त्पापमस्ति । अत्र रोदस्योः पृथगुक्तत्वात्पृथिव्यामितिपदेन भूमेरधस्ता-
द्वर्तमानः पाताललोको विवाक्षितः । सर्वेष्वपि लोकेषु तत्तज्जन्मान्यनुभ-
वतामस्माकं यत्पापमासीत्तत्सर्वं पापं तदनुष्ठातृनियमानस्मांश्च वरुणः
पुनातु शोधयतु पापं विनाश्य शुद्धानस्मान्करोतु । कीदृशो वरुणः,
आपः, जलस्वामित्वेन तद्रूपः । अघानि मर्षयति विनाशयतीत्यघम-
र्षणः । तादृश एष वरुणो भूतस्यातीतस्य भुवनस्य प्राणिजातस्य गोप्ता
रक्षिता । तथा भव्ये(?)भव्यस्य भविष्यतोऽपि जगतो गोप्ता, एष वरुणः

पुण्यकृतां ज्योतिष्टोमादिकारिणां लोकान्प्रयच्छतीति शेषः । एष वरुणो मृत्योः सर्वप्राणिमारकस्य यमस्य संबन्धिनं हिरण्मयं लोकविशेषं प्राणिनां प्रयच्छतीति शेषः । यत्र हिरण्मयं ब्रह्माण्डरूपं सुवः स्वर्ग-शब्दाभिधेयं द्यावापृथिव्योर्द्युलोकभूलोकयोः संश्रितं वर्तते हे वरुण स त्वं नोऽस्मान्प्रनि सुवस्तादृशं स्वर्गलोकं संशिशोधि सम्यगनुगृहाण ।

तिसृभिर्ऋग्भिः स्नातवतः पुरुषस्याऽऽचमनार्थं मन्त्रमाह—आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि । ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि । योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि । अहमस्मि ब्रह्माहमस्मि । अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहेति ।

यदेतदुदकरूपमार्द्रं तदेतत्स्वाधिष्ठानचैतन्येन ज्वलति प्रकाशते । तत्राधिष्ठानरूपं ज्योतिरहमस्मि देहेन्द्रियादिभ्यो विवेचितस्य मम तदेवाधिष्ठानचैतन्यं स्वरूपमित्यर्थः । तदेवोपपाद्यते—ज्योतिर्ज्वलतीत्युक्तं तज्ज्योतिर्ब्रह्मैव । अतो ज्योतिरहमस्मीति वाक्येन ब्रह्माहमस्मीत्युक्तं भवति । न च पूर्वसिद्धं जीवात्मनः स्वरूपं विनाश्य रूपान्तरस्य ब्रह्मत्वलक्षणस्य प्राप्तिर्भवति किंतु योऽहं पुरा जीवोऽस्मि स एवेदानीमहं ब्रह्मास्मि वस्तुतो ब्रह्मण्येव मयि पूर्वमज्ञानाज्जीवत्वमारोपितमासीत्तस्मिन्नज्ञाने विवेकेनापनीते सति वस्तुतः पूर्वसिद्धमेव ब्रह्मस्वरूपमिदानीमनुभवतोऽस्मि न तु नूतनं किंचिद्ब्रह्मत्वमागतम् । तस्माद्दहमेवाहं ब्रह्मत्वानुभववेलायामपि पूर्वसिद्धोऽहमेव न तु योषित्यग्निध्यानवदुपचरितं ब्रह्मत्वम् । तादृशोऽहं जलरूपं मां जुहोमि उदराग्नौ प्रक्षिपामि । हविष्प्रदानवाची स्वाहाशब्दः । मदेहवर्तिभ्यः प्राणाद्यभिमानिभ्यो देवेभ्यो जलरूपं हविर्दत्तमित्यर्थः ।

आचमनादूर्ध्वं पुनरपि स्नाने मन्त्रमाह—

अकार्यकार्यवकीर्णी स्तेनो भ्रूणहा गुरुतल्पगः ।

वरुणोऽपामघमर्षणस्तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥ इति ।

अकार्यं शास्त्रप्रसिद्धं कलञ्जभक्षणादिकं तत्कर्तुं शीलमस्यासावकार्यकारी । प्रतिषिद्धस्त्रीगमनवानवकीर्णी । ब्राह्मणसुवर्णहर्ता स्तेनः । वेदवेदाङ्गविद्गर्भो वा भ्रूणस्तं हन्तीति भ्रूणहा । गुरुदारगामी गुरुतल्पगः । एतादृशपापकारिणमपि मामघमर्षणः पापविनाशकोऽपि स्वामी वरुणस्तस्मात्सर्वस्मात्पापात्प्रमुच्यते मोचयति ।

रहस्यपापक्षयार्थं स्नानमन्त्रमाह—

रजोभूमिस्त्व मां रोदयस्व प्रवदन्ति धीराः ।

पुनन्तु ऋषयः पुनन्तु वसवः पुनातु वरुणः पुनात्वघमर्षण इति ।

रजसः पापस्य भूमिः स्थानभूतोऽहमतो हे देव त्वं तत्पापफलभूत-
यातनया मां रोदयस्व । यद्यप्येतत्तवोचितं तथाऽपि धीरा बुद्धिमन्तः
शास्त्रपारं गता मामनुगृह्णन्त एवं प्रवदन्ति । तदीयं वाक्यमुदाह्रियते—
ऋषयो वसिष्ठमुख्या एनं स्नानकारिणं पुनन्तु शोधयन्तु । तथा वसवोऽ-
ष्टसंख्याका एनं पुनन्तु । वरुणोऽप्येनं पुनात्वघमर्षणः पापविनाशकोऽ-
न्योऽपि देव एनं पुनातु एवं धीरैर्महद्भिरनुगृहीतत्वाद्दृष्यादिभिः पूतं
मां त्वमपि यमदेव मा बाधस्वानुगृहाणेत्यर्थः ।

स्नानादूर्ध्वं जप्यं मन्त्रमाह—

आक्रान्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।

वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः । इति ।

समुद्रवत्प्रौढत्वात्समुद्राख्यः परमानन्दस्वभावत्वाद्वा समुद्रः परमात्मा
सर्वं जगदाक्रानाक्रान्तवान्व्याप्तवान् । किं कुर्वन्प्रथमे सृष्टेरादिकाले
प्रजा जनयन् । कीदृशे प्रथमे काले विधर्मन्प्राणिभिः पूर्वकल्पेऽनुष्ठिता
विविधा धर्मा यस्मिन्काले स्वफलदानार्थमुद्बोधयन्ते सोऽयं विधर्म
तस्मिन् । स च परमात्मा भुवनस्य पालकत्वाद्वा राजा स्वभक्तानां कामानां
वर्षणहेतुत्वाद्वा वृषा । कीदृशः सर्वत्र व्याप्तवान् । किं च सानो सानौ
पर्वतपार्श्वभागे श्रुत्यन्तरे तं ब्रह्मगिरिरित्याचक्षत इति श्रवणात् । ब्रह्मा-
वबोधयोग्यो देहो गिरिस्तदवयवः सानु हृदयपुण्डरीकं तच्च पवित्रं
बाह्यदेहावयववदुच्छिष्टस्पर्शादिदोषाभावाच्छुद्धम् । अधि पुरुषार्थहे-
तुध्यानस्थानत्वादितरावयवेषुऽप्यधिकम् । अत एव ध्यातृणामवनस्य
पालनस्य हेतुत्वादव्ययम् । हिमवत्पुत्र्या गौर्या ब्रह्मविद्याभिमानिरूपत्वा-
द्गौरीवाचक उमाशब्दो ब्रह्मविद्यामुपलक्षयति । अत एव तवलकारोप-
निषदि ब्रह्मविद्यामूर्तिप्रस्तावे ब्रह्मविद्यामूर्तिः पठ्यते— बहुशोभमाना-
मुमां हैमवतीं होवाचेति । तद्विषयः परमात्मा तपोमया सह वर्तमान-
त्वात्स च सानौ हृदयपुण्डरीके बृहद्ब्रह्म यथा भवति तथा वावृधे
वृद्धिं प्राप्तः । पूर्वमविद्यावृतत्वेन संकुचितो जीवो भूत्वा तस्यामवि-
द्यायां विद्ययाऽपनीतायां ब्रह्मत्वाविर्भावात्प्रवृद्ध इव भासत इत्यर्थः ।
स च सोमः सुवानो जीवानां धर्माधर्मयोः प्रेरकः । इन्दुः फलदानेन
चन्द्रघदाह्लादहेतुः ।

इति श्रीसायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे याज्ञिक्युपनि-
षत्स्थयत्पृथिव्यामित्यादिस्नानादिमन्त्रभाष्यम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाठ-
हिरण्यकेश्याह्निके स्नानप्रयोगोक्ततत्तन्मन्त्रभाष्यसंग्रहप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ तिलकधारणम् । तत्रोर्ध्वपुण्ड्रविधिर्माधवीये ब्रह्माण्डपुराणे—

पर्वताग्रे नदीतीरे मम क्षेत्रे विशेषतः ।

सिन्धुतीरे च बल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते ॥

मृद एताः सुसंपाद्या वर्जयेत्वन्यमृत्तिकाः ।

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं स्मृतम् ॥

श्रीकरं पीतमित्याहुर्वैष्णवं श्वेतमुच्यते ।

अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमाऽऽयुष्करी भवेत् ॥

अनामिकाऽन्नदा नित्यं मुक्तिदा च प्रदेशिनी ।

एतैरङ्गुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखं स्पृशेत् ॥

वर्तिदीपाकृतिं वाऽपि वेणुपत्राकृतिं तथा ।

पद्मस्य मुकुलाकारं तथैव कुमुदस्य च ॥

मत्स्यकूर्माकृतिं वाऽपि शङ्खाकारमतः परम् ।

दशाङ्गुलप्रमाणं तु उत्तमोत्तममुच्यते ॥

नवाङ्गुलं तु मध्यं स्याद्ष्टाङ्गुलमतः परम् ।

सप्तषट्पञ्चभिः पुण्ड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् ॥

चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः पुण्ड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत् ।

ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे ॥

माधवं हृदि विन्यस्य गोविन्दं कण्ठकूपके ।

उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्यभिधीयते ॥

तत्पार्श्वे बाहुमध्ये तु मधुसूदनमनुस्मरेत् ।

त्रिविक्रमं कर्णदेशे वामे कुक्षौ तु वामनम् ॥

श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु कर्णके ।

पृष्ठे तु पद्मनाभं च ककुद्दामोदरं स्मरेत् ॥

द्वादशैतानि नामानि वासुदेवं तु मूर्धनि ।

पूजाकाले च होमे च सायंकाले समाहितः ॥

नामान्युच्चार्य विधिना धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम् ॥ इति ।

सत्यव्रतोऽपि—ऊर्ध्वपुण्ड्रो मृदा शुभ्रो ललाटे यस्य दृश्यते ।

चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः ॥ इति ।

अथ द्रव्याण्याचारकिरणे—

मृत्तिका चन्दनं भस्म तोयं चैव चतुर्थकम् ।
एभिर्द्रव्यैर्यथाकालं मूर्ध्नि पुण्ड्रं मवेत्सदा ॥ इति ।

आचाररत्ने व्यवस्थामाहाऽऽश्वलायनः—

स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्याद्ध्रुत्वा चैव तु भस्मना ।
देवानभ्यर्च्य गन्धेन सर्वपापापनुत्तये ॥ इति ।

तत्रैव व्यासोऽपि—ऊर्ध्वं पुण्ड्रं मृदा कुर्यान्निपुण्ड्रं भस्मना तथा ।

चन्दनेनोभयं कुर्यान्न तिर्यग्गोपिचन्दनम् ॥ इति ।

तत्रैव पाद्मे—एकपुण्ड्रं तु नारीणां शूद्राणां च विधीयते । इति ।

बृहन्नारदीये—उर्ध्वं पुण्ड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छन्ति केचन ।

वृद्धाचारः परिग्राह्यस्तस्माच्छ्रेयोर्थिभिर्नरैः ॥ इति ।

तुलसीशब्देनात्राजहत्स्वार्थलक्षणया तत्काष्ठमालैव कण्ठे धार्यमाणा
ग्राह्या । तत्पत्रादेस्तु तत्र ब्राह्मणपूजाद्यर्थमवश्यापेक्षत्वात् । आचार-
रत्ने सूतसंहितायाम्—

वेदमार्गैकनिष्ठानां वेदोक्तेनैव वर्त्मना ।

ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं धार्यमेव हि ॥

विष्णवागमादितन्त्रेषु दीक्षितानां विधीयते ।

शङ्खचक्रगदापद्मैरङ्कनं नान्यदेहिनाम् ॥

वेदमार्गैकनिष्ठस्तु मोहेनाप्यङ्कितो यदि ।

पतत्येव न संदेहस्तथा पुण्ड्रान्तरादपि ॥ इति ।

पुरुषार्थप्रबोधे—श्रौतं भस्म द्विजा मुख्यं स्मार्तं गौणं प्रकीर्तितम् ।

श्रौतं भस्म तथा स्मार्तं द्विजानामेव तन्मतम् ॥

औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः ।

समिदाग्निसमुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणा ॥

शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्निसमुद्भवम् ।

अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं दावानलोद्भवम् ॥

अपक्वमतिपक्वं च संत्यज्य भसितं सितम् ।

आदाय वासस्यालोड्य भस्माधारे विनिक्षिपेत् ॥ इति ।

श्रौतादिभस्माभावे तदुत्पत्तिश्चन्द्रोदये शिवपुराणे—

भस्मसंपादनविधिः सुलभः समुदीरितः ।
 पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यां वा विशुद्धधीः ॥
 कपिलायाः शकृत्स्वल्पं गृहीत्वा गगने पतत् ।
 उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि ॥
 पिण्डीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमन्त्रतः ।
 धारयेन्नित्यकार्येषु विभूतिं तु प्रयत्नतः ॥
 तर्जन्यनामिकामध्यैस्त्रिपुण्ड्रं तु समाचरेत् ॥ इति ।

क्रियासारे—शूद्रहस्तस्थितं भस्म द्विजातिर्नैव धारयेत् ।
 तथैवान्त्यजहस्तस्थं शूद्रैर्धार्यं न जातुचित् ॥
 भस्मनैव त्रिपुण्ड्रं च गृहिणां जलसंयुतम् ।
 धार्यं त्रिपुण्ड्रं स्त्रीणां च यतीनां जलवर्जितम् ॥
 वनस्थव्रतिकन्यानां दीक्षाहीननृणां तथा ।
 षडङ्गुलायतं मानमपि वाऽधिकमानकम् ॥
 अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिराथर्वणैस्तथा ।
 त्रयायुषेण च मन्त्रेण मेधावीत्यादिनाऽथ वा ॥
 त्रैयम्बकेन मन्त्रेण सतारेण शिवेन वा ।
 पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण प्रणवेन युतेन च ॥ इति ।

सूतसंहितायां ब्रह्मगीतासु भस्मधारणमावश्यकं वैदिकमन्त्रैरेव व्यति-
 रेकेण दर्शितम्—

वेदोक्तेनैव मार्गेण भस्मनैव त्रिपुण्ड्रकम् ।
 धूलनं नाऽऽचरिष्यन्ति पाखण्डोपहता जनाः ॥ इति ।

ननु सन्त्वेवमूर्ध्वपुण्ड्रादिधारणे वचनानि तथाऽपि कोऽत्र निर्णयः
 संपन्नः । किं ब्राह्मणेन मृदादिना सर्वदोर्ध्वपुण्ड्र एव कर्तव्यः किं वा
 भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्र इति । न च कोऽत्र विमर्शः स्नात्वा पुण्ड्रं
 मृदा कुर्यादित्यादिकालभेदेनोभयविधस्यापि तस्य व्यवस्थापितत्वादिति
 वाच्यम् । तद्वाक्यशेषे सर्वपापापनुत्तय इत्युक्तत्वेन तद्विधेस्तत्कामपर-
 त्वात् । नापि मृत्तिका चन्दनमित्यादि तद्द्रव्यादिविधायके वाक्ये

नित्यं सदा यावदायुर्न कदाचिदतिक्रमेत् ।
 इत्युक्त्याऽतिक्रमे दोषश्रुतेरत्यागचोदनात् ॥
 फलाश्रुतेर्विष्णया च तन्नित्यमिति कीर्तितम् ।

इतिकालमाधवोदाहृतनित्यविधित्वघटकाष्टकान्यतमस्य सदापदस्य सत्त्वान्नित्यविधित्वमपि तत्राव्याहृतमेवेति सांप्रतम् । स्नात्वेत्याद्युक्तवाक्ये किमुक्तोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणे सकृदनुष्ठिते सर्वपापापनुत्तिरुत यावज्जीवमित्याशङ्काशमनार्थं मृत्तिकेत्याद्युदाहृतवाक्यस्थसदापदस्याऽऽकाङ्क्षितत्वेनैवमेतद्वाक्येऽपि यथाकालमित्युक्तेः । काऽसौ कालव्यवस्थेत्यपेक्षार्यां तत्पूरकस्नात्वेत्यादितद्यवस्थापकापेक्षितत्वेन च नष्टाश्वदग्धरथन्यायेनाग्निहोत्रं जुहोति यवागूं पचतीत्यादिवत्परस्परापेक्षितत्वेनैकवाक्यतया काम्यविधिपरताया एवोभयत्रापि पर्यवसन्नत्वात् । तस्मात्पुराणवाक्यत्वस्योभयत्रापि तुल्यत्वान्माधवोक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र एवाखिलैर्ब्राह्मणैर्नित्यत्वेन त्रिकालमपि धार्य उताऽऽचाररत्नोक्तो भास्मस्तिर्यक्त्रिपुण्ड्र एव तथेति विशयः स्पष्ट एव । तत्राऽऽचाररत्नकृदपेक्षया माधवस्य पूज्यतायाः सर्वसंमतत्वादाद्यपक्ष एव श्रेयानिति प्राप्ते ब्रूमः—

सत्यं माधवाचार्याणामाचाररत्नकृदपेक्षयाऽधिकपूज्यत्वं तथाऽपि तु नेदं तदीयं वचनमूर्ध्वपुण्ड्रविधायकम् । किं तु ब्रह्मपुराणस्थमेव । तद्वादाचाररत्नकर्तुरपि तदपेक्षया जघन्यत्वमपि । परं तु तिर्यग्भस्मत्रिपुण्ड्रविधायकवाक्यमपि नैवैतदीयमपि तु सूतसंहितास्थमेव । सा च स्कन्दपुराणान्तर्गतेति निर्विवादम् । तत्रोभयत्रापि पुराणत्वेन साम्येऽप्यूर्ध्वपुण्ड्रधारणविधायकवाक्ये निरुक्तनित्यविधित्वघटकपदाभावात्प्रत्युत श्यामं शान्तिकरमित्यादौ शान्त्यादिफलस्याङ्गुष्ठः पुष्टिद् इत्यादौ पुष्ट्यादिफलस्य च कण्ठत एवोक्तत्वात्तथा प्रयोगपारिजाते यथाकामं श्यामारक्तपीतश्वेतान्यतममृत्तिकया यथाकाममङ्गुष्ठतर्जनीमध्यमानामिकान्यतमाङ्गुल्येति तथैव प्रयोगात्तस्य स्फुटमेव काम्यत्वम् । वेदमार्गैकनिष्ठानामित्यादिभास्मस्तिर्यक्त्रिपुण्ड्रधारणविधायकसूतसंहितावाक्ये तु फलाश्रुतिलक्षणनित्यविधित्वघटकसत्त्वात्स्फुटमेवास्य ब्राह्मणत्वावच्छेदेन त्रिकालमपि नित्यविधितयाऽवश्यानुष्ठेयत्वमिति । यत्तु आचाररत्नीयमेव व्यासवचनमूर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्यान्त्रिपुण्ड्रं भस्मना तथेति । चन्दनेनोभयं कुर्यान्न तिर्यग्गोपिचन्दनमिति, तदपि पूर्वोक्तस्नात्वेत्यादित्रिविधकाम्यपुण्ड्रेतिकर्तव्यताविधायकमेवातो नास्य नित्यत्वाधायकत्वम् । किं च वेदमार्गैकनिष्ठानां वेदोक्तेनैव वर्त्मनेत्युक्तत्वान्द्वास्मस्तिर्यक्त्रिपुण्ड्रस्य वैदिकत्वमपि सूचितम् ।

तस्मात्—वेदमार्गेकनिष्ठस्तु मोहेनाप्यङ्कितो यदि ।

पतत्येव न संदेहस्तथा पुण्ड्रान्तरादपि ॥ इति ।

वेदोक्तेनैव मार्गेण भस्मनैव त्रिपुण्ड्रकम् ।

धूलनं नाऽऽचरिष्यन्ति पाखण्डोपहता जनाः ॥

इति च पुण्ड्रान्तरस्य निन्दितत्वाच्च यावद्ब्राह्मणानां त्रिकालं भस्म-
नैव वैदिकवर्त्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्राद्यावश्यकमेव नित्यतद्धारणविधाना-
दिति सिद्धान्तः ।

एवं तर्हि माधवाचार्यैरयं कुतो नोदाहृतोऽसावाचारकाण्डे तिलकप्र-
करण इति चेत्सत्यम् । श्रीमद्भिर्भगवत्पादैरित्यादिना महता प्रबन्धेन
पुरुषार्थप्रबोधकृतैवास्य दत्तोत्तरत्वादग्निहोत्रादेरपि तैरग्रे वक्ष्यमाणत्वेन
तद्देव श्रुत्यादिषु शतधा प्रसिद्धस्यास्य सिद्धवत्कारेणैव सूचितत्वाच्च ।
किं च यथा पूर्वमीमांसाभाष्यकारैर्भगवद्भिः शबरस्वामिचरणैश्चोदना-
लक्षणोऽर्थो धर्म इतिद्वितीयसूत्रभाष्ये चोदनेति क्रियायाः प्रवर्तकं
वचनमिति चोदनापदार्थं विधित्वेन कथयद्भिर्निषेधोऽपि मनसि निहित
एव । नो चेदग्निहोत्रं जुहुयादित्यादीनामिष्टसाधकानां विधीनामेव
धर्मलक्षकत्वं तत्संमतं स्यान्न सुरां पिबेदित्यादीनामिष्टपरिहारकार-
काणां निषेधानां तु तन्नैव स्यात्तत्तु सुतरामनुचितम् ।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।

नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

इत्यादिश्रुतिस्मृतिसहस्रैर्विध्यनुष्ठानापेक्षया निषेधपरिपालनस्यैव
सर्वत्र प्राधान्येन प्रतिपादितत्वात्सकलशिष्टशिरोमणिभिस्तथैवाऽऽवृत्त-
त्वाच्च । तद्देवत्रापि ब्राह्मणानां त्रिकालिकनित्यत्वेन श्रुत्यादिप्रसिद्धं
भास्मतिर्यक्त्रिपुण्ड्रधारणं मुख्यं बुद्धौ निधायैव काम्यमुक्तपौराणमा-
र्तिकप्रातःसंध्याप्राक्कालिकोर्ध्वपुण्ड्रधारणं चातुर्वर्ण्यसाधारणममुख्यमे-
वोक्तमिति नैतावताऽस्यैव प्राधान्यं नाप्युक्तभस्मधारणस्याप्राधान्यम-
नित्यत्वं वा न वा कालान्तरविषयत्वमपि । अन्यथा न कलञ्जं भक्षयेदि-
त्यादिनिषेधशास्त्रवन्निखिलभस्मधारणविधायकश्रुतिस्मृतिपुराणवचन-
सहस्राणामप्रामाण्यापत्तेर्दुर्वारत्वात् । न चोक्तदृष्टान्ते मानाभावः ।
तत्तात्पर्यानवबोधादिति वाच्यम् । प्राचीनाचार्यचक्रवर्तिचरणवचस एव
तत्र प्रमाणचूडामणित्वात् । तदुक्तं संक्षेपशारीरके— PG

प्रवर्तकं वाक्यमुवाच चोदनां निधाय बुद्धौ वचनं निवर्तकम् ।

द्वितीयसूत्रे भगवान्बहुश्रुतो न चोदनाद्वित्वनिवारणाय तत् ॥इति॥

व्याख्यातं चेदं मधुसूदनसरस्वत्याचार्यैः—प्रवर्तकमिति । द्वितीयसूत्रे चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म इति सूत्रे । भगवान्बहुज्ञः । तत्र हेतुर्बहुश्रुतः । अत एव सहस्रशाखा अर्थतोऽपि वेत्ति शबरस्वामीत्यैतिह्यम् । चोदनानां प्रवर्तकत्वनिषेधकत्वरूपेण द्वित्वस्य द्वैविध्यस्य निवारणाय न तद्भाष्यमित्यर्थः । भाष्यकारो हि निवृत्तिनिष्ठामपि चोदनां बुद्धौ निधायैव वेदे निषेधपरमपि वाक्यमस्तीति जानन्नेव प्रक्रान्तधर्मनिरूपणाय प्रवृत्तस्तत्प्रमाणं प्रवर्तकं वाक्यं चोदनामुवाच । न तु निवृत्तिमात्रनिष्ठां चोदनां निवारयितुमन्यथोक्तविधया निषेधवाक्यस्य प्रवृत्तिनिष्ठत्वासिद्धेस्तस्य तदज्ञानप्रसङ्गान्न बहुश्रुतत्वं संभवेदिति भाव इति । अपि च सूतसंहिताटीकायां तत्तत्प्रघट्टके भस्मोद्भूलनतिर्यक्त्रिपुण्ड्रधारणस्य ब्राह्मणादीनां त्रैकालिकनित्यविधित्वादिना तैर्भूरितरं प्रपञ्चितत्वादिह व्यवहारवत्तदनुक्तिरिति ध्येयम् । न च सूतसंहिताव्याख्याता माधवोऽन्य एवेति वाच्यम् । प्रमाणाभावात् । नापि वागीशाद्याः सुमनस इति यस्य निःश्वसितं वेदा इति च तत्र तन्मुद्रारूपमङ्गलपद्याद्यभावोच्चीतानुमानमेव तत्र प्रमाणमिति सांप्रतम् । पञ्चदशीवार्तिकसारादिषु तदीयत्वेन सर्वशिष्टेष्टेषु ग्रन्थेषु तदभावेन नमः श्रीशंकरानन्देत्यादिमङ्गलान्तरस्यैव सत्त्वेन चोक्तव्याप्तेर्व्यभिचारात् । प्रत्युत पूर्वमीमांसाधिकरणमालाव्याख्याने तदीय एव सर्ववर्णाश्रमानुग्रहाय पुराणसारपराशरस्मृतिव्याख्यानादिना स्मार्तो धर्मः पूर्वं व्याख्यात इति ग्रन्थे पुराणसारशब्दस्य निर्मत्सरशुद्धवैदिकसूरीश्वरैः स्वारसिकविचारे विरच्यमाने सूतसंहितायामेव यौगिकशक्तिसत्त्वाच्च । ननु सूतसंहिताटीकारम्भे—

प्रणमामि परं ब्रह्म यतो व्यावृत्तवृत्तयः ।

अविचारसहं वस्तु विषयी कुर्वते धियः ॥

इति मङ्गलश्लोकं विलिख्य—

श्रीमत्काशीविलासाख्यक्रियाशक्तीशसेविना ।

श्रीमद्भयम्बकपादाब्जसेवानिष्णातचेतसा ॥

वेदशास्त्रप्रतिष्ठात्रा श्रीमन्माधवमन्त्रिणा ।

तात्पर्यदीपिका सूतसंहिताया विधीयते ॥

इति प्रतिज्ञातम् । तत्राऽऽद्यपद्यगतविशेषणद्वयेन तत्कर्तुः काशीवि-
लासाद्यभिधगुर्वन्तरद्वयं प्रतीयते । प्रकृतमाधवस्य तु गुरुः—

सोऽहं प्राप्य विवेकतीर्थपदवीमाम्नायतीर्थं परं
मज्जन्सज्जनसङ्गतीर्थनिपुणः सद्वृत्ततीर्थं श्रयन् ।
लब्धामाकलयन्प्रभावलहरीं श्रीभारतीतीर्थतो
विद्यातीर्थमुपाश्रयन्हृदि भजे श्रीकण्ठमव्याहतम् ॥

इति पाराशरमाधवीयाचारकाण्डे तदीयपद्याद्विद्यातीर्थस्तद्गुरुभार-
तीतीर्थ एवेति तत्र तत्र सुप्रसिद्धमेव । तस्मादेवं विगानादयमन्य
एवेति चेन्न । नमः श्रीशंकरानन्दगुरुपादाम्बुजन्मन इति पञ्चदश्याद्यप-
द्यानुसारेण तेषां विद्यातीर्थभारतीतीर्थतरशंकरानन्दाभिधगुर्वन्तरप्रसि-
द्धिवदुक्तगुरुद्वयसंभवात्स सर्वज्ञो हि माधव इतिसार्वश्यप्रयोजकत-
त्तद्विद्याग्रहणार्थं तत्तद्गुर्वपेक्षौचित्याद्वेदशास्त्रप्रतिष्ठातृत्वपूर्वकमन्त्रित्वस्य
प्रकृतमाधवतोऽन्यत्र सुदुर्लभत्वाच्चेत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्त्या । तस्मान्मा-
धवाचार्यैः पराशरस्मृत्याचारकाण्डव्याख्यानेऽनुक्तत्वाद्ब्राह्मणैः प्रातः-
संध्यायां सर्वथा भस्मोद्धूलनं तिर्यङ्त्रिपुण्ड्रधारणं च नैव कर्तव्यमि-
त्युन्मत्तप्रलपितवदुपेक्षणीयमेवेति दिक् ।

ननु भवत्वेवं माधवोक्तोर्ध्वपुण्ड्रव्यवस्था तथाऽपि गोपीचन्दनोपनि-
षदपराभिधवासुदेवोपनिषदूर्ध्वपुण्ड्रधारणं ब्राह्मणानां नित्यत्वेन यत्स-
प्रपञ्चं विहितं तस्य का गतिरिति चेत्सत्यम् । सा तावदेवं प्रासिद्धा—
नमस्कृत्य भगवन्तं नारदः सर्वेश्वरं वासुदेवं पप्रच्छ श्रीभगवन्नूर्ध्वपुण्ड्र-
विधिं द्रव्यमन्त्रस्थानादिसहितं मे ब्रूहीति तं होवाच भगवान्वासुदेवो
वैकुण्ठस्थानोद्धवं मम प्रीतिकरं मद्भक्तैर्ब्रह्मादिभिर्धारितं विष्णुचन्दनं
वैकुण्ठस्थानादाहृत्य द्वारकायां मया प्रतिष्ठितं चन्दनकुङ्कुमादिसहितं
विष्णुचन्दनं ममाङ्गे प्रतिदिनमालिप्तं गोपीभिः प्रक्षालनाद्गोपीचन्दन-
माख्यातं मदङ्गलेपनं पुण्यं चक्रतीर्थान्तः स्थितं चक्रसमायुक्तं पीतवर्णं
मुक्तिसाधनं भवति । अथ गोपीचन्दनं नमस्कृत्योद्धृत्य

गोपीचन्दन पापघ्न विष्णुदेहसमुद्भव ।

चक्राङ्कित नमस्तुभ्यं धारणान्मुक्तिदो भव ॥

इति प्रार्थयन्, इमं मे गङ्गेति जलमादाय

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।

यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥

इति मर्दयेत् । अतो देवा अवन्तु न इत्येताभिर्क्रग्भिर्विष्णुगायत्र्या
च त्रिवारमभिमन्त्र्य

शङ्खचक्रगदापाणे द्वारकानिलयाच्युत ।

गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागतम् ॥

इति मां ध्यात्वा गृहस्थो ललाटादिद्वादशस्थलेष्वनामिक्याऽङ्गुल्या
विष्णुगायत्र्या केशवादिद्वादशनामभिर्वा धारयेत् । ब्रह्मचारी वान-
प्रस्थो वा ललाटकण्ठहृदयबाहुमूलेषु वैष्णव्या गायत्र्या कृष्णादि-
नामभिर्वा धारयेत् । यतिस्तर्जन्या शिरोललाटहृदयेषु प्रणवेन धार-
येत् । ब्रह्मादयस्त्रयो मूर्तयस्त्रिस्रो व्याहृतयस्त्रीणि च्छन्दांसि त्रयो
वेदास्त्रयः स्वरास्त्रयोऽग्नयो ज्योतिष्मन्तस्त्रयः कालास्त्रिस्रोऽवस्थास्त्रय
आत्मानः पुण्ड्रास्त्रय ऊर्ध्वाकारोकारमकारा एते सर्वे प्रणवमयोर्ध्व-
पुण्ड्रत्रयात्मकास्तदेतदोमित्येकधा समभवत्परमहंसो ललाटे प्रणवेनै-
कमूर्ध्वपुण्ड्रं धारयेत्तत्र दीपप्रकाशं स्वात्मानं पश्यन्ब्रह्मैवाहमस्मीति
भावयन्योगी मत्सायुज्यमाप्नोति । अथान्यो हृदयस्थोर्ध्वपुण्ड्रमध्ये वा
हृदयकमलमध्ये वा स्वात्मानं भावयेत् ।

तस्य मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता ।

नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा ॥

नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ।

तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ॥

ऊर्ध्वमभ्यस्य पुण्ड्रस्थं हृत्पद्मे तु ततोऽभ्यसेत् ।

क्रमादेवं स्वमात्मानि भावयेन्मां परं हरिम् ॥

एकाग्रमानसो यो मां ध्यायते हरिमव्ययम् ।

हृत्पद्मे स्वमात्मानं स मुक्तो नात्र संशयः ॥

सद्रूपमद्वयं ब्रह्म मध्याद्यन्तविवर्जितम् ।

स्वप्रभं सच्चिदानन्दं भक्त्या जानाति चाव्ययम् ॥

एको विष्णुरनेकेषु जङ्गमस्थावरेषु च ।

अनुस्यूतो वसाम्यात्मा भूतेष्वहमवस्थितः ॥

तैलं तिलेषु काष्ठेषु वह्निः क्षीरे घृतं यथा ।

गन्धः पुष्पेषु भूतेषु तथाऽऽत्माऽवस्थितोऽस्म्यहम् ॥

यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं वृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।

अन्तर्बाहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥

देहादिरहितं सूक्ष्मं चित्प्रकाशं निरञ्जनम् ।
 सर्वानुस्यूतमद्वैतं परं ब्रह्म भवाम्यहम् ॥
 ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये हृदये चिन्तयेद्भ्रुरिम् ।
 गोपीचन्दनमालिप्य तत्र ध्यात्वाऽऽप्नुयात्परम् ॥
 ऊर्ध्वदण्डी ऊर्ध्वरेता ऊर्ध्वपुण्ड्रोर्ध्वयोगवित् ।
 स ऊर्ध्वपदमाप्नोति यतिरूर्ध्वचतुष्कवान् ॥
 इत्येन्निश्चितं ज्ञानं मद्भक्त्या सिध्यति स्वयम् ।
 नित्यमेकाग्रभक्तिस्तु गोपीचन्दनधारणात् ॥
 ब्राह्मणानां तु सर्वेषां वैदिकानामनुत्तमम् ।
 गोपीचन्दनवारिभ्यामूर्ध्वपुण्ड्रं विधीयते ॥
 गोपीचन्दनाभावे तु तुलसीमूलमृत्तिकाम् ।
 मुमुक्षुर्धारयेन्नित्यमपरोक्षात्मसिद्धये ॥
 गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो देहस्थानि च तस्य यः ।
 अस्थीनि चक्ररूपाणि भवन्त्येव दिने दिने ॥

अथ रात्रावग्निहोत्रभस्मनाऽग्नेर्भस्मासीदं विष्णुस्त्रीणि पदेति मन्त्रै-
 र्विष्णुगायत्र्या प्रणवेनोद्धूलनं कुर्यात् । एवं विधिना गोपीचन्दनं धार-
 येत् । यस्त्वेतदधीते स सर्वमहापातकेभ्यः पूतो भवति । पापबुद्धिस्तस्य
 न जायते सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति सर्वैर्यज्ञैर्याजी भवति सर्वैर्देवैः पूज्यो
 भवति । नारायणे मय्यचलभक्तिश्च वर्धते सम्यग्ज्ञानं लब्ध्वा विष्णुसा-
 युज्यमाप्नोति नच पुनरावर्तते नच पुनरावर्तत इत्याह भगवान्वासुदेवः ।
 यस्त्वेतदधीते सोऽप्येवमेव भवतीत्यो सत्यम् ।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ।
 तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदमि-
 तीति ।

अत्र नमस्कृत्येत्यादिप्रथमखण्डप्रबोधितप्राशस्त्यस्य तत्रत्यमुक्तिसा-
 धनपदेन, अथ गोपीचन्दनं नमस्कृत्येत्यादिना द्वितीयखण्डे प्रपञ्चितेति-
 कर्तव्यताकस्य तत्रत्यमुक्तिपदेन गृहस्थो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो वा यति-
 धारयेदितिप्रस्तुतयथोक्तगोपीचन्दनोर्ध्वपुण्ड्रधारणविधेर्मत्सायुज्यमाप्नो-
 तीतिवाक्येन च निरुक्तकाम्यत्वमेव सिध्यति न तु नित्यत्वम् । एवम-
 थान्य इति तृतीयखण्ड ऊर्ध्वदण्डीत्यादितत्रत्याग्निमवाक्यानुसारेणान्य-
 शब्दितविविदिषोः परमहंसस्यैतद्धारणेनाऽऽप्नुयात्पदमित्यूर्ध्वपदमाप्नो-

तीति च फलश्रवणादपि निरुक्तविधेस्तथात्वम् । तद्वत्तत्रैव—इत्येतन्नि-
श्चितं ज्ञानं मद्भक्त्या सिध्यति स्वयमित्युत्तरवाक्येणोर्ध्वयोगविदिति
पूर्वोक्तज्ञानस्य भक्तिसाध्यत्वमभिधाय नित्यमेकाग्रभक्तिस्तु गोपीचन्दन-
धारणादित्युत्तरार्धेन सततैकाग्रभक्तिसाधनत्वं गोपीचन्दनधारणस्यो-
क्त्वाऽत एव ब्राह्मणानां त्वित्याद्यग्रिमवाक्येण ब्राह्मणत्वावच्छेदेन
तद्धारणविधानान्यथानुपपत्त्याऽपि तथात्वमेव । किं चाग्रे गोपीचन्द-
नामाव इति वाक्ये तु तत्स्फुटतरमेव । अवशिष्टतृतीयखण्डवाक्यं तु
तस्यैवार्थवादः । तत्रापि

अभ्यङ्गे सूतके रात्रौ विवाहे पुत्रजन्मनि ।

गोपीचन्दनसंपर्को हन्ति सप्त कुलानि वै ॥

इति वचनेन रात्रौ गोपीचन्दनधारणस्य निषिद्धत्वात्तत्राऽऽह—
अथेत्यादिनोद्भूलनं कुर्यादित्यन्तेन । एवं विधिनेत्याद्या समाप्तिस्तु निरु-
क्तविध्युपसंहारः प्रकृतोपनिषदस्तद्विष्णोरित्यादिक्रमद्वयस्य च पाठफल-
मिति समुदाहृतोपनिषदस्तात्पर्यम् । तेन कात्र नित्यविधित्वगन्धोऽपीति
ध्येयं धीरैः । एवं प्रयोगपारिजातेऽप्यूर्ध्वपुण्ड्रप्रकरणे यथाकामं यथाकाम-
मितिपदप्रयोगादस्य काम्यत्वं स्पष्टमेवेष्टम् । न च तत्र होमोत्तरं भस्म-
त्रिपुण्ड्रधारणं प्रकृत्य शैवदीक्षायुक्तस्तु संध्यात्रयेऽपि त्र्यम्बकमन्त्रेण
जलेन मिश्रयित्वा बिभृयाद्दीक्षाहीनस्तु मध्याह्नात्प्राक्त्र्यम्बकमन्त्रेण
जलेन मिश्रयित्वा बिभृयात्तदुपरि जलवर्जं बिभृयादित्युक्तेस्तेन त्रिसंध्य
भस्मधारणविधेः शिवदीक्षापदध्वनितं तान्त्रिकत्वमेव न तु शुद्धवैदिकत्व-
मिति वाच्यम् । तत्र भस्माभिमन्त्रणं प्रकृत्य पुनरिष्टमूलमन्त्रेणाष्टोत्तरश-
तवारमष्टाविंशतिवारमष्टवारं वाऽभिमन्त्र्यावगुण्ठ्य स्वमन्त्रेण दशदिक्षु
दिग्बन्धं कृत्वा तद्भस्म दक्षिणहस्ते किञ्चिद्गृहीत्वा मस्तक ईशानेन मुखे
तत्पुरुषेण वक्षोदेशेऽघोरेण गुह्यदेशे वामदेवेन पादद्वये सद्योजातेन सर्वाङ्गे
प्रणवेन निक्षिप्येति पूर्वमुपक्रान्ततन्त्रप्रधानवेदोपसर्जनभस्मधारणवि-
धेरेवाग्रे शैवेत्यादिग्रन्थेन व्यवस्थापितत्वात् । तन्त्रप्राधान्यस्य त्वत्र
दिग्बन्धनादिना स्फुटत्वाच्च । ततोऽस्य शुद्धवैदिकस्य न तेन
सह विरोधोऽपि । नन्वथापि भस्मत्रिपुण्ड्रविधेर्मोक्षादिकामाधिका-
रिविषयकत्वं तु नैवास्ति । न चास्य नित्यवैदिककर्मत्वेनैव तद्य-
थाऽऽग्रे फलार्थं निमित्ते छायागन्धावनूत्पद्येते एवं धर्मं चर्यमाणस्यार्था
अनूत्पद्यन्त इत्यापस्तम्बोक्तेरन्तःकरणशुद्ध्यादिद्वारा तत्साधकत्वमपीति

वाच्यम् । तथात्वेऽस्यापि काम्यत्वात्तत एव तस्यापि नित्यत्वाच्चेति चेन्न । भस्मधारणविधेः श्रुत्यैव नित्यत्वस्य मोक्षकामुकविषयकत्वस्य च ब्राह्मणत्वावच्छेदेन कण्ठत एवोक्तत्वात् । तथाचाऽऽम्नातं बृहज्जाबालोपनिषदि—प्रातर्मध्याह्ने सायंतनेऽपि काले विधिवद्भस्मधारणमप्रमादेन कार्यं प्रमादात्पतितो भवेत् । ब्राह्मणानामयमेव धर्मोऽयमेव धर्मोऽयमेव धर्म इति । इति नित्यविधित्वम् । मोक्षफलकामुकस्यैतदावश्यकत्वं चाऽऽम्नायते शिवाथर्वशिरसि—व्रतमेतत्पाशुपतम् । अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योभेति भस्म सर्व* ह वा इदं भस्म मन इत्येतानि चक्षूंषि भस्मान्यग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वा निमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् । तस्माद्ब्रतमेतत्पाशुपतं पशुपाशविमोक्षणायेति । उपबृंहितं चैतत्सूतसंहितायां शिवमाहात्म्यखण्डे द्वितीयाध्याये—

पुनः साक्षाच्छिवज्ञानसिद्धयर्थं मुनिपुंगवाः ।
 अग्निहोत्रसमुत्पन्नं भस्माऽऽदायाऽऽदरेण तु ॥
 निधाय पात्रे शुद्धे तत्पादौ प्रक्षाल्य वारिणा ।
 द्विराचम्य मुनिश्रेष्ठाः सपवित्राः समाहिताः ॥
 ओमापः सर्वमित्येतं मन्त्रमुच्चार्य भक्तितः ।
 ध्यात्वा विष्णुं जलाध्यक्षं गृहीत्वा भस्म वारिणा ॥
 विमृज्य मन्त्रैर्जाबालैरग्निरित्यादिसप्तभिः ।
 समाहितधियः शुद्धाः शिवं ध्यात्वा शिवामपि ॥
 समुद्धृत्य मुनिश्रेष्ठा आपादतलमस्तकम् ।
 सितेन भस्मना तेन ब्रह्मभूतेन भावनात् ॥
 ललाटे हृदये कुक्षौ दोर्द्वे च सुरोत्तमाः ।
 त्रिपुण्ड्रधारणं कृत्वा दोर्द्वे च शिवात्मकम् ॥
 एवं कृत्वाऽत्र तं देवा अथर्वशिरसि स्थितम् ।
 शान्ता दान्ता विरक्ताश्च त्यक्त्वा कर्माणि सुव्रताः ॥
 बालाग्रमात्रं विश्वेशं जातवेदःस्वरूपिणम् ।
 हृत्पद्मकर्णिकामध्ये ध्यात्वा वेदविदां वराः ॥
 सर्वज्ञं सर्वकर्तारं समस्ताधारमद्भुतम् ।
 प्रणवेनैव मन्त्रेण पूजयामासुरीश्वरम् ॥ इति ।

अत्र टीका माधवी—ओमापः सर्वमिति । ओमापो ज्योती रसोऽसृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमित्येतं मन्त्रमित्यर्थः । सर्वशब्देनार्थद्वारा ज्योति-

रादयः शब्दा गृह्यन्ते । अग्निरित्यादीति । सप्तभिरिति शब्दपरो निर्देशः ।
आदिशब्देन जलमिति स्थलमितीत्यादयो गृह्यन्ते । ब्रह्मभूतेनेति । ब्रह्म-
त्वेन भाव्यमानतया ब्रह्मीभूतेनेत्यर्थः । बालाग्रमात्रमिति । अतिसूक्ष्मे
दहराकाश उपलभ्यमानत्वादस्य बालाग्रमात्रत्वम् । जातमाविर्भूतं वेदो-
ज्ञानं तदेव स्वरूपं तद्वन्तम् । यद्वा चरमसाक्षात्कारवृत्त्यभिव्यक्तेः सका-
रणं संसारं दहतीति जातवेदा इत्यग्नित्वारोपः । श्रूयते हि—

बालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातवेदं वरेण्यम् । इतीति ।

अत्र विधिस्तु रात्रिसत्रन्यायेनैवोन्नेयः । त्रिपुण्ड्रादिधारणेतिकर्त-
व्यताऽपि श्रूयते कालाग्निरुद्रोपनिषदि—तदाग्नेयं भस्म सद्योजातमिति
पञ्चब्रह्ममन्त्रैः परिगृह्य, अग्निरिति भस्मेत्यनेन चाभिमन्त्र्य मा नस्तोक
इति समुद्धृत्य जलेन संसृज्य त्रियायुषमिति शिरोललाटवक्षस्कन्धेषु
त्रियायुषैस्त्रियम्बकैस्तिर्यकृत्सिन्धो रेखाः कुर्वीत । व्रतमेतच्छांभवं सर्ववे-
देषु वेदवादिभिरुक्तं भवति । तस्मात्तत्समाचरेन्मुमुक्षुरपुनर्भवायेति ।
प्रयोगोऽप्ययमेवाऽऽविष्क्रियेताग्ने । श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे तु श्रुतिरेव बली-
यसीत्युक्तत्वात् । यतस्तत्र शिरोऽनुक्त्वा कुक्षिर्नाभिर्वोक्त्वा । यद्वा
श्रीगुरुचरणकमलैः श्रौतं शिरोऽङ्गं यतिकर्तृके तद्धारणे स्थानं स्मार्ता
नाभिस्तु तदितरब्राह्मणकर्तृक इत्यविरोध आज्ञप्तः स एव ज्यायान् ।
अग्निरिति भस्मेत्यादयः सप्त मन्त्रास्तु विसृज्य मन्त्रैर्जाबालैराग्निरित्या-
दिसप्तभिरित्युक्तेर्बृहज्जाबालद्वितीयब्राह्मणस्था एवाथर्वशिरसि तु परिशि-
ष्टत्वेन पठिता इति ज्ञेयम् । लघुजाबालेऽनुपलब्धेः । एतेन बृहज्जाबालो-
पनिषन्न भवति । किं त्वागमापराभिधं तन्त्रमेवेतिवादिनः प्रत्युक्ताः ।
नन्वेवमप्याचारार्के—

सृद्धस्म चन्दनं प्रोक्तं तोयं चैव चतुर्थकम् ।

स्नात्वा पुण्ड्रं सृदा कुर्याच्छ्रुत्वा चैव तु भस्मना ॥

देवानभ्यर्च्य गन्धेन जलमध्ये जलेन तु ।

इति पारिजातोक्तेरूर्ध्वपुण्ड्रं सृदा कुर्यात्प्रातःस्नानोत्तरं ब्राह्मणो
नित्यमिति प्रतीयते । तथा भद्रोजिदीक्षिताङ्घ्रिकेऽपि—

ऊर्ध्वपुण्ड्रसृजुं सौम्यं कनिष्ठाङ्गुलिवत्स्मृतम् ।

नासादिकेशपर्यन्तं प्रयत्नाद्धारयेद्द्विजः ॥

इति वचनादपि तथेति चेन्न । आचारार्कीयपारिजातवचसः समुदा-
हृतपारिजातवचसैव दत्तोत्तरत्वाद्विधानवाक्यतात्यर्थस्य प्रयोगवाक्यैकाय-
त्तत्वादन्यथा ग्रन्थकर्तुरेव भ्रान्तत्वापत्तेर्दुर्वारत्वाच्च । [* न च स्नात्वा पुण्ड्रं
सृदेत्यादिप्राक्त्वदुदाहृताचाररत्नीयाश्वलायनवचश्चरमचरणे सर्वपापा-
पनुत्तय इतिपाठादस्तु तस्य काम्यत्वं तथाऽपि प्रकृताचारार्कीयपारिजा-
तवाक्ये तु जलमध्ये जलेन त्विये(त्ये?)व चरमचरणपाठात्कथं न तस्य
नित्यत्वमपीति वाच्यम् । किमिदं वाक्यं पारिजातीयत्व(त्वे)नोक्तपुण्ड्रस्य
नित्यत्वं विधित्सति उत स्मृत्यन्तरत्वेनेति विकल्प्याऽऽद्ये दत्तोत्तरत्वमन्त्ये
फलाश्रुतेरेव नित्यत्वसाधकत्वेन तस्याः षट्कर्मा ब्राह्मण इतिप्रवादेऽपि
तत्र यथा याजनाध्यापनप्रतिग्रहाणां काम्यत्वमेवैवं प्रकृतेऽप्यूर्ध्वपुण्ड्रस्य
मार्तिकस्योक्तविशेषवचनैः काम्यत्वमेवेति तदितरपरत्वात् ।] दीक्षितवा-
क्यस्य तु तैरेवाग्रिमग्रन्थे तद्वैदिकमार्गपरिभ्रष्टविषयमिति व्यवस्थापि-
तत्वान्नैवात्रावकाशः । एतेन चक्रादिचिह्नस्य तु तत्कैमुतिकन्यायसि-
द्धम् । तदाह तत्रैवाऽऽश्वलायनः—

शिवकेशवयोश्चिह्नांश्चक्रशूलादिकान्द्विजः ।

न धारयेत मतिमान्वैदिके षर्त्मनि स्थितः ॥ इति ।

पृथ्वीचन्द्रोदयेऽपि—

यस्तु संतप्तशङ्खादिलिङ्गाच्चिह्नतनुर्नरः ।

स सर्वयातनाभोगी चण्डालो जन्मकोटिषु ॥

द्विजं तु तप्तशङ्खादिलिङ्गाच्चिह्नतनुं नरः ।

संभाष्य रौरवं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ इति ।

बृद्यन्नारदीये—शङ्खचक्राद्यङ्कनं च गीतनृत्यादिकं तथा ।

एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद्विजन्मनः ॥

शङ्खचक्रं सृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा ।

स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥

यथा श्मशानजं काष्ठमनहं सर्वकर्मसु ।

तथा चक्राङ्कितो विप्रः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥ इति ।

विष्णुस्मृतावपि च निन्दितत्वाद्गोपीचन्दनचक्राद्यङ्कधारणस्यापि तप्त-
चक्राद्यङ्कधारणसमाननिन्द्यत्वार्थमेवेह तद्वचनोपन्यासः प्रासङ्गिक इत्य-

विनयः क्षन्तव्य एव सारज्ञधुरंधरैर्धीरैः । [* वस्तुतस्तु स्नात्वा पुण्ड्रं सृदे-
 त्यादिप्रागुक्ताचाररत्नीयाश्वलायनवचश्चरमचरणे सर्वपापापनुत्तय इति
 पाठादस्तु तस्य काम्यत्वं तथाऽपि प्रकृताचारार्कीयपारिजातवाक्ये तु
 जलमध्ये जलेन त्वित्येव तत्पाठात्तस्य नित्यत्वमेव । फलाश्रुतेः । एवं च
 स्नानकालस्य सर्वत्र धर्मशास्त्रेष्वरुणोदय एव विहितत्वात्तदानीं गोपीच-
 न्दनादिसृदैवोर्ध्वपुण्ड्रधारणं कार्यं सूर्योदयोत्तरं तु हुत्वा चैव तु भस्म-
 नेति वचनाच्छ्रौतभस्मनैव तिर्यक्त्रिपुण्ड्रधारणमेवेति सर्वं श्रेयः । नच
 त्रिसंध्यभस्मधारणस्मृतिविरोधादुदितानुदितहोमवद्यवस्थितः षोडशी-
 ग्रहणाग्रहणवदैच्छिको वाऽस्तु विकल्प इति वाच्यम् । तस्याष्टदोषदु-
 ष्टत्वेनागतिगतिकत्वात्प्रकृते तु सूर्योदयोत्तरं देववशात्स्नाते तद्वाक्यविहित-
 प्रातःसंध्यादित्रिसंध्यभस्मधारणविधिसावकाशत्वाच्च । नापि बृहज्जाबा-
 लीयोदाहृततादृक्श्रुतेरौदुम्बर्यधिकरणन्यायेन परमप्रबलायाः का गति-
 रिति सांप्रतम् । तस्याः सुप्रसिद्धत्रिदण्डिवैष्णववच्छांभवमतविशेषनि-
 ठनैलकण्ठभाष्यमूलीभूतदीक्षाविशेषपरत्वेन पूर्वोत्तरमीमांसैकनिरताना-
 द्रणीयत्वात् । अयं हि तस्याः संक्षेपतोऽर्थानुक्रमः—प्रथमं ब्राह्मणद्वयेन
 भस्ममहिमा । तृतीयेऽग्निहोत्रेतरशिवाग्निभस्मोत्पत्तिः । चतुर्थे भस्मस्ना-
 नविधिः । पञ्चमे त्रिपुण्ड्रस्तवः । तत्रैवाग्रे—

त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम् ।

इदं मुख्यं गृहस्थानां विरजानलसंभवम् ॥ इत्यादि ।

षष्ठे भस्मस्तुतीतिहासः । सप्तमाष्टमयो रुद्राक्षमाहात्म्यम् । नवमे
 पुनर्भस्मत्रिपुण्ड्रधारणादि । नवमे ब्राह्मणे द्वितीये खण्डे पुनरग्निहोत्रे-
 तरभस्मोत्पत्तिः । अथात्रैवाग्रे तद्धारणविध्याद्यभिधायोक्तं प्रातर्मध्याह्ने
 सायंतनेऽपि काले विधिवद्भस्मधारणमप्रमादेन कार्यम् । प्रमादात्पतितो
 भवेत् । ब्राह्मणानामयमेव धर्मोऽयमेव धर्मोऽयमेव धर्मः । इत्युक्त्वा
 प्रमादे प्रायश्चित्तम् । भस्मनो यद्यस्याभावस्तदा नर्यभस्म दावानलजम-
 न्यद्वाऽवश्यं मन्त्रपूतं धार्यमित्युक्तम् । तृतीयखण्डे तु—नित्यकृत्यं शौच-
 स्नानभस्मरुद्राक्षधारणान्तमुक्त्वाऽहरहः संध्यामुपासीतेत्याद्युक्त्वा शिव-
 पूजां विधाय सप्रपञ्चं काशीमाहात्म्यमभिधायोपनिषत्समाप्ता । तेनात्र
 विरुद्धांशे गुणवादत्वेनोदीरितशैवपरत्वं स्पष्टमेवेति दिक् ।] तदयं
 निर्गलितार्थः पाराशरपुराणे भगवता पराशरेण दर्शितः—

मस्मना वेदमन्त्रेण त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ।

वर्णधर्मतया प्राज्ञाः प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ म० ।

आश्रमाणां च सर्वेषां धर्मत्वेनाऽऽहुरास्तिकाः ॥ इति ।

विस्तरस्तु तत्रैव बोध्य इत्यलं पल्लवितेन ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे तिलकविधानप्रकरणम् ।

अथ भस्मधारणप्रयोगः । कर्ता त्रिसंध्यमपि प्रयतः सन्नग्निहोत्रजं
भस्म तदभावे स्मार्तादिजं वा सद्योजातमिति पञ्चब्रह्ममन्त्रैः परिगृह्या-
ग्निरिति भस्मेत्यनेन चाभिमन्त्र्य मा नस्तोक इति मन्त्रेण पूर्वोक्ताभि-
मन्त्रणार्थं स्थापितं यत्र ताम्रादिपात्रे ततः समुद्धृत्य वामहस्ते गृहीत्वा
यदि पात्राभावे वामहस्त एव संस्थाप्याभिमन्त्रितं स्यात्तदा तदुत्तरं
मा नस्तोक इति समुद्धरणमन्त्रमात्रं पठित्वा, ओमापो ज्योती
रसोऽमृतमिति जलनियन्तुब्रह्मानुसंधानपूर्वकं जलेन संसृज्यैकीकृत्य
प्रत्यक्चित्यभिन्नपरमात्मध्यानपूर्वकमापादतलमस्तकमवगुण्ठनापरनामकं
तद्विलेपनलक्षणमुद्धूलनं कृत्वा समन्त्रकपरिग्रहणादितः प्रागेव शुष्के-
णैव सषडक्षरोच्चारं तथा वा तत्कृत्वा त्रियायुषं जमदग्नेरिति ललाट
आभ्रुकुटिद्वयान्तं व्यक्तत्रिरेखात्मकं त्रिपुण्ड्रं कृत्वा कश्यपस्य त्रियायु-
षमिति वक्षसि यद्देवानां त्रियायुषमिति दक्षिणस्कन्धे तन्मे अस्तु
त्रियायुषमिति वामस्कन्धे त्रियम्बकमित्यादिना नाभौ च कृत्वा तथैव
च द्विराचम्य हस्तौ प्रक्षालयेत् । यतिस्तु त्रियायुषं जमदग्नेरित्यादित्रि-
यम्बकान्तैः पञ्चभिर्मन्त्रैः क्रमाच्छिरोललाटवक्षःस्कन्धे तत्कुर्यात् । जले
तु क्लिन्नवासाः पूर्वोक्तत्रियायुषादिना जलेनैवोमापो ज्योतिरिति मन्त्रा-
भिमन्त्रितेन त्रिपुण्ड्रमात्रधारणं कुर्यात् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे भस्मधारणप्रयोगप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथोक्तमन्त्राः सवैद्यारण्यकभाष्या लिख्यन्ते । मेधाविनः पुरुषस्य
ज्ञानोत्पादनाय महादेवसंबन्धिषु पञ्चवक्त्रेषु मध्ये पश्चिमवक्त्रप्रतिपा-
दकं मन्त्रमाह—सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे
भवे नातिभवे भवस्व माम् । भवोद्भवाय नम इति ।

सद्योजातनामकं यत्पश्चिमवक्त्रं तद्रूपं परमेश्वरं प्रपद्यामि प्राप्नोमि
तादृशाय सद्योजाताय वै नमोऽस्तु । हे सद्योजात भवे भवे तत्तज्जन्म-
निमित्तं मां न भजस्व न प्रेरयेत्यर्थः । किं तर्ह्यतिभवे जन्मातिलङ्घन-
निमित्तं भजस्व तत्त्वज्ञानाय प्रेरय । भवोद्भवाय भवात्संसारादुद्धर्त्रे
सद्योजाताय नमोऽस्तु । इति नारायणीये त्रिचत्वारिंशोऽनुवाकः ।

उत्तरवक्त्रप्रतिपादकं मन्त्रमाह—वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः
श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकर-
णाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनो-
न्मनाय नम इति ।

उत्तरवक्त्ररूपो वामदेवः । तस्यैव विग्रहविशेषा ज्येष्ठादिनामकाः ।
एते च महादेवपीठशक्तीनां वामादीनां नवानां पतयः पुरुषास्तेभ्यो
नमो नमस्कारोऽस्तु । इति नारायणीये चतुश्चत्वारिंशोऽनुवाकः ।

दक्षिणवक्त्रप्रतिपादकं मन्त्रमाह—अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोर-
तरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः । इति ।

अघोरनामको दक्षिणवक्त्ररूपो देवस्तस्य विग्रहा अघोराः सात्वि-
कत्वेन शान्ता अन्ये तु घोरा राजसत्वेनोग्राः । अपरे तु तामसत्वेन
घोरादपि घोरतराः । हे शर्व परमेश्वर ते त्वदीयेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यस्त्रिवि-
धेभ्यः सर्वेभ्यो रुद्ररूपेभ्यः सर्वतः सर्वदेहेषु सर्वेषु च कालेषु नमोऽस्तु ।
इति नारायणीये पञ्चचत्वारिंशोऽनुवाकः ।

प्राग्वक्त्रप्रतिपादकं मन्त्रमाह—तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । इति ।

प्राग्वक्त्रदेवस्तत्पुरुषनामकः । द्वितीयार्थे चतुर्थी । तत्पुरुषं देवं विद्महे
गुरुशास्त्रमुखाज्जानीमः । ज्ञात्वा च महादेवाय तं महादेवं धीमहि
ध्यायामः । तत्तस्मात्कारणाद्गुदो देवो नोऽस्मान्प्रचोदयाज्ज्ञानध्यानार्थं
प्रेरयतु । इति नारायणीये षट्चत्वारिंशोऽनुवाकः ।

ऊर्ध्ववक्त्रप्रतिपादकं मन्त्रमाह—ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभू-
तानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ।
इति ।

योऽयमूर्ध्ववक्त्रो देवः सोऽयं सर्वविद्यानां वेदशास्त्रादीनां चतुःषष्टिक-
लाविद्यानामीशानो नियामकः । ब्रह्माधिपतिर्वेदस्याधिकत्वेन पालकः ।

तथा ब्रह्मणो हिरण्यगर्भस्याधिपतिस्तावृशो यो ब्रह्माऽस्ति वृद्धः पर-
मात्मा सोऽयं ममानुग्रहाय शिवः शान्तोऽस्तु । सदाशिवोम् । स एव
सदाशिवः । ओमहं भवामि । इति नारायणीये सप्तचत्वारिंशोऽनुवाकः ।

अथाग्निरिति भस्मेत्यादिचक्षुषि भस्मानीत्यन्तोक्तमन्त्रेषु माष्याद्य-
नुपलब्धेर्यैव दिङ्मात्रेण ते व्याख्यायन्ते । तत्र स्थलं पृथ्वी । एवं च
स्थूलानि पञ्च महाभूतानि सर्वं घटादि तत्कार्यं मनश्चक्षुरुपलक्षितयाव-
द्वृत्त्यात्मकज्ञानानि च यस्य भस्म स्वतो भातीति भस्म विज्ञाननिष्ठस्य
कर्तव्यं नारित किंचनेति चेत्यादिसूतसंहितोक्तैर्द्वैतस्य मासनाद्दर्जनाद्वा
भस्मशब्दितमद्वैतं ब्रह्मैव निखिलमपि सकारणं दृश्यमस्तीति भावये-
दिति तात्पर्यम् । भस्माभिमन्त्रणेऽस्य विनियोगस्तु लिङ्गाद्विधेरेव वा
बोध्यः । ह वा इति निपातौ क्रमात्प्रसिद्धचवधारणयोः । इतिशब्द-
पञ्चकं च प्रत्येकं पञ्चानामपि भूतानां साकल्येन परामशार्थमिति ।

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान्मा नो रुद्र भामितोऽवधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते । इति ॥

अथात्र गायत्रीशिरसि च वैद्यारण्यकमेवेदं भाष्यम्—हे रुद्र नोऽस्म-
दीये तोकेऽपत्यमात्रे तनये विशेषतः पुत्रे मा रीरिषो हिंसां मा कुरु ।
नोऽस्मदीय आयुषि मा रीरिषो नोऽस्मदीयेषु गोषु मा रीरिषः । नोऽस्म-
दीयेष्वश्वेषु मा रीरिषः । भामितः क्रुद्धः सन्नोऽस्मदीयान्वीरान्मर्त्या
न्मा वधीः । वयं हविष्मन्तो हविर्युक्तास्ते तुभ्यं नमसा नमस्कारेण विधेम
परिचरेम । ओमापो ज्योतिरिति । आपो ज्योतिरित्यादिको गायत्र्याः
शिरोमन्त्रस्तस्याऽऽद्यन्तयोः प्रणवद्वयं पूर्ववदुच्चार्यते । या आपो नदी-
समुद्रादिगताः सन्ति यच्च ज्योतिरादित्यादिकमस्ति योऽपि रसो मधु-
राम्लादिः षड्विधोऽस्ति यदप्यमृतं देवैः पातव्यमस्ति तत्सर्वमो प्रणव-
प्रतिपाद्यं ब्रह्म । किं च भूर्भुवः स्वरित्यभिहिता ये लोकाः सन्ति तेऽपि
प्रणवप्रतिपाद्यं ब्रह्मेति । त्र्यायुषमित्यादिषु स्वापस्तम्बयोः सौत्रमन्त्रेषु
एकाग्निकाण्डाभिधमन्त्रप्रश्नद्वयगतेषु हरदत्तीयं भाष्यम् । त्र्यायुषं कौमा-
र्यौवनस्थाविराणि त्रीण्यायुषाणि तेषां समाहारस्त्र्यायुषम् । जामद-
ग्न्यादीनां यादृशं त्र्यायुषं ममापि तादृशं त्र्यायुषमस्तु इति ।

त्रियम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥ इति ।

अत्रापि वैद्यारण्यकमेव भाष्यमिदम् । त्रियम्बकं यजामहे० माऽमृता-
दिति । शोभनः शरीरगन्धः पुण्यगन्धो वा यस्यासौ सुगन्धिः । यथा

वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद्गन्धो वात्येवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद्गन्धो वातीति श्रुतेः । पुष्टिं शरीरधनादिविषयां वर्धयतीति पुष्टिवर्धनस्तादृशं त्र्यम्बकं यजामहे यजामः । लोके यथोर्वारुकफलानि बन्धनाद्बृन्तात्स्वयमेव मुच्यन्ते तद्वदहं त्र्यम्बकप्रसादेन मृत्योर्मुक्षीय मोचनयुक्तो भूयासम् । अमृताच्चिरजीवितात्स्वर्गादेर्वा मा मुक्षीयेति ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-हिरण्यकेश्याद्विक आचारभूषणे भस्मधारणमन्त्रभाष्यादिसंग्रहप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ संध्या । तत्कालमाह संवर्तः—प्रातःसंध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि । इति ।

माधवीये पुलस्त्यः—संध्यामिष्टिं च होमं च यावज्जीवं समाचरेत् ।

न त्यजेत्सूतके वाऽपि त्यजन्गच्छेदधोगतिम् ॥ इति ।

तत्रैव षट्त्रिंशन्मते—होमे भोजनकाले तु संध्ययोरुभयोरपि ।

आचान्तः पुनराचामेज्जपहोमार्चनादिषु ॥ इति ।

धर्मप्रश्ने—संध्योश्च बहिर्ग्रामादासनं वाग्यतश्चेति । अहोरात्रयोः संधानं संधिः । तौ द्वौ सज्योतिरज्योतिरिति दर्शनात् । तयोः संध्यो-र्ग्रामाद्बहिरासीत वाग्यतश्च भवेत् ।

मनुरप्याह—पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।

पश्चिमां तु समासीत सम्यग्रहविभावनात् ॥ इति ।

तद्ब्रह्मचारिविषयम् । स्नातक आसनस्य वाग्यतस्याप्यत्र विधानात् । अन्ये त्वासनग्रहणं स्थानस्याप्युपलक्षणम् । वाग्यतस्य लौकिक्या वाचो निवृत्तिर्न सावित्रीजपस्येति वर्णयन्तीत्युज्ज्वलाव्याख्या । आहि-ताग्निविषये त्वस्याप्यपवादस्तत्रैव—विप्रतिषेधे श्रुतिलक्षणं बलीय इति । विरोधो विप्रतिषेधः । अग्निहोत्रिणो बहिरासनमग्निहोत्रहोमश्च विरुध्यते । तत्र श्रुतिलक्षणमग्निहोत्रमेव कर्तव्यं न स्मृतिप्राप्तं बहिरा-सनं तस्य कल्प्यमूलत्वादितरस्य क्लृप्तमूलत्वादिति त्युज्ज्वलाव्याख्या । माधवीये शातातपः—

अनृतं मद्यगन्धं च दिवास्वप्नं च मैथुनम् ।

पुनाति वृषलस्यान्नं बहिः संध्या उपासिता ॥ इति ।

स्वप्नशब्देनात्र निद्रा । क्वचिद्विदामैथुनमेव चेति पाठः । माधवीय एव संध्यात्रयस्य तारतम्येन देशविशेषमाह व्यासः—

गृहे त्वेकगुणा संध्या गोष्ठे दशगुणा स्मृता ।
शतसाहस्रिका नद्यामनन्ता विष्णुसंनिधौ ॥ इति ।

अकरणे प्रत्यवायश्च दर्शितो दक्षेण—

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ इति ।

ननु—अहोरात्रस्य यः संधिः सूर्यनक्षत्रवर्जितः ।

सा तु संध्या समाख्याता मुनिभिस्तस्वदर्शिभिः ॥

इति माधवीये दक्षोक्तेरहरहः संध्यामुपासीतेतिबृहज्जाबालश्रुतिवि-
हिते नित्ये संध्योपासने संध्यापदार्थः किं कालविशेषः किं वा—

उपास्ते संधिवेलायां निशाया दिवसस्य च ।

तामेव संध्यां तस्मात्तत्प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

इति माधवीय एव व्यासोक्तेः संधौ भवा क्रिया संध्येति तदुक्तेश्च
तत्कालावच्छेदेन वक्ष्यमाणः क्रियाविशेषः । यद्वा

संध्येति सूर्यगं ब्रह्म संधानादिविधानतः ।

ब्रह्माद्यैः सकलैर्भूतैः स्तम्बान्तैः सच्चिदात्मनः ॥

इति संस्काररत्नमालायां स्मृत्यन्तरोक्तेः सूर्यावच्छिन्नं ब्रह्मेति चेच्छृणु ।
संधौ संध्यामुपासीत नास्तगे नोद्गते रवावित्युभयत्रापि योगयाज्ञवल्क्य-
वचनात्तृतीयपक्ष एव श्रेयान् । उपासीतेति लोड्विहितध्यानादिक्रि-
याऽप्युक्तव्युत्पत्त्याऽनुष्ठेयत्वेन समुदाहृतव्यासवचसोऽभिमतैति बोध्यम् ।
कालवाचकोऽप्यसौ वस्तुतः परब्रह्मपर एव । ज्ञः कालकाल इति श्रुतेः ।
कालोऽस्मि लोकक्षयकृदिति स्मृतेश्च । सा च संध्या त्रिधा । तदाह
माधवीयेऽप्यत्रिः—

संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनाऽऽत्मविदा सदा ॥ इति ।

अथ प्रातरादिसंध्यानां क्रमेण मुरव्या गौणाश्च विशिष्य कालाः
संस्काररत्नमालायाम् ।

दक्षः—रात्र्यन्तयामनाडी द्वे संध्यादिः काल उच्यते ।

दर्शनाद्रविरेखायास्तदन्तो मुनिभिः स्मृतः ॥ इति ।

धर्मसारे—उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ।

अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा मता ॥ इति ।

तथा तत्रैव—अध्यर्धयामादासायं संध्या माध्याह्निकी स्मृता । इति ।

स्मृतिसंग्रहे—मध्याह्नानादूर्ध्वं यः कालस्त्वव्यवधानतः ।

तत्र मध्याह्नसंध्या स्यादूर्ध्वं गौणः स्मृतो बुधैः ॥ इति ।

धर्मसारे—उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्ततारका ।

अधमा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा मता ॥ इति ।

आसंगवं प्रातःसंध्याया गौणः कालः । आप्रदोषावसानं च सायंसंध्यायां इति माधवोक्तिरपि ।

ननु माधवीये संस्काररत्नमालायां च

गायत्री नाम पूणाह्नि सावित्री मध्यमे दिने ॥

सरस्वती च सायाह्ने सैव संध्या त्रिषु स्मृता ।

प्रतिग्रहान्नदोषात्तु पातकादुपपातकात् ॥

गायत्री प्रोच्यते तस्माद्वायन्तं त्रायते यतः ।

सवितृद्योतनात्सैव सावित्री परिकीर्तिता ॥

जगतः प्रसवित्री वा वायूपत्वात्सरस्वती ।

इतिव्यासोक्तेर्नामभेदेन

गायत्री तु भवेद्रक्ता सावित्री शुक्लवर्णिका ।

सरस्वती तथा कृष्णा उपास्या वर्णभेदतः ॥

गायत्री ब्रह्मरूपा तु सावित्री रुद्ररूपिणी ।

सरस्वती विष्णुरूपा उपास्या रूपभेदतः ॥

इतिस्मृत्यन्तरोक्तेर्वर्णरूपभेदाभ्यां चोक्ताः प्रातरादिकालावच्छेदेन तिस्रः सूर्यमण्डलरूपे प्रतीके ब्रह्मादिशक्तय एव वा ब्रह्मादिरूपाम्बिकैव पापत्राणजगज्जननादिहेतुरेकैव चिद्विग्रहशक्तिर्वोपास्यत्वेनोक्ता त्वया तु सूर्यावच्छिन्नं ब्रह्मैव तथोक्तमिति कथं न तद्विरोध इति चेत्सत्यम् । माधवाचार्यैस्तावदेतद्वचनाव्यवधानेनैवोपासनमभिध्यानम् । अत एव तैत्तिरीयब्राह्मणम्—उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन्कुर्वन्ब्राह्मणो विद्वान्सकलं भद्रमश्नुतेऽसावादित्यो ब्रह्मेति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति य एवं वेदेति । अयमर्थः—वक्ष्यमाणप्रकारेण प्राणायामादिकं कर्म कुर्वन्यथोक्तनामवर्णरूपोपेतं संध्याशब्दवाच्यमादित्यं ब्रह्मेति ध्यायन्नैहिकमामुष्मिकं च सकलं भद्रमश्नुते य एवमुक्तध्यानेन शुद्धान्तःकरणो ब्रह्मसाक्षात्कुरुते स पूर्वमपि ब्रह्मैवं सन्नज्ञानाज्जीवत्वं प्राप्तो यथोक्तज्ञानेन तदज्ञानापगमे ब्रह्मैव प्राप्नोतीति । व्यासोऽप्येतदेवाभिप्रेत्याऽऽह—

न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह ।

सोऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येन केनचित् ॥ इति ।

इति लिखितं तत्रेदं रहस्यम्—श्रुतौ तु केवलमादित्यस्यैव ब्रह्मत्वेन ध्यान-
माप्नायते साधिकारिकं सेतिकर्तव्यताकं समोक्षादिफलकं च नत्वन्यत्कि-
मपि । तदेवाहरहः संध्यामुपासीतेति नित्यविधेर्विषयः । न चात्रापि सकलं
भद्रमश्नुत इत्यादिना फलकथनात्काम्यतैवेति कथमुक्तनित्यविधिवाक्येन
साकमस्यैकवाक्यतेति वाच्यम् । संयोगपृथक्त्वन्यायेनोभयार्थकत्वात् ।
यद्वा कर्मणा पितृलोक इति बृहदारण्यकश्रुत्या यन्नित्यकर्मणोऽपि पितृ-
लोकफलकत्वमुक्तं तदुपबृंहणार्थकत्वात् एव सामान्यतः सकलभद्रपद-
प्रयोगाच्च । स्मृतौ तु प्रतिग्रहान्नदोषपातकोपपातकपदप्रयोगतस्तदुपशम-
कामस्यैव तथाविधनामवर्णरूपविशिष्टशक्तिव्यक्तित्वेन सूर्यं ध्यात्वा तत-
स्तथाभूतं तं ब्रह्मत्वेन ध्यायेदितिवाक्यार्थपर्यवसानादस्य काम्यत्व-
मेव न तूक्तश्रौतविधिविहितमादित्योपलक्षितं ब्रह्माहमस्मीति सूर्यप्रतीक-
द्वारकनिर्गुणाहंग्रहोपासननित्यविधित्वमिति । एवमाकूतं मनसि निधायैव
तैर्गायत्री नाम पूर्वाह्न इत्यादि वदतो व्यासस्यैवोपसंहारे न भिन्नामि-
त्यादि वाक्यमुदाहारि व्यासोऽप्येतदेवाभिप्रेत्याऽऽहेति साभिप्रायप्रति-
ज्ञम् । न च तर्हि यथोक्तनामवर्णरूपोपेतमिति निरुक्तश्रुतिव्याख्याने
वृत्तमादित्यविशेषणं व्यर्थं स्यादिति सांप्रतम् । तस्योपक्रान्तस्मार्तकाम्य-
विध्येकपरत्वात् । अत एव सह वै प्रपाठकभाष्य एतैरेवाथ ध्यानं
विधत्त इत्यवतार्योद्यन्तमित्यारभ्य य एवं वेदेत्यन्तं वाक्यमेवं व्याख्या-
तम्—अयं परिदृश्यमान आदित्यो ब्रह्मेति शास्त्रतो विद्वान्पुमानुद्यन्त-
मस्तं यन्तं वाऽऽदित्यं तथा ध्यायन्प्रदक्षिणां च कुर्वन्वर्तते स पुमान्स-
कलं भद्रमश्नुते श्रेयः प्राप्नोति यः पुमानादित्यो ब्रह्मेति वेद स पुमान्पूर्व-
मजानानोऽपि स्वयं वस्तुतो ब्रह्मैव सन्प्राप्ताद्वेदनादज्ञानापगमे सति
स्वानुभवेनापि ब्रह्माऽऽप्नोतीति । एवं श्रौतस्मार्तनित्यकाम्यविधिद्वयं
प्रकृतोपासनेनोच्यते चेद्विधिना येन केनचिदिति निरुक्तव्यासवाक्यशेष
एव बाधितः स्यात् । तस्मादुक्तरीत्या निर्गुणब्रह्मात्मैक्यध्यानमेव ब्राह्म-
णस्य शुद्धवैदिकनित्यसंध्योपासनत्वेन श्रुत्याद्यभिप्रेतमिति तत्त्वम् ।
एवमेव संस्काररत्नमालाद्यविरोधोऽप्युह्यः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे संध्यानुष्ठानदेशकालस्वरूपनिरूपणं
संपूर्णम् ।

अथ संध्योपासनेतिकर्तव्यताविचारः । तत्राऽऽदावाचमनम् । तदुक्तं संस्काररत्नमालायां स्मृत्यर्थसारे—

आचम्यासून्समायम्य संध्योपासनमाचरेत् । इति ।

आचमनप्रकारस्तु सर्वोऽप्यधस्तादेव प्रपञ्चितः । असून्प्राणान् । एत-
च्चाऽऽचमनं द्विवारं कार्यम् । उक्तं हि तत्रैव षट्त्रिंशन्मते—

होमे भोजनकाले च संध्ययोरुभयोरपि ।

आचान्तः पुनराचामेज्जपहोमार्चनादिषु ॥ इति ।

पृथ्वीचन्द्रोदये देवीनन्दिपुराणयोः—

दाने प्रतिग्रहे होमे संध्यात्रितयवन्दने ।

बलिकर्मणि चाऽऽचामेदादौ द्विर्नान्ततो द्विजः ॥ इति ।

ततः प्राणायाम उक्तो माधवीये कौर्मे—

प्राक्कूलेषु ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः ।

प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत्संध्यामिति श्रुतिः ॥ इति ।

तत्रैव बृहस्पतिः—

बद्ध्वाऽऽसनं नियम्यासून्स्मृत्वा चर्ष्यादिकं तथा ।

संनिमीलितदृङ्मौनी प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ इति ।

प्राणा अन्तर्वायव आ समन्तादीषद्वा यम्यन्ते नियम्यन्ते वशी क्रिय-
न्तेऽनेन व्यापारेण स तथेति तद्व्युत्पत्तिः । तल्लक्षणमाह तत्रैव मनुः—

सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।

त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ इति ।

संस्काररत्नमालायां तु प्रणवं व्याहृतीः सप्तेति पाठः । स एव व्याहृ-
तीनां सप्तत्वलाभाच्छन्दोभङ्गाभावाच्च भजनीयः । तत्रैव याज्ञव-
ल्क्योऽपि—

गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद्ब्रह्म्याहृतिपूर्विकाम् ।

प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः ॥ इति ।

अत्र पाठजपशब्दाभ्यां वर्णाभिध्यानमात्रं नोच्चारणं तस्यासंभवा-
दिति गोपीनाथदीक्षिताः । तत्कर्म स्फुटयति माधवीये याज्ञवल्क्यः—

भूर्भुवः स्वर्महर्जनस्तपः सत्यं तथैव च ।

प्रत्योकारसमायुक्तं तथा तत्सवितुः परम् ॥

ओमापो ज्योतिरित्येतच्छिरः पश्चात्प्रयोजयेत् ।

त्रिरावर्तनयोगात्तु प्राणायामस्तु शक्तिः ॥ इति ।

अत्र शक्ति इत्युक्तेऽस्त्रिः पठेदिति मनूक्तेऽस्त्रिवारं शक्तविषय एव ।
एकावर्तनरूपोऽयमशक्तविषय इति हृदयम् । सोऽपि पूरकादिभिर्दा
त्रिविधस्तत्रैवोक्तो योगयाज्ञवल्क्येन—

पूरकः कुम्भको रेच्यः प्राणायामस्त्रिलक्षणः ।

नासिकाकृत उच्छ्वासो ध्मातः पूरक उच्यते ॥

कुम्भको निश्चलश्वासो रिच्यमानस्तु रेचकः । इति ।

तत्र रेचनपूरणयोर्वामदक्षिणनासिकापुटे यथेच्छं ज्ञेये । उभयविध-
वचनात् । धारणे तु नियमः । स च संस्काररत्नमालायां स्मृतिसंग्रहे—

पञ्चाङ्गुलीभिर्नासाग्रं पीडयेत्प्रणवेन वै ।

मुद्रेयं सर्वपापघ्नी वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥

कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यतेश्च ब्रह्मचारिणः । इति ।

स्मृतिसारे—प्राणानायम्य विधिवद्वाग्यतः संयतेन्द्रियः ।

अथ संध्यामुपासिष्य इति संकल्पमाचरेत् ॥ इति ।

स च—यत्करोषि यद्श्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतावचनाच्छ्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातःसंध्यामुपासिष्य
इति प्रातःसंध्योपासिं करिष्य इति वा स्मृतिशिष्टाचारान्यतररीतिक
एव कार्यः । ततो मार्जनम् । तदन्तरा तदनधिकारात् । तच्चोक्तं प्रयोग-
पारिजाते—

संकल्प्य मार्जनं कुर्यादापो हि ष्ठादिभिस्त्रिभिः । इति ।

तच्च धाराजलेन निषिद्धम् । तदाह माधवीये ब्रह्मा—

धाराच्युतेन तोयेन संध्योपास्तिर्विगर्हिता ।

पितरो न प्रशंसन्ति न प्रशंसन्ति देवताः । इति ।

कथं तर्हि मार्जनमिति तत्र स एव—

नद्यां तीर्थे हृदे वाऽपि भाजने सृन्मयेऽपि वा ।

औदुम्बरेऽथ सौवर्णे राजते दारुसंभवे ॥

कृत्वा तु वामहस्ते वा संध्योपासिं समाचरेत् । इति ।

कृत्वोदकमिति शेषः । औदुम्बरं ताम्रपात्रमित्याचारकिरणः । उक्त-
पात्रसद्भावे तु वामहस्तप्रतिषेधस्तत्रैव—

वामहस्ते जलं कृत्वा ये तु संध्यामुपासते ।

सा संध्या वृषली ज्ञेया असुरास्तैस्तु तर्पिताः ॥

इति स्मरणादिति ।

तदपि ऋगन्ते मार्जनं कुर्यादिति माधवीये प्रजापतिवचनान्मार्जनार्च-
नबलिकर्मभोजनानि देवतीर्थेन कुर्यादिति तत्रैव हारीतोक्तेस्तथा
शिरसो मार्जनं कुर्यात्कुशैः सोदकबिन्दुभिरिति कात्यायनोक्तेश्च मध्यमा-
नामिकाङ्गुष्ठैः क्षेपणं तु कुशोदकैरिति संस्काररत्नमालायां संग्रहवाक्या-
दपि मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैः कुशयुगं प्रादेशमात्रं गृहीत्वा निरुक्तपात्रा-
द्यन्यतमस्थितजलेन गृहे गङ्गादौ तु तज्जलेनैव देवतीर्थेनैवाऽऽपो हि
ष्ठेत्यादितत्तद्वृगन्ते शिरःप्रोक्षणमात्रेण सर्वशरीरप्रोक्षणलक्षणं बोध्यम् ।
अथाऽऽपो वा इदं* सर्वमित्यनुवाकेनापां सर्वात्मकत्वेनाभिध्यानपूर्वक-
मभिमन्त्रणं विधेयम् । ताभिश्च ततः सूर्यश्चाऽऽपः पुनन्तु अग्निश्चेति
क्रमात्संध्यात्रये मन्त्राचमनं कार्यम् । तदुत्तरमाचमनं च । तदाह माध-
वीये भारद्वाजः—

सायमग्निश्च मेत्युक्त्वा प्रातः सूर्येत्यपः पिबेत् ।

आपः पुनन्तु मध्याह्ने ततश्चाऽऽचमनं चरेत् ॥ इति ।

तदुत्तरमापो हि ष्ठा मयोभुव इति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका
इति चतसृभिः पवमानः सुवर्जन इति चैतेनानुवाकेन स्नात्वेति स्वगृह्य-
सूत्रोक्तरीत्या मार्जनम् । तच्च सर्वमन्त्रान्त एव । तदुक्तं तद्याख्यायामेव
मातृदत्तैः—आपो हि ष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति चतसृभिः पवमान इत्य-
नेनानुवाकेन सर्वान्ते स्नानम् । वचनादेकस्य कर्मणो बहुमन्त्रत्वम् ।
केचित्प्रतिमन्त्रं स्नानमिच्छन्ति । तत्र नास्ति प्रमाणमिति । ननु माधव-
गोपीनाथदीक्षिताभ्यामत्र तु मन्त्रान्तराद्यप्युक्तम् । तद्यथा मार्जनमेतत्प्र-
कृत्य तदाह बोधायनः—अथातः संध्योपासनविधिं व्याख्यास्यामस्तीर्थं
गत्वा प्रयतोऽभिषिक्तः प्रक्षालितपाणिर्पाद आचम्याग्निश्च मा मन्युश्चेति
सायमपः पीत्वा सूर्यश्च मा मन्युश्चेति प्रातः सपवित्रेण पाणिना सुरभि-
मत्याऽब्लिङ्गाभिर्वारुणीभिर्हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिव्याहृतिभिर-
न्यैश्च पवित्रैरात्मानं प्रोक्ष्य प्रयतो भवतीति ।

भारद्वाजः—सायमग्निश्च मेत्युक्त्वा प्रातः सूर्येत्यपः पिबेत् ।

आपः पुनन्तु मध्याह्ने ततश्चाऽऽचमनं चरेत् ॥ इति ।

कात्यायनोऽपि—

शिरसो मार्जनं कुर्यात्कुशैः सोदकबिन्दुभिः ।
प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्येति क्रमात्रयम् ॥
अब्दैवताभिर्ऋग्भिश्च चतुर्थमिति मार्जनम् । इति ।

मार्जनानन्तरं प्रजापतिः—

उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णवत्कृते ।
निःश्वसन्नासिकाग्रे तु पाप्मानं पुरुषं स्मरेत् ॥
ऋतं चेति ऋचं वाऽपि द्रुपदां वा जपेद्वचम् ।
दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत् ॥
तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत् ॥ इतीति ।

अत्रोच्यते—माधवाचार्यैस्तावत्साधारण्येनैवोक्तं न तु सूत्रादिवि-
भागेन । तथा सूत्रं बोधायनं यस्य स सर्वज्ञो हि माधव इति तद्वचना-
त्तत्तेषां नैजमपि । एवं च बोधायनीयानामाश्वलायनीयादीनां चास्तु
नामोक्तमार्जनम् । अस्माकं त्वातिदै(दे)शिकमप्युक्तमार्जनं नैजसूत्रीय-
त्वान्नैवान्यत्किंचिदप्यपेक्षते । यच्चेदं पापपुरुषापसारणं तदप्युक्तमार्ज-
नेनास्मत्पापविध्वंसो जातो न वेति संदिहानाधिकारिकमेव । अत एवो-
क्तमाचारकिरणे बह्वृचगृह्यपरिशिष्टकृता—अथ गोकर्णवदित्युपक्रम्य
पापपुरुषदहनप्रकारं सर्वत्र प्रसिद्धमभिधायान्त एष पाप्मव्यपोह एन-
मेके न कुर्वन्ति मार्जनेनैव तस्य व्यपोहितत्वादिति । गोपीनाथदीक्षि-
तास्तु केवलमृषिदैवतच्छन्दःपठनवत्तत्स्मृतिसूत्रादिगतमपि सत्या-
षाढीयानामनावश्यकमपि मार्जनविशेषादिकर्मजातं प्रौढ्यैवालिखन् ।
ननु कथं दीक्षितवचसः प्रौढिवादमात्रत्वं यतस्तैः

ऋषिं च देवतां छन्दो विनियोगं मनोस्तथा ।

विज्ञायैव क्रियाः कार्या याज्ञवल्क्यमुनिस्मृतेः ॥

इत्यादिना सप्रमाणमेव तदुपन्यासात् । यो ह वाऽविदितार्थेयच्छ-
न्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण यजति याजयति वा स्थाणुमृच्छति गर्तं वा
पात्यते प्रमीयते वा पापीयान्भवति तस्मादेतानि मन्त्रे विद्यादितितैत्ति-
गीयसंहिताभाष्यारम्भोदाहृतच्छन्दोगब्राह्मणाच्चेति चेद्वाढम् । उदाहृतब्रा-
ह्मणादिना तावद्व्यादिज्ञानस्यैवाऽऽवश्यकत्वमुच्यत इति निर्विवादमेव ।
तथा च यदिदं संस्काररत्नमालायां पठनं लिखितं तत्तु तादृगेव । नच
ज्ञानार्थमेव पठनमिति वाच्यम् । तत्पठतोऽपि माणवकादेरविचारितस-
परिकरस्वशाखातद्भाष्यादेस्तज्ज्ञानासंभवात् । तादृशस्य तज्ज्ञानवतो

मेधाविनः कस्यचित्कर्मकाले तत्पठनाभावेऽपि प्राक्तनमाहिम्ना कर्मवै-
कल्याभावाच्च । किंच

नैव ब्रूयाद्विं छन्दः श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।

मन्त्रादौ प्रणवं चेति देवस्वामीयभाष्यके ॥

इत्यभ्यु(भियु)क्तकारिकया तदुच्चारणस्य प्रत्युत निषेधोऽपि । इति
देवस्वामीयभाष्यकेऽस्तीति कारिका योज्या । आचरन्ति शिष्टाः सर्वेऽप्ये-
वमेव श्रौते । स्मार्ते तु यद्यपि शाकलाद्याः पठन्त्येव पठन्तु नाम ते तथा ।
शिष्टाचारस्यापि प्रामाण्यात् । वस्तुतस्तु तेषामपि सर्वानुक्रमणिकार्यां
तज्ज्ञाने सति श्रेयोधिगम इत्युक्तत्वाद्दृष्यादिज्ञानमेवापेक्षितम् । तैत्तिरी-
याणां तु तादृशशिष्टाचारस्याप्यभावाद्नुपयुक्तमेवैतत् । ननु बह्वृचगृह्यप-
रिशिष्टप्रथमाध्यायाष्टमखण्डेऽथास्य मन्त्राणामृषिदेवतच्छन्दांसीत्यादिना
संध्यावन्दनकर्मण्यपि ऋष्याद्युच्चारणं विहितमिति चेत्सत्यम् । तत्रैव
प्राक्षष्ठे खण्डे सावित्र्या ऋषिदेवतच्छन्दांस्यनुस्मृत्येत्यारभ्य, एषोऽङ्ग-
न्यास इति ऋष्यादिन्यासान्तमुक्त्वा, एनमप्येके नेच्छन्ति स विधिरवै-
दिक इति तेनैव तस्यावैदिकत्वोक्तेः । नचैषोऽङ्गन्यास एनमप्येक इत्ये-
कवचनादङ्गन्यासस्यैवावैदिकत्वं नत्वृष्यादेरिति वाच्यम् । शिरसि
ऋषिमुखे छन्दो हृदि देवतेति ऋष्यादीनामपि न्यासौपयिकत्वात् ।
अत्रत्यमवैदिकपदं तु शुद्धवैदिकेतराधिकारिविषयकत्वपरम् । अधिका-
रिणस्तूक्ताः श्रौतसिद्धान्ते पुरुषार्थप्रबोधसंगृहीतवचनैः सप्रपञ्चं द्विती-
येऽध्याये—

शुद्धवैदिक इत्येकः परस्तान्त्रिकवैदिकः ।

शुद्धतान्त्रिक इत्यन्योऽपरो वैदिकतान्त्रिकः ॥

एते चत्वार आत्मज्ञाः स्वस्वकर्मानुसारतः ।

मार्गाधिकारिणः प्रोक्ताः शिवेन परमात्मना ॥

तन्त्रगन्धं न सहते यः सोऽयं शुद्धवैदिकः ।

सतन्त्रांशश्रुतिप्रीतः प्रोक्तस्तान्त्रिकवैदिकः ॥

वेदगन्धं न सहते यः सोऽयं शुद्धतान्त्रिकः ।

सवेदाङ्गागमप्रीतो योऽसौ वैदिकतान्त्रिकः ॥

वेदे वेदानुकूले चाधिकारी शुद्धवैदिकः ।

तन्त्रोपसर्जने शास्त्रेऽधिकृतान्त्रिकवैदिकः ॥

वेदगन्धासहे तन्त्रेऽधिकारी शुद्धतान्त्रिकः ।

वेदोपसर्जने तन्त्रेऽधिकृतद्वैदिकतान्त्रिकः ॥ इति ।

तस्माद्येषां शिष्टाचारादिकमस्ति तेषामपि ऋष्यादिपठनमनावश्यकं तदा तच्छून्यानां तैत्तिरीयाणां तु तत्कैमुत्यसिद्धमेव । तज्ज्ञानं परं समपेक्षितमेवेत्यधस्तादेवोक्तम् । तदपि विचारे क्रियमाणे समुदाहृत-ब्राह्मणवाक्ये यजति याजयतीतिप्रयोगाद्यज्ञादादेव प्राधान्येन तदपेक्षा । संध्योपासनादावौपासनादौ स्मार्ते च तत्सत्त्वे फलभूयस्त्वमेव न त्वभावे क्षतिरपि । अन्यथा सद्यःसमुपनीतमाणवकर्तृकसंख्यावन्दनादिवैयर्थ्यापत्तेर्दुर्वारत्वात् । किंच तैत्तिरीयसंहितायाः श्रीमाधवाचार्यविरचिते प्रथमप्रश्नस्य त्रयोदशानुवाकभाष्येऽप्युक्तम्—तैत्तिरीयाणामृषिदैवतच्छन्दोज्ञानाद्यनावश्यकत्वम् । यजुषां छन्दो न श्रुतेरभिमतम् । तथा सति स्वशक्त्या किञ्चिन्नूतनं छन्दः कल्पयितुं न शक्यते । किंतु पूर्वसिद्धसंप्रदायागतं छन्दोलक्षणं यत्र यत्रास्ति तस्यां तस्यामृषिच्छन्दो जानीयादिति । सा च ऋग्यायत्र्यादिरेव । उपलक्षणमिदमृषिदैवतयोरपि । अन्यच्च तैत्तिरीयाणां स्वकीययावन्मन्त्रिच्छन्दोदैवतविनियोगज्ञानाभावप्रयुक्तकर्मवैगुण्यपरिहारार्थं प्रधानीभूतप्रणवगायत्र्याख्यमन्त्रयोरेवर्ष्यादिश्रुत्यैव, ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेत्यादिगायत्रिया गायत्री छन्द इत्यादि च पठितम् । न चैतेनैवोपलक्षणविधया यावन्मन्त्राणामपि प्रत्युत तत्पठनावश्यकत्वमेव सूचितमित्येवास्त्विति वाच्यम् । तथात्वे श्रौते कर्मणि कारीर्याख्ये तत्पठनाभावलक्षणाङ्गवैकल्येन फलीभूता साद्यस्कवृष्टिर्न स्यात् । दृश्यते च साऽद्य कलिकालेऽपि शिष्टैः साङ्गमनुष्ठितात्ततः । तस्मात्प्रणवगायत्र्यभिधमहामन्त्रिच्छन्दोदैवतविनियोगपठनमात्रेणैव परिहृतयावद्वैदिकमन्त्रर्ष्यादिज्ञानाभावापादितप्रत्यवायानां तैत्तिरीयाणां नैव तदितरत्र तत्पठनापेक्षेति तल्लेखनं संस्काररत्नमालायां प्रौढिवादमात्रमेवेति दिक् ।

एवं पूर्वैः शिष्टैः पठितमप्युक्तरीत्यैवानतिप्रयोजकं दधिक्राव्गो अकारिषमित्यादि त्यक्त्वैव कृते सत्यापो हि ष्टादिपवमानान्तैः स्वसूत्रोक्तैर्मन्त्रैः सर्वमन्त्रावृत्त्युत्तरं सकृन्मार्जनेऽथार्घ्यप्रदानं कुर्यात् । तच्च निरुक्तोपासनं कुर्वन्नेव । उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन्कुर्वन्निति

श्रुतेः । इदमेव प्रधानं न तु वक्ष्यमाणो गायत्रीजपः । अहरहः संध्यामु-
पासीतित्युपासनविधेरेव नित्यत्वात् । जपस्य त्वेतदङ्गत्वात् । अत एव
युद्धेऽर्जुनादिभिः प्रधानमात्रमनुष्ठितमङ्गेष्वनवकाशात् । तदुक्तं महा-
भारते—

ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि ।

संध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ इति ।

अर्घ्यदानप्रकारमाह माधवीये व्यासः—

कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।

आदित्याभिमुखस्तिष्टंस्त्रिरूर्ध्वमथ तत्क्षिपेत् ॥ इति ।

तत्पठनप्रकारस्तूक्तः संस्काररत्नमालायाम्—अत्र संतत एव पाठो
ग्राह्यः । अथ संततामित्यत्राथशब्दः प्राधान्यख्यापनार्थः । तेन संध्योपा-
सनादिषु तृतीय एव पाठो ग्राह्य इति मातृदत्तोक्तेः । जपेऽप्येवम् । धीमहि
धिय इत्यनयोः सांतत्ये सस्वरः संधिः । * अनवानत्वमात्रं वाऽस्मि-
न्पाठे द्रष्टव्यम् । हिकारोऽनुदात्त इति । ननु सर्वेऽपि शिष्टाः प्रायेणा-
र्धर्चश एव पठन्त्यर्ध एव विरामं कृत्वेति संप्रदायः । संहितादावपि
तथैव पाठोऽपि ।

अच्छिन्नपादां गायत्रीं जपं कुर्वन्ति ये द्विजाः ।

अधोमुखास्तु तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥

छिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।

अच्छिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति ॥

इतियोगयाज्ञवल्क्यवचनं तु पच्छ एव तज्जपविधायकं प्रतीयते ।
तृतीयपादस्यापि च्छेदे छिन्नपादत्वमागतमेवेति तत्प्रकृतानुकूलमेवेति
चेन्न । उक्तवचनाचारयोरहिरण्यकेशिपरत्वात्तेषां तूक्तसूत्रवृत्तेरेवाऽऽदर-
णीयत्वाच्चेति रहस्यम् । जलाभावे [+तु धूल्याऽप्यर्घ्यदानं तत्कालेऽवश्य-
मिति तत्रैव—जलाभावे] रजसाऽर्घ्यं देयम् ।

जलाभावे महामार्गे बन्धने त्वशुचावपि ।

उभयोः संध्ययोः काले रजसा चार्घ्यमुत्सृजेत् ॥

इत्यग्निस्मृतेरिति । तद्विशेषश्च तत्रैव ।

संग्रहे—मुक्तहस्तेन दातव्यं मुद्रां तत्र न कारयेत् ।

तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन राक्षसी मुद्रिका स्मृता ॥

राक्षसीमुद्रिकाध्यैण तत्तोयं रुधिरं भवेत् ।
जलेष्वर्घ्यं प्रदातव्यं जलाभावे शुचिस्थले ॥
संप्रोक्ष्य वारिणा सम्यक्ततोऽर्घ्यं तु प्रदापयेत् ।
* ईषन्नम्रः प्रभाते वै मध्याह्ने ऋजुरास्थितः ॥
सूर्यायार्घ्याञ्जलीन्दद्यात्सायं तूपविशन्भुवि ॥ इति ।

यत्प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति तेन पाप्मानमवधुन्वन्तीति श्रुतेस्ततः प्रदक्षिणं
कर्तव्यम् । तत्र विशेषो गृह्यपरिशिष्टे—असावादित्यो ब्रह्मेति प्रदक्षिणं
परिक्रामन्परिपिश्रेदिति । माधवीयेऽपि—ततः प्रदक्षिणं कृत्वोदकं
स्पृशेत् । तदुक्तं पुराणे—

सायं प्रातः समाचम्य प्रोक्ष्य सूर्याय चाञ्जलीन् ।
दत्त्वा प्रदक्षिणं कृत्वा जलं स्पृष्ट्वा विशुध्यति ॥ इति ।

अथ वक्ष्यमाणजपस्याऽऽसनापेक्षत्वात्तान्याह व्यासः—

कौशेयं कम्बलं चैव अजिनं पट्टमेव च ।
दारुजं तालपत्रं वा आसनं परिकल्पयेत् ॥
कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि ।
कुशासने व्याधिनाशः सर्वेष्टं चित्रकम्बले ॥

वर्ज्यान्याह स एव फलकथनेन—

वंशासने तु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिरेव च ।
धरण्यां तु भवेद्दुःखं दौर्भाग्यं छिद्रदारुजे ॥

* क. पुस्तके समासे—नन्वाचारार्के शौनकीयमीषन्नम्र इत्यादिपूर्वार्धं पठित्वा द्विजोऽर्घ्यं
प्रक्षिपेद्देव्येति तृतीयपाद एकवचनं मध्याह्नसन्ध्यासंनिकटे तथा मदनरत्नीयव्यासवाक्येऽर्घ्यदानं
प्रकृत्यैव सकृदेव तु मध्याह्ने क्षेपणीयं द्विजातिभिरिति प्रातःसंध्याप्रकरणेऽप्युक्त्वा मध्याह्नसंध्याप्र-
करणे विशेष उक्तो गृह्यपरिशिष्टे—आकृष्णीयया हंसवत्या वा त्रिः सकृद्वाऽर्घ्यमुपक्षिपेदिति । तेन
परिशिष्टविकल्पितं व्यासनियमितं चैकवारमेवार्घ्यप्रदानं मध्याह्ने प्रतीयते । प्रकृते तु त्रिवारमिति
चेत्सत्यम् । तत्रैव सायंसंध्याप्रकरणे तच्च प्रातस्तिष्ठन्नर्घ्यदानं सायं तूपविशन्भुवीति यमवाक्यात्सा-
यंसंध्यायामुपविश्यार्घ्यदानं कार्यमित्याहुस्तच्चिन्त्यम् । जलमञ्जलिमादाय गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
दद्यादर्घ्यत्रयं तिष्ठन्निषु कालेषु बह्वृचः । इत्याश्वलायनस्मृतेरितिकण्ठत एवाऽऽश्वलायनेनैव बह्वृच-
स्यापि त्रिष्वपि कालेष्वर्घ्यत्रयस्यैव प्रदानोक्तेः । तथा चोक्तविकल्पादिकं तु बालवृद्धातुरवि-
षयमेव । न चैवं तार्हे सायंसंध्यायामुपवि(वे)शनविरोधः कथं परिहरणीय इति सांप्रतम् । तस्याऽऽ-
श्वलायनेनैव बह्वृच इति वदता परिहृतत्वात् । उपवेशनस्य तु तदन्येष्वेव सावकाशत्वाच्च ।

तृणे धनयशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।

प्रचेता अपि—गोशकृन्मृन्मयं भिन्नं तथा पालाशपिप्पलम् ।

लोहबद्धं सदैवाऽऽकं वर्जयेदासनं बुधः ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—मृगचर्म प्रयत्नेन वर्जयेत्पुत्रवान्गृही । इति ।

ततो नारायणीयाम्नातपाठक्रमानुसारेणाऽऽयातु वरदा देवीत्यारभ्य श्रियमावाहयामीत्यन्तमन्त्रैर्ब्रह्मात्मस्वरूपत्वेन नित्यसिद्धामपि गायत्री-
तिच्छन्दोविशेषघटितमन्त्रस्यास्य स्त्रीलिङ्गकसंज्ञावशात्सेयं देवतेति-
च्छान्दोग्यश्रुतेश्च स्त्रीलिङ्गाभिधेयां प्रत्यक्चित्तिर्विजयते भुवनैकयोनिरि-
तिश्रीसर्वज्ञात्ममुनीश्वरचरणवचनाच्च निरुक्तमन्त्राधिष्ठातृत्वोपलक्षितां
गायत्र्याभिधामात्मसत्तामेवाऽऽवाह्य गायत्रिया गायत्रीछन्द इत्यादि-
पञ्चशीर्षोपनयने विनियोग इत्यन्तेन यजुषा तच्छन्दःप्रभृति पठित्वा,
ओं भूरित्यादिसुवरोमित्यन्तेन प्राणायामं कृत्वा गायत्रीं जपेत् । जपे
गायत्री प्रणवव्याहृतियुता ज्ञेया । तथा च माधवीये व्यासः—

प्रणवव्याहृतियुतां गायत्रीं प्रजपेत्ततः ॥ इति ।

जपे दिगादिनियमस्तूक्तः संस्काररत्नमालायाम्—

जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात् ।

संध्यां प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठेदासूर्यदर्शनात् ॥ इति ।

प्रत्यक्पश्चिमाभिमुखः, सायमित्यार्थिकम् । प्राक्पूर्वाभिमुखः ।

शौनकोऽपि—प्रातस्तिष्ठन्नपेद्देवीं सायं चैवोपविश्य च ।

उपविश्य तु मध्याह्ने प्राङ्मुखो जपमाचरेत् ॥ इति ।

जपसंख्यामाह व्यासः—

अष्टोत्तरशतं नित्यमष्टाविंशतिरे(मे)व वा ।

विधिना दशकं वाऽपि त्रिकालं प्रजपेद्बुधः ॥ इति ।

नारदः—सर्वत्रैव प्रदोषेषु गायत्रीमष्टसंख्यया ।

अष्टाविंशत्यनध्याये जपेन्नाष्टोत्तरं शतम् ॥ इति ।

जपमाला स्मृत्यन्तरे—

आरभ्यानामिकामूलात्प्रादक्षिण्येन वै क्रमात् ।

मध्यमामूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥ इति ।

कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तफलमुच्यते ।

इति माधवीये गौतमोक्तेस्तदष्टोत्तरशतमालाऽपि ।

अष्टोत्तरशता माला उत्तमा परिकीर्तिता । इति तत्रैव प्रजापतिः ।

एवम्—अङ्गुष्ठेन विना जप्यं कृतं तदफलं भवेत् ॥

इति तत्रैव गौतमवचनात्करमालादौ सर्वत्राङ्गुष्ठेनैव जपः कार्यः ।

[*नृसिंहपरिचर्यायाम्—अनामामध्यमाक्रम्य जपं कुर्यात्तु मानसम् ॥

मध्यमामध्यमाक्रम्य जपं कुर्यादुपांशुकम् ।

तर्जनीं तु समाक्रम्य जपं नैव तु कारयेत् ॥

एकैकमणिमङ्गुष्ठेनाऽऽकर्षन्प्रजपेन्मनुम् ।

मेरौ तु लङ्घिते देवि न मन्त्रफलभागभवेत् ॥

प्रमादात्पतिते सूत्रे जपेदष्टोत्तरं शतम् ।

पादयोः पतिते तस्मिन्प्रक्षाल्य द्विगुणं जपेत् ॥ इति ।

सूत्रं मालेति आचारार्के ।] जपस्त्रिविधो नृसिंहपुराणे—

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत ।

वाचिकश्च उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः ॥

त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयान्स्यादुत्तरोत्तरः । इति ।

जपे नियमाः । तत्र शौनकः—

कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं चाधोमुखौ ततः ।

मध्ये संमुखहस्ताभ्यां जप एवमुदाहृतः ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—हस्तौ नाभिसमौ कृत्वा प्रातः संध्याजपं चरेत् ।

हृत्समौ तु करौ मध्ये सायं मुखसमौ करौ ॥ इति ।

वृद्धमनुः—वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य तु करं दक्षिणं यः सदा जपेत् ।

तस्य तत्सफलं जप्यं तद्धीनमफलं स्मृतम् ॥ इति ।

आर्द्रवस्त्रनिषेधः स्मृत्यन्तरे—

आच्छाद्याऽऽर्द्धेण वस्त्रेण करं यस्तु जपेद्यदि ।

निष्फलः स्यात्तस्य जपो देवता न प्रसीदति ॥ इति ।

तदपि प्रागुक्तपरिधानीयवत्सप्तवारमवधूनितं चेन्न दोषावहम् ।

व्यासः—मनःसंतोषणं शौचं भौनं मन्त्रार्थचिन्तनम् ।

अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसंपत्तिहेतवः ॥ इति ।

देशमाह याज्ञवल्क्यः—

अग्न्यगारे जलान्ते वा जपेद्देवालयेऽपि वा ।

पुण्यक्षेत्रे गवां गोष्ठे द्विजक्षेत्रेऽथवा गृहे ॥ इति ।

आर्द्रवस्त्रे त्वाह यमः—यदि स्यात्क्लिन्नवस्त्रो वै गायत्रीमुदके जपेत् ।

अन्यथा तु शुचौ भूम्यां कुशोपरि समाहितः ॥ इति ।

एवमन्येऽपि नियमाः सन्ति ते तु माधवादितो बोध्याः । जपं प्रशं-
सति गौतमः—

अनेन विधिना नित्यं जपं कुर्यात्प्रयत्नतः ।

प्रसन्नो विपुलान्मोगान्मुक्त्वा मुक्तिं च विन्दति ॥ इति ।

ततो गायत्रीं विसर्जयेत् । तदुक्तं स्मृत्यन्तरे—

उत्तमे शिखर इति देवीं जप्त्वा विसर्जयेत् ॥ इति ।

अथोपस्थानम् । तत्र बोधायनः—ब्रह्महृदयेन वारुणीभ्यां रात्रि-
मुपतिष्ठत इमं मे धरुण तस्वा यामीति द्वाभ्यामेवमेव प्रातः प्राक्किष्ठ-
न्मैत्रीभ्यामहरुपतिष्ठते मित्रस्य चर्षणीधृतो मित्रो जनान्यातयति प्रजा-
नन्निति द्वाभ्यामिति । अत्राहोरात्रिशब्दाभ्यां तत्प्रयोजकादित्योपलक्षितं
ब्रह्मैवोपस्थानविषयः । वारुणीत्वलिङ्गस्य त्वैन्द्र्या गार्हपत्यमिति वद्वाधः
श्रुत्या । ब्रह्महृदयं प्रणवः । मध्याह्नसंध्योपस्थानं बोधायनेन गायत्रीजपा-
नन्तरमेवोक्तम्—अप आचम्य दर्भेष्वासीनो दर्मान्धारयमाणः प्राङ्मुखः
सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्तयेच्छतकृत्वोऽपरिमितकृत्वो दशावराम-
थाऽऽदित्यमुपतिष्ठेतोद्वयं तमसस्पर्युदु त्यं चित्रं तच्चक्षुर्देवहितं य उदगा-
दितीति । एतदेव तैत्तिरीयैः स्वीकार्यम् । इतरशास्त्रापेक्षया बोधायनो-
क्तस्याभ्यर्हितत्वात् । इदमुपस्थानमादित्यमुदीक्षमाण ऊर्ध्वबाहुस्तिष्ठती-
तिमैत्रायणीयोपनिषद्वचनात्ते देवा रुद्रं ध्यायन्ति ततो देवा ऊर्ध्वबाहवः
स्तुन्वन्तीतिशिवाथर्वशिरःश्रुतेश्च

उदये ब्रह्मरूपः स्यान्मध्याह्ने तु महेश्वरः ।

अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रयीमूर्तिर्दिवाकरः ॥

इति पुराणाच्चोर्ध्वबाहुनैवं कार्यम् । शिष्टाचारोऽप्येवमेव ।

अथ दिक्प्रत्युपस्थानम् । तत्तु श्रुतावेव नमः प्राच्यै दिश इत्यादि ।
नमो गङ्गायमुनयोरित्यादिना तन्मुन्याद्यभिवादानादि । अत्र वा गाय-
त्र्युद्गासनम् ।

उपस्थायाथवाऽऽदित्यं गायत्रीं तु विसर्जयेत् ।
इत्याचारदर्पणे स्मृत्यन्तरवचनात् । संध्योपास्त्यकरणे प्रत्यवायो
दर्शितो दक्षेण—

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । इत्यादि ।

क्वचित्संध्याहानिरपि न दोषायेत्याह जमदग्निः—

राष्ट्रक्षोभे नृपक्षोभे रोगार्तो भय आगते ।

देषामिद्विजमूपानां कार्ये महति संस्थिते ॥

संध्याहानौ न दोषोऽस्ति यतस्तत्पुण्यसाधनम् ॥ इति ।

संध्याकालादिक्रमे प्रायश्चित्तमाह वसिष्ठः—

कालातिक्रमणे चैव त्रिसंध्यमपि सर्वदा ।

चतुर्थार्घ्यं प्रकुर्वीत भानोर्व्याहृतिसंपुटम् ॥ इति ।

बहुकालातिक्रमे तु जमदग्निः—

संध्याकाले त्वतिक्रान्ते स्नात्वाऽऽचम्य यथाविधि ।

जपेदष्टशतं देवीं ततः संध्यां समाचरेत् ॥ इति ।

उभयमपि गौणकालादूर्ध्वं भवति । दैवाद्यदि माध्याह्निकं दिवा न
कृतं तदा विशेषः स्मृत्यन्तरे—

रात्रौ प्रहरपर्यन्तं दिवाकृत्यानि कारयेत् ।

अवगाहं ब्रह्मयज्ञं सौरजप्यं विवर्जयेत् ॥ इति ।

स्मृतिसंग्रहेऽपि—दिवोदिताः क्रियाः कार्या रात्रावपि यथाक्रमम् ।

अवगाहं विना सौरं ब्रह्मयज्ञं च तर्पणम् ॥ इति ।

अवगाहशब्देन निमज्जनरूपस्नानं निषिध्यत इति गोपीनाथदीक्षिताः ।
ब्रह्मयज्ञनिषेधस्तु ग्रामे मनसा स्वाध्यायमधीयीत दिवा नक्तं वेतिश्रुते-
र्बहुलाध्ययनपरः । तत्रापि विशेषो धर्मप्रश्ने—नक्तं चारण्येऽनग्नाबहिरण्ये
वेति । रात्रावग्निवर्जिते हिरण्यवर्जिते चारण्ये नाधीयीतित्युज्ज्वलाकृत् ।
मध्याह्नसंध्या तु रात्रौ सौरशब्दितसाक्षात्सूर्योपस्थानहीनैव कार्या ।

कुर्वीताऽऽवर्तनीं संध्यां रात्रावपि न दुष्यति ।

दद्यादर्घ्यं तु गायत्र्या सौरमात्रं तु वर्जयेत् ॥

इति स्मृतिरत्नावल्याद्युक्तेः । आवर्तनीह मध्याह्नसंध्या ।

अथ सूतकिनां संध्योपासनविधिः । तत्र भारद्वाजः—

सूतके सूतके कुर्यात्प्राणायाममन्त्रकम् ।

तथा मार्जनमन्त्रांश्च मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥

गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायाध्यं निवेदयेत् ।

मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि ॥ इति ।

गायत्र्यपि दशवारं जप्येत्युक्तमाश्वलायनसत्यतपोभ्याम्—

आपन्नश्चाशुचिः काले तिष्ठन्नपि जपेद्दश । इति ।

आपन्न आपद्भस्तः । अशुचिराशौचवान् । जातकेऽप्येवमेव ।

इत्योकोपाह्वयासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे प्रातःसंध्यादितत्रयविधानप्रकरणम् ।

अथ प्रातःसंध्याप्रयोगः । द्विराचम्य, ओमित्ये० विनियोगमिति प्रण-
वमात्रदेवतादिबोधकं मन्त्रं पठित्वा, ॐ भूः० वरोमिति पूरककुम्भकरे-
चकेषु त्रिवारमशक्तावातमितोः प्राणमायच्छेदिति धर्मसूत्रात्कुम्भक एवै-
कवारं मानसोच्चारणलक्षणं प्राणायामं कृत्वा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातः—
संध्योपासितं करिष्य इति संकल्प्य, आपो हि षेत्यृचा, ऋगन्त ऋगन्ते
कुशोदकैः पवित्रपाणिर्मध्यमानामिकाङ्गुष्ठसंमेलनेन मार्जनं कुर्यात् ।
आपो वा इदं० राप ओमित्युदकाभिमन्त्रणं कृत्वा सूर्यश्च० सूर्ये ज्योतिषि
जुहोमि स्वाहेति तदुदकं पीत्वाऽऽचम्याऽऽपो हि षेति तिसृभिर्हिरण्य-
वर्णा इति च तसृभिः पवमानः सुवर्जन इति चैतेनानुवाकेनान्त एकमेव
मार्जनं कृत्वोत्थायेषन्नम्रः सूर्याभिमुखः सूर्योपलक्षितं ब्रह्मैवाहमस्मीति
ध्यायन्, ॐ भूर्भुवः सुवस्त० यादिति प्रागुक्तमातृदत्तवचनात्संततमेव
पठित्वा मुक्ताङ्गुष्ठेनाञ्जलिना श्रीसूर्यायेदमर्घ्यं दत्तं न ममेति त्रिवारमा-
(म)प ऊर्ध्वं जले शुचिस्थले वा विक्षिपेत् । प्रायश्चिताध्यं तु
प्रागेव व्याहृतिसंपुटितं क्षिप्त्वा तदुत्तरमुक्ताध्यप्रदानं कुर्यात् । तद-
न्तरा तत्रानधिकारात् । तदुत्तरमसावादित्यो ब्रह्मेति जपन्नात्मानं
परित उदकं परिषिञ्चन्प्रदक्षिणं प्रक्रम्याऽऽसीनोऽप उपस्पृशेत् ।
तत उक्तासन उपविश्य, आयातु वरदा० उपनयने विनियोग इति
गायत्र्या आवाहनमृष्यादिस्मरणं च कृत्वा मौनादिधर्मादिमान्कृतप्रा-
णायामो नाभावुत्तानौ करौ कृत्वा सवितुर्देवस्य तद्वरेण्यं भर्गो धीमहि
यो नो धियः प्रचोदयात् । स्वप्रकाशस्य परमात्मनस्तत्तेजो ध्यायेम यो
देवोऽस्माकं बुद्धीः स्वरूपे प्रेरयतीत्यर्थं मनसा ध्यायन्नुपनयनोपदिष्ट-
तृतीयपाठधर्मेणानामिकामूलपर्वाऽऽरभ्य मध्यमामूलपर्वान्तं पुनस्तत एव
परावृत्यानामिकामूलपर्वान्तमङ्गुष्ठेन परिगणयञ्जपं तिष्ठन्नेव कुर्यात् ।

ततो मित्रस्य चर्षणीत्यारभ्य विधेमेतिक्रग्भ्यामहःप्रयोजकादित्योपल-
क्षितं ब्रह्मोपस्थाय या० सदेति संध्यां च, नमः प्राच्यै, इत्यादिदिग्बन्दनं
कृत्वा नमो गङ्गेत्यादिना प्राङ्मुखो मुनीनुपस्थाय, उत्तमे शिखरे० ब्रह्म-
लोकमिति गायत्रीमुद्गास्य, अन्तश्चरति भू० सुवरोमिति गायत्रीकार-
णीभूतमद्वैतं ब्रह्माप्युपस्थाय ततो गुरुमातापितृसर्वब्राह्मणाद्यभिवादनं
कृत्वा पूर्ववत्सकृदेवाऽऽचमनादि कृत्वो तत्सद्ब्रह्मार्पणं कर्म कृत्वा
त्रिविष्णुं स्मरेत् ।

इत्योकोपाह्नवासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे प्रातःसंध्याप्रयोगप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ संध्यावन्दनप्रयोगोक्तमन्त्रा यावदुपलभ्यमानविद्यारण्यभाष्येण
सह लिख्यन्ते । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म । अग्निर्देवता ब्रह्म इत्यार्षम् ।
गायत्रं छन्दं परमात्म० सरूपम् । सायुज्यं विनियोगमिति । अत्रैव
तेषां भाष्यं नोपलभ्यत इति यावदुपलभ्यमानेति । ननु याज्ञिक्यभिध-
नारायणीयोपनिषद्ययं मन्त्र अस्मात्तस्तत्र तु तदीयं भाष्यमस्त्येवेति कथं
तदनुपलब्धिरिति चेच्छृणु । तत्र ह्युपोद्घाते तैस्तत्प्रश्नस्य याज्ञिक्युप-
निषत्संज्ञानिमित्तमुक्त्वाऽऽग्र एवं प्रतिज्ञातम्—तदीयपाठसंप्रदायस्तु देश-
विशेषेषु बहुविध उपलभ्यते । तत्र यद्यपि शाखाभेदः कारणं तथाऽपि
तैत्तिरीयशाखाध्यायकैस्तत्तद्देशनिवासिभिः शिष्टैरादृतत्वात्सर्वोऽपि पाठ
उपादेय एव । तत्र द्विविधानां चतुःषष्ट्यनुवाकपाठः । आन्धाणामशीत्य-
नुवाकपाठः । कर्णाटिकेषु केषांचिच्चतुःसप्ततिपाठः । अपरेषां नवाशीति-
पाठः । तत्र वयं पाठान्तराणि यथासंभवं सूचयन्तोऽशीतिपाठं प्राधा-
न्येन व्याख्यास्याम इति प्रतिज्ञाय, अथ श्रिया मा परिपातयेत्यन्तं
ग्रन्थं व्याख्यायेत ऊर्ध्वं तेषु तेषु देशेषु श्रुतिपाठा अत्यन्तविलक्षणा-
स्तत्र विज्ञानात्मप्रभृतिभिः पूर्वैर्निबन्धकारैर्द्राविडपाठस्याऽऽहृतत्वाद्द्वय-
मपि तमेवाऽऽहृत्य व्याख्यास्याम इतिप्रतिज्ञाय चतुःषष्ट्यनुवाकात्मकद्रवि-
डपाठस्यैव तैरेवाग्रे व्याख्यातत्वात्तत्पाठे येषां मन्त्राणामान्धपाठीयाना-
मभावस्तेषां भाष्यं नैव संपन्नमिति तदन्तःपात्ययमपि मन्त्र इति युक्तैवात्र
भाष्यानुपलब्धिः । एवमेवेह यदह्नात्कुरुत इत्यारभ्य विद्ये सरस्वतीत्य-
न्तमन्त्रस्य सावित्रीमावाहयामीत्यादिवाक्यचतुष्टयस्य गायत्रिया गायत्री
छन्द इत्यारभ्योपनयने विनियोग इति यजुषोऽपि भाष्यानुपलब्धिर्बोध्या ।
न च वेदेऽपि देशभेदेन पाठवैचित्र्यानौचित्यमिति वाच्यम् । तद्यव-

स्थोपपत्तेः । तथाहि—वस्तुतः कलावल्पमेधोभिर्बाह्यैरल्पायुद्धेन साङ्गं सरहस्यं सप्रातिशाख्यं समीमांसं सकल्पं स्वाध्यायाध्ययनधर्मेण स्वस्वशाखाध्ययनमपि कर्तुं यदा न पार्यते तदा कैव कथा शाखान्तराणाम् । तेन शाखान्तरीयपरिशिष्टत्वभ्रमात्केचन मन्त्राः कैश्चित्त्यज्यन्ते । अपरैः शिष्टैराद्रियन्त एव । दृष्टं ह्यैतरेयब्राह्मणे सप्तमपञ्चिकायां श्रीमद्विद्यारण्यमुनिभिः पूर्वाश्रमे माधवाचार्यैस्तद्भाष्ये व्याख्यातमपि खण्डद्वयं प्रायः सर्वत्र शिष्टैरपठ्यमानमेव । नापि परिशिष्टत्वभ्रमप्रमयोर्विनिगमनाविरहः । मूरितरपठनपाठस्यैव नियामकत्वात् । अन्यथा पूर्वतन्त्रे व्यवस्थापितस्य शिष्टाचारप्रामाण्यस्य विपुवापत्तेः । तस्माद्युक्तैवेयं व्यवस्थेति । एवं चोमित्येकाक्षरं ब्रह्मेत्यादिमन्त्रो मयैव दिङ्मात्रं यथामति व्याख्यायते । ओमित्याकारकमेकाक्षरमोकाराख्यैकस्वरात्मकत्वादेकवर्णजातं प्रतीकमित्यर्थः । ब्रह्म, अद्वैतप्रकाशात्मसन्मात्रमस्तीत्यर्थः । ओमिति ब्रह्मेति श्रुत्यन्तरात् । एतस्य ब्रह्मत्वेनोपास्यस्य प्राणायामादौ जप्यस्य प्रणवस्य का देवतेत्यत आह—अग्निरिति । तेनात्रोक्तोपासनपूर्वकं जपतां संसारनिःसारतृणनिचयदहनक्षमत्वमावेदितं भवति । कोऽस्य मन्त्रस्य द्रष्टेत्यत्राऽऽह—ब्रह्मेति । छान्दसः संध्यभावः । ऋषेरिदमृषिसंबन्धः । ब्रह्मेति द्वितीयान्तं, ब्रह्म प्रत्येवास्य ऋषित्वसंबन्धः । इतरे मन्त्रास्तत्तदृषिभिर्दृष्टाः । प्रणवस्तु साक्षाद्ब्रह्मणैव दृष्ट इत्यर्थः । तथा च निरुपमोऽयं मन्त्र इति भावः । एवं किमस्य छन्द इत्याकाङ्क्षायामाह—गायत्रमिति । गायत्रेव गायत्रमिति स्वार्थे तद्धितः । छन्दमित्यजन्तत्वमार्षमेव । एवं चाकारोकारमकारभेदेन प्रणवस्य त्र्यवयवत्वाच्चिपादात्मकगायत्रीछन्दस्त्वमित्याशयः । अथैवं महामहिम्नः प्रणवस्य किमकाराद्येव रूपमन्यद्वेत्यपेक्षायामाह—परमेति । अत्रापि क्लीबत्वाजन्तत्वे आर्षे एव । तथा चास्य रूपं तस्य वाचकः प्रणव इति पातञ्जलसूत्राद्वाच्यवाचकयो रामेति द्यक्षरं नाम मानभङ्गः, पिनाकिन इत्यादिवदौपचारिकाभेदात्स प्रसिद्धः सर्ववेदान्तेषु विद्वदनुभवेषु चाभिव्यक्तः परमात्मैवास्तीत्यर्थः । तद्वदस्य कुत्र विनियोग इत्याशङ्क्याऽऽह—सायुज्यमिति । सह युज्यत इति सयुक्शोधिततत्त्वंपदार्थयुगुलं तस्य भावः सायुज्यं जीवब्रह्मैक्यरूपं कैवल्यमित्यर्थः । इदमपि द्वितीयान्तमेव । तथा विनियोगशब्दस्य नपुंसकत्वं छान्दसमेव । तेनास्य निरुक्तसायुज्यं प्रति

ख्यानम् ।

विनियोगोऽस्तीत्यर्थः । तस्मात्प्राणायामादावुक्तोपासनोपास्यमानप्रणव-
प्रतीकेनाद्वैतब्रह्मात्मैक्यभावनं कार्यमिति तात्पर्यम् । वस्तुतस्तु स एवोति' ।
अथो भूरित्यादिमन्त्रगतं तु विद्यारण्यभाष्यमेव लिख्यते । गायत्र्यावाहना-
दूर्ध्वं प्राणायामार्थं मन्त्रमाह-ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ सुवः, ॐ महः, ॐ
जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम् । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् । ओमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुव-
रोम् । इति । भूरादयः सत्यान्ता लोकप्रतिपादिकाः सप्त व्याहृतयस्तेषां
च लोकानां प्रणवप्रतिपाद्यब्रह्मस्वरूपविवक्षया प्रत्येकं प्रणवोच्चारणम् ।
तत्सवितुरित्यादिको गायत्रीमन्त्रः । तत्प्रतिपाद्यस्य ब्रह्मत्वविवक्षया
तदादौ प्रणवोच्चारणम् । मन्त्रस्य चायमर्थः-सवितुः प्रेरकस्यान्तर्यामिणो
देवस्य वरेण्यं वरणीयं श्रेष्ठं भर्गस्तेजो धीमहि ध्यायेम यः सविता परमेश्वरो
नोऽस्मदीया धियो बुद्धिवृत्तीः प्रचोदयात्प्रकर्षेण तत्त्वबोधे प्रेरयतु तस्य
तेजो ध्यायेमेति पूर्वत्रान्वयः । इति । शिरोमन्त्रभाष्यं तु प्रागेव भस्म-
धारणप्रयोगमन्त्रभाष्यप्रस्तावे समुदाहृतमिति तदेवात्राप्यनुसंधेयम् ।
आपो हि ष्ट्यादिमार्जनमन्त्रास्तद्भाष्यं च स्नानप्रकरण एवोक्तम् ।
अधुना, आपो वा इदं सर्वमित्यादिजलाभिमन्त्रणमन्त्रो माधवीयं
तद्भाष्यं च लिख्यते । वृष्ट्यभावकृतोपद्रवपरिहारिणमब्देवतामन्त्रमाह-
आपो वा इदं सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राणा वा आपः पशव आपोऽ-
न्नमापोऽमृतमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छन्दाःस्यापो
ज्योतीःष्यापो यजूःष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवः सुवराप
ओमिति । यदिदं जगदस्ति तत्सर्वमापो वै जलमेव । कथमिति तदेव
प्रपञ्चयते-विश्वा भूतानि सर्वाणि प्राणिशरीराण्यापो जगतो रूपेण
तदुत्पादकत्वात् । प्राणा वै शरीरवर्तिवायवोऽप्याप उदकपानेन प्राणा-
नामाप्यायनात् । अत एव च्छन्दोगा आमनन्ति-आपोमयः प्राणो न
पिबतो विच्छेत्स्यत इति । पशवो गवादयोऽप्यापः क्षीररूपेण तत्र
परिणतत्वात् । अमृतं देवैरुपजीव्यं वस्त्वापस्तद्रूपेणापि परिणतत्वात् ।
अन्नं व्रीहियवादिकमापो जलस्यान्नहेतुत्वं प्रसिद्धम् । सम्यग्राजत इति
सूत्रात्मा हिरण्यगर्भः सम्राट् । विस्पष्टं राजत इति ब्रह्माण्डदेहः पुरुषो
विराट् । इन्द्रियादिनैरपेक्ष्येण स्वयमेव राजत इत्यव्याकृताभिमानीश्वरः
स्वराट् । छन्दांसि गायत्र्यादीनि ज्योतीष्यादित्यादीनि यजूष्यनियता-

क्षरा मन्त्राः सत्यं यथार्थकथनं सर्वा देवता इन्द्रादयो भूर्भुवस्वन्नयो लोकाः सम्राडादिलोकत्रयान्तपदार्थरूपेणाऽऽपः स्तूयन्ते । अत एवाऽऽपो मूलकारणं परमात्मरूपेण प्रणवप्रतिपाद्या इति वक्तुमोकारः पठितः । इति नारायणीये द्वाविंशोऽनुवाकः ।

प्रातःसंध्याकाले जलपानार्थं मन्त्रमाह—सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युष-
तयश्च मन्युकृतेभ्यः । पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यद्रात्रिया पापमकार्षम् ।
मनसा वाचा हस्ताभ्याम् । पद्भ्यामुदरेण शिश्रा । रात्रिस्तद्वलुम्पतु ।
यत्किञ्च दुरितं मयि । इदमहं माममृतयोनौ । सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ।
इति । सूर्येऽहर्निष्पादके सूर्योपाधिके । अन्यत्सर्वं पूर्ववद्याख्येयम् ।

संध्यात्रये मार्जनादूर्ध्वं गायत्र्या आवाहनमन्त्रमाह—आयातु वरदा
देवी अक्षरं ब्रह्म संमितम् । गायत्रीं छन्दसां मातेदं ब्रह्म जुषस्व मे । इति ।
वरदाऽस्मदभीष्टवरदा देवी गायत्रीछन्दोभिमानिनी देवता, अक्षरं
विनाशरहितं संमितं सम्यग्वेदान्तप्रमाणेन निश्चितं ब्रह्म जगत्कारणं
परतत्त्वमुद्दिश्याऽऽयातु आगच्छतु अस्माकं ब्रह्मतत्त्वं बोधयितुमागच्छ-
त्वित्यर्थः । अयमेवार्थ उत्तरार्धेन स्पष्टी क्रियते—छन्दसां गायत्रीत्रिष्टु-
बादीनां वेदानां वा माता जननी देवता गायत्री गायत्रीशब्दाभिधेया
नोऽस्मानिदं ब्रह्म वेदान्तप्रतिपाद्यं तत्त्वं जुषस्व जोषयतूपदिशत्वित्यर्थ
इति । गायत्रीमिति च्छान्दसी द्वितीया । म इति पाठे तु कर्मणि षष्ठी ।

एवं यद्दहादित्यादिवाक्यत्रयेऽपि भाष्याभावान्मयैव प्राग्वत्तदपि
व्याख्यायते । ननु कथं ब्रह्मोपदेशपात्रत्वं पापिनि त्वर्यात्यत्राऽऽह—यद्-
ह्मात्कुरुते पापं तद्दहात्प्रतिमुच्यते । यद्रात्रियात्कुरुते पापं तद्रात्रियात्प्र-
तिमुच्यते । सर्ववर्णे महादेवि संध्याविद्ये सरस्वतीति ।

हे सर्ववर्णे त्रिषष्टिश्चतुष्षष्टिर्वा वर्णाः शंभुमते मता इतिशिक्षोक्ताका-
रादिनिखिलवर्णस्वरूपे, इत्यर्थः । तत्र हेतुः—हे मदादेवि महानपरि-
च्छिन्नो यो देव एको देव इति श्रुतेरद्वैतस्वप्रकाशः परमात्मा तस्येयं
प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावेन तत्संबन्धिनी तत्संबुद्धौ तथा । सर्वे वेदा
यत्पदमामनन्तीति श्रुतेरद्वैतब्रह्मप्रतिपादकत्वेन सर्ववर्णात्मकसर्ववेदाधि-
ष्ठात्रि भो गायत्रि देवते, इत्यर्थः । अस्मदादिस्त्रैवर्णिकः कृताहरहः—
संध्यावन्दन इत्यार्थिकम् । यद्दहादार्षमजन्तत्वम् । दिवसनिमित्तक-
मित्यर्थः । एतादृशं पापं कुरुते । तद्दहात्तृतीयार्थेयं पञ्चमी । अह-
रन्तर्यामिणा परमात्मनैव प्रतिमुच्यते निरस्यत इत्यर्थः । औणादिकौ

ध्यानम् ।

वाऽह्वरात्रियशब्दौ । शिष्टं तु प्राग्वदेव । अत एवाग्निश्चेत्यादि सूर्यश्चेत्यादि प्रार्थनामन्त्रावाप्नातौ । न हीदं मया निवेदनीयम् । निरुक्तसंबोधनेनैव तयोस्त्वत्स्वरूपानतिरेकात् । अत एव हे संध्याविद्ये संध्यया संध्योपासनया विद्या ब्रह्मविद्या यस्याः सकाशाद्भवतीति तथा तत्संबुद्धौ । यद्वा कर्मधारय एव । हे संध्योपासनारूपे हे ब्रह्मविद्यारूपे, इत्यर्थः । अथ वा षष्ठीतत्पुरुष एव । तथा च भोः संध्याकालसंबन्ध्युपासनास्वरूपे गायत्रि त्वं सरस्वतीशब्दाधिष्ठात्री देवताऽसीत्यर्थः । तस्मान्मह्यं ब्रह्मोपदेष्टुं त्वया शीघ्रमागन्तव्यमेवेति भावः । इति ।

ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामाऽसि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूरो गायत्रीमावाहयामि । इति ।

हे गायत्रि देवि त्वमोजोऽसि बलहेतुर्भूत्वाऽष्टमधातुरूपाऽसि । सहोऽसि शत्रूणामभिभवनशक्तिरसि । बलमसि शरीरगतव्यवहारसामर्थ्यरूपाऽसि । भ्राजोऽसि दीप्तिरूपाऽसि । देवानामग्नीन्द्रादीनां धाम तेजो यदस्ति तन्नामाऽसि तदेव तद नामेत्यर्थः । विश्वं सर्वजगद्रूपं त्वमेवासि । विश्वायुः संपूर्णायुःस्वरूपाऽसि । उक्तस्यैव व्याख्यानं सर्वमसि सर्वायुरिति । अभिभूः सर्वस्य पापस्य तिरस्कारहेतुः । ओं प्रणवप्रतिपाद्यपरमात्माऽसि । एतादृशीं गायत्रीं मदीये मनस्यावाहयामि । इति नारायणीये षड्विंशोऽनुवाकः ।

सावित्रीमावाहयामि सरस्वतीमावाहयामि छन्दऋषीणावाहयामि । श्रियमावाहयामि । इति ।

अत्रापि भाष्याभावान्मयैव व्याख्यायते । सावित्रीं सूतेऽसौ सविता जन्माद्यस्य यत इति पारमर्षसूत्राज्जगज्जन्मादिकारणोपलक्षितः परमात्मा तस्य यैश्वर्यशक्तिस्तामित्यर्थः । सरस्वतीपदं त्वधस्तादेवोक्तार्थम् । छन्दांसि गायत्र्यादीनि तेन तदधिष्ठात्र्यो देवता ग्राह्याः । ऋषयो षसिष्ठाद्याः सर्वेऽपि मत्रद्रष्टारः । तानि च ते चेति तान् । श्रियं संपदधिष्ठात्रीं देवतां महालक्ष्मीमित्यर्थः । प्रत्येकमावाहयामीति प्रार्थनमादरातिशयार्थमेव । गायत्र्यावाहनं तु आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्म संमितमित्यादिगतभाष्योक्तरीत्या ब्रह्मोपदेशार्थमिति प्रकटमेव । तद्वत्सावित्र्यादीनामपि तत्क्रमादैश्वर्यविद्याछन्दऋष्यज्ञानप्रयुक्तकर्मवैकल्याभावस्वाभिमतसंपत्तिसिद्ध्यर्थमेवेति ।

गायत्रिया गायत्री छन्दो विश्वामित्र ऋषिः सविता देवताऽग्निर्मुखं ब्रह्मा शिरो विष्णुर्हृदयं रुद्रः शिखा पृथिवी योनिः प्राणापानव्यानो-

दानसमाना सप्राणा श्वेतवर्णा सांख्यायनसगोत्रा गायत्री चतुर्विंशत्यक्षरा त्रिपदा षट्कुक्षिः पञ्चशीर्षोपनयने विनियोगः । इति ।

अत्रापि पूर्ववद्भाष्यानुपलब्धेर्मयैव व्याख्यायते । अथैवमावाहने सिद्धेऽप्यग्रे जप्यस्य तत्सवितुरित्यादिरूपस्य गायत्र्यभिधमन्त्रस्य किं छन्दः को वर्षिः का देवता किं तद्रूपं किं तद्रोत्रं कति मन्त्राक्षराणि क्वास्य विनियोग इति जिज्ञासायामाह—गायत्रिया इति । गायत्र्यास्तत्सवितुरित्यादिवक्ष्यमाणमन्त्रस्य । गायत्रिया इति पाठस्तु प्रातिशाख्यमर्यादया बोध्यः । गायत्री पादत्रयात्मकत्वाद्गायत्रीसंज्ञं छन्दस्तत्तच्छास्त्रोक्तवर्णसमुदायः । अस्तीति सर्वत्र शेषो ज्ञेयः । एवं गायत्र्या इति षष्ठ्यन्तस्य प्राणापानेत्यादिपञ्चशीर्षेत्यन्तेतरत्र क्रमाद्व्यादिविनियोगान्तनवकेऽपि संबन्धः । विश्वामित्रः कौशिकः प्रसिद्ध एव । ऋषिः प्राथमिकतदधिष्ठातृदेवतासाक्षात्कारवत्त्वेन तद्दृष्टेत्यर्थः । श्रुतेः प्राक्तनत्वेऽपि अर्वाचीनस्य विश्वामित्रस्य निरुक्तगायत्र्यृषित्वकथनं तु सर्वज्ञत्वादेवोपपन्नम् । एतेन विश्वामित्र एव यदि तपोमहिम्ना गायत्रीमन्त्रं दृष्टवानिति तस्य स एव ऋषिरिति वक्तव्ये ततः पूर्वमसौ मन्त्रो नैव लोके प्रकटः स्थित इति स्यात्तत्त्वनुचितम् । एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यद्देवो यजुर्वेदः सामवेद इत्यादिश्रुत्या वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनादित्यादिस्मृत्या शास्त्रयोनित्वादिति-पारमर्षयुक्त्या च सह विरोधात् । नचाऽऽस्तां श्रुत्यादिभ्यः सर्वेषामपि वेदानां ब्रह्मजन्यत्वं तथाऽपि साक्षात्कारस्तु तत्तन्मन्त्रविषयकस्तत्तद्वृषीणामेवेति को विरोध इति वाच्यम् । यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्राहिणोति तस्मा इति श्रुत्या प्रतिपादितं यदीश्वरकर्तृकं प्रथमनिर्मितब्रह्माणं प्रत्येव सर्ववेदप्रतिबोधनं तत्तत्तद्वृषीणामेव तत्तन्मन्त्रद्रष्टृत्वेऽनुपपन्नं स्यात् । तस्मात्किमत्राऽऽकूतमिति प्रश्नः परास्तः । उभयव्यवस्थोपपत्तेः । तस्मादेवमेव सर्वत्र तत्तन्मन्त्रेषु तत्तद्वृषित्वमिति दिक् । सविता सूते मायया सर्वं जगदिति तथा परमेश्वर इत्यर्थः । देवता तत्सवितुरित्यादिना प्रतिपाद्य इति यावत् । एवं छन्दःप्रभृतिप्रश्नत्रयसमाधानमभिधाय किं तद्रूपमित्यस्य यद्यपि गायत्र्यास्तत्सवितुरित्यादिरूपमसंदिग्धमेव तथाऽप्यस्या महामहिमत्वेन संभावितं रामादिवर्तिकिंचिदलौकिकं रूपं वक्तव्यमेव तत्कीदृशमित्याकारकस्य प्रश्नस्योत्तरमाह—अग्नि-रित्यादिना । अग्निर्हि सर्वदेवानां हव्यादनद्वारमिति सर्वदेवतामय्याः सर्वेश्वरशक्तिभूतायाः श्रीगायत्र्याः स एव मुख्यावयवविशेषत्वेन ज्ञेय

इत्याशयः । ब्रह्मेति । ब्रह्माद्यास्तूक्ताः सिद्धान्तविन्दौ—कारणीभूतरजःस-
 च्चतमउपहितचित्त्वेन तल्लीलाविग्रहा अपि चतुरास्यचतुर्भुजपञ्चास्याः ।
 शिरआद्याः प्रसिद्धा एव । शिखापदेनात्राजहत्स्वार्थया गौण्या वा
 कवर्येव लक्ष्यते । पृथिवी योनिरित्यग्निमवाक्ये तद्रूपस्य स्त्रीव्यक्तिक-
 स्वात् । पृथिवी तदाधिष्ठात्री देवता । योनिर्भगमित्यर्थः । अत्र ब्रह्मा-
 दीनां चतुर्णां तत्तद्वयवत्वकल्पने बीजं तु पूर्वोक्तमग्निर्मुखमित्यत्राग्नी
 सर्वदेवताकर्तृकहव्याशनसाधनत्वं मुखधर्मीभूतं यथा तद्वदत्राप्युह्यम् ।
 तद्यथा—ब्रह्मण ऊर्ध्वदिग्धिष्ठातृत्वाच्छिरस्त्वम् । चित्तं तु चेतो हृदय-
 मित्यमराद्विष्णोश्चित्ताधिष्ठातृत्वेन शास्त्रे प्रसिद्धत्वाद्बृहदयत्वम् । रुद्रस्य-
 तर्मोशप्राधान्यात्तस्य च कृष्णवर्णत्वेन, अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णामि-
 त्थत्र प्रसिद्धत्वाच्छिखाशब्दितकवरीभारत्वम् । पार्थिवरजोशेनैवोपस्थो-
 त्पत्तेः पञ्चदश्यादौ प्रसिद्धत्वात्तत्र तत्त्वं चेति । अथ यद्येवं मुखाद्यवय-
 वैरुक्तव्यक्तिर्विशिष्टा तर्हि केऽस्याः प्राणाः को वर्णः किं गोत्रं के कुक्षी
 कति शीर्षाणि किं निरुक्तब्रह्मशिरस्त्वेन चत्वार्येवान्यथा वेत्याशङ्क्याऽऽ-
 ह—प्राणेत्यादिपञ्चशीर्षेत्यन्तेन यजुषैव । प्राणादयः प्रसिद्धा एवास्म-
 दादीनामाध्यात्मिके व्यष्टिशरीरे सूक्ष्मपञ्चमहाभूतमीलितरजोशपञ्चक-
 जन्यक्रियाशक्त्यात्मानोऽन्तर्वायुत्वेन प्रतीयमाना हृदयाद्यवच्छेदेन लब्ध-
 तत्तत्संज्ञाः । तैरेव समष्टिभूतेरासमन्तात्सप्राणा प्राणैः सहितेत्यर्थः ।
 समष्टिप्राणैरेव प्राणवतीति यावत् । एतादृशी श्वेतवर्णा शुद्धसत्त्वप्र-
 धाना । तत्रापि कदाचिद्धिमालयवद्भक्तविशेषानुग्रहार्थं सांख्यायन-
 शर्मणो महर्षिविशेषस्य गृहेऽवतीर्णत्वात्तद्गोत्रेण सहितेत्यर्थः । एतादृ-
 शीयं चतुर्विंशत्यक्षरा । तदुक्तं संस्काररत्नमालायां स्मृत्यन्तरे—

चतुर्विंशत्यक्षरां तु गायत्रीं प्रजपन्हृदि ।

सर्वान्वर्णानभिध्यायेद्देवतामर्थमेव च ॥ इति ।

अक्षरशब्दस्तु स्वरे वर्तते । तत्र यद्यपि स्वरास्त्रयोविंशतिरेव गायत्री-
 मन्त्रे वर्तन्ते तथाऽपि ण्यमित्यत्र भावनया णियमिति स्वरद्वयं ज्ञेयम् ।
 उक्तं च पिङ्गलेन—इयादिपूरण इति । पाद् इत्यनुवर्तते । इयादिः पूरणो
 यस्य स इयादिपूरणः । आदिशब्देनोवादयो गृह्यन्ते । तत्रायमर्थः—यत्र
 गायत्र्यादौ छन्दसि पादस्याक्षरसंख्या न पूर्यते तत्रेयादिभिः सा पूरयि-
 तव्या । यथा तत्सवितुर्वरेण्यम् । दिवं गच्छ सुवः पतेत्येवमादय इति
 हलायुधेन व्याख्यातम् । घृणिरिति द्वे अक्षरे । सूर्य इति त्रीणि । आदित्य

इति त्रीणि । एतद्वै सावित्रस्याष्टाक्षरं पद* श्रियाऽभिषिक्तमिति श्रुति-
रपि साधिकाऽत्रेति ज्ञेयमिति । अत एव त्रिपदाऽष्टाक्षररूपपादत्रयवती
गायत्रीहृदयानुसारेण ऋगादिवेदरूपपादत्रयवती वेत्यर्थः । एतादृशी या
गायत्री, एतन्नामकच्छन्दोविशेषबद्धप्रकृतमन्त्ररूपा वर्णसरणिः षट्कुक्षि-
र्वक्ष्यमाणश्रुतिप्रसिद्धप्राच्यादिदिक्षट्कमेव कुक्षौ कुक्षी वा यस्याः सेति
गायत्रीहृदयसंमतरीत्या वाऽस्याः सर्ववेदमयत्वादिन्द्रयमनिर्कृतिवरुण-
वायुकुबेराख्या दशदिगीशमध्ये मुखशिरोहृदयशिखात्वेनोक्ताग्निब्रह्म-
विष्णुरुद्रेभ्यश्चतुर्भ्योऽवशिष्टाः षड्देवाः कुक्षौ कुक्षी वा यस्याः सेति
वा तथेत्यर्थः । एतादृशी, तथा पञ्चशीर्षा परशिवाख्यपरमेश्वरशक्ति-
त्वेन ब्रह्मविद्या लीलाविग्रहविशेषवती पञ्चवक्त्रेति यावत् । सैवास्तीति
संबन्धः । तथा चाऽऽहुस्तवल्कारोपनिषद्वाक्यभाष्ये चतुर्थखण्डे श्रीभग-
वत्पादपादारविन्दरेणवः—इन्द्रस्य बोधहेतुत्वाद्विद्यैवोमा विद्यासहायवा-
नीश्वर इति स्मृतिरिति । यद्वा गायत्रीहृदयानुसारेण स्वस्याश्छन्दोरू-
पत्वात्तदितरव्याकरणाद्यङ्गरूपपञ्चशीर्षवतीत्यर्थः । एवं च निरुक्तच्छ-
न्दआदिभिः प्रतिपादितरूपादिकया स्वाधिष्ठातृदेवतया सहाभिन्नत्वेन
भावितस्य प्रोक्तलक्षणस्यास्य गायत्रीमन्त्रस्योपनयने वेदाध्ययनार्थं
यथाविधिगुरुसमीपनयनरूपप्रसिद्धसंस्कारविशेषात्मककर्मणीत्यर्थः ।
विनियोगो विशेषेण तत्तद्ब्रह्मोक्तविधिपूर्वकं नितरां प्राधान्येन योजनं
भवतीत्यर्थः । तस्माद्वायव्यधिष्ठात्री देवता सर्वदेवमयी पारमेश्वरी
शक्तिरेव तत्प्रतिपाद्यं त्वद्वैतं ब्रह्मैवाऽऽत्माभिन्नमिति विदांकुर्वन्तु विद्
इति शिवम् ।

अथोपस्थानमन्त्राणां वैद्यारण्यकं भाष्यम् । अथ मित्राय सत्याया-
म्बानां चरुमित्यस्य पुरोनुवाक्यामाह—

मित्रस्य चर्षणीधृतः श्रवो देवस्य सानसिम् । सत्यं चित्रश्रवस्तमम् ।
मित्रो जनान्यातयति प्रजानन्मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् । मित्रः
कृष्टीरनिमिषाऽभिचष्टे सत्याय हव्यं घृतवद्विधेम । इति ।

मित्रस्य चर्षणी० श्रवस्तममिति । चर्षणीधृतो मनुष्याणां धारयितु-
मित्रस्य देवस्य श्रवः श्रोतुं योग्यं यशो महदस्तीति शेषः । सानसिं
फलदानशीलम् । सत्यं सत्यवादिनम् । चित्रं श्रवः कीर्तिर्यस्यासौ चित्र-
श्रवाः । अतिशयेन तादृशम् । यजामह इति शेषः । तत्रैव याज्यामाह—
मित्रो जनान्० द्विधेमेति । अयं मित्रो देवो जनान्सर्वान्यातयति स्वस्व-

व्यापारेषु प्रयत्नयुक्तान्करोति । प्रजानंस्तत्तदधिकारं विद्वान् । किं च मित्रः पृथिवीं दाधार धृतवान् । उतापि च द्यां दाधार । किं च मित्रः कृष्टीर्मनुष्याननिमिषा देवांश्चाभिचष्टे सर्वतः पश्यति । सत्यायामोघफलाय तस्मै मित्राय हव्यं चरुलक्षणं घृतवद्घृतयुक्तं विधेम कुर्म इति ।

याः सदा सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।

सायं प्रातर्नमस्यन्ति सा मा संध्याऽभिरक्षतु ॥

इति सौत्रो मन्त्रः ।

अत्रापि भाष्यानुपलब्धेर्भयैव व्याख्यायते । सर्वभूतानि सत्तावन्ति सर्ववस्तूनि । तत्र जडानां वक्ष्यमाणनमस्कर्तृत्वासंभवमाशङ्क्य विशिनष्टि—स्थावराणीति । पृथ्व्यादीनीत्यर्थः । चः समुच्चये । तथा चराण्यपीत्यर्थः । यामद्वैतचित्तिं सदा निरन्तरम् । सायं तमउपलक्षितलयकाल इति यावत् । प्रातः प्रकाशोपलक्षितविक्षेपक्षण इत्यर्थः । नमस्यन्ति नामाद्यात्मकस्य दृश्यस्य दृगेकायत्तसत्तास्फूर्तिकत्वात्स्वनिकर्षपूर्वकं तदुत्कर्षं निसर्गत एव प्रकटयन्ति साऽद्वैतचित्तिलक्षणा संध्या संध्याकालाद्युपलक्षिता परदेवता मा मामभिरक्षतु स्वरूपबोधाधिष्कारेणाविद्यातत्कार्यात्मकयावद्द्वैतरूपसंसारध्वंसनेन स्वरूपानन्दावाप्तिरूपकैवल्यात्मना परिपालयत्वित्यन्वयः ।

नमः प्राच्यै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्येताभ्यश्च नमो नमो दक्षिणायै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्येताभ्यश्च नमो नमः प्रतीच्यै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्येताभ्यश्च नमो नम उदीच्यै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्येताभ्यश्च नमो नम ऊर्ध्वायै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्येताभ्यश्च नमो नमोऽधरायै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्येताभ्यश्च नमो नमोऽवान्तरायै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्येताभ्यश्च नमो नमो गङ्गायमुनयोर्मध्ये ये वसन्ति ते मे प्रसन्नात्मानश्चिरं जीवितं वर्धयन्ति नमो गङ्गायमुनयोर्मुनिभ्यश्च नमो नमो गङ्गायमुनयोर्मुनिभ्यश्च नम इति ।

एतस्य दिगाद्युपस्थानखण्डस्य गङ्गाप्रवाहवन्निसर्गप्रसादशालित्वेन निगदव्याख्यातत्वान्नैवात्र भाष्यं किञ्चित्सदप्यलेखि ।

जपादूर्ध्वं गायत्रीदेवताविसर्जनमन्त्रमाह—

उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि ।

ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥ इति ।

भूम्यामास्थितो यः पर्वतो मेरुनामकस्तस्य मूर्धन्युपरिभागे यदुत्तम-
शिखरमस्ति तस्मिन्नियं गायत्री देवी तिष्ठति । तस्मात्कारणाद्धे देवि
ब्राह्मणेभ्यस्त्वदुपासकेभ्यस्त्वदनुग्रहेण परितुष्टेभ्योऽत्र ज्ञानमभिव्याप्य
यथासुखं स्वकीयसुखमनतिक्रम्य स्वस्थान उत्तमे शिखरे गच्छ । इति
नारायणीये त्रिंशोऽनुवाकः ।

अत्रोत्तमे शिखरे जात इत्यान्ध्रपाठः । तत्र प्रादुर्भूत इत्यर्थः । भाष्यं
द्रविडपाठानुसारीति प्रागेवोक्तम् । तेन स्तुतोमयेत्यग्रिममन्त्रेऽपि भाष्यं
नास्तीति मयैव व्याख्यायते—

स्तुतोमया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ती पवने द्विजाता । आयुः
पृथिव्यां द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा प्रजातुं ब्रह्मलोकम् ॥ इति ।

एवं पूर्वमन्त्रेण गायत्रीं प्रति विसर्जनप्रार्थनमुक्त्वाऽथ स्वमनस्येव
ब्राह्मणेन तस्याः सकाशादेतावन्मात्रकामना मम समृद्धा भवतु तदु-
त्तरमसौ स्वस्थानं गच्छत्वित्यभिलषणीयमित्याह—स्तुतोमयेति ।
द्विजाता ब्राह्मणीरूपा । परशिवलीलाविग्रहस्य ब्राह्मणात्मकत्वात्प्रा-
गुक्तपञ्चशीर्षत्वादिना तच्छक्तिरूपाया गायत्र्या युक्तमेव ब्राह्मणीत्व-
मिति तत्त्वम् । तदुक्तं पाराशरपुराणे—

ब्राह्मणो भगवान् रुद्रः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ।

ब्रह्मभूतस्य रुद्रस्य ब्राह्मण्यं नैव हेतुजम् ॥ इति ।

एतादृशी । स्तुतोमया स्तुतेन्द्रप्रबोधहेतुत्वेन कृतगुणवर्णनोमा यया
सा तथा तथा सामवेदीयोमावर्णनघटिततल्लकारोपनिषदुपलक्षितब्रह्म-
विद्ययेत्यर्थः । एतेनोमागायत्र्योरभेदात्तया यथेन्द्राय ब्रह्म स्वपतिभूतं
प्रकटितं तथेयमपि मह्यं प्रकटयत्विति आवेदितं भवति । तदिदमाम्ना-
यते तस्यामेवोपनिषदि—स तस्मिन्नेवाऽऽकाशे स्त्रियमाजगाम बहु
शोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद्यक्षमिति । ब्रह्मोति होवा-
चेति । स इन्द्रो यक्षं पूज्यम् । विस्तरस्तु श्रीमद्भगवत्प्यादीयभाष्यादौ
ज्ञेयः । वरदा वरं विश्वाधिकम् । विश्वाधिको रुद्रो महर्षिरिति श्रुतेः ।
सर्वोत्तमं परं ब्रह्म ददाति अद्वैतात्मत्वेन प्रयच्छतीति तथा । निरुक्तब्र-
ह्मविद्याकरणकरचितमूलाविद्यावरणसंहरणेति यावत् । ईदृशी ।
वेदेति । स्वपादत्रयतः क्रमाद्गादिवेदत्रयजनयित्री गायत्रीत्यर्थः ।
छन्दसां मातेति श्रुत्यन्तरमपि । पवने मत्प्राणवायौ । प्रचोदयन्ती,
एतस्य मां जपतो ब्राह्मणस्य प्राणवायुः सुषुम्नाख्यनाडीविशेषप्रवेशेन

ब्रह्मरन्ध्रे स्थिरी भवत्वितिसाद्यस्कफलकसंकल्परूपोक्तवायुविषयकप्रे-
रणं कुर्वती सतीत्यर्थः । पृथिव्यां भूर्लोकान्तर्गतभरतवर्षभूमाविति
यावत् । आयुः शतायुर्वै पुरुष इतिश्रुत्युक्तं प्रकृतदेहप्राणवियोगप्रागभा-
वपरिपालकानुकम्पालवम् । द्रविणं यथेच्छं सुवर्णं ब्रह्मवर्चसं शीघ्र-
ब्राह्मण्यावबोधकसुखकान्तिजातं, साङ्गसार्थसरहस्यसमीमांसाद्वयस्वशा-
खाध्ययनयथाधिकारतदाचारविचारसंपत्तिजातं वा । समुच्चायकोऽपि-
रध्याहार्यः । एतेन धर्मादित्रयसाधनमपि लभ्यते । मह्यं दत्त्वा ब्रह्मलो-
कमुत्तम इति पूर्वोक्तसत्यलोकम् । प्रजातुम् । छान्दसमिदं रूपम् ।
प्रयात्त्रित्यर्थः ।

अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु ।

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्वꣳ रुद्रस्त्वꣳ विष्णुस्त्वं ब्रह्म (ह्या)
त्वं प्रजापतिः । त्वं तदाप आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् ।

गायत्रीदेव्या विसर्जनादूर्ध्वं तत्कारणभूतस्य ब्रह्मण उपस्थानम-
न्त्रमाह—ॐ अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु । त्वं यज्ञस्त्वं
वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्वꣳ रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्मा त्वं प्रजापतिरिति ।
विश्वमूर्तिषु देवमनुष्यगन्धर्वादिनानाशरीरयुक्तेषु भूतेषु प्राणिषु ।
गुहायां बुद्ध्वावन्तर्मध्ये । ॐ प्रणवप्रतिपाद्यः परमात्मा चरति वर्तते ।
हे परमात्मन्यो यज्ञो ज्योतिष्टोमादिः स त्वमेव । विष्णुर्जगत्पालकः ।
योऽपि वषट्कारो हविष्प्रदानमन्त्रः, यश्च रुद्रः संहर्ता, यश्च ब्रह्मा जगतः
स्रष्टा । यश्च प्रजापतिर्दक्षादिः प्रजापालकः स सर्वोऽपि त्वमेव । इति
नारायणीय एकत्रिंशोऽनुवाकः ।

इदं वैद्यारण्यकमेव भाष्यं द्रविडपाठानुसार्यत्र ज्ञेयम् । त्वं तदाप
इत्यान्ध्रपाठे यद्यपि भाष्यं नास्ति तथाऽप्यापो ज्योतिरित्यादि तु
प्राग्व्याख्यातमेव तैः । त्वं तदाप इत्येवावशिष्टं वाक्यम् । हे परमात्मंस्तदु-
क्तहेतोरपस्त्वमेवेति ।

इत्योकोपाह्व० संध्याप्रयोगगतमन्त्रभाष्यादिसंग्रहप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथौपासनम् । तत्र माधवीये दक्षः—

संध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते ।

स्वयं होमफलं यत्स्यात्तदन्येन न लभ्यते ॥ इति ।

अग्निव्यवस्थामाह याज्ञवल्क्यः—

कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही ।

दायकालाहृते चापि श्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥ इति ।

वैतानिका गार्हपत्यादयः । नित्योऽयमित्युक्तं गृह्यप्रश्ने—नित्यं सायं-
प्रातर्ब्रीहिभिर्वा यवैर्वा हस्तेनैते आहुती जुहोत्यग्नये स्वाहा प्रजापतये
स्वाहेति सौरीं पूर्वां प्रातरेके समामनन्ति । इति । नित्यं सदा सायं-
प्रातर्ब्रीहिभिर्यवैर्वा हस्तेनैव वक्ष्यमाणे आहुती जुहोति । के ते । अग्नये
स्वाहेति प्रजापतये स्वाहेति । नित्यग्रहणं किमर्थं प्रागपि गृहप्रवेशनी-
यान्द्रोमार्थम् । अन्यथाऽत ऊर्ध्वमित्यधिकारात्प्रागुक्तं स्यात् । विनिवर्त-
यामोऽधिकारमिति चेन्न । उत्तरत्र प्रयोजनसद्भावात् । उक्तं च बह्वृ-
चानाम्—प्रागपि होमस्य भावः पाणिग्रहणादि गृह्यं परिचरेदिति ।
अथवाऽत्रापि नित्यग्रहणं यावज्जीविकत्वार्थमग्निहोत्रं दर्शनात्सायंप्रात-
र्होमस्य । जीर्णस्य वा विरमणमित्याशङ्केत्तर्हि तन्मा भूदिति । एतेन
च ज्ञायते—अग्निहोत्रस्य कालोऽस्यापि काल इति । तेन प्रथमास्त-
मिते नक्षत्रं दृष्ट्वा प्रदोषे वा सायं होतव्यम् । प्रातरुषसि पुरोदयमुदिते
यर्हि वाक्प्रवदेत तर्हि होतव्यम् । सायमारम्भो न प्रातः । उद्धरणकाल-
श्चास्य प्रादुष्करणकाल इत्यर्थः । तदुक्तं बह्वृचानाम्—तस्याग्निहोत्रेण
प्रादुष्करणहोमकालौ व्याख्याताविति । पक्षेऽस्मिन्नत ऊर्ध्वमित्यधिका-
रात्प्राग्गृहप्रवेशनीयान्नास्ति होमः । य एव स्थालीपाकस्याभावः स
एवाभावः सायंप्रातर्होमस्यापि । तत्राप्यपरिसमाप्तता विवाहस्य हेतु-
रत्रापि स एव । एतेन विज्ञायते गृहप्रवेशनीयान्तो विवाहः । संगमार्थं
चतुर्थीहोम इति । हस्तेनेति दूर्वा निवृत्त्यर्थम् । एते इतिवचनमाहुत्यो-
नियमार्थम् । तेन द्रव्यं नियतमग्निहोत्रद्रव्याणां दशानामेकं स्यात् ।
तदुक्तं बह्वृचानाम्—होम्यं तु मांसवर्जं कामं तु ब्रीहियवतिलैरिति ।
सौरीं सूर्यदेवत्यां सूर्याय स्वाहेत्येतां पूर्वामाहुतिं प्रातरेके समाम-
नन्ति । अग्नय इत्येतामन्येषां पूर्वां प्रातरपि । तत्र प्रयोगः—परिस्तीर्य
परिषिच्याग्निहोत्रभक्तित्वादेकावसायिनाविति मातृदत्ताः । माधवीये
गार्ग्योऽपि—

कृतदारो नैव तिष्ठेत्क्षणमप्यग्निना विना ।

तिष्ठेत वै द्विजो ब्राह्म्यस्तथा च पतितो भवेत् ॥

यथा स्नानं यथा भार्या वेदस्याध्ययनं यथा ।

तथैवोपासनं दृष्टं न स्थितिस्ताद्वियोगतः ॥ इति ।

अधस्तः(?) । अत एव गृह्याग्निसागरे—अन्तरितस्मार्तहोमद्रव्यदानादि प्रतिज्ञायोक्तम्—अत्रार्थे मूलभूतवचनानि ।

यावत्कालमहोमी स्यात्तावद्द्रव्यमशेषतः ।

तद्दानं चैव विप्रेभ्यो यथा होमस्तथैव तत् ॥

इति त्रिकाण्डमण्डने । भारद्वाजगृह्यवचनम्—सर्वत्र यावत्कालमहो-
मस्तावद्द्रव्यं दद्यादिति ।

स्मृत्यर्थसारे—यावत्यब्दान्यतीतानि निरग्नेश्च द्विजन्मनः ।

तावन्ति कृच्छ्राणि चरेद्धौम्यं दद्याद्विजातये ॥ इति उक्तम् ।

कात्यायनकारिकायाम्—

अन्यत्र पुनराधानं दानमेव तथैव च ।

चान्द्रायणं वा हौम्यस्य दानं वाऽपि समाचरेत् ॥ इति ।

अशक्तं प्रति तत्रैव व्यासः—

श्रौतं कर्म न चेच्छक्तः कर्तुं स्मार्तं समाचरेत् ।

अत्राप्यशक्तः करणे सदाचारं लभेद्बुधः ॥ इति ।

अत्रत्यानुष्ठानादिप्रकारस्तथा पाकयज्ञाख्यसप्तसंस्थाप्रकारश्च महेशभ-
ट्टीप्रभृतिषु सप्रयोगः सुप्रसिद्ध एवेति गौरवभिया नेह संगृह्यत इति
शिवम् ।

ननु भवत्वेवं गृहस्थानामौपासनानुष्ठानं महेशभट्ट्याद्युक्तप्रयोगरीत्या
तथाऽपि विधुराणामपि केषांचित्पत्नीमरणकाले यथाशास्त्रं संजातवैरा-
ग्यादिपरिपाकाभावे विवाहासामर्थ्ये च किमौपासनमस्ति न वा ।
नाऽऽद्यः । प्रायः क्वापि तादृशशिष्टाचारानुपलब्धेः । नान्त्यः । श्रौतवि-
धुराधानातिदेशेन तत्संभवादिति चेत्सत्यम् । तथाहि संस्काररत्नमालायां
बौधायनेन विधुरस्य विवाहासामर्थ्येऽनाश्रमिद्वेषपरिहारायोपाय
उक्तः—अथातो मृतपत्नीकस्य विवाहासमर्थस्य होमविधिं व्याख्यास्यामः ।
प्रणवेन लौकिकाग्निं परिगृह्य, अन्वग्निरुपसामग्रमख्यदित्यानीय पृष्टो
दिवीति प्रतिष्ठाप्य तत्सवितुस्ताः सवितुरद्या नो देव सवितर्विश्वानि
देव सवितरिति चतसृभिश्चतस्रः समिधोऽभ्याधायाग्निमलंकृत्यौपासनं
जुहुयादेवमहरहः काले प्रणवादिहोमान्तं कुर्यादाविवाहादासंन्यासादा-

मरणादनाश्रमदोषो नास्तीत्याह भगवान्बोधायन इति । एवं चेत्तर्हि कुतो न शिष्टाचार इति चेच्छृणु । अत्र तावदनाश्रमदोषो नास्तीत्यनेनोक्ता-
नुष्ठानस्यानाश्रमत्वदोषप्रायश्चित्तत्वं तु निर्विवादमेव । तच्च गायत्री-
जपेनापि भविष्यतीति तेन सहैतस्य विकल्प एव । अत एव श्रीमच्छारी-
रकसूत्रभाष्ये तृतीयाध्याये विशेषानुग्रहश्च तेषामपि चेति सूत्रे श्रीमच्छं-
करभगवत्पादपादारविन्दैरुक्तम्—विधुरादीनामप्यविरुद्धैः पुरुषमात्र-
संबन्धिभिर्जपोपवासदेवताराधनादिभिर्धर्मविशेषैरनुग्रहो विद्यायाः संभ-
वति । तथा च स्मृतिः—

जप्येनैव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ।

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥

इत्यसंभवाद्वाऽऽश्रमकर्मणोऽपि जप्येऽधिकारं दर्शयति, इति । ननूक्त-
भाष्यस्य यावद्विधुराद्यनाश्रमिद्विजसाधारणत्वाद्बोधायनस्य तु स्वकल्प-
कारत्वविरहेऽपि स्वशाखाकल्पकारत्वेन हिरण्यकेशिसूत्रिणां तदुक्तमे-
वाऽऽवश्यकमनाश्रमत्वदोषशोषकं विधुराणां प्रायश्चित्तमिति चेन्न ।
बोधायनोक्तप्रायश्चित्तेन निरुक्तभाष्याद्युक्तगायत्रीजपादिना च साध्या-
याश्चित्तशुद्धेरविशेषतः स्वशाखेत्यादेरप्रयोजकत्वात् । प्रत्युताद्वैतब्रह्मसा-
क्षात्कारोपकारकत्वस्य भाष्याद्युक्तसाधन एव कण्ठत एवाभिधानाच्च ।

किंच—पितृपाकोपजीवी वा भ्रातृपाकोपजीवकः ।

ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा न दुष्येताग्निना विना ॥

इति गर्गवचनात्संस्काररत्नमालायामेव सपत्नीकानामपि यदौपासन-
प्रतिप्रसव उक्तस्तदा विधुरादीनां गायत्रीजपादिना निरुक्तभाष्याद्युक्तेन
तथा बोधायनोक्तप्रायश्चित्तविशेषेण सह विकल्पः कैमुत्यसिद्ध एवेति
दिक् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषण औपासनहोमप्रकरणं संपूर्णम् ।

होमानन्तरं कृत्यमाह माधवीये दक्षः—

देवकार्यं ततः कृत्वा गुरुमङ्गलवीक्षणम् ॥ इति ।

विष्णुपुराणेऽपि—स्वाचान्तश्च ततः कुर्यात्पुमान्केशप्रसाधनम् ।

आदर्शाञ्जनमाङ्गल्यदूर्वाद्यालम्भनानि च ॥ इति ।

ब्रह्मपुराणे—स्वमात्मानं घृतेः पश्येद्यदीच्छेच्चिरजीवितम् ॥ इति ।

नारदोऽपि—लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ।

हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः ॥

एतानि सततं पश्येन्नमस्येदर्चयेच्च यः ।

प्रदक्षिणं च कुर्वीत तथा ह्यायुर्न हीयते ॥ इति ।

भारद्वाजोऽपि—कण्डूय पृष्ठतो गां च कृत्वा चाश्वत्थवन्दनम् ।

उपगम्य गुरून्सर्वान्विप्रांश्चैवाभिवादयेत् ॥ इति ।

ब्राह्मणसमवाये प्रथमं कस्याभिवादनमित्याकाङ्क्षायामाह मनुः—

लौकिकं वैदिकं वाऽपि तथाऽऽध्यात्मिकमेव वा ।

आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥ इति ।

अभिवादनकाले स्वनाम कीर्तयेदित्याह स एव—

अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयेत् ।

असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत् ॥

भोःशब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्वनाम्नोऽभिवाद्ने ॥ इति ।

विप्रो यदा ज्यायांसमभिवादयेत्तदाऽभिवादादभिवादय इति अभि-
पूर्वकवदिधातुप्रयोगात्परमनन्तरमसावित्यादि । अभिवाद्ने स्वस्वना-
म्नोऽन्ते भोःशब्दं कीर्तयेदिति संबन्धः । धर्मप्रश्नेऽपि—ज्ञायमाने वयो-
विशेषे वृद्धतरायाभिवाद्यम् । इति । क्रमार्थमिदम् । वयोविशेषे
ज्ञायमाने पूर्वं वृद्धतरायाभिवाद्यमभिवादनं कार्यम् । पश्चाद्वृद्धायेत्यु-
ज्ज्वलाकृत् । अभिवादनकाले स्वनाम परिकीर्तयेदित्युक्तं धर्मप्रश्नेऽपि—

सदा महान्तमपररात्रमुत्थाय गुरोस्तिष्ठन्प्रातरभिवाद्मभिवाद्दयीता-
सावहं भो इति समानग्रामे च वसतामन्येषामपि वृद्धतराणां प्राक्प्रा-
तराशात् । इति ।

सदा निरन्तरं महान्तमपररात्रं रात्रेः पश्चिमे याम उत्तिष्ठन्नुत्थाय च
समीपे तिष्ठन्गुरोः प्रातरभिवादनमभिवाद्दयीताभिवाद्दयेतासावहं भो
इति ब्रुवन् । असावित्यात्मनो नामनिर्देशः । यथाऽभिवाद्दये यज्ञशर्माऽहं
भो इति । अन्येषामपि वृद्धतराणां प्राक्प्रातराशात्प्रातर्भोजनात्प्राक्प्रातर-
भिवादनमभिवाद्दयीत ते चेत्समानग्रामे वसन्तीति व्याख्यातमुज्ज्वला-
कृता । तथाच तत्रैव—

प्रोष्य च समागम इति ।

यदा स्वयं प्रोष्य समागत आचार्यादयो वा तदाऽप्यभिवाद्दयीत ।
इदं नैमित्तिकं पूर्वं नित्यमिति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृतैव । अथ काम्यं
तत्रैव—

स्वर्गमायुश्चेत्सन्निति ।

अभिवादयीतेत्येवेत्युज्ज्वलाकृता । अभिवादनप्रकारं वर्णानुपूर्व्ये-
णाऽऽह तत्रैव—

दक्षिणं बाहुं* श्रोत्रसमं प्रसार्य ब्राह्मणोऽभिवादयीतोरःसमं राजन्यो
मध्यसमं वैश्यो नीचैः शूद्रः प्राञ्जलिरिति ।

ब्राह्मणोऽभिवादयमान आत्मनो दक्षिणं बाहुं श्रोत्रसमं प्रसार्याभि-
वादयीतोरःसमं राजन्यो दक्षिणं बाहुं प्रसार्याभिवादयीतेति गम्यते । एव-
मुत्तरयोरपि मध्यसममुदरसममूरुसममित्यन्ये नीचैः पादसमं शूद्रोऽभि-
वादयीत प्राञ्जलिर्यथा भवति तथाऽभिवादयीत प्राञ्जलिं कृत्वेत्यर्थः ।
प्राञ्जलिमिति तु युक्तः पाठ इति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । सव्यान्वा-
रब्धं श्रोत्रसमं प्रसार्येति संस्काररत्नमालाकृत् । एकहस्तेनाभिवादनं
निषेधति माधवीये विष्णुः—

जन्मप्रभृति यत्किञ्चिच्चेतसा धर्ममाचरेत् ।

सर्वं तन्निष्फलं याति ह्येकहस्ताभिवादानात् ॥ इति ।

एतच्च प्रत्युत्थाय कर्तव्यम् । तदुक्तमापस्तम्बप्रश्ने—

सर्वत्र प्रत्युत्थायाभिवादनम् । इति ।

सर्वत्र गुरावगुरौ च प्रत्युत्थायाभिवादनं कर्तव्यमिति तदुज्ज्वलाकृ-
न्द्वरदत्तः । माधवीय आपस्तम्बोऽपि—

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आगते ।

प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥ इति ।

अभिवादितेन वक्तव्यामाशिषमाह धर्मप्रश्ने—

प्लावनं च नाम्नोऽभिवादनप्रत्यभिवादाने पूर्वेषां वर्णानामिति । अभि-
वादनस्य प्रत्यभिवादनं तत्राभिवादयितुर्नाम्नः प्लावनं कर्तव्यम् । प्लुतः
कर्तव्य इत्यर्थः । पूर्वेषां वर्णानां शूद्रवर्जितानामभिवादयमानानाम् ।
प्रत्यभिवादेऽशूद्र [८-२-८३] इति पाणिनिस्मृतिः । तत्र वाक्यस्य टेरि-
त्यनुवृत्तेः प्रत्यभिवादवाक्यस्यान्ते नामप्रयोगस्तस्य टेः प्लुतः । आयु-
ष्मान्भव सौम्या ३ इति प्रयोक्तव्यम् । स्मृत्यन्तरवचनान्नाम्नश्च पश्चा-
दकारः । तथा च मनुः—

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादाने ।

अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥ इति ।

आयुष्मान्भव सौम्य देवदत्ता ३ अ, इति प्रयोग इति व्याख्यातमुज्ज्व-
लाकृता । माधवाचार्यैस्त्रियं स्मृतिरेवं व्याख्याता—पूर्वमक्षरं यस्यासौ
पूर्वाक्षरः । पूर्वमक्षरं सामर्थ्याद्यञ्जनम् । स्वराणां स्वरपूर्वकत्वासंभवात् ।
अतश्चाभिवादकनामगतो व्यञ्जननिष्ठोऽन्तिमः स्वरः प्लावनीयः ।
आकारेणान्तिमस्वरमात्रमुपलक्ष्यते । निःशेषनाम्नामकारान्तत्वाभावात् ।
तथा च सत्येवं प्रयोगो भवति आयुष्मान्भव सौम्य देवदत्ता ३ इतीति ।
तदत्र मतभेदाद्विकल्पः फलति । माधवीये यमः—

स्वस्तीति ब्राह्मणो ब्रूयादायुष्मानिति भूमिपः ।

वर्धतामिति वैश्यस्तु शूद्रस्तु स्वागतं वदेत् ॥ इति ।

एते क्रमाद्ब्राह्मणादिकर्तृकाशीर्वादाः । यस्तु प्रत्यभिवादनप्रकारं न
विजानाति स नाभिवाद्य इत्याह माधवीये मनुः—

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ।

नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ इति ।

यस्तु जानन्नपि न प्रत्यभिवादनं करोति तस्य दोषस्तत्रैव भविष्यत्पु-
राणे दर्शितः—

अभिवादे कृते यस्तु न करोत्यभिवादनम् ।

आशिषं वा कुरुश्रेष्ठ स याति नरकान्बहून् ॥ इति ।

धर्मप्रश्ने विशेषमाह—कुशलमवरवयसं वयस्यं वा पृच्छेदनामयं क्षत्रि-
यमनष्टं वैश्यमारोग्यं शूद्रमिति । ब्राह्मणविषयमिदम् । क्षत्रियादिषु
विशेषस्य वक्ष्यमाणत्वात् । वयसा तुल्यो वयस्यः । अवरवयसं वयस्यं
वा ब्राह्मणं पथादिषु संगतं कुशलं पृच्छेत् । अयि कुशलमिति । अप्य-
नामयं भवत इति । आमयो रोगस्तद्भावोऽनामयं पृच्छेत्क्षत्रियम् ।
अप्यनष्टपशुधनोऽसीति वैश्यं पृच्छेत् । अप्यरोगो भवानिति शूद्रं पृच्छे-
दिति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । माधवीये मनुरपि—

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रवन्धुमनामयम् ।

वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रस्याऽऽरोग्यमेव च ॥ इति ।

अन्यदपि धर्मप्रश्ने नासंभाष्य श्रोत्रियं ह्यतिव्रजेदरण्ये च स्त्रियमिति ।
श्रोत्रियं पथि संगतमसंभाष्य न ह्यतिव्रजेन्न ह्यतिक्रामेत् । अरण्ये च
स्त्रियम् । अरण्यग्रहणं समीप(भय)देशस्थोपलक्षणम् । तत्र स्त्रियमेका-
किनीं वृद्धाऽसंभाष्य नातिव्रजेत् । संभाषणं च मातृवद्भगिनीवच्च ।
भगिनि किं ते करवाणि न भेतव्यमितीत्युज्ज्वलाकृत् । तत्प्रश्नांश्चाऽऽह
माधवीये मनुः—

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसंबन्धा च योनितः ।
तां ब्रूयान्द्रवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ॥ इति ।

अथाभिवाद्या उच्यन्ते धर्मप्रश्ने—

दशवर्षं पौरसख्यं पञ्चवर्षं तु चारणम् ।
त्रिवर्षः श्रोत्रियोऽभिवादनमर्हति ॥ इति ।

पुरे भवं पौरं तत्सख्यं दशवर्षाधिकम् । चा(च)रणशब्दः शाखाध्या-
यिषु रूढः । तत्सख्यं पञ्चवर्षम् । श्रोत्रियं वक्ष्यति । तं त्रिवर्षाधिकम-
भिवादयेदित्यर्थ इत्युज्ज्वला । मनुरपि—

दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् ।
त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणामल्पेनापि स्वयोनिषु ॥ इति ।

समानपुरवासिनां दशवर्षैः पूर्वः सखा भवति । ततोऽधिको ज्यायान् ।
कलाभृतां गीतादिविद्यावतां पञ्चाब्दपूर्वः सखा । ततोऽधिको ज्यायान् ।
श्रोत्रियाणां वेदाध्यायी त्र्यब्दपूर्वः सखा भवति । ततोऽधिको ज्यायान् ।
स्वयोनिषु भ्रात्रादिषु स्वल्पेनापि वयसा सखा भवति । ततोऽधिकोऽ-
भिवाद्य इत्यर्थ इति माधवीये । श्रोत्रियलक्षणमाह धर्मप्रश्ने—धर्मेण वेदा-
नामेकाः शाखामधीत्य श्रोत्रियो भवति । इति ।

विद्यार्थस्य यो नियमो धर्मस्तेन वेदानां यां कांचन शाखामधीत्य
श्रोत्रियो भवतीत्युज्ज्वला । तत्रैव ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानवर-
वयसोऽप्युत्थायाभिवदेदिति । त्रिवर्षपूर्वः श्रोत्रियोऽभिवादनमर्हतीति
वक्ष्यति । तेऽवरवयस ऋत्विगादयोऽप्यभिवादयन्तस्तानभिवादयमाना-
न्प्रत्युत्थायाभिवदेन्नान्येष्वित्युज्ज्वला । वयोविशेषेणाभिवादनं हीनवर्णे
नास्तीत्याह धर्मप्रश्ने—

दशवर्षश्च ब्राह्मणः शतवर्षश्च क्षत्रियः ।

पितापुत्रौ स्म तौ विद्धि तयोस्तु ब्राह्मणः पिता ॥ इति ।

तथा च माधवीये शातातपः—

अभिवाद्यो नमस्कार्यः शिरसा वन्द्य एव च ।

ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यैस्तु श्रीकामैः सादरं सदा ॥

नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन ।

ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः ॥

अभिवाद्य द्विजः शूद्रं सचैलं स्नानमाचरेत् ।

ब्राह्मणानां शतं सम्यगभिवाद्य विशुध्यति ॥ इति ।

गुर्वादेस्तूपसंग्रहणमुक्तं धर्मप्रश्ने—समावृत्तेन सर्वे गुरव उपसंग्रहाः । इति ।

उक्ताश्चानुक्ताश्च ज्येष्ठमातुलादयः सर्वे गुरवः समावृत्तेनाहरहरूपसंग्रहा इत्युज्ज्वला । उपसंग्रहणलक्षणमुक्तं तत्रैव—

दक्षिणेन पाणिना दक्षिणं पादमधस्तादभ्यधिमृश्य सकुष्ठिकमुपसंगृह्णीयादुभाभ्यामेवोभावभिपीडयत उपसंग्रहावित्येके । इति ।

आत्मनो दक्षिणेन पाणिनाऽऽचार्यस्य दक्षिणं पादमधस्तादभ्यधिमृश्य । अधःशब्द उपरिभागे । अधस्ताच्चोपरिष्ठाच्चाभिमृश्य सकुष्ठिकं साङ्गुल्यम् । साङ्गुष्ठमित्यन्ये । उपसंगृह्णीयात् । इदमुपसंग्रहणमेतत्कुर्यात् । यद्वा, उभाभ्यां पाणिभ्यामुभावेवाऽऽचार्यस्य पादावभिपीडयतो माणवकस्योपसंग्रहावित्येके मन्यन्ते । अभिपीडयत इति कृत्यानां कर्तरि षष्ठी । अत्र मनुः—

व्यत्यस्य पाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ।

सव्येन सव्यः स्पष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ॥

इतिव्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । माधवीये बोधायनोऽपि—श्रोत्रे संस्पृशमानः समाधायाधस्ताज्जान्वोरापञ्चामिति । उपसंग्रहणं कुर्यादिति शेषः । गुर्वादिलक्षणं माधवीये मनुराह—

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ।

संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥

निषेको गर्भाधानम् ।

उपनीय च यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्विजः ।

सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यथवा पुनः ।

योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुर्योषितः ।

असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिभाषणैः ॥

विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम् ।

गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥

बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति मन्त्रदः ।

अध्यापयामास पितृञ्जिशशुराङ्गिरसः कविः ॥

पितृवत्पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्तेरन्यथैव पितरं तथा ॥ इति ।

तत्रैव हारीतोऽपि गुरूनाह—

उपाध्यायः पिता श्रेष्ठो भ्राता चैव महीपतिः ।
मातुलः श्वशुरो भर्ता माहामहपितामहौ ॥
वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च इत्येते गुरवः स्मृताः ।
माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः ॥
श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवः स्मृताः ।
अनुवर्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ इति ।

तत्रैव मनुः—उपाध्यायाद्दशाऽऽचार्या आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ इति ।

तस्या गरीयस्त्वमुपपादयति तत्रैव व्यासः—

मासान्दशोदरस्थं या धृत्वा शूलैः समाकुला ।
वेदनाविविधैर्दुःखैः प्रसूयेत विमूर्छिता ॥
प्राणैरपि प्रियान्पुत्रान्मन्यते पुत्रवत्सला ।
कस्तस्या निष्कृतिं कर्तुं शक्तो वर्षशतैरपि ॥ इति ।

आचार्यस्तु पितृमात्राद्यपेक्षयाऽपि गरीयानेवेत्याह माधवीय एव मनुः—
उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ।

ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ इति ।

अभिवादने वर्ज्यानाह धर्मप्रश्ने—

अप्रयते नाभिवाद्यं तथाऽप्रयतायाप्रयतश्च न प्रत्यभिवादयेत् । इति ।
न सोपानद्वेष्टितशिरा अवहितपाणिर्वाऽभिवादयेत् । इति ।

यद्यज्ञानाद्प्रयताय कश्चिदभिवादयेत् । तथाऽवहितपाणिः समित्कुश-
हस्तो दात्रादिहस्तो वा । अन्यत्प्रसिद्धमित्युज्ज्वला । माधवीये शङ्खोऽपि—
अपि नोदकुम्भहस्तोऽभिवादयेन्न भैक्ष्यं चरन्न पुष्पान्नहस्तो नाशुचिर्न
जपन्देवपितृकार्यं कुर्वन्न शयान इति । तत्रैवाऽऽपस्तम्बोऽपि—

समित्पुष्पकुशाग्न्यम्बुमृदन्नाक्षतपाणिकः ।
जपं होमं च कुर्वाणो नाभिवाद्यस्तथा द्विजः ॥
पाखण्डं पतितं व्रात्यं महापातकिनं शठम् ।
नास्तिकं च कृतघ्नं च नाभिवादेत्कथंचन ॥

धावन्तं च प्रमत्तं च मूत्रोच्चारकृतं तथा ।
 भुञ्जानमातुरं नाहं नाभिवादेद्विजोत्तमः ॥
 वमन्तं जृम्भमाणं च कुर्वन्तं दन्तधावनम् ।
 अभ्यक्तशिरसं चैव स्नास्यन्तं नाभिवादयेत् ॥
 स्रक्पाणिकमनाज्ञातमशक्तं रिपुमातुरम् ।
 योगिनं च तपःसक्तं कनिष्ठं नाभिवादयेत् ॥ इति ।

तत्रैव शातातपोऽपि—

उदक्यां सूतिकां नारीं मर्तृघ्नीं गर्भधातिनीम् ।
 अभिवाद्य द्विजो मोहाद्दहोरात्रेण शुध्यति ॥ इति ।

स्त्रीणामभिवादाने विशेषो धर्मप्रश्ने—

सर्वनाम्ना स्त्रियो राजन्यवैश्यौ न नाम्ना मातरमाचार्यदारं चेत्येके । इति ।

स्त्री च सर्वनाम्नैवाभिवाद्याऽहमिति न नाम्नाऽभिवादनीया । एवं
 राजन्यवैश्यौ च । मातरमाचार्यदारं च । एते अपि द्वे सर्वनाम्नैवाभि-
 वादयीत । स्वमतं तु च नाम्नैव भवतीत्युज्ज्वला । विशेषान्तरमपि
 देशविशेषावच्छेदेनाभिवादाने धर्मप्रश्ने एव—विषमगतायागुरवे नाभिवा-
 द्यमन्वारुह्याभिवादयीतेति । उच्चैःस्थाने नीचैःस्थाने वा स्थितो विषम-
 गतस्तस्मै गुरुव्यतिरिक्ताय नाभिवाद्यं गुरवे त्वभिवाद्यम् । एवं दर्शने
 सति तूष्णीमवस्थानस्य युक्तत्वात् । अन्वारुह्येतीदमगुरुविषयम् । यत्रा-
 भिवादनीयस्थितिस्तत्रान्वारुह्याभिवादयीत । आरुह्यत्वेऽपि द्रष्टव्यम् ।
 न्यायस्य तु तुल्यत्वात् । गुरो तु दृष्टमात्र एवाभिवादनीय इति उक्तम् ।
 सर्वत्र प्रत्युत्थायाभिवादनमित्युज्ज्वला । अभिवादनं प्रशंसति माध-
 वीये मनुः—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः कीर्तिर्यशो बलम् ॥ इति ।

ननूक्ताभिवादानादि कुतो न द्रविडदेशेतरशिष्टाः कुर्वन्तीति चेत्तदि-
 तरदेशानां प्रायः शूद्रादिसंकुलत्वात्प्लुतोच्चारणादेः शास्त्रीयत्वेन तच्छ्र-
 वणानर्हत्वाच्छ्रावयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रत इति पुराणश्रावण-
 विधेस्तु निरुक्तवचनादेवोपपन्नत्वात्तदुपलक्षणविधयाऽस्य तच्छ्रवणाङ्गी-
 कारे स्त्रीविहितपत्नीसंयाजोपलक्षणविधया वैदिकमन्त्रान्तराध्ययनाप-

त्तिवदतिप्रसङ्गाच्चेति गृहाण । किं च श्रौतत्विग्वरणवदभिवादानेऽपि स्वस्व-
प्रवरगोत्रशाखाध्ययनादेरवश्योच्चार्यत्वाच्च । तच्छ्रवणं तु शूद्रादेः सुतरा-
मयुक्तम् । तदुक्तमभिवादनं प्रकृत्य प्रयोगपारिजातकृता—स्वगोत्रना-
मोच्चार्याहं भो अभिवादय इतीति । अत एव स्वदेशीयाः शिष्टाः सर्वेऽपि
संध्यावन्दनसमाप्तौ गुरुमातापितृसर्वब्राह्मणान्मनसि चिन्तयित्वाऽभि-
वादनं कुर्वन्तः स्वस्वगोत्राद्युच्चारणं रहस्येव कुर्वन्ति । तेन विहिततत्तदभि-
वादानाद्यननुष्ठानदोषोऽपि परिहृतो भवति । गत्यन्तराभावात् । द्रविड-
देशेषु प्रायेण ब्राह्मणावासतः शूद्राद्यावासानां दूरतरसत्त्वमिति सुप्रसि-
द्धम् । न चैवं तर्हि धर्मप्रश्नमाधवीययोः कुतो न गोत्राद्युच्चारो विहित
इति वाच्यम् । निरुक्तत्विग्वरणातिदेशस्यैव तत्रेष्टत्वादन्यथा समुदाहृत-
पारिजातशिष्टाचारयोर्बाधापत्तेश्च । अत एवोक्ताभिवादनस्थानेऽधुना
प्रायेण द्रविडैतरदेशीयाः सर्वेऽपि ब्राह्मणाः

सभासु चैव सर्वासु यज्ञे राजगृहेषु च ।

नमस्कारं प्रकुर्वीत ब्राह्मणानभिवादयेत् ॥

इति विष्णुक्तेर्नमस्कारेणैव चरितार्थयन्ति । अत्राभिवादनशास्त्रोप-
न्यासस्तु तत्स्थानाचरणीयनमस्कारार्थमेव बोध्यः । तेनाकाण्डपाण्डि-
त्यापत्तिः परास्तेति दिक् ।

अथाभिवादनस्य संध्यावन्दनकाल एव निरुक्तशिष्टैरनुष्ठीयमानस्य
प्रयोगः । श्रीगुर्वादेः पादोपसंग्रहणस्य च क्रमेण प्रयोगः । सव्यान्वा-
रब्धं श्रोत्रसमं दक्षिणं बाहुं पुरस्कृत्याभिवादय इतिशब्दमुच्चार्य वासि-
ष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वसुत्रिप्रवरान्वितवासिष्ठगोत्रोत्पन्नो यजुर्वेदीयतैत्तिरीयशा-
खाध्यायी सत्याषाढसूत्री सुकर्मशर्मा भो इति । उपलक्षणमिदं प्रव-
रगोत्रान्तरादेरपि तत्तदभिवादकानाम् । स्ववामदक्षिणपाणिभ्यां स्वस्ति-
कीकृताभ्यामुपसंगृह्य वामदक्षिणपादावध ऊर्ध्वमभिपरामृशन्बाहुभ्यां
श्रोत्रे संस्पृशमानः पृथ्व्यां जान्वोरापञ्च्यां गतः स्यात् ।

नमस्कारस्तु—उरसा शिरसा चैव मनसा वचसा दृशा ।

पञ्च्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते । इति प्रसिद्ध एव ।

स्त्रीकर्तृकस्त्वसौ पञ्चाङ्ग एव । तदुक्तं पौषमाहात्म्यान्तर्गततुलसी-
माहात्म्ये—

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां मूर्ध्ना च मनसा सह ।

पञ्चाङ्गैः कथितः स्त्रीणां प्रणामः पापहिंसकः ॥ इति ।

इत्योकोपाह्ववालिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणेऽभिवादनप्रकरणं दिवसस्याष्टसु भागेषु
मध्ये प्रथमभागकृत्यलक्षणः प्रथमकिरणश्च संपूर्णः ।

अथ द्वितीयभागकृत्यम् । तत्र माधवीये दक्षः—

द्वितीये च तथा भागे वेदाभ्यासो विधीयते ।

समित्पुष्पकुशादीनां स कालः समुदाहृतः ॥ इति ।

तेनात्र द्वयं प्राप्तं वेदाभ्यासः प्रथमं ततः समिदाद्याहरणं चेति । तत्र
न्यायशास्त्रादेः संगीतकलादेश्वाभ्यासं व्युदस्य वेदाभ्यासस्यैव प्रथमं
कथने कारणमाह माधवीये व्यासः—

नान्यतो ज्ञायते धर्मो वेदादेवैष निर्वभौ ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत् ॥ इति ।

स च पञ्चधेत्याह दक्षः—

वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः ।

तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥ इति ।

माधवीये कूर्मपुराणेऽपि—

वेदाभ्यासं ततः कुर्यात्प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः ।

जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत् ॥

अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तमः ॥ इति ।

आदिना ब्रह्मशास्त्रम् । शास्त्रयोनित्वादिति श्रीमच्छारीरकापराभि-
धोत्तरमीमांसातृतीयाधिकरणद्वितीयवर्णकन्यायेन तस्यापि वेदैकसमधि-
गम्यत्वात्तदर्थमेव सर्वसत्कर्मानुष्ठानादेः श्रुत्यादिचोदितत्वाच्च । अत एव
माधवीये याज्ञवल्क्यः—

वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः । इति ।

ब्रह्मात्मैक्यमेव निःश्रेयसं नैवान्यादिति तत्रैव प्रपञ्चितम् । एवं च
वेदाभ्यासे पञ्चविधेऽपि तद्विधायके कौर्मवाक्ये जपस्यैव प्राथम्यात्तद्-
परनामकं प्रथमं ब्रह्मयज्ञं विधाय पश्चादध्ययनाध्यापनधारणविचारण-
शास्त्रावेक्षणलक्षणः स कार्य इति तात्पर्यम् ।

इत्योकोपाह्ववालिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे वेदाभ्यासविधिप्रकरणम् ।

अथ ब्रह्मयज्ञः । तस्य स्वरूपं श्रुतौ—यत्स्वाध्यायमधीयीतैकामप्यृचं
यजुः साम वा तद्ब्रह्मयज्ञः संतिष्ठत इति । माधवीये लिङ्गपुराणेऽपि—

स्वशाखाध्ययनं विप्र ब्रह्मयज्ञ इति स्मृतः । इति ।

तस्य कालमाह बृहस्पतिः—

स चार्वाक्तर्पणात्कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः ।

वैश्वदेवावसाने वा नान्यदूर्ते निमित्ततः ॥ इति ।

अत्र वैश्वदेवशब्देन मनुष्ययज्ञान्तं कर्म विवक्षितम् । देवयज्ञः पितृ-
यज्ञो भूतयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इतिश्रुतिपाठात् । स्मार्ताच्च पाठाद्वैदिकः पाठो
बलीयानिति विरोधाधिकरणन्यायेनावगम्यत इति माधवाचार्याः ।
यतश्च माधवीये कूर्मपुराणे—

यतश्च तर्पणादर्वाग्ब्रह्मयज्ञः कृतो नहि ।

कृत्वा मनुष्ययज्ञं तु ततः स्वाध्यायमाचरेत् ॥ इति ।

श्रुतिः कण्ठत एव दिग्देशकालानाह—ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्यमाणः प्राच्यां
दिशि ग्रामादच्छदिर्दर्श उदीच्यां प्रागुदीच्यां वोदित आदित्य इति ।
अच्छदिर्दर्शशब्देन देशविशेषो लक्षितः । छदिर्गृहाच्छादनं तृणकटादि
तद्यत्र न दृश्यते तत्रेत्यर्थ इति माधवाचार्याः । तदितिकर्तव्यता तु
धर्मप्रश्ने—

तस्य विधिरकृतप्रातराश उदकान्तं गत्वा प्रयतः शुचौ देशेऽधीयीत
यथाध्यायमुत्सृजन्वाचेति । तस्य नित्यप्रश्नस्य* विधिरुच्यते । अकृत-
प्रातराशोऽकृतदिवाभोजन उदकान्तमुदकसमीपं गत्वा प्रयतः स्नानमा-
र्जनादिना शुद्धः शुचौ देशे प्राच्यामुदीच्यां प्रागुदीच्यां दिश्यच्छदि+र्द-
र्शोऽधीयीत यथाध्ययनमुत्सृजन्यथापाठमनुपङ्गमुत्सृजन् , आदित आरभ्य
प्रथमादिष्वहःस्वधीयीत द्वितीयादिषूत्सृज्य ततः परमधीयीत वाचोच्चै-
रित्यर्थ इत्युज्ज्वला । उपवीतादीतिकर्तव्यतां तु श्रुतिरेवाऽऽह—दक्षि-
णत उपवीयाथोपविश्य हस्ताववनिज्य त्रिराचामेद्विः परिमृज्य सकृदु-
पस्पृश्य शिरश्चक्षुषी नासिके श्रोत्रे हृदयमालभ्येति । दक्षिणतः प्रद-
क्षिणं कृत्वेत्यर्थः । यज्ञोपवीतं कृत्वा शुद्धप्रदेश उपविश्य हस्तद्वयं
पूर्वं शुद्धमप्येतदङ्गत्वेन पुनः प्रक्षालयोदकं त्रिः पिबेत् । द्विः परिमृज्य
शुद्ध्यर्थं तदा तदा हस्तं प्रक्षालयेत् । तत ओष्ठौ सकृदुपस्पृश्य शिरःप्रभृति

* क. पुस्तके ममाते—नित्यप्रश्नोऽध्ययनं यस्य स नित्यप्रश्नो ब्रह्मयज्ञ इति प्राक्तनमूत्र-
स्थोज्ज्वलाव्याख्याता ब्रह्मयज्ञस्येत्यर्थः । + अय पटलं छदिरित्यमरे गृहपुरस्तृणाद्याच्छादनसान्त-
ल्लीभवच्छदिः शक्यत्वाभिन्ना न दृश्यते स्वनिवासशिरोगतृणाद्याच्छादन(नं) यत्र तत्र जलसमीपे ।

हृदयपर्यन्तानवयवान्क्रमेण । दर्भाणां महदित्यादिना वक्ष्यमाणेनान्वयः । अत्र सव्यपाणिपादयोः प्रोक्षणविधिरुन्नेय इति माधवाचार्याः । श्रुतिः कर्तव्यान्तरमाह—दर्भाणां महदुपस्तीर्योपस्थं कृत्वा प्राङ्गासीनः स्वाध्यायमधीयीतेति । दक्षिणोत्तरौ पाणिपादौ कृत्वा सपवित्रावोमिति प्रतिपद्यत इति च । त्रीनेव प्रायुङ्क्त भूर्भुवः स्वरिति च । अथ सावित्रीं गायत्रीं त्रिरन्वाह पञ्चोऽर्धर्चशोऽनवानमिति च । ग्रामे मनसा स्वाध्यायमधीयीत दिवा नक्तं वेति इ स्माऽऽह शौच आह्नेय इति । मध्यंदिने प्रबलमधीयीतेति च । स वा एष यज्ञः सद्यः प्रतायते सद्यः संतिष्ठते तस्य प्राक्सायमवभृथो नमो ब्रह्मण इति परिधानीयां त्रिरन्वाहाप उपस्पृश्य गृहानेति ततो यत्किञ्चिद्दाति सा दक्षिणेति । श्रुत्यर्थस्तु प्रायः स्फुट एव । तत्रापि विशेषाकाङ्क्षायां माधवाचार्यकृते तैत्तिरीयारण्यकसहैवनामकद्वितीयप्रश्नभाष्य एव द्रष्टव्यः । धर्मप्रश्ने—

तत्र श्रूयते स यदि तिष्ठन्नासीनः शयानोऽरण्ये ग्रामे वा यावत्तरसः स्वाध्यायमधीते तप एव तत्तप्यते तपो हि स्वाध्याय इतीति । तत्र ब्राह्मणे स यदि तिष्ठन्नित्यापत्कल्पः श्रूयते । तत्र दर्भाणां महदुपस्तीर्योपस्थं कृत्वा प्राङ्गासीनः स्वाध्यायमित्यादिषु मुख्यः कल्पः । तैः स यदि तिष्ठन्नसित्वा(?)ब्राह्मण एवोक्तः । इह पुनरासीनवचनं यथाकथञ्चिदासीनार्थं, सर्वथाऽप्यधीयानस्तप एव तत्तप्यत इति ब्राह्मणार्थः । मनु-
रप्याह—

आहैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः ।

यत्स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥ इति ।

स्रग्वीति स्वैरं दर्शयति । एवं कर्तुर्नियमो नाऽऽपद्यतीवाऽऽदरणीय इत्युज्ज्वलाव्याख्या । माधवीये याज्ञवल्क्यः—

वेदाथर्वपुराणानि सेतिहासानि शक्तितः ।

जपयज्ञप्रसिद्धार्थं विद्यां चाऽऽध्यात्मिकीं जपेत् ॥ इति ।

ग्रहणाध्ययनवद्ब्रह्मयज्ञस्यानध्यायदिवसेषु परित्यागप्राप्तौ माधवीये
मनुराह—

वेदोपाकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।

नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ इति ।

धर्मप्रश्ने विशेषः—

मनसा चानध्याये, इति ।

अनध्याये च मनसाऽधीयीत तं नित्यस्वाध्यायमित्युज्ज्वला । माध-
वीयेऽपि—यतो नास्त्यनध्यायोऽत एव श्रुतिरनध्यायविशेषाननूद्य तेषु
जपं प्रशंसति य एवं विद्वान्मेघे वर्षति विद्योतमाने स्तनयत्यवस्फूर्जति
पवमाने वायावमावास्यायाः स्वाध्यायमधीते तप एव तत्तप्यते तपो हि
स्वाध्याय इति । तेष्वनध्यायेष्वल्पमेव पठनीयमिति । रात्रौ ब्रह्मयज्ञा-
ध्ययने विशेषो धर्मप्रश्ने—

नक्तं चारण्येऽनग्नावहिरण्ये वा । इति ।

रात्रावग्निवर्जिते हिरण्यवर्जिते वाऽरण्ये नाधीयीतेत्युज्ज्वला ।
पुनस्तत्रैव—

अथ यदि वातो वा वायात्स्तनयेद्वा विद्योतेत वा स्फुर्जेद्वैकां वर्चमेकं
यजुरेकं वा सामाभिव्याहरेद्भूर्भुवः स्वः सत्यं तपः श्रद्धायां जुहोमीति
चेत्तत्तेनो हैवास्यैतदहः स्वाध्याय उपात्तो भवतीति । अन्त इतिशब्दोऽ-
ध्याहार्यः । वातादिषु सत्सु एकामृचमधीयीत प्राप्ते देशे । यजुर्वेदाध्ययन
एकं यजुः सामवेदाध्ययन एकं साम । सर्वेषु वा वेदेषु भूर्भुवः स्वरित्या-
दिकं यजुरिति व्याहरेन्न पुनर्यथापूर्वं प्रश्नमात्रम् । तेनैतावताऽध्येतुस्तद-
हस्तस्मिन्नहनि स्याध्याय उपात्तो भवति स्वीकृतो भवति अधीतो
भवतीत्यर्थ इति उज्ज्वला । अत एव शिक्षोपनिषद्यपि स्वाध्यायान्मा
प्रमद इत्युक्तम् । आत्मदेशयोरशुचित्वे ब्रह्मयज्ञः परं वर्जनीयः । तथा च
श्रुतिः—तस्य वा एतस्य यज्ञस्य द्वावनध्यायौ यदात्माऽशुचिर्यद्देश इति ।
ब्रह्मयज्ञं प्रशंसति श्रुतिः—उत्तमं नाकः रोहत्युत्तमः समानानां भवति
यावन्तः ह वा इमां वित्तस्य पूर्णां ददत्स्वर्गं लोकं जयति तावन्तः
लोकं जयति भूयाःसं चाक्षय्यं चाप पुनर्मृत्युं जयति ब्रह्मणः सायुज्यं
गच्छतीति । माधवीये याज्ञवल्क्योऽपि—

यं यं क्रतुमधीयीत तस्य तस्याऽऽप्नुयात्फलम् ।

त्रिवित्तपूर्णपृथिवीदानस्य फलमश्नुते ॥ इति ।

विद्युति चाभ्यग्रायामित्यादिविस्तरौ धर्मप्रश्ने द्रष्टव्यः । ब्रह्मयज्ञे निखि-
लशाखाध्ययानाभावे तत्फलार्थं शिक्षोपनिषद्याख्याने माधवाचार्याः—
यस्तु श्रद्धालुः प्रज्ञामान्द्यादिना वेदपाठाभावान्न ब्रह्मयज्ञे समर्थस्तस्य
ब्रह्मयज्ञफलसिद्धये जप्यं मन्त्रं दशमेऽनुवाके दर्शयति—अहं वृक्षस्य

रे०इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनमिति । अथात्र सप्रणवसव्याहृतिकनिरुक्तरी-
तिकत्रिवारगायत्रीपठनानन्तरं प्रायः सर्वेऽपि शिष्टा अग्निमीळ इत्यादि-
चतुर्वेदादिवाक्यान्यपि पठन्ति तैत्तिरीयास्तत्केचिन्न क्षमन्ते । कुत इति
चेदृगादेः स्वशाखायामेव सत्त्वाद्धिहितं तदध्ययनं यदेकामप्यृचमित्या-
दिना तस्य स्वशाखाध्ययनेन सिद्धत्वादिति । वेदादिपठनशिष्टाचारस्य
यदि निर्मूलत्वं स्याच्चेदघटेताप्येतत् । तत्तु नैवास्ति श्रुत्यन्तरस्यैव तत्र
महाप्रमाणस्यातिस्फुटतरस्य सत्त्वात् । तथा चाऽऽथर्वणिकानां गोपथ-
ब्राह्मणं सर्वेषां वेदानां प्रत्येकं दैवतज्योतिच्छन्दःस्थानाभिधानपूर्वकं
वेदादिपठनेयत्तां कथयति—किं देवतमित्यृचामग्निर्देवतं तदेव ज्योतिर्गा-
यत्रं छन्दः पृथिवी स्थानम् । अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातममित्येवमादिं कृत्वा, ऋग्वेदमधीयते । यजुषां वायुर्दे-
वतं तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दोऽन्तरिक्षं स्थानम् । इषे त्वोर्जे त्वा वायव-
स्थोपायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठनमाय कर्मण इत्येवमादिं
कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । साम्नामादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागतं छन्दो
द्यौः स्थानम् । अग्र आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता
सत्सि बर्हिषीत्येवमादिं कृत्वा सामवेदमधीयते । अथर्वणां चन्द्रमा
देवतं तदेव ज्योतिः सर्वाणि छन्दांस्यापः स्थानम् । शं नो देवी-
रभिष्टय इत्येवमादिं कृत्वाऽथर्ववेदमधीयते । अन्न्यः स्थावरजङ्गमो
भूतग्रामः संभवति तस्मात्सर्वमापोमयं भूतं सर्वं भृग्वङ्गिरोमयम् । अन्त-
रैते त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसो श्रिता इत्यबिति प्रकृतिरपामोंकारेण
चैतस्माद्यासः पुरोवाच भृग्वङ्गिरोविदा संस्कृतोऽन्यान्वेदानधीयीत
नान्यत्र संस्कृतो भृग्वङ्गिरसोऽधीयीत सामवेदे त्रिखिलश्रुतिर्ब्रह्मचर्गेण
चैतस्मादथर्वाङ्गिरसो ह यो वेद स वेद सर्वमिति ब्राह्मणमिति । देवतमि-
त्यार्षम् । दैवतमित्यर्थः । ज्योतिःशब्देन प्रकाशकोऽत्र ऋषिर्विवक्षितः ।
स्थानपदेन तदधिष्ठातृदेवतानिलयो ग्राह्यः । न च ऋचां यजुषां च तत्र
तत्र देवतादयः शतं प्रभिन्ना एव प्रायः सर्वानुक्रमणिकायां काण्डानु-
क्रमणिकायां च स्फुटतरा एवेति वाच्यम् । तेषां प्रत्येकं तत्तद्गादिसंब-
न्धित्वादस्य तु तत्तत्समस्तवेदसंबन्धित्वाच्च । नाप्यत्र शं नो देवीरभिष्टय
इति पादमात्रपठनं विहितं शिष्टाचारस्तु समग्रमन्त्रपठनस्य वर्तते स
किं शास्त्रविरुद्ध इति सांप्रतम् । तस्याऽऽथर्वणशास्त्रीयत्वेन तद्ब्राह्मणेऽत्र
तत्प्रतीकमात्रस्यैव गृहीतत्वेऽपि सर्वमन्त्रपाठस्यैवेष्टत्वात् । एवमत्र निरु-
क्तयजुर्वेदादिपठनकथनेन शुक्लयजुष्वाद्स्मच्छाखैव मुख्ययजुर्वेद इति

जल्पन्तो वाजसनेयिनः परास्ताः । तेषामिषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः
सवितेत्येव पाठात् । मैत्रायणीयानामपीषे त्वा सुभूतायेति पाठाद्वावृत्तिः ।
वाजसनेयिनां शुक्लयजुषं तु मन्त्रब्राह्मणयोरसंकरलक्षणवैशद्यादेव सदापि
न मुख्ययजुष्वापादकम् । तस्मादाथर्वणिकानां निरुक्तगोपथब्राह्मणेनैव
तटस्थीभूतेन यजुर्वेदारम्भकथनात्तैत्तिरीयशाखाया एव मुख्ययजुष्टमिति
दिक् । [* तदुक्तं कण्वसंहितायाः सायणीयभाष्ये श्रीमाधवाचार्यैरा-
रम्भ एव—

ऋग्यजुःसामवेदा ये व्याख्यातास्तेषु तद्यजुः ।
कृष्णं शुक्लमिति द्वेषा तत्कृष्णं तैत्तिरीयकम् ॥
वैशंपायनशिष्येण याज्ञवल्क्येन यद्यजुः ।
अधीत्य वान्तमाचार्यकोपभीतेन योगिना ॥
प्रत्यर्पय मदीयां त्वं विद्यामित्यार्पयत्स च ।
योगसामर्थ्यतो विद्यां मूर्तां कृत्वाऽवमत्तदा ॥
गृह्णीत तद्यजुर्वान्तमित्यन्यान्गुरुरब्रवीत् ।
अन्ये तित्तिरयो भूत्वा किञ्चित्किञ्चिद्भक्षयन् ॥
प्रवर्तितं खण्डशतैर्न सम्यग्बुध्यते नृभिः ।
आध्वर्यवं क्वचिद्धौत्रं क्वचिदित्यव्यवस्थया ॥
बुद्धिमालिन्यहेतुत्वाद्यजुः कृष्णमितीर्यते ।
याज्ञवल्क्यस्ततः सूर्यमाराध्यास्मादधीतवान् ॥
व्यवस्थितप्रकरणं यजुः शुक्लं तदीर्यते ।
पौराणिकीं कथामेतां वेदव्याख्यानमादरात् ॥
आदिशन्मह्यमाचार्याः श्रुतावपि मया श्रुतम् ।
काण्ववेदगते विद्यावंशे ब्राह्मण ईर्यते ॥
यजूंषि शुक्लान्यादित्यान्मुनिः प्रापेत्यतिस्फुटम् ॥ इति ।

अग्रेऽपि—एवं च याज्ञवल्क्येन प्रवर्तिताः शुक्लयजुर्विषयाः शाखाः पञ्च-
दश संपद्यन्ते । तच्छाखाध्यायिनश्चरणव्यूहादिग्रन्थे जाबालादिभिः पञ्च-
दशभिर्नामभिरित्थं व्यवह्रियन्ते—जाबाला गौधेयाः काण्वा माध्यन्दिनाः
श्यामाः श्यामायनीया गालवाः पिङ्गला वत्सा आवाटिकाः परमावाटिकाः
पाराशर्या वैणेया बौधेया गालवाश्चेति पञ्चदश नामानीति । तदग्रेऽपि—

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः क. पुस्तके टिप्पणीरूपेण वर्तते ।

तत्रेदं काण्ववेदाख्यं शुक्लं यजुः पूर्वं न व्याख्यातं किं तु तैत्तिरीयाख्यं यजुरेव व्याख्यातम् । इति । एवं च निरुक्तगोपथब्राह्मणेऽपीषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सवितेत्येव गुर्जराथर्वणिकपाठतो वाजसनेयिकाण्वादिशाखैव शुक्लयजुर्लक्षणा मुख्ययजुर्वेद इति परास्तम् । समुदाहृतभाष्याशयात् । तथाहि—तत्रोदाहृतकथास्वारस्याद्भगवता विष्णववतारेण वेदव्यासेन ऋगादिप्राधान्येन चतुर्धा विभज्य वेदः सुमन्त्वादीन्स्वाशिष्यान्प्रति पाठित इति तु निर्विवादमेव । तन्मध्ये वैशंपायनो ह्यखिलयजुर्वेदाचार्य इत्यपि । एवं च प्राथमिकत्वं तैत्तिरीयकशाखायाः समुदाहृतकथानान्तरीयकतयैव सिद्धम् । अत एव प्रकृतभाष्यकारैस्तत्रैव भाष्यं प्रथमं विधाय पश्चादेव कण्वशाखामाष्यममाषि । न चैवं तत्रैवाथ वंशः पौतिमाषीपुत्रः कात्यायनीपुत्रादित्यारभ्य परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्म स्वयंमु ब्रह्मणे नम इत्येतदन्तं काण्ववेदस्यान्तिमं वंशब्राह्मणम् । पौतिमाषीपुत्रः कश्चिद्वेदसंप्रदायप्रवर्तको मुनिर्मनुष्याणां गुरुः । स च कात्यायनीपुत्राद्वेदमधीतवान् । परमेष्ठिशब्देन सत्यलोकवर्ती चतुर्मुखोऽभिधीयते । ब्रह्मशब्देनात्र प्रज्ञानं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरमित्यादिवेदवाक्यप्रसिद्धः परमेश्वरो विवक्षितः । तस्य चेतरेषामिवोत्पत्त्यर्थं वेदाध्ययनादिव्यवहाराय वा पारतन्त्र्यं तत्स्वयंभुशब्देन निवार्यत इत्याद्युपपाद्य वंशब्राह्मणे वाक्यमेवमाम्नायते आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाऽऽख्यायन्त इति । आदित्येनाध्यापितत्वादादित्यान्युच्यन्ते । वाज इत्यन्नस्य नामधेयम् । अन्नं वै वाज इति श्रुतेः । वाजस्य सनिर्दानं यस्य महर्षेरस्ति सोऽयं वाजसनिस्तस्य पुत्रो वाजसनेयः । तस्य याज्ञवल्क्य इति नामधेयम् । तेन याज्ञवल्क्येन तानि शुक्लयजूंषि महर्षिभ्यः पञ्चदशभ्य आख्यायन्ते समन्तादुपदिश्यन्त इत्युक्तं तत्कथमिति वाच्यम् । यथाऽस्मिन्कल्प आदित्येन शुक्लयजुर्गणो याज्ञवल्क्यद्वारा मनुष्यलोके प्रवर्तितः कृष्णयजुःप्रवृत्त्यनन्तरं तथा कल्पान्तरे पौतिमाषीपुत्रेण प्रवर्तित इत्येव तदर्थत्वात् । अन्यथोक्तभाष्यादिविरोधाच्च । तस्मादुक्त एव गोपथब्राह्मणपाठः साधीयानित्यलं पल्लवितेन ।] नन्वथापि प्रकृते किमागतमृगादीनां चतुर्णामपि वेदानां बह्व्यः शाखाः सन्ति तासां मध्ये कतमामारभ्य ऋगादीनामारम्भा ज्ञेया इति शिष्यसंशयमात्रशामकेनानेन ब्रह्मयज्ञे वेदादिपठनविधानाप्रतीतेरिति चेन्न । तात्पर्यानिर्वाधानात् ।

तथाहि—इतिशब्दो वाक्यसमाप्त्यर्थकः । एवमाग्निमीळ इत्यादिपूर्वोक्तरूपम् । आदिं प्राथमिकं मृगारम्भवाक्यम् । कृत्वा तस्येश्वरनिर्मितत्वेन सिद्धत्वात्तत्पठनं कृत्वेत्यर्थः । ऋग्वेदमधीयते, ऋग्वेदस्य सर्वस्याप्यध्ययनेन यत्पुण्यं तत्तद्ध्येतारः प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । अन्यथाऽग्निमीळ इत्यादिवाक्यस्य ऋग्वेदत्वं न स्याद्यदीदं वाक्यं प्रथमं पठित्वा तदुत्तरमृग्वेदं पठन्तीति यथाश्रुत एवार्थे कृते तत्त्वनुचितम् । तद्भाष्याद्यनेकप्रमाणव्याकोपापत्तेः । तच्चाध्ययनमत्र फलाश्रवणान्नित्यब्रह्मयज्ञरूपमेव पर्यवस्यति । एवं च निरुक्तपुण्यलाभार्थं ब्रह्मयज्ञे प्रथममिमानि वाक्यानि पठनीयान्येवेति फलिते वाक्यार्थे को दोषः । नच पूर्वमृगादीनां प्रथमारम्भकथनपरमिदं खण्डमित्युक्तमधुना तु ऋगादीनां समग्राध्ययनपुण्यार्थं ब्रह्मयज्ञारम्भे निरुक्तवाक्यपठनविधानपरमित्युच्यत इत्युभयस्यापि त्वदभिमतत्वे वाक्यभेदापत्तिरिति सांप्रतम् । पूर्वोक्तवाक्यार्थस्याऽऽदिपदाभिधविशेषणमात्रमहिम्ना संपन्नस्याऽऽर्थिकत्वेन चरमस्यैव तात्पर्यविषयीभूतत्वात् । न चैवं तर्ह्यस्य वेदादिवाक्यपठनस्य स्वशाखेतरांशावच्छेदेन काम्यत्वमिति वाच्यम् । इष्टापत्तेर्यदृचोऽधीते पयसः कूर्या अस्य पितृन्स्वधा अभिवहन्तीत्यादिश्रुतिसंदर्भेणैव तथोपलम्भाच्च । अत एव श्रीमाधवाचार्याः स्वाध्यायब्राह्मणापरनामकसहवैप्रपाठकभाष्ये ब्रह्मयज्ञस्य लक्षणमाहेत्यवतार्य यत्स्वाध्यायमधीयीतैकामप्यृचं यजुः साम वा तद्ब्रह्मयज्ञः संतिष्ठत इति वाक्यं विलिख्य स्वस्यासाधारणत्वेन पितृपितामहादिपरम्पराप्राप्ता वेदशाखा स्वाध्यायस्तत्र विद्यमानमृगादीनामन्यतममेकमपि वाक्यमधीयीतेति यत्सोऽयं ब्रह्मयज्ञस्तावतैव संतिष्ठत इति स्वशाखामात्राध्ययनरूपं तं नित्यं व्याचख्युः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढहिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे ब्रह्मयज्ञप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ ब्रह्मयज्ञप्रयोगः प्रायः संस्काररत्नमालास्थ एव लिख्यते । कर्तोदिते सूर्ये प्रातर्होमोत्तरमकृतप्रातराशो ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यामैशान्यां वा दिशि यावति देशे स्वग्रामच्छदीषि स्वगृहच्छदीषि वा न दृश्यन्ते तावद्दूरं नदीतीरं देवखातादितीर्थमन्यमपि शुद्धदेशं वा गत्वा हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याऽऽचम्य प्रदक्षिणमावृत्योपवीती भूत्वा जलं नम-

स्कृत्य प्रयतः प्राङ्मुख उपविश्याऽऽचम्य प्राणानायम्यापः स्पृष्ट्वा देश-
कालौ संकीर्त्य श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्य इति संकल्प्य हस्तौ
प्रक्षाल्य त्रिराचम्य सोदकेनाङ्गुष्ठमूलेन द्विरोष्ठौ परिमृज्याऽऽर्द्राङ्गुलिभि-
रोष्ठौ सकृदुपस्पृश्य दक्षिणहस्तेन सव्यं पाणिं पादौ च प्रोक्ष्याऽऽर्द्राङ्गु-
लिभिः शिरश्चक्षुषी नासिके श्रोत्रे हृदयमालभ्य प्रत्यालम्भमपः संस्पृश्य
प्रभूतान्प्रागग्रान्दर्भानास्तीर्य पाण्योः पवित्रे धृत्वा दक्षिणोत्तरौ पाणी
पादौ च कृत्वैवंभूतस्तेषु दर्भेषु प्राङ्मुख एवाऽऽसीनः प्रणवपूर्वकं भूर्भुवः
स्वरिति व्याहृतीः सहवैप्रश्नस्य काठकत्वेन ऋग्धर्मत एव पठित्वा
भूस्तत्सवितुर्वरेण्यं, भुवो भर्गो देवस्य धीमहि, सुवर्धियो यो नः प्रचो-
दयात् । भूर्भुवस्तत्सवितुः सुवर्धियो यो नः प्रचोदयात् । भूर्भुवः सुव-
स्तत्स० यात् । इत्येवं व्याहृतिवर्जां वा पच्छोऽर्धर्चशोऽनवानं गायत्री-
मधीत्य द्यावापृथिव्योः संधिमीक्षमाण इषे त्वेति काण्डं प्रपाठकमात्र-
मनुवाकमात्रं वा ग्रामे चेन्मनसा यथाशक्त्यधीत्य प्रज्ञातं निधाय नमो
ब्रह्मण इति परिधानीयासृचं त्रिः पठित्वा प्रणवमुच्चारयेत् । अत्र ब्रह्म
भूर्भुवः सुवरोम् । शान्तिः ३ इति पठन्ति केचित् । ततोऽप उपस्पृश्य
पूर्वोक्तं कर्माङ्गमाचमनं कृत्वा प्रमादादिति विष्णुं स्मरेत् । ततो गृह-
मागत्य मुष्टिमात्रमन्नमपि कस्मैचिद्ब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात् । एवमेव
दिनान्तरे प्राक्तनविरामोत्तरवाक्यमारभ्य पठेत् । इत्थमेव संहिताब्राह्म-
णमारण्यकं च पठेत् । आरण्यकप्रपाठकेषु मध्ये विरामेऽपि तत्प्रपाठक-
स्योत्तरां शान्तिं कृत्वाऽनन्तरं नमो ब्रह्मण इति परिदध्यात् । द्वितीय-
दिने गायत्रीपाठानन्तरं तत्प्रपाठकस्य पूर्वां शान्तिं कृत्वा प्राक्स्थापि-
तादारभेत । अनध्याये स्वल्पो ब्रह्मयज्ञः कार्यः । तदा शिक्षाकल्यव्या-
करणनिरुक्तच्छन्दोज्योतिषाख्याङ्गानां क्रमेण पठनं विधेयम् । इतिहा-
सपुराणादीनामपि वेदार्थोपबृंहकत्वादङ्गवदेवाध्ययनम् । वेदान्तराध्ययन-
सत्त्वे तमपि साङ्गस्ववेदसमाप्तौ पठेत् । तदङ्गत्वेनोक्ताङ्गानि च पुनः ।
मध्यंदिन उच्चैः । तत्रापि ग्रामे मनसैवाध्ययनमिति ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे ब्रह्मयज्ञप्रयोगप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ ब्रह्मयज्ञोक्तमन्त्रादिभाष्यं श्रीमन्माधवीयमेव लिख्यते । एका-
दशे तत्प्रयोगोऽभिधीयते । ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्यमाणः प्राच्यां दिशि ग्रामा-
दच्छदिर्दर्श उदीच्यां प्रागुदीच्यां वोदित आदित्ये दक्षिणत उपवीयो-
पविश्य हस्ताववनिज्य त्रिराचामेद्द्विः परिमृज्य सकृदुपस्पृश्य शिरश्च-

क्षुषी नासिके श्रोत्रे हृदयमालभ्येति । यः पुमान्ब्रह्मयज्ञं करिष्यति सोऽयं
 ग्रामात्प्राचीमुदीचीमैशानीं वा दिशं गच्छेत् । गृहस्योपर्याच्छादनार्थानि
 तृणकाष्ठादीनि च्छदींषि यावति दूरे तानि न दृश्यन्ते तावद्दूरमच्छदिर्दशं
 तत्र गत्वा सूर्येऽभ्युदिते सति प्रथमानुवाकोक्तप्रकारेण यज्ञोपवीतं कृत्वा
 शुद्धप्रदेश उपविश्य हस्तद्वयं पूर्वं शुद्धमपि एतदङ्गत्वेन पुनः प्रक्षाल्यो-
 दकं त्रिः पिबेत् । द्विः परिमृज्य शुद्धचर्थमुदकेन तदा हस्तं प्रक्षालयेत् ।
 ओष्ठौ सकृदुपस्पृश्य शिरःप्रभृतिहृदयपर्यन्तानवयवान्क्रमेण स्पृष्ट्वा दर्भाणां
 महदित्यादिना वक्ष्यमाणेन सहान्वयः । अथाऽऽचमनादीन्प्रशंसति—
 यन्निराचामति तेन ऋचः प्रीणाति यद्द्विः परिमृजति तेन यजूंषि यत्स-
 कृदुपस्पृशति तेन सामानि यत्सव्यं पाणिं पादौ प्रोक्षति यच्छिरश्चक्षुषी
 नासिके श्रोत्रे हृदयमालभते तेनाथर्वाङ्गिरसो ब्राह्मणानीतिहासान्पुरा-
 णानि कल्पान्गाथा नाराशंसीः प्रीणातीति । अत्र सव्यपाणिपादयोः
 प्रोक्षणकथनादेव प्रोक्षणविधिरुन्नेतव्यः । हृदयस्पर्शनोत्तरमावि कर्तव्यं
 विधत्ते—दर्भाणां महदुपस्तीर्योपस्थं कृत्वा प्राङ्गासीनः स्वाध्यायमधी-
 यीतापां वा एष ओषधीनां* एसो यद्दर्भाः सरसमेव ब्रह्म कुरुत इति ।
 दर्भाणां संबन्धि महत्प्रभूतं यथा भवति तथाऽऽसनमास्तीर्य तस्योपरि
 उपस्थं कृत्वा । उपस्थशब्द आसनविशेषं ब्रूते । आकुञ्चितस्य सव्यजानुत
 उपरि दक्षिणपादप्रक्षेपे सति यत्सुखावस्थानं भवति तत्कृत्वा प्राङ्मुख
 आसीनः स्वकीयां शाखामधीयानः । दर्भाणामप्सारत्वमन्यत्राऽऽन्नातम्—
 तासां यन्मेध्यं यज्ञियं* सदेवमासीत्तदपोदक्रामत्ते दर्भा अभवन्निति ।
 ओषधीनां मध्ये शुद्धिहेतुत्वात्तत्सारत्वम् । ततो दर्भासनत्वादधीयानं
 ब्रह्म सरसं भवति । तत्रोपक्रमे कंचिद्विशेषं विधत्ते—दक्षिणोत्तरौ पाणी
 पादौ कृत्वा सपवित्रावोमिति प्रतिपद्यत एतद्वै यजुस्त्रयीं विद्यां प्रत्येषा
 वागेतत्परममक्षरमिति । दक्षिणः पाणिरुत्तरो ययोस्तौ दक्षिणोत्तरौ
 वामपाणिं दक्षिणजानुन ऊर्ध्वमुत्तानं कृत्वा तस्योपरि दक्षिणहस्तम-
 वाश्रं कुर्यात् । तादृशौ च पाणी पवित्रयुक्तौ कार्यौ । तथा दक्षिण-
 पादोऽपि वामपादस्योपरि स्थापनीयः । एवं कृत्वोमिति प्रणवोच्चारणे-
 नोपक्रमं कुर्यात् । योऽयमोमित्येवंरूपो यजुर्मन्त्रः स त्रयीं विद्यां प्रति
 वेदत्रयस्य प्रतिनिधिरूपः । अत एव प्रणवगतानामकारोकारमकारमा-
 त्राणां वेदत्रयरूपेणाध्ययनमाथर्वणिका आमनन्ति—तस्य ह वै प्रण-
 वस्य पूर्वा मात्रा पृथिव्यकारः स ऋग्भिर्ऋग्वेदोऽथ द्वितीयाऽन्तरिक्षं स

उकारः स यजुर्भिर्यजुर्वेदस्तृतीया द्यौः स भकारः स सामभिः सामवेद इति । किं चैषा प्रणवरूपा सर्वा वागपि । अत एव च्छन्दोगा आभनन्ति—तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोकारेण सर्वा वाक्संतृण्णेति । अश्वत्थपत्रे दृश्यमानास्तन्तुसदृशा अवयवाः शङ्कुवस्तैर्यथा कृत्स्नानि पर्णानि व्याप्तानि तद्वदोकारेण सर्वाऽपि वाग्व्याप्ता । ऐतरेयेऽपि प्रणवादेरकारस्यैव सर्ववाग्व्याप्तिमामनन्ति—अकारो वै सर्वा वाक्सैषा स्पर्शोष्मभिर्व्यज्यमाना बह्वी नानारूपा भवतीति । अत एव मातृकामन्त्रे सर्वानपि ककारादीन्वर्णानकारशिरस्कानेव पठन्ति । एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परमिति । तस्मात्प्रणवेनैव स्वाध्यायप्रारम्भो युक्तः । प्रणवप्रशंसापरामृचमवतारयति—तदेतदृचाऽभ्युक्तमिति । तदेतत्परब्रह्मस्वरूपं प्रणवाक्षरमृचाऽभ्युक्तं स्पष्टमुक्तम् । तामृचं दर्शयति—ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासत इतीति । या एता ऋचस्ताः सर्वाः परम उत्कृष्टे व्योमन्विशेषेण रक्षकेऽक्षरे प्रणवे निषेदुराश्रिताः । अत एव कठशाखायामधीयते—सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतदिति । न केवलमृच एव तस्मिन्प्रणवे समाश्रिताः किं तु सर्वे विश्वे देवा अपि अस्मिन्प्रणवाक्षरेऽधिनिषेदुः, अधिकरणत्वेन निषण्णाः । अत एवौत्तरतापनीये वेदानां परमात्मध्यानार्थं प्रणवपर्यवसानमुक्तम्—आत्मानमनुष्टुवान्विष्य प्रणवेनैव तस्मिन्नवस्थिता इति । अनेनैव प्रकारेण ऋषयो देवाश्च यस्मिन्प्रणवे निषेदुस्तत्प्रणवाक्षरं यो न वेद स पुमानधीयानोऽप्यृचा किं करिष्यति न खलु फलरहितां केवलां कृषिं केचित्प्रार्थयन्ते । इत्, ये पुनर्महात्मानस्तत्प्रणवाक्षरं विदुस्ते महर्षय इमे परिदृश्यमानाः परमहंसाः समासते सम्यगवतिष्ठन्त ऐहिकामुष्मिकविषयक्लेशरहिताः सुखिनो वर्तन्ते । तांश्च परमहंसाञ्जाबालशाखाध्यायिन उदाहरन्ति—तत्र परमहंसा नाम संवर्तकारुणिश्वेतकेतुदुर्वासऋभुनिदाघजडभरतात्रेयरैवतकप्रभृतय इति । इत्यनेन मन्त्रेण प्रशस्तत्वात्प्रणवस्य वेदत्रयप्रतिनिधित्वमुक्तम् । तेन प्रणवेन प्रारभ्य पश्चात्पठनीयान्मन्त्रान्दर्शयति—त्रीनेव प्रायुङ्क्त भूर्भुवः स्वरित्याहैतद्वै वाचः सत्यं तत्प्रायुङ्क्तेति । भूर्भुवः स्वरिति यद्याहतित्रयं

तल्लोकत्रयात्मकब्रह्मप्रतिपादकं तदाह पठेत् । तेन त्रीन्वेव वेदान्प्रयुक्तवान्भवति । व्याहृतीनां वेदत्रयसारत्वेन प्रोक्तत्वात् । एतच्च च्छन्दोगा अधीयते—स एतां त्रयीं विद्यामभ्यसत एतस्यास्तप्यमानाया रसान्या-
ब्रह्मन्दूरित्यृग्भ्यो भुव इति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्य इति । वेदत्रयसा-
रत्वेन वाचः संबन्धि सत्यस्वरूपमित्युच्यते । अतस्तत्सत्यमेव प्रयुक्तवान्भवति । व्याहृतित्रयादूर्ध्वं पठनीयं दर्शयति—अथ सावित्रीं गायत्रीं
त्रिरन्वाह पच्छोऽर्धर्चशोऽनवान् सविता श्रियः प्रसविता श्रियमेवाऽऽ-
प्रोत्यथो प्रज्ञातयैव प्रतिपदा छन्दांसि प्रतिपद्यत इति । अथ व्याहृ-
त्यनन्तरं सावित्रीं सवितृदेवताकां गायत्रीछन्दस्कां तत्सवितुरित्यादि-
कामुचं त्रिः पठेत् । तत्रायं प्रकारः—प्रथमं पादशः पादे पादे विरम्य
पठेत् । ततोऽर्धर्चश एकैकस्मिन्नर्धे विरम्य पठेत् । ततोऽनवानं विराम-
रहितं यथा भवति तथा पठेत् । तस्यामृचि प्रतिपाद्योऽयं सविता सोऽयं
श्रियः प्रेरकोऽतो ब्रह्मयज्ञानुष्ठायी श्रियं प्राप्नोत्येव । एवमेकस्मिन्नाह्नि
विधानमुक्तम् । अथो अनन्तरं तदादिदिवसेषु प्रज्ञातयैव प्रतिपदा पूर्व-
स्मिन्दिवसे किञ्चित्पठित्वा परेद्युरनुष्ठायी(द्य)यमुपक्रम इति या प्रतिपत्प्र-
ज्ञाता यः प्रारम्भप्रदेशो बुद्धौ स्थापितस्तयैव प्रतिपदा प्रारम्भप्रदेशेन
च्छन्दांसि वेदावयवान्परेद्युः प्रतिपद्यते प्रारभते पूर्वद्युर्यावद्यवसितं तत
एवाऽऽरभ्योत्तरेद्युरधीयीत न तु यं कंचिद्वेदभागम् ।

इति श्रीमाधवीये वेदार्थप्रकाशे यजुरारण्यके द्वितीयप्रपाठक एका-
दशोऽनुषाकः ।

इदमत्रेतिकर्तव्यताविशेषज्ञानार्थमेव प्रसक्तानुप्रसक्त्या संगृहीतं भाष्य-
मिति क्षन्तव्यमेव संक्षेपापेक्षिभिः कृतगुणलक्षणैः सद्भिः । प्रणवव्या-
हृतिगायत्र्यर्थास्त्वधस्तादेव संध्याप्रयोगभाष्यसंग्रहप्रकरणे संगृहीता
एव । अथ चतुर्वेदादिमन्त्राणां प्रागुक्तरीत्या निरुक्तकामुकपठनीयाना-
मपि भाष्याणि श्रीमन्माधवीयान्येव संगृह्यन्ते—अग्निमीळे पुरोहितं
यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातममिति । इममग्निमहमीडे स्तौमि ।
कीदृशं पुरोहितं पुरोदेश आहवनीये स्थापितम् । यज्ञस्यानुष्ठीयमानस्य
कर्मण ऋत्विजम्, ऋत्विग्वन्निष्पादकम् । देवं द्योतमानम् । होतारं
देवतानामाह्वानारम् । रत्नधातममतिशयेन रत्नप्रभृतीनां धनानां संपा-
दकमिति । इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थोपायवस्थ देवो वः सविता प्रार्प-

यतु श्रेष्ठतमाय कर्मण इति । अस्मिन्मन्त्रे विनियोगानुसारेणाऽऽच्छि-
नङ्गीतिपदमध्याहृत्य वाक्यं पूरणीयम् । इडित्यन्नं सर्वैः प्राणिभिरिष्य-
माणत्वात् । ऊर्बलहेतू रसः । ऊर्ज बलप्राणनयोरिति धातुः । ऊर्ज्यते
बलं संपाद्यतेऽनया रसरूपयेत्यूर्जे हे पलाशशाखे देवानां भागरूपद-
ध्यर्थं त्वामाच्छिनद्मि । तस्य देवस्य बलरसार्थं त्वामाच्छिनङ्गीति वा
वाक्यार्थः । मन्त्रद्वित्वपक्षे विनियोगानुसारेणोर्जे त्वामनुमाज्मीति अध्या-
हार्यम् । एतन्मन्त्रस्तावकमर्थवादमाह—इषमेवोर्जं यजमाने दधाति ।
एतन्मन्त्रपाठेनाध्वर्युर्भोजनायान्नं बलाय च रसं यजमाने संपादयति । न
चात्र प्रत्यक्षविरोध आशङ्कनीयः । ग्रावाणः प्लवन्त इत्यादिवदस्यार्थ-
वादस्य प्रशंसारूपगुणवादत्वाङ्गीकारात् । मन्त्रान्तरविनियोगमाह
बोधायनः—तया वत्सानपाकरोति वायवस्थोपायवस्थेति । वान्ति
गच्छन्तीति वायवो गन्तारः । उप समीपे यजमानगृहे पुनरागच्छन्तीत्यु-
पायवः । हे वत्सास्तृणभक्षणाय प्रथमं मातृसकाशादपेत्य स्वेच्छयैवारण्ये
गन्तारो भवत । सायं पुनर्यजमानगृहं समागन्तारो भवत । अथ वा
वत्सानां परम्परया वायुदेवताकत्वात्तदभेदविक्षया वायुरूपत्वं ब्रुव-
न्नध्वर्युस्तद्वक्षार्थं वत्सान्वायुदेवतायै समर्पयति । अनेनैव प्रकारेण
मन्त्रस्य पूर्वभागो ब्राह्मणेन व्याख्यायते—वायवस्थेत्याह । वायुर्वा
अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः । अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः । वायव
एवैनान्परिददातीति । अध्यक्षा इति वचनव्यत्ययः । वायुः स्वप्र-
चारेणान्तरिक्षमधितिष्ठति । अन्तरिक्षे च विस्रम्भसंचाराय बहुलम-
वकाशं प्रयच्छन्वत्साल्ललयति । सेयं प्रत्यक्षप्रसिद्धिः । अर्थवादा-
न्तरगतः स्वस्वामिभावो वाखलुवैशब्दैर्योत्यते । तस्यैव मन्त्र-
भागस्य प्रकारान्तरेणाभिप्राय आम्नायते—प्र वा एनानेतदाकरोति
यदाह वायवस्थेति । अध्वर्युरिमं भागमुच्चारयति यदेतेनोच्चारणेन
वत्सान्वायुतादात्म्यलक्षणप्रकृष्टाकारवतः करोति । उत्तरभागं व्याचष्टे—
उपायवः स्थेत्याह यजमानायैव पशूनुपहूयत इति । हे गावः प्रेरको देवोऽ-
न्तर्यामी परमेश्वरोऽत्यन्तश्रेष्ठायैन्द्रदधिरूपाय कर्मणे युष्मानरण्ये प्रार्प-
यतु प्रेरयतु । इति प्रथममन्त्रार्थः । तस्य मन्त्रपूर्वभागे स्थितस्य सवि-
तृपदस्य तात्पर्यं व्याचष्टे—देवो वः सविता प्रार्पयत्वित्याह प्रसूत्या इति ।
प्रेरणायेत्यर्थः । उत्तरभागं व्याचष्टे—श्रेष्ठतमाय कर्मण इत्याह यज्ञो हि
श्रेष्ठतमं कर्म तस्मादेवमाहेतीति । अग्न आयाहि वीतये । गृणानो हव्य-
दातये । निहोता सत्सि बर्हिषीति । हेऽग्नये हव्यदातये यजमानस्य

हविर्दानाय वीतये देवानां हविर्भक्षणाय गृणानो देवानां हविर्दास्य-
तीति भवद्भिर्भक्षणीयमिति वदन्नायाहि । आगत्य च होताऽऽह्वाता
भवन्बर्हिषि यज्ञे निषत्सि निषीद ।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः । इति ।

आपो देव्यो नोऽस्माकमभिष्टये पीतयेऽभीष्टाय पानाय शं सुखहेतवो
भवन्तु । किं च नोऽस्माकं शं सुखं यथा भवति तथा योर्दुःखवियोगो यथा
भवति तथाऽभिस्रवन्तु सर्वतः प्रवहन्तु । इति वेदादिभाष्याणि । अथ
प्रागुक्तस्य ब्रह्मयज्ञीयनिखिलफलदानदक्षजपमात्रस्याहं वृक्षस्येत्यादेः
सांहित्यपरनामकशिक्षोपनिषत्प्रसिद्धमन्त्रस्य माधवीयमेव भाष्यम् । अहं
वृक्षस्य रेरिवा । कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृ-
तमस्मि । द्रविणं सवर्चसम् । सुमेधा अमृतोक्षितः । इति त्रिशङ्को-
र्वेदानुवचनमिति । वृश्चयते तत्त्वज्ञानेनोच्छिद्यत इति वृक्षः संसारः । स
चारुणकेतुकप्रकरणे केनचिन्मन्त्रेण स्पष्टीकृतः—ऊर्ध्वमूलमवाकशाखं वृक्षं
यो वेद संप्रतीति । ऊर्ध्वं सर्वस्माज्जगत उत्कृष्टं परं ब्रह्म मूलं कारणं
यस्य संसारवृक्षस्य सोऽयमूर्ध्वमूलः । अवाञ्चः सुरनरतिर्यग्देहाः शाखा
यस्य । सोऽयं कठवल्लीष्वप्याम्नायते—ऊर्ध्वमूलोऽवाकशाख एषोऽश्वत्थः
सनातन इति । अनित्यतया श्वो न तिष्ठतीत्यश्वत्थः । सनातनत्वमना-
दित्वम् । भगवताऽप्यसौ वृक्षोऽभिहितः—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ इति ।

मुमुक्षुरहं तस्य संसारवृक्षस्य रेरिवा विषयवैराग्यरूपेण शस्त्रेण च्छेत्ता
भूयासमिति शेषः । री हिंसायामिति धातोरयं शब्दो निष्पन्नः । वैरा-
ग्यशस्त्रेण च्छेदो भगवतोक्तः—

अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ॥ इति ।

संसारवृक्षे छिन्ने सति मदीया कीर्तिर्गिरेः पृष्ठमिव भवति । यथा
पर्वतस्योपरिभागोऽत्यन्त उन्नतस्तथा मदीया मोक्षविषया कीर्तिरत्यन्त-
मुन्नता सती देवलोकेष्वपि प्रसरति । ततो देवा अपि मदीयं पुरुषार्थं
विहन्तुं न क्षमन्ते । तथाच श्रूयते—तस्य ह न देवाश्चनाभूत्या ईशत इति ।

वाजिनीव स्वमृतभिवाहमूर्ध्वपवित्रोऽस्मि वाजो गतिस्तद्धानादित्यो
वाजी स हि सर्वदा वेगेनैव गच्छति । तथा चोक्तम्—

योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने ।

एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते ॥ इति ।

तस्मिन्वाजिन्यादित्ये शोभनममृतं विद्यते । अत एव च्छन्दोगा मधु-
विद्यायामादित्यमण्डलस्य मधुरूपत्वं तदीयप्रागादिभागेषु ऋग्वेदादि-
प्रोक्तकर्मफलरूपाणि रोहितशुक्रादिवर्णयुक्तान्यमृतानि चाऽऽम्नाय तद्य-
त्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीवन्तीत्यादिना तेषाममृतानां वस्वाद्युपजीव्यत्व-
मामनन्ति । तदिदमादित्यमण्डलगतममृतं शोभनमत्यन्तं शुद्धं तद्वदहम-
प्यूर्ध्वपवित्र ऊर्ध्वं पवित्रमुत्कृष्टा शुद्धिर्यस्य मम सोऽहमूर्ध्वपवित्रः । तादृ-
शस्य मम सवर्चसं द्रविणं सिध्यतु । द्विविधं हि द्रविणं मानुषं दैवं
च तत्र चक्षुषा दृश्यमानं सुवर्णरजतादिकं मानुषम् । श्रोत्रेण वेदे प्रतीय-
मानं ब्रह्मज्ञानादिकं दैवम् । अत एव वाजसनेयिनः कस्मिंश्चिदुपासने
चक्षुःश्रोत्रयोर्मानुषदैववित्तदृष्टिमामनन्ति—चक्षुर्मानुषं वित्तम् । चक्षुषा
हि तद्विन्दते । श्रोत्रं दैवम् । श्रोत्रेण हि तच्छृणोतीति । तत्र दैववित्तम-
भिप्रेत्य सवर्चसमिति विशेष्यते । वर्चो बलं तद्योगात्सवर्चसं बलवत्त्वं
दैववित्तस्य ब्रह्मज्ञानस्य सर्वसंसारनिवर्तकत्वादुपपन्नम् । ब्रह्मज्ञानरूपेण
दैववित्तेनात्र द्रविणशब्दवाच्येन संपन्नोऽहं सुमेधा अमृतोक्षितश्च भूयासं
शोभना मेधा ब्रह्मज्ञानप्रतिपादकग्रन्थतदर्थावधारणशक्तिर्यस्य मम
सोऽहं सुमेधाः । अत एवाहममृतेन ब्रह्मानन्दरसेनोक्षितः सेचितः ।
इत्यहं वृक्षस्येत्यादिमन्त्रः । त्रिशङ्कुनामकस्य मुनेर्मते वेदानुवचनं वेदस्य
गुरुपूर्वकमध्ययनमनु पश्चाद्ब्रह्मचर्यं ब्रह्मयज्ञीयतप इत्यर्थः ।

इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे यजुरारण्यके
सांहित्यामुपनिषदि दशमोऽनुवाकः । अत्र विस्तरस्तु एतदीये श्रीभगव-
त्पादीयभाष्यादौ द्रष्टव्यः ।

एतस्य ब्रह्मयज्ञस्याङ्गभूतं कंचिन्मन्त्रं प्रदर्शयति—

नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ।

नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे बृहते करोमि ॥ इति ।

ब्रह्मशब्देन वेदः प्रजापतिर्वोच्यते । वाक्शब्देन सरस्वती । वाचस्प-
तिर्बृहस्पतिः । प्रशस्तत्वाद्विष्णुर्बृहत् । अस्य मन्त्रस्य विनियोग उपरि-
ष्टान्द्रविष्यति ।

इति माधवीये वेदार्थप्रकाशे यजुरारण्यके द्वितीयप्रपाठके द्वादशोऽ-
नुवाकः ।

एवमवश्यनित्यपठनीयमन्त्राणामेव भाष्याणि संगृहीतानि । समग्र-
शाखाद्यध्यायिभिस्तु तदर्थजिज्ञासायां तानि स्वतन्त्रमेवाऽऽचार्यद्वाराऽ-
नुसंधेयानि । इह तल्लेखानौचित्यादिति ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुड्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे ब्रह्मयज्ञमन्त्रादिभाष्यसंग्रहप्रकरणम् ।

एवं द्वितीयभागप्रथमकृत्यभूतो वेदाभ्यासः संक्षेपेण निरूपितः । अथ
क्रमप्राप्तं समित्पुष्पकुशाद्याहरणं संक्षेपेणैव निरूप्यते । तत्रापि कुशानां
ज्ञानादिबहुकर्मापयोगित्वात्प्रथमं तद्रहणमेव कथ्यते । तत्र संस्काररत्न-
मालायां शातातपः—

समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् ।

शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन्पतत्यधः ॥ इति ।

अत्राऽऽदिना तुलसीबिल्वदूर्वाः । एवं शूद्रपदेन ब्राह्मणान्तरेण तदा-
नयनेऽपि न क्षतिः । कुशग्रहणकालमाह तत्रैवाङ्गिराः—

अहन्यहनि कर्मार्थं कुशच्छेदः प्रशस्यते । इति ।

स्मृत्यन्तरे विशेषः—

मासि मास्याहता दर्भास्तत्तन्मास्येव चोदिताः । इति ।

जाषालिः—कुशान्काशांश्च पुष्पाणि गवार्थं च तृणादिकम् ।

निषिद्धे चापि गृह्णीयाद्मावास्याहनि द्विजः ॥ इति ।

अस्याप्यसंभवे विष्णुः—

दर्शं श्रावणमासस्य समन्त्रोत्पाटिताः कुशाः ।

अयातयामास्ते दर्भा नियोज्याः स्युः पुनः पुनः ॥ इति ।

अयातयामा अपर्युषिता इति दीक्षिताः । नियोज्या उपयुक्ता अप्य-
निषेधेऽन्यत्र प्रयोज्या इत्यपि । एतेनाहन्यहनीत्युक्ताङ्गिरोवाक्यस्य कुशा
धृता ये पूर्वत्र योग्याः स्युर्नोत्तरत्र त इत्युत्तरार्थं तद्विनाहतकुशविषयं
बोध्यम् । एवममायां नैव हिंस्यात्तु कुशांश्च समिधस्तथेति निषेधो
विहितेतरपर इति च । माधवीये कौशिकः—

शुचौ देशे शुचिर्भूत्वा स्थित्वा पूर्वोत्तरामुखः ।

ओंकारेणैव मन्त्रेण कुशाः स्पृश्या द्विजोत्तमैः ॥ इति ।

संस्काररत्नमालायां तु कुशान्स्पृष्ट्वा द्विजोत्तमः । इति पाठमुक्त्वोक्तम्—

विरञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज ।

नुद सर्वाणि पापानि कुश स्वस्तिकरो भव ॥

इमं मन्त्रं समुच्चार्य ततः पूर्वोत्तरामुखः ।

हुंफट्कारेण दर्भास्तु सकृच्छित्त्वा समुद्धरेत् ॥ इति ।

[*वस्तुतस्तु समुदाहृतमाधववचसोक्तेतिकर्तव्यताचारितार्थेन ता-
न्त्रिकत्वेन चेदं हेयमेव ।] तान्विशिनष्टि माधवीये हारीतः—

अच्छिन्नाग्रान्सपत्रांश्च अच्छिद्रान्कोमलाञ्जुमान् ।

पितृदेवक्रियार्थं च समादद्यात्कुशान्द्विजः ॥ इति ।

सपत्रान्प्रशस्तपत्रानित्यर्थः ।

वर्ज्यानाह स एव—पथि दर्भाश्चितौ दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु ।

स्तरणासनपिण्डेषु तेषां त्यागो विधीयते ॥ इति ।

आपस्तम्बः—ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये चैव पितृतर्पणे ।

हता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते ॥ इति ।

देवलोऽपि—अपूता गर्भिता दर्भा ये चाग्रच्छेदिता नखैः ।

क्वाथिता अग्निदग्धाश्च कुशा वर्ज्याः प्रयत्नतः ॥ इति ।

वस्तुतस्तु सूत्रकृता यत्रानन्तर्गर्भत्वमुक्तं तत्रैव नियतमन्यत्रानियत-
मिति द्रष्टव्यमिति दीक्षिताः । स्मृत्यन्तरे विशेषः—

अमूला देवकार्येषु पितृकार्ये समूलकाः । इति ।

कौशिकः—अप्रसूनाः स्मृता दर्भाः सप्रसूनाः कुशाः स्मृताः ।

समूलाः कुतपाः प्रोक्ताश्छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञिताः ॥ इति ।

कुशाभावे हारीतः—

कुशाभावे तथा काशा दूर्वा व्रीहियवा अपि ।

गोधूमाश्चैव नीवाराः श्यामाकोशीरबल्वजाः ॥

मुञ्जा वाऽथ परिग्राह्याः सर्वकर्मसु निश्चितम् । इति ।

अत्र व्रीहिप्रभृतिशब्दैस्तत्तत्तृणानि । बल्वजपदेनापि तृणविशेष एव
ग्राह्यः । समिदाहरणं तु श्रुतावेव प्रसिद्धम् । अथ तुलस्यादिग्रहणमुक्तं
निर्णयसिन्धौ देवयाज्ञिककृते स्मृतिसारे—

वैधृतौ च व्यतीपाते भौमभार्गवभानुषु ।

पर्वद्वये च संक्रान्तौ द्वादश्यां सूतकद्वये ॥

तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ॥ इति ।

विष्णुधर्मोत्तरे—रविवारं विना दूर्वां तुलसीं द्वादशीं विना ।

जीवितस्याविनाशाय प्रविचिन्वीत धर्मवित् ॥

तथा—संक्रान्तावर्कपक्षान्ते द्वादश्यां निशि संध्ययोः ।

यैश्छिन्नं तुलसीपत्रं तैश्छिन्नं हरिमस्तकम् ॥

ग्रहणमन्त्रस्तु तत्रैव पाद्रे—

तुलस्यमृतनामाऽसि सदा त्वं केशवप्रिये ।

केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥ इति ।

वाराहे चानुर्मास्यमाहात्म्ये—

निषिद्धे दिवसे प्राप्ते गृह्णीयाद्गलितं दलम् ।

तेनैव पूजां कुर्वीत न पूजां तुलसीं विना ॥ इति ।

अथ पुष्पादेः पर्युषितत्वं तत्रैव भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये—

प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् ।

तुलस्यां बिल्वपत्रेषु सर्वेषु जलजेषु च ॥

न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेऽपि च ।

इदं लक्षपुष्पार्चनादौ तु क्रयक्रीतमपीष्यत इति संस्काररत्नमालायां संगृहीतवचना[त्]त्परं बोध्यम् ।

बृहन्नारदीये—वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ।

न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम् ॥

पाद्रे—तुलसी पर्युषिता नैव बिल्वं तु त्रिदिनावधि ।

पद्मं पञ्चादिनाच्याज्यं शेषं पर्युषितं विदुः ॥

स्कान्दे—पालाशं दिनमेकं तु पङ्कजं तु दिनत्रयम् ।

पञ्चाहं बिल्वपत्रं तु दशाहं तुलसीदलम् ॥

अपर्युषितं भवतीति शेषः । पदार्थादर्शं राघवभट्टस्त्वन्यथाऽऽह —

बिल्वापामार्गजातीतुलसीशमीशताकेतकीभृङ्गदूर्वा

मन्दाम्भोजाहिदर्भा मुनितिलनगरब्रह्मकह्लारमल्ली ।

चम्पाश्वारातिकुम्भीदमनमरुबका बिल्वतोऽहानि शस्ता

त्रिंशत् ३० त्र्ये ३ का १ र्य ६ री ६ शो ११ दधि ४ निधि ९ वसु ८ भू

१-भू १ यमं २ भूय एवम् ।

अस्यार्थः—शता शतावरी मन्दा मान्दारः । अहिर्नागकेसरः । मुनि-
रगस्त्यः । अश्वारातिः करवीरः कुम्भी पाटलेति देवनिघण्टः । अरयः
षट् । ईशा एकादश । उद्धयश्चत्वारः । निधयो नव । वसवोऽष्टौ । भूरेकः ।
यमौ द्वौ । बिल्वमारभ्य द्विपर्यन्तं गणयित्वा दर्भमारभ्य पुनस्त्रिंशदादि
गणयेदित्यर्थः । एतद्दिनोत्तरं पर्युषितमित्यर्थः । आचाररत्ने त्विदं बोप-
देवीयं पद्यमित्युक्तम् । तिथितत्त्वे मात्स्ये—

बिल्वपत्रं च माध्यं च तमालामलकीदलम् ।
कल्लारं तुलसीं चैव पत्रं च मुनिपुष्पकम् ॥
एतत्पर्युषितं न स्यात्कुशाश्च कलिकास्तथा ।

स्मृतिसारावल्याम्—

जलजानां च सर्वेषां पत्राणामहतस्य च ।
कुशपुष्पस्य रजतसुवर्णकृतयोरपि ॥
न पर्युषितदोषोऽस्ति तीर्थतोयस्य चैव हि ।
मुकुलैर्नार्चयेद्देवं पङ्कजैर्जलजैर्विना ॥ इति ।

टोडरानन्दे स्कान्दे दमनमुपक्रम्य—

तस्य माला भगवतः परमप्रीतिकारिणी ।
शुष्का पर्युषिता वाऽपि न दुष्टा भवति क्वचित् ॥ इति ।

एवं चात्र तुलस्यादिषु सर्वथापर्युषितत्वाभावपराणि तुलस्यां बिल्व-
पत्रेष्वित्यादिभविष्यादिवचनानि नित्यपूजाधिपयाण्येव । सत्पर्युषितत्व-
बोधकदिनसंख्याघटितवचनानि तु काम्यपूजापराण्येव । तत्रापि दिन-
तारतम्यं देशाद्यनुरोधेन लाभालाभाद्यभिप्रायकमेव । जात्यादिपुष्पाणां
तु पर्युषितत्वकालनियमस्तु नित्यपूजासाधारणोऽपि । तत्रापि दिनसंख्या-
भेदः प्राग्वत्सौलभ्यादिनैव व्यवस्थाप्यत इति सर्वं सुस्थम् ।

अथ पुष्पादिस्थापनादिप्रकारस्तूक्तः प्रयोगपारिजाते—एवं संचिन्त्य
पद्मपलाशरम्भापत्रेष्वन्यतमपत्रे निक्षिप्योपरि पुष्परक्षार्थं तथाविध-
पत्रं निक्षिप्याऽऽबध्य दक्षिणपाणिना गृहीत्वाऽऽनीतैः पुष्पैः प्रतिमामा-
नेन मालां बद्ध्वा वा पूजयेदिति । बिल्वपत्रच्छेदने निषिद्धादिनानि
लिङ्गार्चनचन्द्रिकायां लैङ्गे—

अमारिक्तासु संक्रान्तावष्टम्यामिन्दुवासरे ।

बिल्वपत्रं न च चिच्छन्द्याच्छिन्द्याञ्चेन्नरकं व्रजेत् ॥ इति ।

पर्वद्वये च संक्रान्तावित्यपि केचित्पठन्ति । तत्र प्रथमपाठेऽमेति पूर्णिमाया उपलक्षणमतो रिक्तासंज्ञानां चतुर्थीनिवमीचतुर्दशीनां संग्रह-
लाभात्स एव साधुः ।

संग्रहे—वस्त्रानीतं करानीतमानीतं चार्कपत्रके ।

एरण्डपत्रे चाऽऽनीतं पत्रं पुष्पं फलं त्यजेत् ॥

इति तदानयने वस्त्राद्याधारनिषेधोऽपि । आचारमयूखे—

समित्पुष्पकुशादीनि वहन्तं नाभिवादयेत् ।

तद्द्वारी चैव नान्याह्नि निर्माल्यं तद्भवेत्तयोः ॥

देवोपरि धृतं यच्च वामहस्ते धृतं च यत् ।

देवतास्तन्न गृह्णन्ति पुष्पं निर्माल्यतां गतम् ॥ इति ।

तत्रैव—नित्यपूजार्थं परोपवनादेरपि ग्राह्यम् । न च तच्चौर्यम् । देव-
तार्थं च कुसुममस्तेयं मनुरब्रवीत् । इति वचनात् । पूजार्थं पुष्पाणि न
याचेत् । याचितैः पत्रपुष्पाद्यैर्यः करोति ममार्चनमिति वाराहे तस्याप-
राधिषु गणितत्वादिति । इदमप्युक्तमनुवचनात्काम्यपूजापरम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुञ्चयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे समिदाद्याहरणप्रकरणं पञ्चमं द्वितीय-
भागकृत्याख्यो द्वितीयः किरणश्च संपूर्णः ।

अथ तृतीयभागकृत्यम् । तत्र माधवीये दक्षः—

तृतीये च तथा भागे पोष्यवर्गार्थसाधनम् । इति ।

तत्रैव कूर्मपुराणे—उपेयादीश्वरं चैव योगक्षेमार्थसिद्धये ।

साधयेद्विविधानर्थान्कुटुम्बार्थं ततो द्विजः ॥ इति ।

पोष्यवर्गो दक्षेण दर्शितः—

माता पिता गुरुभार्या प्रजाहीनः समाश्रितः ।

अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥

एतच्च धनसाधनं यथावृत्ति कार्यम् । तदाह मनुः—

यात्रामात्रप्रसिद्धार्थं स्वकर्मभिरगर्हितैः ।

अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम् ॥ इति ।

अगर्हितान्यध्यापनादीनि । धर्मप्रश्ने—स्वकर्म ब्राह्मणस्याध्ययनम-
ध्यापनं यज्ञो याजनं दानं प्रतिग्रहणं दायाद्यं शिलोञ्छोऽन्यच्चापरिगृ-
हीतमिति । सर्ववर्णानां स्वधर्मानुष्ठान इत्युक्तम् । तेन स्वधर्मा

उच्यन्ते । पुत्रादिभ्यो दीयत इति दायः । तमादत्त इति दायदस्तस्य भावो दायद्यं दायस्वीकारः । क्षेत्रादिषु पतितानि मञ्जरीभूतानि ततश्च्युतानि वा धान्यानि शिलशब्दस्यार्थः । तेषामुञ्छनमङ्गुलीभिर्न-
खैर्वाऽऽदानं शिलोञ्छः । एतान्यप्यध्ययनादीन्यष्टौ ब्राह्मणस्य स्वकर्म । तेषु यज्ञदानाध्ययनानि त्रीणि द्विजातिसमानकर्तव्यानि नियम्यन्ते । इतराण्यर्थितया द्रव्यार्जने प्रवृत्तस्योपायान्तरनिवृत्त्यर्थान्युपदिश्यन्ते । अध्यापनादिभिरेव द्रव्यमर्जयेन्न चौर्यादिभिरिति । यच्चान्यत्केनाप्यपरिगृहीतमरण्यमूलफलादि तेनापि जीवेदिति प्रकरणाद्भ्रम्यते । एतेन विधिर्व्याख्यात इत्युज्ज्वला । कलौ ब्राह्मणवृत्तिमाह पराशरः—

षट्कर्मसहितो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत् । इति ।

स्वधर्मानुष्ठाने श्रेयो दर्शितं धर्मप्रश्ने—सर्ववर्णानां स्वधर्मानुष्ठाने परमपरिमितं सुखमिति । सर्वेषां वर्णानां ब्राह्मणादीनां चतुर्णां ये स्वधर्मा वर्णप्रयुक्ता आश्रमप्रयुक्ता उभयप्रयुक्तास्तेषामवैगुण्येन तदनुष्ठाने सति परमपरिमितं सुखं परमुत्कृष्टमपरिमितमक्षय्यं स्वर्गाख्यं सुखं भवतीत्युज्ज्वला ।

याज्ञवल्क्योऽपि—न्यायार्जितधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ।

श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥ इति ।

तत्त्वज्ञानं त्वध्यात्मपटले धर्मप्रश्ने एव ज्ञेयम् । एवं वर्णाश्रमधर्मविस्तरोऽपि तत्र माधवीये च बोध्यः ।

इत्योकोपाह्नवासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे तृतीयभागकृत्याख्यः सद्द्रव्यार्जनप्रकरणरूपस्तृतीयः किरणः ।

अथ चतुर्थभागकृत्यम् । तत्र माधवीये दक्षः—

चतुर्थे च तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् । इति ।

एवं चात्र मध्याह्नस्नानं प्राप्तं तत्र क्षौरं कारयितव्यं चेत्तत्कारयित्वैव तन्निमित्तकं स्नानं माध्याह्नस्नानं च तन्त्रेणैव कार्यम् । लाघवान्मध्याह्नोत्तरं बलवन्निमित्तमन्तरा क्षौरानौचित्याच्चेति प्रसङ्गतः प्रथमं क्षौरविधि-
निरूप्यते । तत्राऽऽदौ तत्कालः सामान्यतः साधिकारं संग्रहे—

मासे मासे गृहस्थानां पक्षे पक्षे च यज्वनाम् ।

ऋतावृतौ यतीनां च क्षौरकर्म विधीयते ॥ इति ।

तद्विशेषो मुहूर्तमालायाम्—

पञ्चमे पञ्चमे राज्ञां क्षौरभेऽस्योदयेऽथ वा ।

श्मश्रुकर्म प्रकुर्वीत नवमे दिवसे तु न ॥ इति ।

संस्काररत्नमालायां व्यासः—

तिथिं प्रतिपदां रिक्तां विष्टिं चैव विवर्जयेत् ।

वारं शनैश्चरादित्यभौमानां रात्रिमेव च ॥ इति ।

तत्रैव वारेषु वर्णविशेषेण विशेषमाह बृहस्पतिः—

पापग्रहाणां वारादौ विप्राणा शुभदं रवेः ।

क्षत्रियाणां क्षमासूनोर्विदूशूद्राणां शनेः शुभम् ॥ इति ।

मुहूर्तमार्तण्डटीकायां बृहस्पतिः—

सोमवारः सिते शस्तः कृष्णपक्षे तु गर्हितः ।

बुधवारः शुभः प्रोक्तः पापग्रहयुतोऽपि सन् ॥ इति ।

तत्रैव नारदः—

कूरवारं निशां रिक्तां षष्ठीं संध्यां च जन्ममम् । इति ।

वर्जयेदिति शेषः । संक्रान्तिविशेषेण निषेधो ज्योतिषे निर्णयसिन्धौ
जीवत्पितृकनिर्णये च सुमन्तुः—

कुम्भे पादं धनुष्यर्धं कर्के पादत्रयं तथा ।

सर्वा कन्यां परित्यज्य क्षौरकर्म विधीयते ॥ इति ।

मुहूर्तमार्तण्डे—कार्यं वर्षैरिनारार्किशनिषु निखिलैर्ज्ञत्रये शुक्लसोमे

व्यन्त्यद्यादित्यशाक्रेन्दुभिरिनहरितस्त्रिभैश्चौलकर्म ।

द्यूनेऽर्कारार्किशुक्रा गतकविनिखिला मृत्युगा मृत्युदाः स्यु-

व्यब्जाः सन्तोऽन्त्य इष्टस्त्यज गुहशशिनौ रात्रिसंध्ये च रिक्ताः ॥

भुक्ताभ्यक्तोपवासीश्वरजनयुवतिप्राग्वयस्काश्च योगी

यात्रायुद्धोन्मुखा येऽकृतदिनविधयोऽस्त्यम्बकास्ते न मुण्ड्याः ।

इति प्रागुक्त्वाऽथ सीमन्तप्रकरणे—

सीमन्तोर्ध्वं न पत्युर्नखकचलवनं दूरदेशप्रयाणं

वृक्षच्छेदः समुद्राप्लुतिमृतिहरणे स्याद्वृतेऽवश्यकार्यम् ।

क्षौरं चौलोक्तमादौ गदितमथ रविक्षेत्रगङ्गाध्वराग्न्या—

धाने पित्रोर्विनाशे द्विजनृपकथने सर्वदा क्षौरमिष्टम् ॥ इति ।

रविक्षेत्रं प्रभासाभिधम् । गङ्गायां तु तीरवासिनां न सदा तीर्थप्रयु-
क्तम् । यत उक्तं निर्णयसिन्धौ—

मुण्डनं चोपवासश्च गौतम्यां सिंहगे गुंरौ ।

कन्यागते तु कृष्णायां न तु तत्तीरवासिनाम् ॥ इति ।

तैरपि सिंहस्थादिप्रयुक्तस्नानादि कर्तव्यं यदा तदा कार्यमेव । अत्र
जप्यः श्लोको मुहूर्तमालायाम्—

आनर्तोऽहिच्छत्रः पाटलिपुत्रो द्युतिर्दितिः श्रीशः ।

क्षौरे स्मरणादेषां दोषा नश्यन्ति निःशेषाः ॥ इति ।

अहिच्छत्रो नृसिंहः । छत्रीमूतफणीन्द्रामिन्दुधवलं लक्ष्मीनृसिंहं
भजे । इति वचनात् । अदितिर्दितिरिति पाठः सार्वत्रिकः । स्पष्टं
शिष्टम् । वपनक्रमो गृह्यप्रश्ने—

श्मश्रूण्यग्रे वापयतेऽथोपपक्षावथ केशानथ लोमान्यथ नखानि । इति ।

ततः श्मश्रूण्यग्रे वापयति । अथोपपक्षौ कक्षौ । अथ केशान् । अथ
लोमानि, इतरप्रदेशस्थानि । अथ नखानि । वापयतीति सर्वत्र शेषः ।
नखानां निकृन्तनम् । वपनेऽयं क्रमः सार्वत्रिकत्वादुक्तक्रमादेव सिद्धेऽ-
ग्रेऽथाथेतिवचनमिति मातृदत्तः । कचः केशः शिरोरुहः । तनूरुहं रोम
लोम तद्वृद्धौ श्मश्रु पुंमुख इत्यमरः । वपनेऽयमिति । उक्तक्रमादेव
श्मश्रूणीत्यादिकथितश्मश्रूपपक्षकेशलोमनखोद्देशानुक्रमादेव । सिद्धेऽथ-
शब्दकथनीयतत्तदानन्तर्ये फलिते सतीत्यर्थः । अग्रेऽथाथेतिवचनमग्र
इत्यादिशब्दत्रयं वपने सार्वत्रिकत्वादयं क्रम इत्येतदर्थमस्तीत्यन्वयः ।
तथा च यावन्नित्यनैमित्तिकादिवपनेष्वयमेवौत्सर्गिकः क्रम इति नियमा-
र्थमग्र इत्याद्युक्तपदत्रयमित्याशयः । एतदेवाऽऽम्नायते तैत्तिरीयब्राह्मणे—
अथैतन्मनुर्वपत्रे मिथुनमपश्यत् । स श्मश्रूण्यग्रेऽवपत् । अथोपपक्षौ ।
अथ केशान् । ततो वै स प्राजायत प्रजया पशुभिः । यस्यैवं वपन्ति ।
प्र प्रजया पशुभिर्भिथुनैर्जायते, इति । वपत्रे वपनकर्त्र इत्यर्थः । स्पष्टम-
न्यत् । ततो नापिताय देयमुक्तं गृह्यप्रश्ने—

सर्पिष्मन्तमोदनं नापिताय । इति ।

सर्पिष्मन्तं प्रभूतसर्पिष्कमोदनं नापिताय ददातीति मातृदत्तः ।
क्षौरोत्तरस्नानस्य नैमित्तिकत्वमेव । यूपान्त्यजोदक्याशववायसाद्यस्पर्-
शने वान्ते क्षौरमैथुनाश्रुपाते यत्तु नैमित्तिकमिति विश्वादर्शटीकावच-

नात् । अत्र यूपोऽग्निचयनस्थ एव । तदुक्तं बह्वृचगृह्यसूत्रवृत्तौ प्रायश्चित्तप्रकरणे—अग्निचयनस्थं यूपं स्पृष्ट्वेति आज्याहुत्यादि प्रायश्चित्तं कुर्यादिति । उष्णोदकस्नानप्रकरणे नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति नैमित्तिकग्रहणादत्रोष्णोदकेनापि स्नानं भवति । तच्चाभ्यङ्गं विनैव । क्षौरोत्तरं तैलस्पर्शमकृत्वा स्नानं कुर्यादिति प्रयोगपारिजातोक्तेः । यच्चेदं महाराष्ट्रदेशादावूर्ध्वोष्ठोपरिस्थितश्मश्रुधारणं कुर्वन्ति केचित्तत्रापि तानि श्मश्रूणि कर्तनेन ह्रस्वतां नयन्ति तत्सर्वं वस्तुतः प्रामादिकमेव । तथा-वचनानुपलब्धेः । प्रोदाहृतश्रुतिसूत्रादिविरुद्धत्वाच्च । तथाऽपि ये नैव कर्तयन्ति अथ तत्संस्पृष्टजलादि पिबन्त्यन्नाद्यपि भक्षयन्ति तदपेक्षया ये कर्तयन्ति ते समीचीना इव प्रतिभान्ति । अकरणान्मन्दकरणं श्रेय इति न्यायात् । यदपीदं सूत्रे नापितदेयमोदनाद्युक्तं तदुचितमेवाथाप्यधुना शिष्टास्तत्प्रतिनिधिभूतं ढब्बुकादिताम्रमुद्राद्रव्यविशेषं यथासामर्थ्यं प्रयच्छन्ति तदप्युचितमेव । पञ्चमहायज्ञादेः प्राक्तस्यान्नदानपात्रत्वाभावाद्भृत्यतामन्तरा तस्य तावत्कालं प्रतीक्षासंभवाच्चेति दिक् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे क्षौरप्रकरणं प्रथमं संपूर्णम् ।

एवं क्षौरस्नानस्य नैमित्तिकत्वप्रसङ्गेन काम्यादितद्भेदाः कथ्यन्ते । तत्र माधवीये शङ्खः—

स्नानं तु द्विविधं प्रोक्तं गौणमुख्यप्रभेदतः ।

तयोस्तु वारुणं मुख्यं तत्पुनः षड्विधं भवेत् ॥ इति ।

मुख्यस्नानस्य षडपि प्रकारास्तत्रैवाऽऽग्नेयपुराणे दर्शिताः—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।

क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥

एषां लक्षणमाह शङ्खः—

अस्नातश्च पुमान्नाहो जपाग्निहवनादिषु ।

प्रातःस्नानं तदर्थं तु नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् ॥

चण्डालशवयूपादि स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् ।

स्नानार्हस्तु यदा स्नाति स्नानं नैमित्तिकं हि तत् ॥

पुण्यस्नानादिकं यत्तु दैवज्ञविधिचोदितम् ।

तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥

जमुकामः पवित्राणि वाऽर्चिष्यन्देवताः पितॄन् ।
 स्नानं समाचरेद्यस्तु क्रियाङ्गं तत्प्रकीर्तितम् ॥
 मलापकर्षणं नाम स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ।
 मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥
 सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ।
 क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र मनाविक्रया ॥ इति ।

चण्डालादिस्पर्शानिमित्ते स्नाने विशेषमाह तत्रैव याज्ञवल्क्यः—
 तूष्णीमेवावगाहेत यदा स्यादशुचिर्नरः ।
 आचम्य प्रयतः पश्चात्स्नानं विधिवदाचरेत् ॥ इति ।

धर्मप्रश्नेऽपि—शुनोपहतः सचैलोऽवगाहेत । इति ।

शुनोपहतः स्पृष्टः । यद्यपि चैलं न शुना स्पृष्टं तथाऽपि सचैलोऽवगा-
 हेत भूमिगतास्वप्सु स्नायान्नोद्धृताभिरित्युज्ज्वला । पुनश्च तत्रैव—

प्रक्षाल्य वा तं देशमग्निना संस्पृश्य पुनः प्रक्षाल्य चाऽऽचम्य प्रयतो
 भवति । इति । शुना स्पृष्टं देशं प्रक्षाल्याग्निना संस्पृश्य पुनः प्रक्षाल्य
 पादौ च प्रक्षाल्य पश्चादाचम्य प्रयतो भवति । व्यवस्थितविकल्पोऽम् ।

ऊर्ध्वं नाभेः करौ मुक्त्वा यदङ्गमुपहन्यते ।

तत्र स्नानविधिः प्रोक्तो ह्यधः प्रक्षालनं स्मृतम् ॥

इति मानवे दर्शनादित्युज्ज्वला । पुनस्तत्रैव—

चण्डालस्पर्शने भाषायां दर्शने च दोषस्तत्र प्रायश्चित्तमवगाहनम-
 पामुपस्पर्शने संभाषायां ब्राह्मणसंभाषादर्शने ज्योतिषां दर्शनमिति ।
 उपस्पर्शने सत्यवगाहनं प्रायश्चित्तम् । ऋजुनी उत्तरे इत्युज्ज्वला । माध-
 वीथे गार्ग्यस्तु नैमित्तिकादिस्नानं शीतोदकेनैवेत्याह—

कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताद्भिः काम्यमेव च । इति ।

स एव नित्ये यदृच्छामाह—

नित्यं यादृच्छिकं चैव यथारुचि समाचरेत् । इति ।

एवं पुत्रजन्मनिमित्तकं स्नानमप्युक्तं संस्कारकौस्तुभे सप्रपञ्चम्—
 अथ पुत्रजन्मनि कर्तव्यम् । वसिष्ठः—

जातमात्रकुमारस्य मुखमस्यावलोकयेत् ।

पिता ऋणाद्विमुच्येत पुत्रस्य मुखदर्शनात् ॥ इति ।

ज्योतिर्वसिष्ठः—श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत् ।

उत्तराभिमुखो भूत्वा नद्यां वा देवखातके ॥ इति ।

अत्रासंनिधौ श्रवणानन्तरं स्नानम् । संनिधौ मूलाद्यजातस्य मुखदर्शनानन्तरं स्नानमिति बोध्यम् । पूर्ववाक्ये मात्रपदेन जन्मानन्तरमुखावलोकने व्यवधाननिषेधात् । एतच्च रात्रावपि कार्यम् ।

नैमित्तिकं च कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु ।

पुत्रजन्मनि यात्रायां शर्वर्यां दत्तमक्षयम् ॥

इति व्यासोक्तेः । रात्रौ नद्यादिगमनाशक्तं प्रत्याह सांख्यायनः—

दिवा यदाहृतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत् ।

रात्रिस्नाने तु संप्राप्ते कुर्यादनलसंनिधौ ॥ इति ।

अशौचान्तरमध्ये पुत्रजन्मनिमित्तके स्नानादावस्त्येवाधिकारः ।

सूतके तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् ।

कर्तुंस्तात्कालिकी शुद्धिः । इति प्रजापतिवचनात् ।

पुत्रजन्मनिमित्तशुद्धेरप्यवधिं जैमिनिराह—

यावन्न च्छिद्यते नालं तावन्नाऽऽप्नोति सूतकम् ।

छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ॥ इति ।

एवं ग्रहणादिस्नानमपि नैमित्तिकमेव । तदपि रात्रावपि प्राप्तं चेत्कर्तव्यमेव । तदुक्तं भद्रोजीदीक्षिते त्रिस्थलीसेतौ—तदाह वृद्धयाज्ञवल्क्यः—

ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्रार्तिप्रसवेषु च ।

स्नानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते ॥

एतच्चाऽऽद्यान्त्यप्रहरद्वयविषयम् ।

महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम् ।

प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत्स्नानमाचरेत् ॥

इति पराशरोक्तेरिति केचित् । इति । एवं परार्थं स्नानविधिरपि तत्रैव । परार्थस्नाने विशेषो मार्कण्डेयपुराणे—

मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम् ।

यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टमांशं लभेत सः ॥

स्मृतिदर्पणे तु दशमांशं लभेत स इति पाठः । पैठीनसिः—

प्रतिकृतिं कुशमयीं तीर्थवारिणि मज्जयेत् ।

मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोऽष्टभागं फलं लभेत् ॥

तत्र मन्त्रः—कुशोऽसि कुशपुत्रोऽसि ब्रह्मणा निर्मितः स्वयम् ।

त्वयि स्नाते स च स्नातो यस्येदं ग्रन्थिबन्धनम् ॥ इति ।

कुशप्रतिकृतिः कुशप्रतिमैव कार्येत्येके । ग्रन्थिबन्धनमितिमन्त्रलिङ्गा-
त्तन्नाम्ना ग्रन्थिबन्धनमात्रं प्रतिकृतिरिति अपरे । इदं परार्थस्नानं प्रति-
कृतिस्थापनं च जीवतामेवोद्देशेन कार्यम् । मृतानां तु तर्पणश्राद्धादि-
फलभोक्तृत्वमेवेत्याहुरिति । प्रयोगपारिजाते त्वन्यथैवोक्तम् । तद्यथा—
जीवन्मातृपित्रादीनुद्दिश्य स्नानकरणपक्षे तत्तन्नाम गृहीत्वा संक-
ल्प्य पूर्वोक्तनित्यकाम्यस्नानविध्योरन्यतरविधिना स्नायात् । मृतमुद्दिश्य
स्नानकरणपक्षे कुशग्रन्थि कृत्वा तत्र तत्स्वरूपं ध्यात्वा कुशोऽसि त्वं
पवित्रोऽसि० धनमिति मन्त्रेण तद्ग्रन्थि मज्जयित्वा ग्रन्थि विसृजेदिति ।
नच परस्परविरोधः । आहुरित्यनेन दीक्षितैः केचिन्मतस्यैव सूचनेनो-
क्तपारिजातमतस्यैवेष्टत्वेन ध्वनितत्वादिति दिक् ।

अथ काम्यस्नानम् । तत्र पुलस्त्यः—

पुष्ये च जन्मनक्षत्रे व्यतीपाते च वैधृतौ ।
अमावास्यां नदीस्नानं पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥ इति ।
शिवलिङ्गसमीपे तु यत्तोयं पुरतः स्थितम् ।
शिवगङ्गेति विज्ञेयं तत्र स्नात्वा दिवं व्रजेत् ॥ इति ।

यमोऽपि—कार्तिक्यां पुष्करे स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
माघ्यां स्नातः प्रयागे तु मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां हस्तसंयुते ।
दशजन्माघहा गङ्गा तेन पापहरा स्मृता ॥ इति ।

विष्णुः—सूर्यग्रहणतुल्या तु शुक्ला माघस्य सप्तमी ।

अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् ॥

इत्यादिविस्तरस्तत्रैव बोध्यः । भट्टोजिदीक्षिताह्निके पारिजाते—
अश्वत्थीयोदके स्नायाद्भ्रजच्छायेति सोच्यते ।
अमागुरुसमायोगः सूर्यपर्वशताधिकः ॥ इति ।

समुद्रस्नानं तत्रैव चतुर्विंशतिमते—

समुद्रे पर्वसु स्नायाद्भायां तु विशेषतः ।

पापैर्धिमुच्यते सर्वैरमान्ते स्नानमाचरन् ॥

भृगौ भौमदिने स्नानं समुद्रे च धिवर्जयेत् ।

ग्रहणे रविवारे च पुत्रेप्सुर्नैतदाचरेत् ॥ इति ।

सेतौ तु तन्माहात्म्ये—

न कालनियमः सेतौ समुद्रस्नानकर्मणि ।

सदा सर्वाघहा सेतुर्ग्रहणादिषु किं पुनः ॥ इति ।

माधवीये क्रियाङ्गं स्नानं तु नित्यवदनुष्ठेयम् । तत्तु प्रातः शुक्लतिलैः
स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृपेत्यादि द्रष्टव्यमित्युक्तम् । मलापकर्षणमपि
तत्रैव वामनपुराणे—

नाभ्यङ्गमर्के न च भूमिपुत्रे क्षौरं च शुके च कुजे च मांसम् ।

बुधे च योषित्परिवर्जनीया शेषेषु सर्वेषु सदैव कुर्यात् ॥ इति ।

वृद्धगार्ग्यः—रविस्तापं कान्तिं वितरति शशी भूमितनयो

मृत्तिं लक्ष्मीं चान्द्रिः सुरपतिगुरुर्वित्तहरणम् ।

विपत्तिं दैत्यानां गुरुरखिलभोगानुभवनं

नृणां तैलाभ्यङ्गात्सपदि कुरुते सूर्यतनयः ॥ इति ।

तिथिविषये तूक्तं माधवीये तत्तत्तिथिनिषेधवाक्यान्युक्त्वा, एवं सर्वा-
स्वपि तिथिष्वभ्यङ्गस्य निषेधे प्राप्ते तैलविशेषेणाभ्यनुजानाति प्रचेताः—

सार्धपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् ।

अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥ इति ।

गन्धतैलमत्तरेति भाषामूलीभूतमन्तर्भवत्वेनान्तराख्यं ज्ञेयम् ।

यमोऽपि—घृतं च सार्धपं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम् ।

न दोषः पक्वतैलेषु स्नानाभ्यङ्गेषु नित्यशः ॥ इति ।

एतेन स्त्रीणामप्यभ्यङ्गो व्याख्यातः । यतस्तासां प्रायेण बुधशन्योरेव
पक्वतैलेनैव तदाचारः । सोमवासरस्तु यद्यपि कान्तिदत्त्वेन विहितस्त-
थाऽपि नात्र तासामपि शिष्टानां बहुधा तथाऽऽचारः किं पुनः पुंसाम् ।
मुहूर्तमार्तण्डे तु निषेधान्तरमप्युक्तम्—

भद्रासंक्रमपातवैधृतिसितेज्याकार्ष्ण्यादिषु

श्राद्धाहे प्रतिपद्द्वये परिहरेद्धेतुं विनाऽभ्यञ्जनम् । इति ।

संक्रमः संक्रान्तिः । पातो व्यतीपातः । सितेति । शुक्रगुरुरविभौम-
वाराः । आदिना सप्तम्यादिपर्वान्तास्तिथयः । प्रतिपद्द्वयं प्रतिपद्द्वितीया
च । शिष्टं तु स्पष्टमेव । हेतुं विनेत्युक्ते के तद्धेतव इत्याकाङ्क्षाया-
माह तत्रैवोत्तरार्धेन—

माङ्गल्यं विजयोत्सवोऽब्दवदनं दीपावलिर्हेतवोऽ-

भ्यङ्गस्य क्थितादितैलमनसन्निध्योऽह्नि नित्येऽखिलम् ॥ इति ।

माङ्गल्यं विवाहादि । विजयोत्सव आश्विनशुक्लदशम्यां क्रियते ।
अब्देति । संवत्सरप्रतिपत् । तथाचोक्तं व्यवहारसारे—

वत्सरादौ वसन्तादौ सूतकान्ते महोत्सवे ।
दीपोत्सवचतुर्दश्यामभ्यङ्गो नियमेन च ॥ इति ।

विजयदशमीं प्रकृत्य स्कान्दे—

निषिद्धमपि कर्तव्यं तैलाभ्यञ्जनमादरात् ॥ इति ।

निन्द्येऽह्नि कथितादितैलमनसच्छुभं स्यात् । आदिर्पदोक्तं त्वधस्ता-
देव प्रपञ्चितम् । एतद्दीकायामुक्तं रविवारादौ तैले पुष्पदूर्वादिक्षेपणे-
नाप्यपवादनम्—

रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वां भौमवारे च मृत्तिकाम् ।
भार्गवे गोमयं क्षिप्त्वा तैले स्नानं समाचरेत् ॥ इति ।

नित्याभ्यङ्गे बालादीनां कर्तव्ये विशेषमाह—नित्येऽखिलमिति ।
अखिलं पक्वापक्वादि सर्वं तैलमनसच्छुभं भवतीति संबन्धः । तदप्युक्त-
मेतद्दीकायामेव—

नित्यस्नाने च कर्तव्ये तिथिदोषो न विद्यते । इति ।

अभ्यङ्गत्वमार्थिकम् । तिथिपदं वाराद्युपलक्षकम् । अथ प्रसङ्गात्ति-
लामलकस्नाने तिथ्यादिनिषेधाद्यपि तत्रैवाऽऽह—

दि १० ग्विश्वा १३ द्वि ७ दृ २ गङ्क ९ दर्श ३० तिथिषु स्नानं न धात्रीफलैः

श्रीकामोऽथ बुधाम्बुपर्क्षपितृभाभ्यङ्गात्पतिघ्न्यङ्गना ।

पुत्री सोमदिने प्रसूर्यमपितृत्वाष्ट्रेन्द्रमिश्राम्बुप-

क्रव्यादेश्वरभे कुपुत्रहरिजे स्नायान्निशास्येऽपि न ॥ इति ।

अम्बुपर्क्षं शततारका । पितृभं मघा । बुधवारादित्रयं रूयभ्यङ्गनिषे-
धकमित्यर्थः । प्रसूः प्रसूतिका । यमो भरणी । पितरो मघा । त्वाष्ट्रं
चित्रा । इन्द्रो ज्येष्ठा । मिश्रे कृत्तिकाविशाखे । अम्बुपः शततारा ।
क्रव्यादो मूलम् । ईश्वरभमार्द्रा । कुपुत्रेति, हरिजं लग्नम् । यस्माल्लग्न-
त्पञ्चमस्थाने पापग्रहस्तत्रेत्यर्थः । निशास्यं रात्रिमुखम् । इदं सायाह्ना-
द्युपलक्षणम् । विस्तरस्त्वेतद्दीकायामेव ज्ञेय इति ।

अथ क्रियास्नानं तत्र माधवीये शङ्कः—

क्रियास्नानं प्रवक्ष्यामि यथावद्विधिपूर्वकम् ।
 मृद्धिरद्धिश्च कर्तव्यं शौचमादौ यथाविधि ॥
 जले निमग्नस्तून्मृज्य चोपस्पृश्य यथाविधि ।
 तीर्थमावाहनं कुर्यात्तत्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥
 प्रपद्ये वरुणं देवमम्भसां पतिमूर्जितम् ।
 याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥
 तीर्थमावाहयिष्यामि सर्वाघविनिषूदनम् ।

सांनिध्यमस्मिंश्चित्तोये स्थीयतां मदनुग्रहात् ॥ इति विज्ञेयम् ।
 एवमेव शिष्टैर्नित्यं प्रातरादौ क्रियते । एवं प्रागुदाहृतशङ्खोक्तगौणमुख्य-
 स्नानद्वयमध्ये मुख्यं तत्षोढा प्रपञ्चितम् । संप्रति गौणस्यावसरे तत्प्रप-
 ञ्चितं भट्टोजीदीक्षितैः—वृद्धमनुः—

असामर्थ्याच्छरीरस्य कालशक्त्याद्यपेक्षया ।
 मन्त्रस्नानादिकं प्रोक्तं मुनिभिः शौनकादिभिः ॥ इति ।
 आपो हि ष्ठादिभिर्मन्त्रं सृदालम्भस्तु पार्थिवम् ।
 आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥
 यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्विव्यमुच्यते ।
 अवगाहो वारुणं स्यान्मानसं हृदि चिन्तनम् ॥ इति ।

तद्वत्कापिलाद्यपि तत्रैव—

अशक्तावशिरस्कं यत्स्नानमन्त्रविधानतः ।

आर्द्रेण वाससा चाङ्गमार्जनं कापिलं स्मृतम् ॥

अथ सारस्वतम्—*विद्वत्सरस्वतीप्राप्तं स्नानं सारस्वतं विदुः ।

अथ गायत्रम्—गायत्र्या जलमादाय दशकृत्वोऽभिमन्त्र्य च ।

शिरश्चाङ्गानि सर्वाणि प्रोक्षयेत्तेन वारिणा ॥

स्नानं गायत्रकं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ।

अन्यच्च—अशक्तानां च जन्तूनां गुरोः पादोदकं शुभमिति तत्रैवोक्तत्वा-
 त्प्राग्वत्प्रोक्षणमपि तथा । अपरमपि तत्रैव—

विप्रपादाद्विष्णुपादात्तुलस्याः संभृतं जलम् ।

प्रोक्षणाच्छुद्धिमाप्नोति ध्यानस्नानं विशिष्यते ॥

चतुर्भुजं महाकायं शङ्खचक्रगदाधरम् ।

ध्यायीत मनसा विष्णुं मानसं स्नानमुच्यते ॥

एतैरधिकारोऽपि तत्रैवोक्तः—

* क. पुस्तके समासे—त्वं ज्ञात एवासीति ब्रह्मावेद्वाणीतः प्राप्तमित्यर्थः ।

प्रातः स्नातुमशक्तस्य रोगाद्यैर्वा भयाच्च वा ।
पूर्ववस्त्रं परित्यज्य गौणस्नानेन शुध्यति ॥
स च कर्मस्वनर्हः स्याच्छ्राद्धदेवार्चनादिषु ।
जपेत्संध्यां तथा वेदान्सोऽधीयीत यथाविधि ॥ इति ।

इत्योकोपाह्वासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यध्वकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे स्नानभेदप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ चतुर्थभागानेयत्वेन प्रागुक्तमध्याह्नस्नानार्थं मृद आहरणोत्तरं
मध्याह्नस्नान एव कथनीये मध्ये प्रसङ्गागतक्षौरादिनिरूपणोत्तरं पुनरव-
सरसंगत्या प्राप्तं मध्याह्नस्नानं कथ्यते । तस्य च नित्यतामाह व्याघ्रपादः—

प्रातःस्नायी भवेन्नित्यं मध्यस्नायी भवेदिति ।

आश्रमभेदेन व्यवस्थामाह भट्टोजिदीक्षिताह्निके दक्षः—

प्रातर्मध्याह्नयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः ।

यतोस्त्रिषवणं प्रोक्तं सकृद्वै ब्रह्मचारिणः ॥ इति ।

विहरणाङ्गं तु गृहस्थस्यापि सायं स्नानं भवति । अभिषिक्तश्च जुहु-
यादिति धर्मेषु स्मरणात् । अभिषिक्तः स्नात इति व्याख्या । न चात्र
सशिरा(रो)वमज्जनं चाप्सु वर्जयेदस्तमिते च स्नानमिति पूर्वसूत्रनिषेधः
प्राप्नोति । तस्य समावृतधर्मप्रकरणे पाठात् । माधवीये कूर्मपुराणे—

ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।

पुष्पाक्षतान्कुशतिलान्गोमयं शुद्धमेव च ॥

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च ।

स्नानं समाचरोन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ॥

परकीयनिखातेषु न स्नायाद्वै कथंचन ।

पञ्च पिण्डान्समुद्धृत्य स्नायाद्वाऽसंभवे पुनः ॥ इति ।

पुष्पाक्षतास्तर्पणान्ते सूर्यपूजार्थम् । तिलास्तर्पणार्थम् । मृत्कुशगो-
मयानि स्नानार्थमित्यर्थः । तत्रैवाधिकार्यनधिकारिणौ व्यासो विभजते—

स्नानं मध्यंदिने कुर्यात्सुजीर्णोऽन्ने निरामयः ।

न भुक्त्वाऽलंकृतो रोगी नाज्ञातेऽम्भासि नाऽऽकुले ॥ इति ।

निषिद्धं गोमयमुक्तमाचाररत्ने भविष्ये—

नात्यर्थं जीर्णदेहाया वन्ध्यायाश्च विशेषतः ।

रोगार्तनवसूताया न गोगोमयमुद्धरेत् ॥ इति ।

मृत्तिकादिस्नानं माधवीये—

ततः संमार्जनं कुर्यान्मृदा पूर्वं तु मन्त्रवत् ।

अश्वक्रान्त इत्यादयो मृद्ग्रहणमन्त्रा यजुर्वेदे प्रसिद्धाः ।

पुनश्च गोमयेनैवमग्रमग्रमिति ब्रुवन् ।

अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां वने वने ॥

तासामृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम् ।

त्वं मे रोगांश्च शोकांश्च पापं च नुद् गोमय ॥ इति गोमयमन्त्रः ।

काण्डात्काण्डादिति द्वाभ्यामङ्गमङ्गमिति स्पृशेत् ।

दूर्वयेति शेष इति । आचाररत्ने बोधायनः—

अथ हस्तौ प्रक्षाल्य कमण्डलुं मृत्पिण्डं च परिगृह्य तीर्थं गत्वा त्रिः
पादौ क्षालयेच्चिरात्मानमथापोऽभिप्रपद्यते हिरण्यशृङ्गं वरुणमित्यथा-
ञ्जलिनोपहन्ति सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्त्विति तां दिशं निरी-
क्षति यस्यामस्य द्वेष्यो भवति दुर्मित्र्यास्तस्मै स्युरित्यप उपस्पृश्य त्रिः
प्रदक्षिणमुर्देकमावर्तयति यदपां क्रूरं यदमेध्यं यदशान्तं तदपगच्छतांदि-
त्यप्सु निमज्ज्योन्मज्ज्याऽऽचान्तः पुनराचामेत् । आपो वा इदं सर्वं
विश्वा भूतान्यापः प्राणा वा आपः पुनन्तु पृथिवीमिति पवित्रे कृत्वा
द्विमार्जयन्त्यापो हि षेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णा इति चतसृभिः पव-
मानः सुवर्जन इत्यनुवाकेन चान्तर्जलगतोऽघमर्षणेन त्रीन्प्राणायामा-
न्कृत्वोत्तीर्य यासो निष्पीड्य क्षालितोरुरहतानि वासांसि परि-
धाय । इति ।

उपहन्ति गृह्णाति । गृह्यप्रश्ने तु द्विरितिपदानुपादानात्सकृदेवाऽऽपो
हि षेत्यादिभिर्मार्जनम् । अत्र महेशभट्टादिभिरादृतत्वात्पूर्वं भस्मस्ना-
नमप्यूह्यम् । प्रयोगस्तु संस्काररत्नमालायामुत्सर्जनप्रकरणे द्रष्टव्यः ।
वस्तुतस्त्वेतन्नित्ये मध्याह्नस्नाने भस्मगोमयमृत्तिकादिगुणविधानं गोदो-
हनादिवत्काम्यमेव । न च

चतुर्थे तु तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् । इति ।

ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।

इति च दक्षकूर्मवचनयोः फलाश्रवणेनास्य नित्यत्वमिति वाच्यम् ।
तस्य समुदाहृतबोधायनसूत्रकथिततत्सूत्रिकर्तव्यनित्यस्नानपरत्वेन हिर-
ण्यकेशिकर्तव्यनित्यमध्याह्नस्नानीयस्वगुणविधानाघटकत्वात्स्वसूत्रानुक्त-
त्वादविरोधिपारक्यग्रहेऽतिप्रसङ्गादश्वक्रान्त इत्यादिस्वशाखोक्तमृद्ग्र-

हणादिमन्त्रेषु कण्ठत एव रक्षस्व मां पदे पद इति मृत्तिके हन मे पाप-
मित्यादि च स्फुटमेव फलकथनेन तन्मे रोगानित्यादिना गोमयमन्त्रे च
तथात्वेन काम्यत्वाच्च । अत एवोत्सर्जनेऽपि महेशभट्टादयो भस्मगोमय-
मृत्तिकास्नानसंकल्प आचारप्राप्तमिति वदन्ति । न केवलं दक्षस्मृत्या-
दिवाक्यानां बोधायनीयपरत्वेनैव सावकाशत्वमपि तूपलक्षणविधयाऽऽ-
श्वलायनादीनां येषां येषां सूत्रे मध्याह्नस्नाने मृत्तिकाद्युक्तं तत्परत्वमपि ।
सत्याषाढीयानामस्माकं तु प्रातःस्नानप्रकरणसमुदाहृतस्वसूत्र एव
यावानुक्तः स्नानविधिस्तावानेव मध्याह्नस्नानेऽपीदः शिष्टाचारोऽपि
तादृश एव संकल्पः परं भिन्न इत्यलं पल्लवितेन ।

इत्योकोपाह्नवासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे मध्याह्नस्नानप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ मध्याह्नसंध्या । एवं निरुक्तस्नानानन्तरं प्रागुक्तरीत्या स्नाना-
शक्तौ मन्त्रादिस्नानान्तरं पूर्वोपपादितविधिना भस्मत्रिपुण्ड्रादिधारणं
कृत्वा मध्याह्नसंध्या कार्या । [*ननु संध्यायामर्ध्यमात्रप्रधानत्वस्य प्रातः-
संध्योपोद्घाते त्वयैवोक्तत्वात्तस्य च सह वैप्रश्नप्रसिद्धोद्घास्तकालिक-
सूर्ययुद्धकारिराक्षसनिरासमात्रप्रयोजकत्वात्प्रकृते च तदभावात्स्वसू-
त्रेऽपि संध्ययोश्चेति द्विवचनस्यैव प्रयुक्तत्वाच्च किं प्रमाणं मध्याह्नसंध्याया-
मिति चेन्न । अहरहः संध्यामुपासीतेति श्रौततन्नित्यविधावेकवचनस्यैव
प्रयुक्तत्वात्सायंसंध्यायामपि प्रमाणपश्चे तत्रोक्तार्थवादसूत्रयोः प्रमाण-
त्वेऽपि प्रकृत आपः पुनन्वित्यादिमन्त्रस्य तथा संध्यात्रयं तु कर्तव्यं
द्विजेऽऽनात्मविदा सदेति प्रागुक्तस्मृतेश्च प्रमाणत्वात् । न चोक्तमन्त्रस्य
पापनिरासार्थमप्रार्थनार्थकत्वेन प्रकृताप्रयोजकत्वमिति वाच्यम् । तद-
ग्रपठितयोरग्निश्चेत्यादिमन्त्रयोरपि तथात्वेन संध्यात्रयस्यापि उद्यन्त-
मित्यादिश्रुत्या राक्षसनिरासार्थवादेन च काम्यत्वप्रसङ्गे संयोगपृथक्त्व-
न्यायेन पूर्वमेव समाहितत्वात्प्रत्युत प्रथमपठितत्वेनोपनयनोत्तरं मध्याह्न-
संध्याया एवावसरप्राप्तत्वेन प्रथमारम्भे सैव मुख्येति ध्येयम् ।] तन्मु-
ख्यकालस्तु प्रसिद्ध एव । गौणकालमप्याह माधवीये दक्षः—

अध्यर्धयामादासायं संध्या माध्याह्निकी स्मृता ।

सा चाल्पद्वादश्यादावपकर्षणेत्याह गोवर्धनाह्निके हेमाद्रिः—

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः ख. पुस्तके नास्ति ।

यदा भवति चेदल्पा द्वादशी ह्यरुणोदये ।

उषःकाले द्वयं कार्यं प्रातर्म(र्मा)ध्याह्निकं तदा ॥ इति ।

एवं धनुर्मासेऽपि । तदुक्तं व्रतराजार्के संक्रान्तिप्रकरणे पुराणान्तरे—

धनुस्थे तु रवौ प्राप्ते स्नायादप्यरुणोदये ।

सर्वं च नित्यं संपाद्य मुहूर्तं न गतो रविः ॥

कृसरान्नेन विप्रान्वै भोजयेद्घृतपायसैः ।

संतोष्य दक्षिणोर्णाभिः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥

एवं निरन्तरं कुर्यादशक्तो भानुवासरे ।

इह भुक्त्वा तु भोगान्वै सत्यलोकं च गच्छति ॥ इति ।

एतेनैवास्य काम्यत्वं सिद्धम् । समुदाहृतद्वादशीवाक्ये तु फलानुक्ते-
नित्यत्वमिति विभागः । मध्याह्नसंध्याविधिस्तु प्रागुक्तसंध्यात्रयविधाय-
कवाक्यैरेव सिद्धः । उपनयनोत्तरप्रातःकालत्वेन तत एव प्रथमं संध्योपा-
सनारम्भात् । इतिकर्तव्यताविशेषं त्वनुपदमेव प्रयोगे वक्ष्यामः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे मध्याह्नसंध्या ।

अथ मध्याह्नसंध्याप्रयोगः । तत्र कर्ता प्राग्वदाचमनादि प्राणायामान्तं
विधाय श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं मध्याह्नसंध्योपास्तिं करिष्य इति संक-
ल्प्याऽऽपो हि ष्टेत्यादितिसृभिर्माज्जनं विधाय, आपः पुनन्तु पृथिवीं०
ग्रहं स्वाहेत्यभिमन्त्रितमुदकं पीत्वाऽऽचम्याऽऽपो हि ष्टेत्यादि प्रातःसंध्या-
वदेव गायत्रीजपान्तं कृत्वाऽथाऽऽदित्यमुपतिष्ठेतोद्वयं तमसस्पर्युदुत्यं चित्रं
तच्चक्षुर्देवहितं य उदगादितीति प्रागुक्तबोधायनसूत्ररीत्योपस्थायोत्तमे
शिखर इत्यादिना गायत्र्युद्रासनमन्तश्चरतीत्यादिना प्राग्वदेव ब्रह्मो-
पस्थानं च कृत्वा घृणिः सूर्य आदि०रोमित्यादित्योपलक्षिताद्वैतब्रह्मा-
त्मैक्यानुसंधानप्रतिपादकमन्त्रपठनपूर्वकं तदनुसंधानं विधायाभिवाद्-
नादि विनैवाऽऽचमनादि विष्णुस्मरणान्तं कुर्यादिति । अत्रापि गायत्री
सर्वत्रानवानपाठेनैव प्राणायामं व्युद्स्य पठनीया । तत्र तु नारायणीय-
पाठत एवानुसंधेया । सर्वत्र नारायणीयपाठस्य शिष्टाचाराद्यनुसारेणा-
ङ्गीकारे पूर्वोदाहृतमातृदत्ताचार्यवचोबाधापत्तेः । तैस्तु हिरण्यकेशीयानां
याजुषत्वात्तस्य यजुरेव शिर इति तस्यैव मुख्यत्वाच्च गायत्र्या ऋक्त्वं
विहाय तृतीयेनानवानाख्येन संततपाठेन यजुश्चेनैव मुख्य उपदेश इष्ट

इति सूत्रकृदाशयस्तेन संध्योपासनादिषु तृतीय एव पाठो ग्राह्य इति चदद्भिरथशब्दस्य सौत्रस्य पूर्वग्रन्थे प्राधान्यार्थत्वख्यापनेन सूचित इति तत्त्वम् ।

इत्योकोपाह्नवासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे मध्याह्नसंध्याप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ मध्याह्नसंध्योक्तमन्त्रविशेषभाष्यं वैद्यारण्यकमेव संगृह्यते । माध्याह्निकसंध्यानुष्ठानेऽभिमन्त्रितजलपानार्थं मन्त्रमाह—

आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् ।

पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म पूता पुनातु माम् ॥

यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम ।

सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रह* स्वाहा ॥ इति ।

या आपः सन्ति ताः पृथिवीं पुनन्तु प्रक्षालनेन शोधयन्तु । सा च पृथिवी पूता शुद्धा सती मामनुष्ठातारं पुनातु शोधयतु । तथा ब्रह्मणो वेदस्य पतिः पतिं पालकमाचार्यमेता आपः पुनन्तु । तेनाऽऽचार्येणोप-दिष्टं ब्रह्म वेदस्वरूपं पूता स्वयं पूतं सन्मां पुनातु । अन्यभुक्तावशिष्ट-रूपमुच्छिष्टं यदस्ति तच्चाभोज्यं भोक्तुमयोग्यं तादृशं कदाचिन्मया भुक्तं यद्वा दुश्चरितमन्यदपि प्रतिषिद्धाचरणरूपं मम किञ्चित्संपन्नं तत्सर्वं, परिहृत्येति शेषः । ततो मामापः पुनन्तु । तथाऽसतां शूद्रादीनां प्रतिग्रहं च मया कृतं पुनन्तु । तदर्थमिदमभिमन्त्रितमुदकं स्वाहा मदी-यवक्त्राग्नौ स्वाहुतमस्तु । इति नारायणीये त्रयोविंशोऽनुवाकः ।

उद्वयं तमसस्परि पश्यन्तो ज्योतिरुत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ इति ।

वयं तमस उत्तरं ज्योतिस्तमसो विनाशकत्वेनोत्कृष्टं सूर्यसंबद्धं ज्योति-रुत्परिपश्यन्त उत्कर्षेण सर्वतोऽवलोकयन्तो देवत्रा देवेषु मध्ये सूर्यं देवमुत्तमं ज्योतीरूपमगन्म प्राप्ताः स्म(स्मः) ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ इति ।

केतवो रश्मयः । त्यं जातवेदसं तमग्निसदृशं सूर्यं देवमुद्वहन्ति ऊर्ध्व-देश एव प्रापयन्ति । किमर्थं विश्वाय कृत्स्नस्य जगतः सूर्यं दृशे द्रष्टुम् । अथ द्वितीया—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष* सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ इति ।

चित्रं रक्तश्वेतादिविविधवर्णं देवानां रश्मीनामनीकं सैन्यसदृशं मण्डलमुदगादुदयं गच्छति । कीदृशं मित्रादिदेवोपलक्षितस्य कृत्स्नस्य प्राणिजातस्येन्द्रियाधिष्ठातृत्वाच्चक्षुस्थानीयम् । तन्मण्डलस्थसूर्यो जगतो जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्याऽऽत्मा सल्लोकत्रयमाप्राः पूरितवान् ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं नन्दाम शरदः शतं मोदाम शरदः शतं भवाम शरदः शतं शृण्वाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमजीताः स्याम शरदः शतं ज्योक् च सूर्यं वृशे । इति ।

पुरस्तात्पूर्वस्यां दिशि उच्चरदुदयं गच्छत् । शुक्रं ज्योतिस्स्वरूपम् । देवहितं सर्वेभ्यो देवेभ्यो हितकारि । चक्षुर्दृष्टेरनुग्राहकम् । तदादित्यमण्डलं शरदः शतं शतसंख्याकान्संवत्सरान्सर्वदा पश्येम तत्प्रसादाज्जीवनादिव्यापारांश्च प्राप्नुयाम । नन्दाम द्रव्यैः समृद्धा भूयास्म । मोदाम तद्भोगेन हृष्याम । भवाम स्वस्थाने निवसाम । शृण्वाम वेदशास्त्ररहस्यं गुरुमुखादवगच्छेम । प्रब्रवाम शिष्येभ्यः प्रकर्षेण कथयाम । अजीताः शत्रुणा केनाप्यजिताः किं च ज्योर्दीर्घं कालं सूर्यं वृशे द्रष्टुं समर्था भूयास्म । अथ द्वात्रिंशं मन्त्रमाह—य उदगान्महतोऽर्णवाद्दिभ्राजमानः सरिरस्य मध्यात्समावृषभो लोहिताक्षः सूर्यो विपश्चिन्मनसा पुनातु । इति । यः सूर्यो महतः प्रौढादर्णवात्पूर्वसमुद्रात्तत्रापि विशेषतः सरिरस्य जलस्य मध्याद्दिभ्राजमानो विशेषेण दीप्यमान उदगादुदयं गच्छति स सूर्यो मनसा मां पुनातु शोधयतु । कीदृशः सूर्यो वृषभः कामानां वर्षयिता लोहिताक्षो रक्तवर्णाक्षियुक्तो विपश्चित्सर्वज्ञ इति ।

घृणिः सूर्य आदित्यो न प्रभा वात्यक्षरम् । मधु क्षरन्ति तद्रसम् । सत्यं वै तद्रसमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् ।

उपासनायामसमर्थस्याऽऽदित्यदेवताविषयं जप्यं मन्त्रमाह—

घृणिः सूर्य आदित्यो तमर्चयन्ति तपः सत्यं मधु क्षरन्ति तद्ब्रह्म तदाप आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् । इति ।

घृणिर्दीप्तिमान्सूर्य एतन्नामक आदित्योऽदितिदेवतायाः पुत्रः । ओं तादृशोऽहमस्मि । ईदृशमादित्यं फलार्थिनः सर्वेऽप्यर्चयन्ति । तथा

तमादित्यमुद्दिश्य तपश्चरन्तीति शेषः । सत्यमनृतवर्जनमनुतिष्ठन्तीति शेषः । मधु क्षरन्ति मधुरं क्षीरादिकं नैवेद्यरूपेण समर्पयन्ति तदादित्यरूपं ब्रह्म वेदात्मकं परब्रह्म वा तथा तदादित्यरूपमापो जलरूपं वृष्टिनिष्पादकत्वात्तथा । समुद्रगता या आपः, यच्चाग्न्यादिकं ज्योतिर्योऽपि मधुरादिरसो यच्च देवैः पातव्यममृतं यदपि ब्रह्म मन्त्रजातं येऽपि भूर्भुवः स्वस्त्रयो लोकास्तत्सर्वमोमादित्यरूपं भवतीत्यर्थः । इति नारायणीये पञ्चदशोऽनुवाकः । इदं ह्येतन्मन्त्रस्य द्रविडपाठीयं भाष्यम् । आन्ध्रपाठे स्वकीये तदमावान्मयैव व्याख्यायते । घृ० त्यो न प्रभा वात्यक्षरम् । मधु क्षरन्ति तद्रसम् । सत्यं वै तद्रसमा०रोम् । इति । उक्तादित्यरूपमक्षरं ब्रह्म प्रभा धीवृत्तीर्न वाति साक्षित्वान्नानुगच्छति । अतो ज्ञानिनो वै निश्चितम् । सत्यमबाधितं तद्रसं ब्रह्मसुखं मधुवत्तद्रसं तस्योक्तादित्योपलक्षितसाक्षिणो रस आनन्दो यथा स्यात्तथा क्षरन्त्यास्वादयन्तीत्यर्थः । शिष्टं प्राग्वत् ।

इत्योकोपाह्नवासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुञ्ज्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढहिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे मध्याह्नसंध्यामन्त्रभाष्यं संपूर्णम् ।

अथ तर्पणम् । तत्प्रातरकृतब्रह्मयज्ञश्चेत्तं कृत्वैव कार्यमन्यथा तु प्राप्तकालत्वात्प्रतिबन्धाभावाच्च केवलमेव कार्यम् । तदुक्तं गृह्यप्रभे-
नित्यमेवं स्नात्वाऽद्भिर्देवानृषीन्पितृंश्च तर्पयन्ति तर्पयन्ति । इति । नित्यमे-
षाद्भिर्ब्रह्मयज्ञादनन्तरमेतानेव देवानृषीन्पितृंश्चोदके तर्पयन्ति । एक-
वेद्यन्तानामप्यृषित्वाहृषिषु देवेषु वाऽन्तर्भावादप्स्वेव तर्पणम् । द्विरा-
वृत्तिः प्रश्नसमाप्त्यर्थेति मातृदत्तः । नित्यं सदैवमुत्सर्जनोक्तस्नानवि-
धिना स्नात्वाऽद्भिस्तत्तत्तीर्थेन यज्ञोपवीत्यादिभिस्तत्तद्भूर्भुवोर्देवानृषीन्पितृंश्च
प्रातःस्नानोत्तरं मध्याह्नस्नानोत्तरं च तर्पयन्तीत्यर्थः । एवं ब्रह्मयज्ञादनन्तरं
तत्राकृतं चेन्मध्याह्नसंध्योत्तरं तर्पयन्ति । द्विरुक्तिः प्रश्नसमाप्तिद्योतना-
येति दीक्षितव्याख्यानम् । अथ तर्पणीयपितरः । तत्र बोपदेवः—

ताताम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं

सस्त्रि स्त्रीतनयादि तातजननीस्वभ्रातरः सस्त्रियः ।

ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग्जायापिता सद्गुरुः

शिष्याप्ताः पितरो महालयाविधौ तीर्थे तथा तर्पणे ॥ इति ।

अयमर्थः—पितृपितामहप्रपितामहा मातृपितामहीप्रपितामह्यः साप-
त्नमाता सापत्नमातरौ सापत्नमातरोऽपि मातामहमातुःपितामहमातुः-
प्रपितामहाः मातामहीमातुःपितामहीमातुःप्रपितामह्यः स्त्री पुत्रः कन्या
पितृव्यः सपत्नीकः, मातुलः सपत्नीकः, भ्राता सपत्नीकः, पितृभ-
गिनी सभर्तृका ससुता, मातृभगिनी सभर्तृका ससुता, आत्मभगिनी
सभर्तृका ससुता, श्वशुरो गुरुः शिष्य आप्तश्चेति यथासंभवं पितरो
महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे च ज्ञेया इति । अत्र सपत्नमा-
त्राख्यैकोद्दिष्टस्थले विलिखितद्वित्रादिव्यवस्थोपलक्षणविधया यावदेको-
द्दिष्टस्थलेऽपि बोध्या । श्लोके यद्यपि मातामहादित्रयं सस्त्रीत्ये-
वोक्तं तथाऽपि तदाश्वलायनपरम् । मया तु स्वकीयानां शिष्टानामा-
चारं तथा मातामह्यादयश्च या इति वक्ष्यमाणस्मृतिमनुरुद्ध्यैव तत्पार्थ-
क्यमुक्तम् । एवं तातजननीत्यादौ ताताम्बेत्यादौ च तातादीनां साक्षा-
द्भ्रातृन् साक्षाद्भगिनीरेव गृह्णन्ति सर्वेऽपि शिष्टा इति तथैव प्रकृतेऽपि ।
अथ तर्पणविधिस्तत्र बृहस्पतिः—

ब्रह्मयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यां चाऽऽध्यात्मिकीं जपेत् ।

जप्त्वाऽथ प्रणवं चापि ततस्तर्पणमाचरेत् ॥ इति ।

विष्णुपुराणेऽपि—शुचिवस्त्रधरः स्नातो देवर्षिपितृतर्पणम् ।

तेषामेव हि तीर्थेन कुर्वीत सुसमाहितः ॥ इति ।

स्नातः शुचिवस्त्रधर इत्यन्वयः । व्यासः—

एकैकमञ्जलिं देवान्द्रौ द्वौ तु सनकादयः ॥

अर्हन्ति पितरस्त्रींस्त्रीन्त्रियश्चैकैकमञ्जलिम् ॥ इति ।

सनकादय इति स्वस्वसूत्रोक्तर्ष्युपलक्षणम् । स्त्रीष्वपि विशेषः स्मृतौ—

मातृमुख्याश्च यास्तिस्रो मातामह्यादयश्च याः ।

अञ्जलित्रयमेतासामन्यत्रैकैकमञ्जलिम् ॥ इति ।

उशना—द्वौ हस्तौ युग्मतः कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलिम् ।

गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥ इति ।

ब्रह्मपुराणे—कुशाग्रेषु सुरांस्तर्पेन्मनुष्यांश्चैव मध्यतः ।

पितृस्तु कुशमूलेषु तर्पयेच्च यथाविधि ॥ इति ।

शङ्खलिखितौ—उभाभ्यामपि हस्ताभ्यां प्राङ्मुखो यज्ञोपवीती प्रागग्रैः
कुशैर्देवतातर्पणं देवतीर्थेन कुर्यात् । इति ।

विष्णुरपि—ततः कृत्वा निवीतं तु यज्ञसूत्रमुदङ्मुखः ।
प्राजापत्येन तीर्थेन मनुष्यांस्तर्पयेत्पृथक् ॥ इति ।

मनुष्यानृषीन् । अत्र काण्डर्षीणां प्रत्यहं तर्पणं कर्तव्यमित्युक्तं
काण्डानुक्रमणिकायाम्—

अथ काण्डऋषीनेतानुदकाञ्जलिभिः शुचिः ।
अव्यग्रस्तर्पयेन्नित्यं मन्त्रैरेवाष्टनामाभिः ॥ इति ।

एतच्च सूत्रानुक्तत्वात्कृताकृतम् । बोधायनः—

अथ दक्षिणामुखः प्राचीनावीती पितृन्स्वधा नमस्तर्पयामि ।
इत्यादि ।

आचारार्के तर्पणप्रकारमाह वसिष्ठः—

संबन्धमनुकीर्त्यैव नामगोत्रमनन्तरम् ।
वस्वादिरूपं संकीर्त्य स्वधाकारेण तर्पयेत् ॥ इति ।

अत्र नामगोत्रमिति प्रथमं नामोच्चारणमनन्तरं गोत्रोच्चारणमिति
पक्षस्यैवोक्तत्वात्तत्पक्षस्वीकर्तृणामेवास्मादिति संबन्धकीर्तनं न हि माते-
त्युक्ते पुत्रमाता गृह्यत इति । आचाररत्ने वृद्धपराशरः—

दक्षिणाजानुभूलग्नो देवेभ्यः सेचयेज्जलम् ।
भूलग्नसव्यजानुश्च दक्षिणाग्रकुशेन च ॥

पितृस्तर्पयेदिति शेषः । तत्रैव पुलस्त्यः—

मनुष्यतर्पणं कुर्वन्न कंचिज्जानुमानमेत् । इति ।

स्थले तर्पणे विशेषमाह हारीतः—

पात्राद्वा जलमादाय शुभे पात्रान्तरे क्षिपेत् ।
जलपूर्णेऽपि वा गर्ते न स्थले तु विबर्हिषि ॥ इति ।

पात्रे विशेषमाह पितामहः—

हेमरूप्यमयं पात्रं ताम्रकांस्यसमुद्भवम् ।
पितृणां तर्पणे पात्रं मृन्मयं तु परित्यजेत् ॥ इति ।

सत्यव्रतः—खड्गमौक्तिकसौवर्णमणिकाञ्चनदर्मकाः ।

हस्ते धार्यास्तर्पणे तु हीरकादि न धारयेत् ॥

[* अत्र—खड्गमौक्तिकहस्तेन कर्तव्यं पितृतर्पणम् ।

मणिकाञ्चनदर्भैर्वा न शुद्धेन कदाचन ॥

इति माधवीये स्मृत्यन्तरस्थितमणिपदार्थस्य हीरकादि न धारयेदिति] निषेधात्सुवर्णरचितश्रीरामनामादिमुद्राङ्कितमणित्वविवक्षयैव सौवर्णेति मणिविशेषणं दत्तमिति बोध्यम् । धारयन्ति च तादृशीं मुद्रिकां शिष्टाः । तर्पणे कण्ठे मालाधारणनिषेध उक्तो भारद्वाजेन—

कण्ठे मालां यस्तु धृत्वा कुर्वीत यदि तर्पणम् ।

निराशाः पितरो यान्ति शापदास्तस्य सर्वदा ॥ इति ।

अत्र मालाग्रहणात्कण्ठपरिमितद्वात्रिंशद्बुद्राक्षधारणस्य न निषेधः । तन्नित्यत्वस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात् ।

मरीचिः—तिलानामप्यभावे तु सुवर्णरजतान्वितम् ।

तदभावे निषिञ्चेत्तु द्भैर्मन्त्रेण वा पुनः ॥ इति ।

तिलग्रहणे विशेषमाह योगयाज्ञवल्क्यः—

यद्युद्धृतं निषिञ्चेत्तु तिलान्संमिश्रयेज्जले ।

अतोऽन्यथा तु सव्येन तिला ग्राह्या विचक्षणैः ॥ इति ।

सव्येन वामं शरीरं सव्यं स्यादित्यमराद्द्वामहस्तेनेत्यर्थः । अत्रापि विशेष आचाररत्ने स्मृत्यन्तरे—

वामहस्ते तिलान्कृत्वा जलमध्ये तु तर्पयेत् ।

स्थले शाठ्यां तटे पात्रे रोममूले न कुत्रचित् ॥ इति ।

तिलानाह ष्वलः—शुकैस्तु तर्पयेद्देवान्मनुष्याञ्जबलैस्तिलैः ।

पितृन्संतर्पयेत्कृष्णैस्तर्पयन्सर्वदा द्विजः ॥ इति ।

माधवीये कूर्मपुराणे देवर्षिपितृतर्पणे विशेषो दर्शितः—

देवान्ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः ।

पितृन्मक्त्या तिलैः कृष्णैः स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥ इति ।

तत्र कृष्णतिलाः श्राद्धमयूखे सत्यव्रतेन दर्शिताः—

जर्तिलास्तु तिलाः प्रोक्ताः कृष्णवर्णा वनोद्भवाः ।

जर्तिलाश्चैव विज्ञेया अकृष्टोत्पादिताश्च ये ॥ इति ।

तत्रैवाऽऽपस्तम्बोऽपि—

अटव्यां ये समुत्पन्ना अकृष्टाः फलितास्तथा ।

ते वै श्राद्धे पवित्राः स्युस्तिलास्ते न तिलास्तिलाः ॥ इति ।

हलायुधकोशेऽपि—जर्तिलः कथ्यते सद्भिररण्यप्रभवस्तिलः । इति ।

इमे रानतिला इति त्र्यम्बकक्षेत्रे प्रसिद्धाः । [*तिलपरिमाणं तूक्तं वाराहे पितृगीतायाम्—

तिलैः सप्ताष्टभिर्वाऽपि समवेतां जलाञ्जलिम् ।

मक्तिनम्रः समुद्दिश्याप्यस्माकं संप्रदास्यति ॥ इति ।]

योगयाज्ञवल्क्यः—सवर्णेभ्यो जलं देयं नासवर्णेभ्य एव च ।

गोत्रनामस्वधाकारैस्तर्पयेदनुपूर्वशः ॥ इति ।

बोधायनः—शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ।

गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः ॥

चतुर्णामपि वर्णानां पितृणां पितृगोत्रतः ।

पितृगोत्रं कुमारीणामूढानां मर्तृगोत्रतः ॥ इति ।

तिलतर्पणं निषेधति स एव—

सप्तम्यां रविवारे च जन्मर्क्षदिवसेषु च ।

गृहे निषिद्धं सतिलं तर्पणं तद्बहिर्भवेत् ॥

विवाहे चोपनयने चौले चैव यथाक्रमम् ।

वर्षमर्धं तद्वर्धं च न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

संस्कारेषु तथाऽन्येषु जातपुंसवनादिषु ।

यावन्मासः समाप्येत तावत्पिण्डांश्च वर्जयेत् ॥

वृद्धावनन्तरं प्राज्ञस्तथैव तिलतर्पणम् ॥ इति ।

ब्रह्मपुराणेऽपि—संध्ययोर्निशि सप्तम्यां न कुर्यात्तिलतर्पणम् । इति ।

स्मृत्यन्तरे—अयनद्वितये चैव मन्वादिषु युगादिषु ।

पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति ।

प्रतिप्रसवमाह गोभिलः—संक्रान्त्यादिनिमित्तेषु स्नानाङ्गं तर्पणं तथा ।

तिथिवारनिषेधेऽपि तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥ इति ।

आचारार्के कात्यायनः—उपरागे पितुः श्राद्धे पातेऽमायां च संक्रमे ।

निषेधेऽपीह सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥

पितृग्रहणं मात्रादेरुपलक्षणम् । अत्र संक्रान्तिग्रहणं त्वयनद्वयव्यतिरिक्तसंक्रान्तिपरमिति पारिजाते स्थितमिति भट्टोजिदीक्षिताः ।

एवं तैरेव—सप्तम्यां रविवारे च मातापित्रोः क्षयेऽहनि ।

तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत्पितृघातकः ॥

इति मरीचिवचनमुक्तं तन्नित्यतर्पणविषयं न तु श्राद्धासामर्थ्ये तिल-
तर्पणविधिबाधकम्, नापि

दर्शे तिलोदकं पूर्वं पश्चाद्दद्यान्महालये ।
सकृन्महालये चाब्दे परेऽहनि तिलोदकम् ॥

इत्यादिवचनबाधकम् । तथा—

नन्दायां मार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च ।
मरण्यां मानुवारे च गजच्छायाह्वये तथा ॥
अयनद्वितये चैव ।

इत्यादिसंग्रहवचनमुक्तं तदपि विहितभिन्नदिनपरमिति दिक् ।

गर्गः—कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् ।

पितॄणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये—तीर्थे तिथिविशेषे च गङ्गायां प्रेतपक्षके ।

निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥

अत्र तीर्थग्रहणेनैव गङ्गाप्राप्तौ पुनर्गङ्गाग्रहणं सर्वदा तत्र तिलप्राप्त्य-
र्थमिति व्यवस्थापितम् । तत्रायमाशयः—गङ्गापदवाच्ययोर्गोदावरी-
भागीरथयोर्जलस्य देशान्तरेऽपि नयनसंप्रदायात्तत्प्राप्तौ तत्र तेन
गृहेऽपि निषिद्धदिनेऽपि तीर्थवत्प्रथमदर्शन एव तिलमिश्रितेन तर्पणं
कार्यम् । तथा तत्तीरवासिभिरपि तीरं गन्तुमसमर्थैस्तद्यथाविधि कार्य-
मिति । जीवत्पितृकस्य निषेधं व्यास आह—

मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च नित्यशः ।

न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैः कृष्णैश्च तर्पणम् ॥ इति ।

एवं तस्यापसव्याख्यप्राचीनावीतेऽपि । जीवत्पितृकविध्यादिनिर्णये—

न कुर्वीतापसव्यं च न कुर्वीतापि मुण्डनम् ।

न जीवत्पितृकः पित्र्यं प्रकुर्वीत कदाचन ।

इति वृद्धगार्ग्योक्तेः । अयं चापसव्ये निषेधो न सर्वथा किं तु प्रको-
ष्ठादुपरीति शिष्टाः । अत एव पठन्ति—

अपसव्यं द्विजाग्न्याणां पित्र्ये सर्वत्र कीर्तितम् ।

आप्रकोष्ठात्तु कर्तव्यं मातापित्रोस्तु जीवतोः ॥ इति ।

विशेषजातं शिष्टाचारादिनोपपादितं विज्ञेयम् । एवं

न जीवत्पितृकः पित्र्ये कुर्यात्खड्गं न धारयेत् ॥

इति तत्रैव पुराणात्तन्निषेधोऽपि । संक्षेपतर्पणं स्मृत्यन्तरे—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।

तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥

अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।

आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥ इति ।

एकं जलाञ्जलिं दद्यात्कुर्यात्संक्षिप्ततर्पणम् ॥ इति ।

नन्वेतत्संक्षिप्ततर्पणं शिष्टाः सर्वेऽपि प्रायः स्वस्वाप्तान्ततर्पणोत्तरमेव कुर्वन्ति तदप्यपसव्येनैव न तु पूर्वोक्तमुख्यतर्पणं देवादीनामाप्तानां कर्तुं ज्वरादिना सामर्थ्याभाव एव तत्त्वनुचितम् । मूले देवर्षिग्रहणेन तज्जलप्रदानेऽपसव्यानर्हत्वात्सर्वत्राह्निकग्रन्थेषु प्रायोऽस्य मुख्याशक्तावेव विहितत्वाच्चेति चेन्न । भावानवदोधात् । तथा हि । अथ देवर्षिपितृमानवशब्देन आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ते जगति ताताम्बेत्यादिस्वतर्पितपितृगणभ्योऽवशिष्टाः स्वपितरः केचिद्देवत्वमृषित्वं पितृत्वं मनुष्यत्वं च तत्तल्लोके स्वस्वसुकृतानुसारेण प्राप्ताः सन्ति त एव विवक्षिताः पितरः सर्व इत्युत्तरार्धोक्तविशेष्यपदानुरोधेन तथा तिलोदकमिति वाक्यशेषानुरोधेनापि । अत एव तादृशानां तिर्यगादियौनिगतानां स्वपितृगणानां तृप्त्यर्थमतीतित्यादि च संगतम् । एवं च ज्वराद्यशक्तावनेन संक्षिप्तपितृतर्पणेन साधारण्यात्स्वपित्राद्यखिलपितृगणतृप्तिसंभवेऽपि ब्रह्मादिदेवर्षिपितृगणानां तृप्तिस्त्वेकामप्यृचमिति श्रुतेर्गायत्रीमात्रोच्चारणात्मनाऽपि ब्रह्मयज्ञेनैव संपाद्या । तदुक्तं सहवैभाष्ये माधवीये—ऋषीणामृणं ब्रह्मयज्ञेनापोद्यत इति तावत्सर्वेषां संमतम् । देवपितृकार्ययोरसमर्थस्य तदुभयविषयमप्यृणमनेनैवापोद्यत इति । तथा शिष्टाचारादेरविरोध इति दिक् । अवसानाञ्जलिरादित्यपुराणे—

यत्र क्वचन संस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम् ।

तेषां हि दत्तमक्षय्यामिदमस्तु तिलोदकम् ॥ इति ।

नन्वाश्वलायनीयास्त्वेतत्तर्पणं ब्रह्मयज्ञाङ्गतयैवाऽऽचरन्तीति किं भवताऽपि तथैवेदम् । बाढमिति चेद्ब्रह्मयज्ञप्रकरण एवैतदुपपादनस्य न्याय्यत्वादिह तदनुचितमेवेति चेन्न । अस्य तदनङ्गत्वात् । तथा हि । स चार्वा-

कर्पणात्कार्य इति तर्पणस्य पृथगुक्तेर्न ब्रह्मयज्ञाङ्गता किं तु स्वतन्त्रतैव । अतस्तर्पणे पृथगेव संकल्पः । कृतब्रह्मयज्ञस्यापि तीर्थप्राप्तौ तर्पणं भवति ।

अकालेऽप्यथवा काले तीर्थश्राद्धं तथा नरैः ।

प्राप्ते वै सर्वदा कार्यं कर्तव्यं पितृतर्पणम् ॥

इति श्राद्धशूलपाणौ देवीपुराणात् । आश्वलायनानां तु ब्रह्मयज्ञाङ्गं तर्पणम् । तत्सूत्रे तद्धर्मैः संदंशादित्याचाररत्नः । युक्तं चैतत् । अस्म-
त्सूत्रे तर्पणब्रह्मयज्ञयोः पृथगुक्तत्वात् । अकृतप्रातराश उदकान्तं गत्वेति प्रातःस्नानसंध्याहोमोत्तरं ब्रह्मयज्ञाध्ययनं नित्यमेवाद्भिरित्युत्सर्जनप्रक-
रणे तर्पणस्य विधानमिति हेमहिमाचलन्यायेन स्वप्नेऽप्यङ्गाङ्गीभावा-
संभवात् । श्रुतावुदित आदित्य इतिवचनात्सूर्येऽभ्युदिते सत्येव ब्रह्मयज्ञो
न प्राक् । दिवा नक्तं वेति तु कालेऽकृतब्रह्मयज्ञस्य पूर्वरात्रौ कर्तव्यता-
विधानार्थम् । मनुष्यपितृतर्पणस्य तु प्रागुक्तसंक्रान्त्यादिनिमित्तेष्वित्या-
दिपदसंगृहीतचन्द्रग्रहणे रात्रावपि विधेः स्फुटमेव पार्थक्यमिति दिक् ।
किं च स्मृत्यादौ तर्पणस्य जलस्थलयोरुभयोरपि विधानेऽपि मातृ-
दत्ताचार्यैरुदाहृतनित्यतर्पणसूत्रवृत्तावुदक इत्यध्याहारोक्तेस्तत्रैवास्माकं
मुख्यम् । एवममुं तर्पयाम्यमुं तर्पयामीत्युदकेनेत्युत्सर्जनप्रकरण उदकवि-
हितेऽपि तर्पण ऋष्यादौ द्विरादिपदाप्रयोगात्सकृदेव । यथा देवर्षिपितृ-
तर्पणं साधारण्येनैवं नित्यतर्पणेऽपि ब्रह्मादीन्देवान्विश्वामित्रादीनृषीन्वै-
शंपायनादींश्च पितृन्स्वपित्रादींश्चैकैकेनैवाञ्जलिना तर्पयेदिति सूत्रका-
रादेः संमतमिति हृदयम् । एवं सति स्वपित्रादीनामेव त्र्यञ्जलिभि-
रुयञ्जलिभिस्तर्पणमन्येषां तु सर्वेषामप्येकैकाञ्जलिनेति श्रद्धाजाड्य-
घात्रं तदपेक्षया प्रागुक्तस्मृत्यादिरीत्या देवर्षिपितृक्रमेणैकद्वित्र्यञ्जलि-
प्रदानपक्ष एवाविरोधिपारक्यग्रहन्यायात्साधीयानस्तु । वस्तुतस्त्वेतदपि
ताह्वगेव ।

एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः ।

अर्हन्ति पितरस्त्रीस्त्रीन्स्त्रीणामेकैकमञ्जलिम् ॥

इति स्मृतावृषिस्थले विशिष्य सनकादीनामेव नामग्रहणात्तद्विपरैवे-
यम् । अन्यथाऽविरोधितया तद्भिन्नानामप्यस्मदादीनां स्वस्वर्षिगणे प्रथमं
सनकादिग्रहापत्तेः । तस्माद्भिरण्यकेशीयानामेकैकाञ्जलिनैव देवर्षिपि-

तृस्वपित्रादितर्पणं युक्तमिति दिक् । अत एव श्रीमाधवाचार्यैरस्मिन्नेव प्रकरणेऽत्राञ्जलिसंख्या यथाशाखं व्यवतिष्ठते । यत्र शाखायां न संख्या- नियमः श्रुतस्तत्र विकल्प इत्युक्तम् । तेनास्मत्सूत्र एवामुं तर्पयामीत्युद- केनेति कण्ठत एवैकावृत्त्यभिधायकाख्याते प्रत्येकसंबन्धार्थं वीप्सास- त्वेऽपि द्वित्र्यञ्जलिबोधिबीप्साद्यभावादस्माकं निरुक्तैव व्यवस्था । यमतर्पणं तु वृद्धमनूक्तम्—

दीपोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पणम् ।
कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यामपि कार्यं सदैव तु ॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥
औदुम्बराय दधनाय नीलाय परमेष्ठिने ।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः ॥ इति ।

एतत्प्रकारः स्कान्दे—

दीपोत्सवचतुर्दश्यां सव्येन यमतर्पणम् ।
अपसव्येन वा कुर्याद्यमस्यास्ति द्विरूपता ॥ इति ।

फलमाह यमः—यत्र क्वचन नद्यां हि स्नात्वा कृष्णचतुर्दशीम् ।

संतर्प्य धर्मराजानं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ इति ।

एवं चैतस्य काम्यत्वं पूर्वोक्तवचनाभ्यां नित्यकाम्यत्वं वा । धर्मेत्या- र्थम् । एवं माघशुक्लाष्टम्यां भीष्मतर्पणं व्यासेनोक्तम्—

शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् ।
संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ इति ।

अत्र मन्त्रः—वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च ।

गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम् ॥

अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मणे ॥

एतत्तु ब्राह्मणस्य न भवतीति मदनपारिजाते । तर्पणप्रशंसाऽकरणे प्रत्यवायश्च पुराणे—

एवं यः सर्वभूतानि तर्पयेदन्वहं द्विजः ।
स गच्छेत्परमं स्थानं तेजोमूर्तिमनामयम् ॥
देवताश्च पितृंश्चैव मुनीन्वा यो न तर्पयेत् ।
देवादीनामृणी भूत्वा नरकं प्रतिपद्यते ॥

तर्पणानन्तरं वस्त्रनिष्पीडनमाह याज्ञवल्क्यः—

यावद्देवानृषींश्चैव पितृंश्चापि न तर्पयेत् ।

तावन्न पीडयेद्वस्त्रं यो हि स्नातो भवेद्विजः ॥ इति ।

निष्पीडनं तु स्थले कार्यम् । तदुक्तं स्मृत्यन्तरे—

वस्त्रनिष्पीडितं तोयं श्राद्धे चोच्छिष्टभोजनम् ।

भागदेयं *श्रुतिः प्राह तस्मान्निष्पीडयेत्स्थले ॥ इति ।

इदं तु जीवत्पितृकस्य नास्तीत्युक्तं जीवत्पितृ[क]विध्यादिविचारे—

नजीवत्पितृकः कुर्याद्वस्त्रनिष्पीडनं बुधः ।

इति पुराणसंमत्या । ततः सूर्यायार्घ्यः । तदुक्तं विष्णुपुराणे—

आचम्य च ततो दद्यात्सूर्याय सलिलाञ्जलिम् । इति ।

ततस्तर्पणानन्तरम् । तत्र मन्त्रः—

नमो विवस्वते ब्रह्मन्भास्वते विष्णुतेजसा ।

जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥ इति ।

अत्र फलानुक्तेर्नित्यत्वं प्रतीयते । ननु पूर्वोदाहृततर्पणसूत्रे ब्रह्मयज्ञा-
दनन्तरमिति मातृदत्तोक्तेः

ब्रह्मयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यां चाऽऽध्यात्मिकीं जपेत् ।

जप्त्वाऽथ प्रणवं चापि ततस्तर्पणमाचरेत् ॥

इति प्रागुक्तबृहस्पतिवचनाच्च तर्पणकर्मणो ब्रह्मयज्ञाव्यवहितकर्तव्य-
ताकत्वमपि प्रतीयते । तथा च ब्रह्मयज्ञो यद्युदित आदित्य इत्यादिशा-
स्त्रानुसारेण प्रातरेव होमोत्तरं विहितश्चेत्तर्पणमपि तदुत्तरकालिकत्वेन
तदैव विधातव्यं स्याद्भवता तु माध्याह्निकसंध्योत्तरं तत्कथितमिति
चेद्वाढम् । उक्तवाक्यवशात्प्रातरपि ब्रह्मयज्ञोत्तरं तर्पणं कर्तव्यमेव यदि
तदा ब्रह्मयज्ञ एव न कृतश्चेत्तदा माध्याह्निकस्नानं विधाय शक्तश्चेद्गौण-
मेव तद्विधाय माध्याह्निकसंध्यां कृत्वा ब्रह्मयज्ञं विधाय ततस्तत्कर्तव्यं
यदि वा प्रातः केवलं ब्रह्मयज्ञ एव कृतस्तदाऽपि तन्माध्याह्निकसंध्यो-
त्तरमेव कार्यमिति त्रिधा समविकल्पितस्य तस्येह कथनं पक्षाधिक्यादे-
वेति तत्त्वम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्यापाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे तर्पणविधानप्रकरणं संपूर्णम् ।

* स्थले प्राहुरिति पाठश्चेद्रम्य इति क. पुस्तके टिप्पणी ।

अथ तर्पणप्रयोगः । शुचौ देशे प्राङ्मुख उपविश्य देशकाली संकीर्त्य देवर्षिपितृवृत्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमुदकेन देवर्षिपितृतर्पणमहं करिष्ये इति संकल्प्य यज्ञोपवीत्येव प्राङ्मुख एव च न्यञ्चितदक्षिणजानुः साक्षताभिः केवलाभिर्वाऽद्भिरप्स्वेव देवतीर्थेन—ब्रह्माणं तर्पयामि १ प्रजापतिं त० २ बृहस्पतिं त० ३ अग्निं त० ४ वायुं त० ५ सूर्यं त० ६ चन्द्रमसं त० ७ नक्षत्राणि त० ८ इन्द्र* राजानं त० ९ यम* राजानं त० १० वरुण* राजानं त० ११ सोम* राजानं त० १२ वैश्रवण* राजानं त० १३ वसूःस्त० १४ रुद्राःस्त० १५ आदित्याःस्त० १६ विश्वान्देवाःस्त० १७ साध्याःस्त० १८ ऋभूःस्त० १९ मृगूःस्त० २० मरुतस्त० २१ अथर्वणस्त० २२ अङ्गिरसस्त० २३ एकैकमञ्जलिं गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य कुशाग्रैस्त्रयोविंशतिदेवान्संतर्प्य ततो निवीत्युदङ्मुखो न्यञ्चितोभयजानुः सयवाभिः केवलाभिर्वाऽद्भिरप्स्वेव ऋषितीर्थेन विश्वामित्रं त० १ जमदग्निं त० २ भरद्वाजं त० ३ गौतमं त० ४ अत्रिं त० ५ वसिष्ठं त० ६ कश्यपं त० ७ अरुन्धतीं त० ८ अगस्त्यं त० ९ कृष्णद्वैपायनं त० १० जातुकर्ण्यं त० ११ तरुक्षं त० १२ तृणबिन्दुं त० १३ वर्मिणं त० १४ वरूथिनं त० १५ वाजिनं त० १६ वाजिस्रवसं त० १७ सत्यश्रवसं त० १८ सुश्रवसं त० १९ सुतश्रवसं त० २० सोमशुष्मायणं त० २१ सत्त्ववन्तं त० २२ बृहदुक्थं त० २३ वामदेवं त० २४ वाजिरत्नं त० २५ हर्यज्वायनं त० २६ उदमयं त० २७ गोतमं त० २८ ऋणंजयं त० २९ ऋतंजयं त० ३० कृतंजयं त० ३१ धनंजयं त० ३२ बभ्रुं त० ३३ त्र्यरुणं त० ३४ त्रिवर्षं त० ३५ त्रिधातुं त० ३६ शिबिं त० ३७ पराशरं त० ३८ विष्णुं त० ३९ रुद्रं त० ४० स्कन्दं त० ४१ काशीश्वरं त० ४२ ज्वरं त० ४३ धर्मं त० ४४ अर्थं त० ४५ कामं त० ४६ क्रोधं त० ४७ वसिष्ठं त० ४८ इन्द्रं त० ४९ त्वष्टारं त० ५० कर्तारं त० ५१ धर्तारं त० ५२ धातारं त० ५३ मृत्युं त० ५४ सवितारं त० ५५ सावित्रीं त० ५६ ऋग्वेदं त० ५७ यजुर्वेदं त० ५८ सामवेदं त० ५९ अथर्ववेदं त० ६० इतिहासपुराणं त० ६१ प्रत्येकमेकैकेनैवाञ्जलिना कुशमध्यैरेकषष्टिसंख्याकानृषीन्संतर्प्य ततः प्राचीनावीती दक्षिणामुखो न्यञ्चितसव्यजानुः सतिलाभिरद्भिः केवलाभिर्वाऽप्स्वेव पितृतीर्थेन वैशंपायनं तर्पयामि १ पलिङ्गं त० २ तित्तिरिं त० ३ उखं त० ४ आत्रेयं पदकारं त० ५ कौण्डिन्यं वृत्तिकारं

त० ६ सूत्रकारास्त० ७ सत्याषाढं त० ८ प्रवचनकर्तृस्त० ९ आचार्यास्त० १० ऋषीस्त० ११ वानप्रस्थास्त० १२ ऊर्ध्वरेतसस्त० १३ एकपत्नीस्त० १४ प्रत्येकमेकैकेनैवाञ्जलिना कुशमूलैश्च चतुर्दशसाधारणपितृन्संतर्प्य जीवपितृकश्चेत्प्रकोष्ठपर्यन्तमेव कृतप्राचीनावीतस्तिलैर्विनैव तथा कृत्वा कर्म समापयेत्प्राग्वत् । मृतपितृकस्तु अस्मत्पितरं केवलं वाऽमुकगोत्रममुकशर्माणं वसुरूपं स्वधा नमस्तर्पयामि । एवं पितामहं प्रपितामहं मातरममुकगोत्राममुकदां वसुरूपां स्वधा नमस्त० इत्याद्याप्तान्तान्प्रत्येकमेकैकेनैवाञ्जलिना संतर्प्याऽऽब्रह्मस्तम्बेत्यारभ्याऽऽब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकमित्यन्तश्लोकद्वयेन संक्षिप्ततर्पणाञ्जलिमेकं कृत्वा

यत्र कचन संस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम् ।
तेषां हि इत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम् ॥

इति सामान्याञ्जलिं च कृत्वा

ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।
ते गृह्णन्तु मया इत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

इति वस्त्रं तदभावे तृतीयमुत्तरीयार्थं वस्त्राभावे तदिष्यत इति धृततृतीययज्ञसूत्रमेव मूमौ निष्पीड्याऽऽचम्य पवित्रकीभूतांस्तथा निरुक्तरीतिकाग्रमध्यमूलैस्तर्पणार्थं धृतांश्च प्रादेशमात्रांश्चतुःकुशान्संत्यज्य

नमो विवस्वते ब्रह्मन्भास्वते विष्णुतेजसा ।

जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥

इति सूर्यायाध्याञ्जलिं कृत्वा सति संभवे पुष्पाक्षतैर्जले तं संपूज्य कर्म ब्रह्मात्मने परमेश्वरायार्पयेत् । तत्साद्गुण्यार्थं प्रमादादिति प्रायश्चित्तानीति यस्यस्मृत्येति च विष्णुं स्मरेत् । एवं दीपोत्सवचतुर्दश्यां यमतर्पणम् । तत्र श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं यमतर्पणमहं करिष्य इति संकल्प्य तिलसत्त्वे पितृधर्मेण तदभावे देवधर्मेण च यमं तर्पयामि । धर्मराजं त० । मृत्युं त० । अन्तकं त० वैवस्वतं त० । कालं त० । सर्वभूतक्षयं त० । औदुम्बरं त० । दध्नं त० । नीलं त० । परमेष्ठिनं त० । वृकोदरं त० । चित्रं त० । चित्रगुप्तं त० । एतदपि प्राग्वदीश्वरार्पणं कुर्यात् । स्थले तर्पणे तु कुशास्तृते भूभागे ताम्रादिपात्रान्तरे जलपूर्णे गर्ते वा

तर्पयेन्न केवलभूमौ । संक्षेपतर्पणं त्वाब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यत्वित्यञ्ज-
लित्रयं सव्येनैव दद्यात् । ततो वस्त्रधावनं कृत्वा

धौतवस्त्रं प्रपीड्येत ऊर्ध्वपल्लवसंयुतम् ।

पल्लवार्धो न पीड्येत पीडने त्वशुचिर्भवेत् ॥

अयं पीडननिषेध एव न तु धावननिषेधः । असंभवात् ।

वस्त्रं त्रिगुणितं यस्तु निष्पीडयति मन्दधीः ।

वृथा स्नानं भवेत्तस्य पुनः स्नानेन शुध्यति ॥

इति निषेधाच्चतुर्गुणमष्टगुणं वा कृत्वा निष्पीडयेत् ।

वृद्धपराशरः—जलमध्ये तु यः कश्चिद्ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।

निष्पीडयति वस्त्राणि स्नानं तस्य वृथा भवेत् ॥

इति निषेधात्स्थले निष्पीड्य

निष्पीडितं धौतवस्त्रं यदा स्कन्धे विनिक्षिपेत् ।

तदाऽऽसुरं भवेत्कर्म पुनः स्नानं विशोधनम् ॥

इति जाबालिनिषेधाद्द्वामप्रकोष्ठे निधाय

यदि स्नातो द्विजस्तीर्थाद्गृहीतकमण्डलुः ।

अज्ञानाद्ब्रह्ममागच्छेत्स्नानं तस्य वृथा भवेत् ॥

इति निषेधात्संशुद्धजलपूर्णकमण्डलुर्गृहमागत्य पादौ प्रक्षाल्याऽऽ-
चम्य देवपूजां कुर्यात् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे तर्पणप्रयोगप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ देवपूजा । तत्र माधवीये मरीचिः—

विधाय देवतापूजां प्रातर्होमादनन्तरम् । इति ।

ब्रह्मयज्ञजपादनन्तरमित्यन्ये । तथा च हारीतः—

कुर्वीत देवतापूजां जपयज्ञादनन्तरम् ॥ इति ।

आचारत्ने शौनकः—प्रातर्मध्यंदिने सायं विष्णुपूजां समाचरेत् ।

अशक्तौ विस्तरेणैव प्रातः संपूज्य केशवम् ॥

मध्याह्ने चैव सायं च पुष्पाञ्जलिमपि क्षिपेत् ।

माधवीये कूर्मपुराणे—निष्पीड्य स्नानवस्त्रं वै समाचम्य च वाग्यतः ।

स्वमन्त्रैरर्चयेद्देवं पत्रैः पुष्पैरथाम्बुभिः ॥

नृसिंहपुराणेऽपि—जलदेवान्नमस्कृत्य ततो गच्छेद्गृहं बुधः ।

पौरुषेण च सूक्तेन ततो विष्णुं समर्चयेत् ॥

वैश्वदेवं ततः कुर्याद्द्वालिकर्म तथैव च ॥ इति ।

एवं चेह मरीचिहारीतयोर्मते देवार्चनं प्रातः कार्यं तदपि क्रमाद्धो-
मोत्तरं ब्रह्मयज्ञोत्तरं चेति प्रतीयते । शौनकमते त्रिकालमपि तत्कार्यमश-
क्तेन प्रातरेव तत्प्राधान्येन कार्यमन्यन्न तु गौणतयेति । कूर्मनृसिंहपुरा-
णयोर्मते तु होमाद्यनुक्तेः प्रातःपरतया नेतुमशक्यवाक्यत्वेन मध्याह्न
एव तत्कार्यमिति ज्ञायते । तथा च कः पक्षः श्रेयानिति चेद्देशकालसाम-
र्थ्याद्यनुरोधेन त्रिविधोऽपि पक्षः श्रेयस्कर एव । अत एव तर्पणस्य यथा
प्रागुक्तरीत्या प्रातर्मध्याह्ने वाऽनुष्ठानं तद्ब्रह्मपूजनस्यापीत्यभिप्रेत्य तस्य
यथा मध्याह्नसंध्योत्तरं विचार एवमस्यापि तदुत्तरं विचारः समुचित
एवेति ध्येयम् । तत्र मन्त्रादिकथनमाग्नेयपुराणे—

मन्त्रैर्वैष्णवरौद्रीश्च सावित्रैः शाक्तिकैस्तथा ।

विष्णुं प्रजापतिं वाऽपि शिवं वा भास्करं तथा ॥

तल्लिङ्गैरर्चयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान्समाहितः ॥ इति ।

यद्यपि पूजने पूर्ववचनव्याख्याने पूजनीयो देव एक एवेति महता
प्रबन्धेन प्रपञ्चितं तथाऽपि दर्शनभेदमाश्रित्य विष्णुशंकरादिभेदोप-
न्यासो न विरुध्येतेति माधवाचार्याः । एको देवः सर्वभूतेषु गूढ इत्यादिश्रु-
तिरपि । दर्शनभेदश्च तत्रैव पुराणसारे वर्णितः—

शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा ।

स्कान्दं च भक्तिमार्गस्य दर्शनाय(नि) षडेव हि ॥ इति ।

तत्रैव कूर्मपुराणे—न विष्ण्वाराधनात्पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ।

तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम् ॥

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु ।

नैताभ्यां सदृशो मन्त्रो वेदेषूक्तश्चतुर्ष्वपि ॥

अथ वा देवमीशानं भावपूतं महेश्वरम् ।

मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुनः ॥

ईशानेनाथ वा रौद्रीस्त्रयम्बकेन समाहितः ।

पुष्पैः पत्रैरथान्निर्वा चन्दनाद्यैर्महेश्वरम् ॥

तथो नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन वा यजेत् ।

नमस्कुर्यान्महादेवसृतं सत्यमितीश्वरम् ।
निवेदयीत चाऽऽत्मानं यो ब्रह्माणमितीश्वरम् ॥
प्रदक्षिणां द्विजः कुर्यात्पञ्च ब्रह्माणि वा जपेत् ।
ध्यायीत देवमीशानं व्योममध्यगतं शिवम् ॥ इति ।

देवार्चनाकरणे दोषस्तत्रैव—

यो मोहादथ वाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम् ।
भुङ्क्ते स याति नरकं सूकरेष्वपि जायते ॥ इति ।

भट्टोजिदीक्षिताह्निके—तत्रापि कलौ हरिहरयोः पूजा प्रशस्ता ।
तदुक्तं भारते—

कलौ कलिमलध्वंसं सर्वपापहरं हरिम् ।
येऽर्चयन्ति नरा नित्यं तेऽपि बन्ध्या यथा हरिः ॥
ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान्हरिः ।
द्वापारे भगवान्विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः ॥ इति ।

आचाररत्ने हेमाद्रौ—

शालिग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवती शिला ।
उभयोः संगमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥

तत्र शिवनाभिः पारिजाते स्कान्दे—

शिवनाभिरिति ख्यातं यत्र देशे व्यवस्थितम् ।
तच्छैवविष्णुवत्तीर्थं शालिग्रामसमुद्भवम् ॥
नाभौ लिङ्गेन संयुक्तं गर्तेन च तथा पुनः ।
शिवनाभिरिति ख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिका ॥
यवमात्रं तु गर्तं स्याद्यवार्धं लिङ्गमुच्यते ।
वासुदेवमयं क्षेत्रं लिङ्गं शिवमयं शुभम् ॥
तस्माद्धरिहरक्षेत्रे पूजयेच्छंकराच्युतौ । इति ।

तत्रैव स्कान्दे—शालिग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते ।

महापूजां तु कृत्वाऽऽदौ पूजयेत्तां ततो बुधः ॥

तत्रैव पाद्मे—शालिग्रामशिलायां च नाऽऽवाहनविसर्जने । इति ।

भट्टोजिदीक्षितैस्तु—

ब्राह्मणैर्वासुदेवस्तु नृपैः संकर्षणस्तथा ।
प्रद्युम्नः पूज्यते वैश्यैरनिरुद्धस्तु शूद्रजैः ॥

इति हेमाद्रिवाक्यमुक्त्वा तल्लक्षणाकाङ्क्षायां—

पञ्चचक्रो वासुदेवः षड्भिः प्रद्युम्नकः स्मृतः ।

संकर्षणः सप्तचक्रोऽनिरुद्ध एकादशैः स्मृतः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरवचनमुदाहारि । न चैवं यदि शालग्रामे नाऽऽवा-
हनादि कथं तर्हि शिवार्चनचन्द्रिकायां विष्णुपूजां प्रकृत्यात्र केचि-
त्सालग्रामे विष्णोर्नाऽऽवाहनं कार्यमिति वदन्ति । तत्र प्रमाणं चिन्त्यम् ।
वस्तुतस्तु स्कन्दपुराणाद्विदर्शनादावाहनमवश्यं कार्यमिति प्रतीयते ।

यथा स्कन्दपुराणे—

विप्रः पूर्वं निजे वेहे स्मृत्युक्तेन न्यसेद्बुधः ।

ततस्तु प्रतिमायां च सालग्रामे विशेषतः ॥

क्रमेण च ततः पश्चात्कुर्यादावाहनादिकम् ।

आवाहयेच्च पुरतो ध्यानसेव्यं द्विजोत्तम ॥

इत्यादिना सप्रतिज्ञं सप्रमाणं च तदुक्तमिति वाच्यम् । तस्य न्यासा-
दिघटितत्वेन तान्त्रिकतायाः स्पष्टत्वादुक्तवाक्यस्य तु शुद्धवैदिकपर-
त्वाच्च । एवं बाणलिङ्गस्यापि प्रतिष्ठाद्यभावः पारिजात एव पुराणान्तरे—

बाणलिङ्गानि राजेद्र ख्यातानि भुवनत्रये ।

न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं न च ॥ इति ।

आचारकिरणे हेमाद्रौ—

पकजम्बूफलाकारं कुक्कुटाण्डसमाकृति ।

भ(भु)क्तिमुक्तिप्रदं चैव बाणलिङ्गमुदाहृतम् ॥ इति ।

तत्परीक्षा त्वाचाररत्ने लोकोत्तरे—

त्रिपञ्चवारं यस्यैव तुलासाम्यं न जायते ।

तद्वाणं हि समाख्यातं शेषं पाषाणसंभवम् ॥ इति ।

तत्रैव नन्दिपुराणे—स्थिरलिङ्गेऽनले तोये हृदये सूर्यमण्डले ।

आवाहनादि चत्वारि कुर्यान्नोद्दासनं तथा ॥ इति ।

भागवतेऽपि—उद्दासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ।

अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम् ॥ इति ।

स्थिरादिः प्रतिमैव । स्थण्डिले मृन्मये ।

अथ शङ्खपूजा । आचाररत्ने भविष्ये—

त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाऽऽज्ञया ।

शङ्खे वसन्ति विप्रेन्द्र तस्माच्छङ्खं प्रपूजयेत् ॥

तन्मानं क्रियासारे—प्रस्थाम्बुप्रमितः शङ्खः श्रेष्ठस्तत्रयंशपूर्णकः ।
 मध्यस्तदर्धप्रमितः कनिष्ठः क्रमशो भवेत् ॥
 गोक्षीरधवलः स्निग्धो दीर्घनालो बृहत्तनुः ।
 वृत्तो यो दक्षिणावर्तः सज्ञेयः शङ्खसंज्ञकः ॥
 पूर्वोक्तलक्षणोपेतो वामावर्तोऽथ वाऽपि सः । इति ।

विशेषान्तरमपि तत्रोक्तमाचारकिरणे विधानपारिजाते—

उद्धरिण्या जलं ग्राह्यं नाप्सु शङ्खं निमज्जयेत् ।
 शङ्खस्य पृष्ठसंलग्नं पयः पापकरं ध्रुवम् ॥
 तेन न प्रापयेद्देवं पूजनात्पापसंभवः ।
 आराधकः स्वस्य पुरः शङ्खस्थापनमाचरेत् ॥
 यः शङ्खं भुवि संस्थाप्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ।
 तस्य पूजां न गृह्णाति तस्मात्पीठं प्रकल्पयेत् ॥ इति ।

एवं कलशे तीर्थावाहनमुक्तं तत्रैव शौनकेन—

इमं मे गङ्गे मन्त्रेण तीर्थान्यावाहयेत्ततः ।
 गायत्र्या दशवारेण अभिमन्त्र्य जलं सुधीः ॥ इत्यादिना ।

अथ पुरुषार्थचतुष्टयेच्छुभिः सर्वदा पञ्चायतनपूजनमेव कार्यमित्य-
 मिसंघाय तत्तत्प्राधान्ये तत्तत्स्थापनप्रकारमाह षोपदेवः—

शंभौ मध्यगते हरीनिहरभूदेव्यो हरौ शंकरे-
 मास्ये नागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः स्थापिताः ।
 देव्यां विष्णुशिवैकदन्तरवयो लम्बोदरेऽजेश्वरे-
 नार्याः शंकरमागतोऽतिसुखदा व्यस्तास्तु हानिप्रदाः ॥ इति ।

अत्रोपयुक्तप्राची, आगमे—

पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची प्रोक्ता मनीषिभिः ।
 प्राच्येव प्राची सोद्विष्टा मुक्त्वा वै देवपूजनम् ॥ इति ।

इयं व्यवस्था शंकरमार्गत इति तन्त्रप्रसिद्धविद्वन्नियमकथनात्तन्त्रोक्त-
 पूजन एव ग्राह्या न त्वत्र वैदिकपूजने । तत्र पूज्यस्य पञ्चायतनस्यैवा-
 मावात्तथात्वस्याग्रे सप्रपञ्चमुपपादयिषितत्वाच्च । अथ पूजाधिकारिण
 आचाररत्ने—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीशूद्राणामथापि वा ।
 शालग्रामेऽधिकारोऽस्ति नान्येषां तु कदाचन ॥ इति ।

अन्येषां संकरजातीनाम् । तत्रैव प्रतिष्ठाहेमाद्रौ शालग्रामसंख्याप्रकारो
ब्राह्मणादिकर्तव्यपूजायाम्—

चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्यास्त्रयो राजन्यजातिभिः ।

वैश्यैर्द्वावेव संपूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिः ॥

सर्वेषामेकोऽपि प्रशस्तः । भद्रोजिदीक्षितास्त्विदं वचनमुदाहृत्य विशेष-
षमाहुः—इदं च निष्कामपूजाविषयं काम्ये तु संख्यान्तरमपि स्मर्यते—

एकमूर्तिर्न पूज्यैव गृहिणा भूतिमिच्छता ।

अनेकमूर्तिसंपन्नः सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ इति ।

विशेषान्तरं तत्रापि तत्रैव । तथा—

शालग्रामाः समाः पूज्या विषमा न कदाचन ।

समेषु द्वितयं नेष्टं विषमेष्वेक एव हि ॥ इति ।

इष्ट इति । यत्तु प्रयोगपरिजाते—

शालिग्रामशिलां वाऽपि चक्राङ्कितशिलां तथा ।

ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेत् ॥ इति,

तद्दीक्षितपरम् । अतो ब्राह्मणस्य नित्या पूजा । क्षत्रियवैश्ययोस्तु
दीक्षितयोरेव । शूद्रादेः पूजा तु तदीया स्पर्शं विनैव । तथा च बृहन्ना-
रदीये —

स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर ।

स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शंकरस्य च ॥

इति निषेधात् । अर्चनव्यवस्थाऽपि तत्रैव विधाने—

श्रौतार्चनं तु विप्राणां विशेषेण भवेत्सदा ।

स्मार्तागमार्चनं क्षत्रे वैश्ये केवलमागमम् ॥ इति ।

आगमं तदपरनामकतन्त्रोक्तमित्यर्थः । एतेन वेदो नित्यमधीयतां
तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मति-
स्त्यज्यतामिति श्रीमच्छंकरभगवत्पादा अपि संगच्छन्ते । अपचितिः
पूजा । पूजा नमस्याऽपचितिरित्यमरः । अथ पूजा षड्विधा—पञ्चोपचारा
दशोपचारा षोडशोपचारा अष्टादशोपचारा षट्त्रिंशदुपचारा षष्ट्युप-
चारा च । आचाररत्ने चिन्तामणौ—

गन्धादिका निवेद्यान्ता पूजा पञ्चोपचारिका ।
अर्घ्यपाद्याचमनीयमधुपर्कचिमनानि च ।
गन्धादिकं पञ्चकं चेत्युपचारा दशोदिताः ॥

तत्रैव हेमाद्रौ भविष्ये—

आवाहनासनार्घ्यपाद्याचमनमधुपर्कसेवाश्च ।
वासोभूषणगन्धाः सुमनोयुतधूपदीपभोज्यानि ॥
प्रादक्षिण्यं स्तुतिरिति कथयन्त्युपचारषोडशकम् ।
क्वचित्प्रणामप्रदक्षिणास्थाने ताम्बूलदक्षिणे उक्ते ॥ इति ।

*आचाररत्नः । अत्र मधुपर्कसेवाश्चेति सेवाशब्देन स्नानमेव
ग्राह्यम् । तस्यैव रुद्राभिषेकादिरूपत्वेन भूयः परिचर्यात्मकत्वात् । मधु-
पर्कस्नानानीति पाठश्चेत्सम्यगेव । पाराशरपुराणेऽपि—

आसनावाहने चार्घ्यं पाद्यमाचमनं तथा ।
स्नानं वस्त्रोपवीतं च भूषणानि च सर्वशः ॥
गन्धपुष्पे तथा धूपदीपमन्त्रेण तर्पणम् ।
माल्यानुलेपनं चैव नमस्कारविसर्जने ॥ इति ।

पाद्यार्घ्ययोः पौर्वापर्येण विकल्प इति स्मार्ताः । षट्त्रिंशदुपचाराः
षष्ट्युपचाराश्च तथा द्वात्रिंशदपराधा अप्याचाररत्ने द्रष्टव्याः । तेषां
प्रकृतानुपयोगान्नेह संग्रहः । एवं

चतुश्चत्वारिंशद्विलसदुपचारैरधिमितै-

र्मनः पद्मे भक्त्या बहिरपि च पूजां शुभकरीम् ।

करोति प्रत्यूषे निशि दिवसमध्येऽपि च पुमा-

न्प्रयाति श्रीमृत्युंजयपदमनेकाद्भुत्तपदम् ॥

इति श्रीमद्भगवत्पादीयश्रीमृत्युंजयमानसपूजाद्युक्ताश्चतुश्चत्वारिंशदा-
दयोऽपि ते । इह तु तैत्तिरीयपुरुषसूक्तस्याष्टादशर्चत्वात्तदनुकूलाः
पाराशरपुराणोक्ता अष्टादशोपचारा एवानुष्ठेयतया संमता इति ध्येयम् ।
अथोपचारद्रव्याण्युपचारक्रमेणैव । तत्राऽऽवाहनस्थाने ध्यानस्य सत्त्वा-
त्सह पुष्पोदकेनेति बोधायनोक्तावाहनद्रव्यं पुष्पोदकं ध्याने कल्पयेत् ।
तच्च पुष्पविशिष्टमुदकं बोध्यम् । आसनं च दर्भमयम् । तदुक्तमेवाऽऽ-
चाररत्ने देवीपुराणे—

* आचाररत्न इत्यधिकम् ।

पाद्ये श्यामाकटुर्वा च विष्णुकान्तादिरिष्यते ।
विल्वरक्ताक्षतैः पुष्पैर्दधिर्दूर्वाकुशैस्तिलैः ॥
सामान्यः सर्वदेवानामर्घ्योऽयं परिकीर्तितः । इति ।

रक्तमत्र देशभाषायां केशरेति प्रसिद्धं काश्मीरमेव कुङ्कुमापरनामकं
ग्राह्यम् । रक्तोऽनुरक्ते नील्यादिरञ्जिते लोहिते त्रिषु । क्लीबं तु कुङ्कुम
इति मेदिनीवचनात् ।

पूजासारे—जातीलवङ्गकङ्कोलद्रव्याण्याचमनीयके । इति ।
सुधानिधौ—इक्षुर्मधु घृतं चैव पयो दधि सहैव तु ।
प्रस्थप्रमाणं वा ग्राह्यं मधुपर्कमिहोच्यते ॥

धर्मप्रश्ने—दधि मधुसःसृष्टं मधुपर्कः पयो वा मधुसःसृष्टमभाव उद-
कम् । इति । दधिपयसोरभाव उदकम् । अन्यत्स्पष्टम् । अयमेवेष्टोऽ-
स्माकं सूत्रोक्तत्वात् । आचाररत्ने बृहन्नारदीये—

वादित्राणामभावे तु पूजाकाले च सर्वदा ।
घण्टाशब्दो नरैः कार्यः सर्ववाद्यमयी यतः ॥

पाद्ये वैशाखमाहात्म्ये—

चन्दनोशीरकर्पूरकुङ्कुमागरुवासितैः ।
सतिलैः स्नापयेन्मन्त्री नित्यदा विभवे सति ॥

स्कान्दे—क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम् ।
घृताद्दशगुणं क्षौद्रं क्षौद्रादप्यैक्षवं तथा ॥ इति ।

ऐक्षवं शर्करा । एवं पञ्चासृतस्नानादौ ताम्रपात्रे गव्याभिषेको न
निषिद्धः । तदुक्तमाचाररत्ने परिभाषासु षट्त्रिंशन्मते—

स्नानतर्पणदानेषु ताम्रे गव्यं न दुष्यति ।
होमकार्ये तथा दोहे पाके च परिवेषणे ॥ इति ।

केचित्तु—देवार्चने पञ्चगव्ये ताम्रे गव्यं न दुष्यति ।

इति होमकार्य इत्येतस्यैवोत्तरार्धमाहुः । एवं च ताम्रे गव्यं सुरासम-
मित्यादिवचनं तु पानादिपरम् । अतो देवं पञ्चासृतस्नानाद्यूर्ध्वं शुद्धोद-
केन संक्षाल्य ततः पात्रान्तरे शुद्धजलाभिषेकं विधाय तदेव तीर्थं ग्राह्य-
मिति हृदयम् । दोहपाकपरिवेषणेषु यद्यपि ताम्रे गव्याभ्यनुज्ञाऽस्त्येव
तथाऽपि शिष्टाचारविरहादिदं देशान्तरविषयमेव ज्ञेयमिति । नारसिंहे—

यः पुनः पुष्पतैलेन संस्नापयति केशवम् ।

दिव्यौषधियुतेनापि तस्य प्रीतो भवेत्सदा ॥ इति ।

शिवगीतायाम्—गन्धोदकेन वा मां यो रुद्रमन्त्रमनुस्मरन् ।

अभिषिञ्चेत्ततो नान्यः कश्चित्प्रियतरो मम ॥ इति ।

आदित्यपुराणे—संछाद्य सितवस्त्रेण लिङ्गसंशोधितैर्जलैः ।

सुवर्णताम्ररजतपात्रस्थैः शङ्खसंस्थितैः ॥

यद्वा नूतनसुत्पात्रसंस्थितैः स्नापयेच्छिवम् । इति ।

इदं वस्त्राच्छादनं पारदपार्थिवादिलिङ्गविषयमेव । तत्रैव जलधार-
याऽवयवरक्षणसंभवाद्वाणलिङ्गादौ तु जलधारा शिवप्रियेतिवचनात्सा-
क्षात्तत्संयोगस्यैवेष्टत्वात्तथैव शिष्टाचाराच्च । मागवते एकादशस्कन्धे—
स्वर्णधर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ।

पौरुषेणापि सूक्तेन सामनीराजनादिभिः ॥ इति ।

मामभिषिञ्चेदिति शेषः । ततो वस्त्रादिना मलादिमार्जनं कुर्या-
न्नाङ्गुष्ठादिना । नाङ्गुष्ठैर्मार्जयेद्देवानिति गोवर्धनाह्निके विष्णुधर्मोत्तरे
निषेधात् । प्रतिमादौ स्नानविशेषमाह ध्यासः—

प्रतिमापटयन्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत् ।

कारयेत्पर्वदिवसे यदि वा मलधारणे ॥ इति ।

तत आचाररत्नेऽग्निपुराणे—

दुकूलपट्टकौशेयकार्पासराङ्गुवादिभिः ।

वासोभिः पूजयेद्देवं सुशोभैरात्मनः प्रियैः ॥

यज्ञोपवीतदानेन सुरेभ्यो ब्राह्मणाय वा ।

भवेद्विप्रश्चतुर्वेदी शुद्धधीर्नात्र संशयः ॥

नन्दीपुराणे—अलंकारं च यो दद्याद्विप्राय च सुराय च ।

सोमलोके रमित्वा स विष्णुलोके महीयते ॥

वस्त्रोपवीतालंकरणानि तान्येव पुनर्देयानि ।

न निर्माल्यं भवेद्द्वयं स्वर्णरत्नादिभूषणम् ॥ इति ।

उपवीतमपि प्रत्यहं नापूर्वं समत्वादिति हरनाथ इत्याचाररत्ने ।

पाद्रे—गन्धेभ्यश्चन्दनं पुण्यं चन्दनादगरुर्वरः ।

कृष्णागरुस्ततः श्रेष्ठः कुङ्कुमं तु ततो वरम् ॥ [इति ।

+ धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थः स पुस्तके नास्ति ।

गन्धपात्रे विशेष आचारकिरणे स्कान्दे—

विलेपयति देवेशं शङ्खे कृत्वा तु चन्दनम् ।

पदं गत्वा परां प्रीतिं करोति शतवार्षिकीम् ॥ इति ।]

श्यामाऽपि तुलसी विष्णोः प्रिया गौरी विशेषतः ।

इति ग्रन्थान्तरेऽपि । आचारकिरणे गारुडे—

तुलसीमञ्जरी ग्राह्या तदभावे तु पल्लवः ।

तदभावे तु पत्रं स्यात्तदभावे तु काष्ठकम् ॥

तदभावे तु मूलं स्यात्तदभावे तु मृत्तिका ।

मृत्तिकाया अभावे तु तुलसीशब्द उच्यते ॥ इति ।

लिङ्गार्चनचन्द्रिकायां ब्रह्माण्डपुराणे—

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण बिल्वपत्रैः शिवार्चनम् ।

करोति श्रद्धया यस्तु स गच्छेद्देश्वरं पदम् ॥

नित्यमार्द्रिरनाविद्धैर्बिल्वपत्रैः सदाशिवम् ।

पूजयस्व सदा देवं तस्मान्मा प्रमदो भव ॥ इति ।

तदलाभे तत्रैव शिवरहस्ये—

शुष्कैः पर्युषितैः पत्रैरपि बिल्वस्य नारद ।

पूजयेद्भिरिजानाथमलाभे यत्नतो नरः ॥ इति ।

सर्वथाऽलाभेऽपि तत्रैव नारदीये—

सर्वेभ्यश्चैव पत्रेभ्यो बिल्वपत्रं विशिष्यते ।

दिने दिने तु दातव्यं शोधयित्वा पुनः पुनः ॥

सप्तरात्रमतिक्रम्य निर्माल्यत्वं प्रपद्यते ॥ इति ।

अनुकल्पोऽप्याचाररत्ने बिल्वाष्टके—

तुलसीं बिल्वनिर्गुण्डी जम्बीरामलकं तथा ।

पञ्चबिल्वमिति प्रोक्तं प्रशस्तं शंकरार्चने ॥ इति ।

[*बिल्वपत्रसमर्पणप्रकारस्तूक्तोऽथर्ववेदीयबिल्वोपनिषदि—

उत्तानबिल्वपत्रं च यः कुर्यान्मम मस्तके ।

मम सायुज्यमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ इति ।

उत्तानबिल्वपत्रेण पूजयेत्सर्वसिद्धये ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बिल्वपत्रैः सदाऽर्चयेत् ॥ इति च ।

अत्र सायुज्यसर्वसिद्धिसदापदैः क्रमान्मुमुक्षुकामुकमित्यादिमात्रानु-
ष्ठायिजीवन्मुक्तानामपि बिल्वदलकरणकशिवार्चनं विहितम् ।] स्याज्य-
पुष्पाणि तत्रैव विष्णुधर्म—

रक्तान्यकालजातानि चैत्यवृक्षोद्भवानि च ।

श्मशानजातपुष्पाणि नैव देयानि कर्हिचित् ॥ इति ।

चैत्यं बौद्धस्थानम् । तत्रस्थवृक्षोद्भवानि । तत्रैव विष्णुरहस्ये—

न शुष्कैः पूजयेद्देवं कुसुमैर्न महीं गतैः ।

न विशीर्णदलैः स्पष्टैर्नाशुभैर्नाविकासिभिः ॥ इति ।

अशुभैः शूद्रादिभिः स्पष्टैः कुसुमैर्देवं न पूजयेदिति योजना । अवि-
कासिभिरिति विकासहीनैः कुड्मलैरित्यर्थः । तत्र प्रतिप्रसवस्तु प्रागेव
पुष्पानयनप्रस्तावे—

कुड्मलैर्नार्चयेद्देवं चम्पकैर्जलजैर्विना ।

इत्युक्तो बोध्यः । तत्रापि विशेषान्तरमाचाररत्ने तत्त्वसारसंहितायाम्—

यद्वा पर्युषितैश्चापि पुष्पाद्यैरविकारिभिः ।

गन्धोदकेन चैतानि त्रिः प्रोक्ष्यैव प्रपूजयेत् ॥

पर्युषितत्वाभावः शिवरहस्ये—

जलं पर्युषितं त्याज्यं पत्राणि कुसुमानि च ।

तुलस्यगस्तिबिल्वानि गङ्गावारि न दुष्यति ॥ इति ।

किं च—न शिवं केतकीपुष्पैर्न तुलस्या विनायकम् ।

न गन्धेर्द्धारकाचक्रं नाक्षतैर्विष्णुमर्चयेत् ॥

इति वचनात्तथैवाऽऽचाराच्च शिवादेः केतक्यादि वर्ज्यम् । विष्णवा-
दीनामक्षतादिप्रदाननिषेधस्त्वाचारकिरणे भविष्ये—

नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणेश्वरम् ।

दूर्वाभिर्नार्चयेद्दुर्गां केतकैर्न महेश्वरम् ॥

अत्र विष्णुपदं शालिग्रामपरम् ।

शालिग्रामशिलामेव नाक्षतैरर्चयेद्विजः ।

इति विष्णुक्तेरिति । मूर्तिभेदेन वर्ज्यं ग्रन्थान्तरे—

कुन्दं मुकुन्दे तुलसी गणेशे धत्तूरबिल्वं तगरं तथाऽर्के ।

दूर्वार्कभृङ्गं जगदम्बिकायां वर्ज्यं शिवे केतकशङ्खवारि ॥ इति ।

[*इदं वचनमेव निर्मूलमिति केचित् ।] एतान्येव त्यक्त्वाऽन्यानि मोगरेतिदेशभाषाप्रकटमल्लिकादीनि पुष्पाणि सर्वसामान्यानि ज्ञेयानि ।

पुष्पदानप्रकारस्त्वाचारकिरणे—

मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत् ।

अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां निर्माल्यमपनोदयेत् ॥ इति ।

विशेषस्त्वाचाररत्ने द्रष्टव्यः । धूपे मत्कृतार्याः—

कस्तूरिका कचूरः प्रोच्चौ चन्दनशिलारसौ तद्वत् ।

निर्मांसं घृतभर्जितमपि च नखं गान्धिकेषु विख्यातम् ॥

मांसी मुस्ता कृष्णागरु चाप्येकैकभागसंवृद्ध्या ।

संचूर्ण्य च नवभागो माहिषगुग्गुलुरिहैकतां नीत्वा ॥

दश भागामत्र सितां क्षिप्त्वा वट्यो विधाय शुद्धजलैः ।

निर्वातातपशोष्याः कृत्वा दृष्टः शुभो दशाङ्गोऽयम् ॥

कस्तूर्यभावतोऽथ तु योज्यं विबुधैर्लवङ्गमेव शुभम् ।

सर्वानपि देववरान्धूपस्त्वाघ्रापणीयोऽयम् ॥ इति ।

पादौ—धूपं चाऽऽरार्तिकं विष्णोः कराभ्यां यः प्रवन्दते ।

कुलकोटिं समुद्धृत्य याति विष्णोः परं पदम् ॥ इति ।

नारसिंहे—घृतेन वाऽथ तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः ।

पादौ—अनिवेद्य हरेर्भुञ्जन्सप्त जन्मानि नारकी ।

आचारार्के पादौ—नैवेद्यपात्रं वक्ष्यामि केशवाय महात्मने ।

हिरण्यं राजतं कांस्यं ताम्रं मृण्म(न्म)यमेव च ॥

पालाशं पद्मपत्रं वा ज्ञेयं विष्णोरति प्रियम् ।

हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम् ॥

नैवेद्यं देवदेवाय पाचकं पायसं तथा ।

नैवेद्यवस्त्वलाभे तु फलानि विनिवेदयेत् ॥

फलानामप्यलाभे तु तृणगुल्मौषधीरपि ।

ओषधीनामभावे तु तोयान्यपि निवेदयेत् ॥ इति ।

उपलक्षणमिदमनिषिद्धयावत्पद्मसवस्तूनाम् । अत्र ताम्रपात्रमुक्त-
मपि नेच्छन्ति शिष्टाः । आपस्तम्बाह्निके—

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः ख. पुस्तके—ज्ञेयानीत्यतः परं वर्तते ।

बाणलिङ्गे स्वयंजाते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते ।
चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शंभोर्नैवेद्यभक्षणम् ॥

यः शिवे निषेध उक्तः स च व्यवस्थितस्तत्रैव यथा—
अग्राह्यं शिवनिर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
शालिग्रामस्य संसर्गात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥
तथा च—ज्योतिर्लिङ्गं विना लिङ्गं यः पूजयति मानवः ।
तस्य नैवेद्यनिर्माल्यभक्षणात्तप्तकृच्छ्रकम् ॥

अन्यदपि—यत्र चण्डाधिकारोऽस्ति न भोक्तव्यं च मानवैः ।
चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तितः ॥

तत्रैवाग्निपुराणे—बाणलिङ्गे चले लोहे सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ।

प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतः सदा ॥ इति ।

न दोषो माल्यधारण इति पाठं विलिख्य निर्माल्यधारण इत्यर्थ इति
लिङ्गार्चनचन्द्रिकायामुक्तम् ।

प्रतिमासु च सर्वासु न दोषो माल्यधारणे ।

इति पाठान्तरं दृष्टमाचाररत्ने । एवं बाणलिङ्गे च लोहे चेति
प्रतिष्ठामयूखे त्रिविक्रमपाठः ।

स्कान्दे—ताम्बूलानां किसलयं दत्त्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ।

भविष्ये—फलं च क्वाथितं विद्धं कृमिभिस्तद्विवर्जयेत् ।

यत्त्वपक्रमपि ग्राह्यं कदलीफलमुत्तमम् ॥

गोवर्धनाह्निके विष्णुपुराणे—

महत्फलं ततो दद्यात्ततो दद्यात्तु दक्षिणाम् ।

गणेशपुराणे पूजायाम्—

न्यूनातिरिक्तपूजायाः संपूर्णफलहेतवे ।

दक्षिणां काञ्चनीं देव स्थापयामि तवाग्रतः ॥ इति ।

केदारखण्डे—आरार्तिकं सकर्पूरं ये कुर्वन्ति दिने दिने ।

ते प्राप्नुवन्ति सायुज्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ इति ।

विष्णुधर्मे—गीतवादित्रदानेन सौख्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।

प्रेक्षणीयकदानेन रूपवानभिजायते ॥

[*प्रेक्षणीयं नृत्तम् । हलायुधे—

* धनुश्चिह्नान्तर्गतो ग्रन्थः क. पुस्तके नास्ति ।

एकहस्तप्रणामश्च एका चैव प्रदक्षिणा ।

अकाले दर्शनं शंभोर्हन्ति पुण्यं पुरा कृतम् ॥]

चन्द्रिकायाम्—उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसाऽपि धियाऽपि च ।

पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ॥ इति ।

मनसा वचसा तथेति पाठः साधुः । प्रतिमास्थानेष्वप्स्वग्नावावाह-
नविसर्जनवर्ज्यं सर्वं समानमिति बोधायनस्मरणात्तत्स्थानापन्नपुष्पा-
ञ्जलौ तदीयविनियोगो बोध्यः । तथा च मट्टोजिदीक्षिताह्निके विधाने—

आवाहनऋचा दद्यात्पूर्वं पुष्पाञ्जलिं हरेः ।

तस्यैवोन्मुखताप्राप्त्यै तथा चोद्वासने ऋचा ॥

अन्ते पुष्पाञ्जलिं दद्याद्यागसंपूर्तिसिद्धये ॥ इति ।

तानि च देवताभेदेन संक्षेपतः संगृह्यन्ते । तत्रादौ शिवप्रियाणि
यथाऽऽचाररत्ने केदारखण्डे—

करवीराद्दशगुणमर्कपुष्पं विशिष्यते ।

अर्कपुष्पाद्दशगुणं धत्तूरं हि विशिष्यते ॥

चम्पकं नागपुष्पं च कल्लारं च विशिष्यते ।

नीलोत्पलं च कल्लारात्सहस्रेण विशिष्यते ॥

तथा—केतकानि कदम्बानि रात्रौ देयानि शंकरे ।

दिवा शेषाणि पुष्पाणि दिवा रात्रौ च मल्लिका ॥

प्रत्येकमुक्तपुष्पेषु दशसौवर्णिकं फलम् ।

मन्त्रान्वितेषु तेष्वेव द्विगुणं फलमिष्यते ॥

बिल्वपत्रैरखण्डैस्तु यो लिङ्गं पूजयेत्कचित् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ इत्यादि ।

विष्णुप्रियाणि यथा तत्रैव नारासिंहे—

दश दत्त्वा सुवर्णानि यत्फलं लभते नरः ।

तत्फलं लभते विष्णोर्द्रोणपुष्पप्रदानतः ॥

द्रोणपुष्पसहस्रेभ्यः खादिरं पुष्पमुत्तमम् ।

खादिरात्पुष्पसाहस्राच्छमीपुष्पं विशिष्यते ॥

शमीपुष्पसहस्राद्धि बिल्वपुष्पं विशिष्यते ।

बिल्वपत्र*सहस्राद्धि बकुलं पुष्पमुत्तमम् ॥ इत्यादि ।

* क. पुस्तके समासे पुष्पेति पाठो दत्तः स एव पूर्वानुरोधायकोऽथवा पूर्वमेव बिल्व-
पत्रमिति पठनीयम् ।

सूर्यप्रियाणि तत्रैव पुष्पमालायाम्—

जातीकुन्दशमीकुशेशयकुशाशोकं बकं किंशुकं
पुन्नागं करवीरचम्पकजपानेपालिका कुब्जकम् ।
वासन्ती शतपत्रिका विचकिलं मन्दारमर्काह्वयं
पीताम्रातकनागकेसरमिदं पुष्पं रवेः शस्यते ॥
रोधं कैरवमुत्पलं च सकलं सिंहास्यकं पाटला
यूथी कुङ्कुमकर्णिकारतिलकं बाणं कदम्बं जपा ।
काशं केसरकेतकी मरुबकं द्रोणं त्रिसंध्याह्वयं
पुष्पं शस्तमिदं च पूजनविधौ सर्वं सहस्रार्चिषः ॥ इत्यादि ।

गणेशप्रियाणि—हरिताः श्वेतवर्णा वा पञ्चात्रिपत्रसंयुताः ।

दूर्वाङ्कुरा मया दत्ता एकविंशतिसंमिताः ॥

इति गणेशपुराणे । एवं शमीपत्राणि मन्दारपुष्पाण्यपि च ।

आचाररत्ने पाद्रे—न बिल्वेनार्चयेद्भानुं न केतक्या महेश्वरम् ।

नाक्षतैः पूजयेद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम् ॥ इति ।

कार्तिकमाहात्म्ये—गणेशं तुलसीपत्रैर्दुर्गां नैव तु दूर्वया ॥ इति ।

शातातपः—देवीनामर्कमन्दारौ सूर्यस्य तगरं तथा ॥ इति ।

वर्जयेदिति शेषः । एवं च तुलसीं वर्जयित्वा सर्वाण्यपि पत्रपुष्पाणि
गणपतिप्रियाण्येव । अवर्जनात् । देवीप्रियाणि यथा । तत्र देवीपुराणे—

शृणु शक्र प्रवक्ष्यामि पुष्पाध्यायं समासतः ।

ऋतुकालोद्भवैः पुष्पैर्मल्लिकाजातिकुङ्कुमैः ॥

सितरक्तैश्च कुसुमैस्तथा पद्मैश्च पाण्डुरैः ।

किंशुकैस्तगरैश्चैव किंकिरातैः सचम्पकैः ॥

बकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैस्तिरीटकैः ।

करवीरार्कपुष्पैश्च शांशिपैश्चापराजितैः ॥ इत्यादि ।

देवीमर्चयेदिति शेषः । पूजान्ते जपः कार्यस्तदुक्तं लिङ्गार्चनचान्द्रि-
कायां शिवरहस्ये—

कर्तव्यः शिवपूजान्ते पञ्चाक्षरजपो द्विजैः ॥ इति ।

पूजासंभारस्थापनप्रकारस्तु गोवर्धनाह्निके—

अग्रोदकं न्यसेद्दामे गन्धपुष्पादि दक्षिणे ।

अग्रेऽर्घ्यं पार्श्वतो दीपं फलादीनि यथारुचि ॥ इति ।

स्तोत्रपाठश्लोक्तः स्फुटसंग्रहे—

स्वशाखोपनिषद्गीता विष्णोर्नामिसहस्रकम् ।

श्रीरुद्रं पुरुषसूक्तं च नित्यमावर्तयेद्गृही ॥ इति ।

गीताऽत्र भगवद्गीतैव । भीष्मपर्वणि या गीता सा प्रशस्ता कलौ
स्मृता । इति वचनात्तत्रैव भाष्यसत्त्वाच्च । शिवपूजायां विशेषो लैङ्गे—

विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया ।

पूजितोऽपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥

तस्मान्मृदाऽपि कर्तव्यं ललाटे वै त्रिपुण्ड्रकम् ।

हस्ते चोरसि कण्ठे यः शिरसा चैव धारयेत् ॥ इति ।

रुद्राक्षमालयेत्युपलक्षणम् । तेन ग्रन्थान्तरोक्तसहस्ररुद्राक्षधारणं
कार्यम् । तदभावे तु ब्रह्मोत्तरखण्डे—अभावे तु सहस्रेत्यादि । इममेवार्थं
संगृह्याऽऽह बोपदेवः—

रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे

षट्षट्कर्णप्रदेशे करयुगुलगतान्द्वादश द्वादशैव ।

बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगपि च शिखासूत्रयोरेकमेकं

वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥ इति ।

तेषां मुखमाहात्म्यं त्वाचाररत्ने शिवरहस्ये—

एकवक्त्रः शिवः साक्षात् । इति ।

पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निः सर्वपापप्रणाशकृत् । इत्यादि ।

एतन्मूलीमूतः श्रौतो विस्तरस्तु बृहज्जाबालोषनिपद्येव सप्रपञ्चं
दृष्टव्यः सर्वः । पूजायां दिङ्मुखनियमो गौतमेनोक्तः—

रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद्देवकार्यं सदैव हि ।

शिवार्चनं सदा चैवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः ॥ इति ।

अत्र माधवीये बोधायनसूत्रम्—अथातो महादेवस्याहरहः परिच-
र्याविधिं व्याख्यास्यामः स्नात्वा शुचौ देशे गोमयेनोपलिप्य प्रतिकृतिं
कृत्वाऽक्षतपुष्पैर्यथालाभं समर्चयेत्सह पुष्पोदकेन महादेवमावाहयेत् ।
ॐ भूर्महादेवमावाहयाम्यो भुवर्माहादेवमावाहयाम्यो स्वर्माहादेवमावा-
हयाम्यो भूर्भुवः स्वर्माहादेवमावाहयामीत्यावाह्याऽऽयातु भगवान्महादेव
इत्यथ स्वागतेनाभिनन्दयति स्वमतमनुस्वागतं भगवते महादेवायैतत्स्वा-
सनं कृत्वास्तां भगवान्महादेव इत्यत्र कूर्चं निददाति । भगवतोऽयं
कूर्चो दर्भमयस्त्रिवृद्धरितसुवर्णस्तं जुषस्वेत्यत्र स्थानानि कल्पयत्यग्रतो

ब्रह्मणे कल्पयामि विष्णवे कल्पयामि दक्षिणतः स्कन्दाय कल्पयामि
 विनायकाय कल्पयामि पश्चिमतः शूलाय कल्पयामि महाकालाय
 कल्पयाम्युत्तरतो दुर्गायै कल्पयामि नन्दिकेश्वराय कल्पयामीति कल्प-
 यित्वा सावित्र्या पात्रमभिमन्त्र्य प्रक्षाल्य तिरःपवित्रमप आनीय सप-
 वित्रेणाऽऽदित्यं दर्शयेदोमित्यूतमिति त्वरितरुद्रेण पाद्यं दद्यात्प्रणवे-
 नार्घ्यमथ व्याहृतिभिर्निर्माल्यं व्यपोह्योत्तरतश्चण्डाय नम इत्यथैनं स्थाप-
 यित्वाऽऽपो हि ष्टा मयोभुव इति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका
 इति चतसृभिः पवमानः सुवर्जन इत्येतेनानुवाकेन स्नापयित्वाऽद्भिस्त-
 र्पयति । भवं देवं तर्पयामि । शर्वं देवं तर्पयामि । ईशानं देवं तर्पयामि ।
 पशुपतिं देवं तर्पयामि । रुद्रं देवं तर्पयामि । उग्रं देवं तर्पयामि । भीमं
 देवं तर्पयामि । महान्तं देवं तर्पयामि । इति तर्पयित्वाऽथैतानि वस्त्रयज्ञो-
 पवीताचमनीयान्युदकेन व्याहृतिभिर्दत्त्वा व्याहृतिभिः प्रदक्षिणमुदकं
 परिषिच्य नमस्ते रुद्र मन्यव इति गन्धं दद्यात्सहस्राणि सहस्रश इति
 पुष्पं दद्यादीशानं त्वा भुवनानामधिश्रियमित्यक्षतान्दद्यात्सावित्र्या धूप-
 मुद्दीप्यस्वेति दीपं देवस्य त्वा इति भगवते महादेवाय जुष्टं चरुं निवे-
 द्यामीति नैवेद्यम् । अथाष्टाभिर्नामभिरष्टौ पुष्पाणि दद्यात् । भवाय
 देवाय नम इत्यादि ८ । ब्रह्मणे नमो विष्णवे नमः स्कन्दाय नमो विनायकाय
 नमः शूलाय नमो महाकालाय नमो दुर्गायै नमो नन्दिकेश्वराय नम इति
 चरुशेषेणाष्टाभिर्नामधैरष्टाऽऽहुतीर्जुहोति भवाय देवाय स्वाहेत्यादिभि-
 र्हुत्वाऽथ शिष्टैर्गन्धमाल्यैर्ब्राह्मणानलंकृत्याथैनसृग्यजुःसामभिः स्तुवन्ति
 सहस्राणि सहस्रश इत्यनुवाकं जपित्वाऽन्यांश्च रौद्रान्यथाशक्तीत्येके । ॐ
 भूर्भुवः स्वरो भगवते महादेवाय चरुमुद्रासयामीत्युद्रास्योद्रासनकाले
 ॐ भूर्महादेवमुद्रासयामीति रुद्रमुद्रास्य

प्रयातु भगवानीशः सर्वलोकनमस्कृतः ।

अनेन हविषा तृप्तः पुनरागमनाय च ॥

पुनः संदर्शनाय चेति प्रतिमास्थानेष्वप्स्वग्नावावाहनविसर्जनवर्ज्यं
 सर्वं समानम् । महत्स्वस्त्ययनमित्याचक्षत इत्याह भगवान्बोधायन इति ।

एवं केवलविष्णुभक्तैः शालिग्राम एव विष्णुपूजा कार्या । तत्प्र-
 कारोऽपि माधवीय एवं बोधायनसूत्र एव । अथातो महापुरुषस्याह-
 रहः परिचर्याविधिं व्याख्यास्यामः । स्नात्वा शुचिः शुचौ देशे गोमये-

नोपलिप्य प्रतिकृतिं कृत्वाऽक्षतपुष्पैर्यथालाभमर्चयेत्सह पुष्पोदकेन
महापुरुषमावाहयेत् । ॐ भूः पुरुषमावाहयामि ॐ भुवः पुरुषमावा-
हयामि ॐ स्वः पुरुषमावाहयामि ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषमावाहयामी-
त्यावाह्याऽऽयातु भगवान्महापुरुष इत्यथ स्वागतेनाभिनन्दयति स्वागत-
मनुस्वागतं भगवते महापुरुषायैतदासनमुपकृतमन्वास्यतां भगवान्म-
हापुरुष इत्यत्र ददाति भगवतेऽयं कूर्ची दर्भमयस्त्रिवृद्धरितसुवर्णस्तं
जुषस्वेत्यत्र स्थानानि कल्पयत्यग्रतः शङ्खाय कल्पयामि चक्राय कल्प-
यामि दक्षिणतो गदायै कल्पयामि वनमालायै कल्पयामि पश्चिमतः
श्रीवत्साय कल्पयामि गरुत्मते कल्पयाम्युत्तरतः श्रियै कल्पयामि सर-
स्वत्यै कल्पयामि पुष्ट्यै कल्पयामि तुष्ट्यै कल्पयाम्यथ सावित्र्या पात्र-
मभिमन्त्र्यापः परिषिच्याप आनीय सह पवित्रेणाऽऽदित्यं दर्शयेदोमि-
त्युदु त्यमिति स्वाप्यं त्रीणि पदा विचक्रम इति पाद्यं दद्यात्प्रणवेनार्घ्य-
मथ व्याहृतिभिर्निर्माल्यं व्यपोह्योत्तरतो विष्वक्सेनाय नम इत्यथैनं
स्नापयत्यापो हि ष्टा मयोभुव इति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः
पावका इति चतसृभिर्ब्रह्मजज्ञानं वामदेव्यर्चा यजुःपवित्रेणेत्येताभिः
स्नापयित्वा यथाऽद्भिस्तर्पयति केशवं नारायणं माधवं गोविन्दं विष्णुं
मधुसूदनं त्रिविक्रमं वामनं श्रीधरं हृषीकेशं पद्मनाभं दामोदरं तर्पयि-
त्वाऽथैतानि वस्त्रयज्ञोपवीताचमनीयान्युदकेन व्याहृतिभिर्दत्त्वा व्याहृ-
तिभिः प्रदक्षिणमुदकं परिषिच्येदं विष्णुर्विचक्रम इति गन्धं दद्यात्त-
द्विष्णोः परमं पदमिति पुष्पमिरावतीत्यक्षतान्सावित्र्या धूपमुद्दीप्य-
स्वेति दीपं देवस्य त्वेति भगवते महापुरुषाय जुष्टं चरुं निवेदयामीति
नैवेद्यमथ केशवादिनामभिर्द्वादश पुष्पाणि दद्याच्छङ्खाय नमश्चक्राय
नमो गदायै नमो वनमालायै नमः श्रीवत्साय नमो गरुत्मते नमः श्रियै
नमः सरस्वत्यै नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नम इत्यवशिष्टैर्गन्धमाल्यैर्ब्राह्मणा-
नलंकृत्याथ शिष्टैर्गन्धमाल्यैरात्मानमलंकृत्याथैनमृग्यजुःसामाथर्वभिः
स्तुवन्धुवसूक्तं जपित्वा पुरुषसूक्तं वाऽन्यांश्च वैष्णवान्मन्त्रानित्येके । ॐ
भूर्भुवः स्वर्भगवते महापुरुषाय चरुमुद्वासयामीति चरुमुद्वास्यो-
द्वासनकाले ॐ भूः पुरुषायेत्युद्वासयाम्यो भुवः पुरुषस्तेन हविषा
तृप्तो हरिः पुनरागमनाय च पुनः संदर्शनाय चेति प्रतिमास्थाने-
ष्वप्स्वप्नावावाहनविसर्जनवर्ज्यं सर्वं समानम् । महत्स्वस्त्ययनमित्याच-
क्षते महत्स्वस्त्ययनमित्याह भगवान्बोधायनः ॥ इति ।

एवं रुद्राभिषेकविषयेऽप्येतदीयमेव सूत्रम्—अथातो रुद्रस्नानार्चन-
विधिं व्याख्यास्याम आदित एव तीर्थे स्नात्वोदेत्याहतं वासः परिधाय
शुचिः प्रयतो ब्रह्मचारी शुक्लवासाः प्रतिकृतिं कृत्वा तस्या दक्षिणाप्रत्य-
ग्देशे तन्मुखः स्थित्वाऽऽत्मनि देवताः स्थापयेत्प्रजनने ब्रह्मा तिष्ठतु पादयो-
र्विष्णुस्तिष्ठतु हस्तयोर्हरस्तिष्ठतु बाह्वोरिन्द्रस्तिष्ठतु जठरेऽग्निस्तिष्ठतु हृदये
शिवस्तिष्ठतु कण्ठे वसवस्तिष्ठन्तु वक्त्रे सरस्वती तिष्ठतु नासिकयोर्वायु-
स्तिष्ठतु नयनयोश्चन्द्रादित्यौ तिष्ठेतां कर्णयोरश्विनौ देवौ तिष्ठेतां ललाटे
रुद्रास्तिष्ठन्तु मूर्धन्यादित्यास्तिष्ठन्तु शिरसि महादेवास्तिष्ठतु शिखायां
चामुण्डा तिष्ठतु पृष्ठे पिनाकी तिष्ठतु पुरतः शूली तिष्ठतु पार्श्वयोः
शिवाशंकरौ तिष्ठेतां सर्वतो वायुस्तिष्ठतु बहिः सर्वतोऽग्निज्वालामाला-
परिवृतस्तिष्ठतु सर्वेष्वङ्गेषु सर्वा देवता यथायथास्थानानि तिष्ठन्तु मा*
रक्षन्त्वग्निर्मे वाचि श्रित इत्याद्यङ्गदेवताभिर्यथालिङ्गमङ्गानि संस्पृश्या-
थैनं प्रसाधयति—आराधितो मनुष्यैस्त्व* सिद्धैर्देवासुरादिभिः ।

आराधयामि भक्त्या त्वां मां गृहाण परमेश्वर ॥

त्रियम्बकं यजामह इति चाथैनमावाहयति—

आ त्वा वहन्तु हरयः सचेतसः श्वेतैरश्वैः सह केतुभिः ।

वाताजवैर्बलवद्भिर्मनोजवैरायाहि शीघ्रं मम हव्याय शर्वोम् ॥

इति स्थापितेनाऽऽवाहनमथास्मा आसनं ददाति सद्यो जातमिति
भवे भव इति पाद्यं भवोद्भवाय नम इत्यर्घ्यं रुद्राय नम इत्याचमनीय-
मथैनं स्नापयत्यापो हि ष्टा मयोभुव इति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः
पावका इति चतसृभिः पवमानः सुवर्जन इत्येतेनानुवाकेन ब्रह्म जज्ञानं
कहुद्राय सर्वा वै कया नश्चित्र आपो वा इदमित्येतैर्वामदेवाय नम इति
च ज्येष्ठाय नम इति वस्त्रयज्ञोपवीते श्रेष्ठाय नम इति मधुपर्कं रुद्राय
नम इत्याचमनं कालाय नम इति गन्धं कलविकरणाय नम इत्यक्षता-
न्बलविकरणाय नम इति पुष्पं बलाय नमो(म इति) धूपं बलप्रमथनाय
नम इति दीपं सर्वभूतद्वनाय इति नैवेद्यं मनोन्मनाय नम इति
ताम्बूलं ददात्यथास्य रुद्रतनूरुपतिष्ठतेऽघोरेभ्य इत्यथ रुद्रगायत्रीं जपे-
त्तत्पुरुषाय विद्मह इत्येतां सहस्रकृत्व आवर्तयेच्छतकृत्वोऽपरिमितकृत्वो
वा दशवारमथैनमाशिषमाशास्त ईशानः सर्वविद्यानामित्यथैतस्य मूर्ध्नि
कलशधारया संततमभिषिञ्चति नमस्ते रुद्रमन्यव इत्येकादशानुवाका-

अपेत्सद्यो जातमिति पञ्चानुवाकानिमा रुद्रायेति द्वादशचर्मन्यांश्च रुद्रमन्त्रान्यथाशक्ति जपेदेवमेकादशकृत्वोपजपेज(ज्ज)पान्तेऽग्नाविष्णु सजोषस इत्येकादशानुवाकानामेकैकं जपेत्सर्वेषामन्ते पुनराराधयेदे- तदुक्तमाराधनं तदेतद्बुद्धसन्नाचनविधि पापक्षयार्थी व्याधिविमोचनार्थी श्रीकामः शान्तिकामो मोक्षकाम आरोग्यकामश्च कुर्यादेवं कुर्वन्नेतत्सर्व- माप्नोति पायसादिमहाहविर्निवेद्यं दद्यादाचार्याय दक्षिणां ददाति दश गाः सवत्साः स्वर्णभूषिता ऋषभैकाधिकास्तदलाभ एकां गां दक्षिणां दद्यादित्याह भगवान्बोधायनः । इति ।

अथात्र को वा देवः पूज्योऽहरहर्ब्राह्मणैः किं बाणलिङ्गाख्यप्रतीके भगवाञ्जिहव एवाथ वा शालिग्रामाख्यप्रतीके भगवान्विष्णुरेव । किं वाऽन्यतरः कोऽपि किं वोभावपि तत्रापि किं सहैवोत क्रमेण वा । तत्रापि किं प्रधानगुणभावेन साम्येन वा । आद्येऽपि किं हरः प्रधानं हरिर्वा । किं च किं पञ्चायतनदेवताः सर्वा अपि परमेश्वरत्वेन तत्तत्प्र- तीकेषु पूज्यास्ता अपि व्यस्ताः समस्ता वेति संशयः । तथातथा- वचनसद्भावात् । तथा हि—बाणलिङ्गानीत्यादिवचनैर्बाणलिङ्गाव- च्छेदेन कलौ देवो महेश्वर इति वचनाच्छिव एवेति प्रतीयते । एवं शालग्रामशिला यत्रेत्यादिवचनैः शालग्रामावच्छेदेन न विष्ण्वारा- धनात्पुण्यमित्यादि कौर्मात् । कलौ कलिमलध्वंसं सर्वपापहरं हरिम् । येऽर्चयन्ति नरा नित्यमित्यादिमहाभारतोक्तेश्च हरिरेवेति । तद्वन्न विष्ण्वाराधनात्पुण्यमित्यादिवाक्योत्तरमेवाथ वा देवमीशानमित्यादि- वाक्यगताऽथ वेतिशब्दस्वारस्यादन्यतरपक्षोऽपि । एवं कलौ हरिह- रयोः पूजा प्रशस्ता, इति प्रतिज्ञायैव भट्टोजिदीक्षितैः कलौ कलिमल- ध्वंसमित्यारभ्य कलौ देवो महेश्वर इत्यन्तग्रन्थात्मकमहाभारतस्योदा- हृतत्वादुभयपक्षोऽपि । तथाऽग्राह्यं शिवनिर्माल्यमित्युपक्रम्य शालिग्रा- मस्य संसर्गात्सर्वं याति पवित्रतामित्यग्रे समुदाहृतवचनात्संसर्गस्य साहित्यमन्तरा प्रायेणासंभवात्साहित्यपक्षोऽपि । एवं माधवसंगृहीत- बोधायनसूत्रीयखण्डद्वयस्य प्रकृते संग्रहात्क्रमोऽपि । तद्वन्माधवीय एव हरिपरिचर्याखण्डमादौ संगृह्य तदुत्तरं हरिपरिचर्याखण्डं संगृहीतमिति तत्र हरेः प्राधान्यं हरस्य गुणत्वं भवता तु तद्विपरीतं संगृहीतमिति तथै- वासौ गुणप्रधानभावोऽपि । तथाऽन्यतरपक्षव्यञ्जकमुदाहृतमथ वेति

कौर्मवाक्यमेव पर्यालोचितं चेत्साम्यमपि । एवं बोधायनसूत्र एव शिव-
पूजाङ्गत्वेन हरेरुक्तत्वाच्छिवस्यैव प्राधान्यप्रतीतिर्माधवाचार्यैस्तु हरि-
पूजाखण्डस्यैव प्रथमसंगृहीतत्वात्तस्यैव प्राधान्यप्रतीतिरिति प्राधान्य-
संदेहोऽपि । तद्वद्दर्शनभेदमाश्रित्य विष्णुशंकरादिभेदोपन्यास इत्यादि
माधवाचार्यवचनं भवतैवोपन्यस्य तत्संगृहीतो दर्शनभेदश्लोकोऽपि
शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा ।

इत्यादिः संलिखित इति पञ्चायतनदेवता अपीश्वरत्वेन तत्तत्प्रती-
केषु समर्च्यत्वेन प्रतीयन्त इति । तत्रापि व्यस्तसमस्तार्चनविशयः स्फुट
एवेति । सत्यमेवं तथाप्यत्र निर्णयस्तु श्रीमन्माधवाचार्यतात्पर्यं पर्यालो-
च्यैव कार्यस्तेषामेव सर्वशास्त्रतात्पर्यज्ञधुरंधरत्वेन सकलवैदिकसांप्रदायि-
काशिष्टसंमतत्वात् । तच्च तेषां तात्पर्यं यथा—तैस्तावदथ मूलवचनोक्तं
क्रमप्राप्तं देवपूजनं निरूप्यत इति प्रतिज्ञाय तत्र नृसिंहपुराणे जलदेवा-
न्नमस्कृत्येत्यादिना पुरुषसूक्तेन विष्णुसमर्चन एव प्रथमं विधिमुक्त्वाऽऽ-
ग्नेयपुराणेऽपीत्यादिनाऽनेकदेवार्चनमुपन्यस्य यद्यपि पूर्ववचनव्याख्यान
इत्यादिना विष्णुशंकरादिभेदोपन्यासो न विरुध्यत इत्यविरोधावसरे
विष्णुमेव प्राथम्येन गृहीत्वा दर्शनभेदश्च पुराणसारे वर्णितः । शैवं च
वैष्णवमित्यादिदर्शनभेदमुपन्यस्य तत्र वैष्णवदर्शनानुकारी पूजाक्रम
आश्वमेधिके निरूपित इति प्रतिज्ञावाक्येऽनुकारिपदेन तन्त्रवर्त्मच्छायां
वक्ष्यमाणपूजाक्रमे संसूच्य शृणु पांडवेत्यादिना मामेवं चार्चयेद्बुध
इत्यन्तग्रन्थेन तथाऽऽग्नेयेऽप्यर्चनं संप्रवक्ष्यामीत्यादिना षण्मासात्सि-
द्धिमाप्नोति ह्येवमेव समर्चयेत् । ध्येयः सदा सवितृ० चक्र
इत्यन्तग्रन्थेन तथैव षोडशर्चपुरुषसूक्तन्यासादिपूर्वककाम्यपूजाविधि-
मुक्त्वा बोधायनोऽपीत्यत्रापिना बोधायनसूत्रोक्तनित्यकाम्यपूजाविधा-
षपि तथात्वं विद्योत्य न विष्ण्वाराधनादित्यादिकूर्मपुराणवा-
क्याभ्यां वैदिकमिति विशेषणाच्छुद्धवैदिकविधिनैव विष्ण्वाराधनस्य
नित्यत्वं विधायाथ वा देवमीशानमित्यादिना शिवमित्यन्तेन कौर्म-
ग्रन्थेनैवाथ वेतीश्वरत्वेनाभिन्नत्वादन्यतरपक्षसूचनतस्तादृशं शिवपूजा-
विधिमुपन्यस्य तथा निरुक्तं बोधायनसूत्रमप्युदाहृत्य शिवपूजाप्र-
शंसां विधायाकरणे दोषं चोक्त्वा तत्प्रकरणमुपसंहृतम् । तथा चैतेषां
तावदुभयोरप्यन्यूनानतिरिक्तत्वेनान्यतरपक्ष एव समुदाहृतशुद्धवैदि-

कार्चनमार्गप्रतिबोधककौर्मवाक्यगताथवेतिपदस्वारस्यान्यथानुपपत्तितः
संमत इत्यध्यवसीयते । यत एतैरेव चरमाश्रमे श्रीमद्विद्यारण्यगुरुवराभि-
धैरन्तर्याम्यधिदेवादिषु तद्भ्रमव्यपदेशादित्यधिकरणकृतविवरणान्तर्या-
मिब्राह्मणीयानुभूतिप्रकाशे—

सर्वज्ञः सर्वशक्तिश्च सर्वात्मा सर्वगो ध्रुवः ।
जगज्जन्मस्थितिध्वंसहेतुरेष महेश्वरः ॥
नारायणाभिधो मन्त्र एतस्यैवाभिधायकः ।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण शिव इत्येष गीयते ॥

इत्युक्तम् । एवमेव श्रीमन्मधुसूदनसरस्वतीश्रीचरणानामपि संमतम् ।
अत एव तैर्महिम्न(म)स्तवीयद्यर्थव्याख्यानान्तेऽभिहितम्—

हरिशंकरयोरभेदबोधो भवतु क्षुद्रधियामपीति यत्नात् ।

उभयार्थतया मयैतदुक्तं सुधियः साधुधियैव शोधयन्तु ॥ इति ।

श्रीमदप्यदीक्षितानामपि

यस्याऽऽहुरागमविदः परिपूर्णशक्ते-

रंशे कियत्यपि निविष्टममुं प्रपञ्चम् ।

तस्मैतमालरुचिभासुरकंधराय

नारायणीसहचराय नमः शिवाय ॥ इति,

उद्घाट्य योगकलया हृदयाब्जकोशं

धन्यैश्चिरादपि यथारुचि गृह्यमाणः ।

यः प्रस्फुरत्यविरतं परिपूर्णरूपः

श्रेयः स मे दिशतु शाश्वतिकं मुकुन्दः ॥

इति च शिवतत्त्वविवेकविधिरसायनाद्योर्मङ्गलमाचरतामेतदेव संमत-
मिति प्रतिभाति । तथाऽप्ययं पक्षस्तावदेको देवः सर्वभूतेषु गूढ इत्या-
दिश्रुतिसहस्रैरीश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठतीत्यादिस्मृतिसहस्रैश्च
जन्माद्यस्य यत इत्यादिन्यायैश्च श्रीमच्छंकरभगवत्पादीयरीतिकसुनि-
र्णीतनिरुक्तान्तर्यामिरूपेश्वराणामेवार्हः । तेषामेव तत्तद्भक्तैकानुग्रहार्थं
तेन शुद्धसस्वप्रधानाविद्यापरनामकमायैकमयकल्पितलीलाविग्रहरूपह-
रिहरयोरन्यतरार्चनेऽपीश्वरार्चनं संपन्नमिति ज्ञानसंभवात् । हरिहरादे-
रीश्वरलीलाविग्रहत्वमुक्तं सिद्धान्तविन्दौ । वार्तिककारमते त्वीश्वर
एव साक्षी । द्वैविध्यमेव जीवेश्वरभेदेन दृशः । तत्रेश्वरस्त्रि-

विधः । स्वोपाधिभूताविद्यागुणत्रयभेदेन विष्णुब्रह्मरुद्रभेदात् । कारणीभूतसत्त्वगुणावच्छिन्नो विष्णुः पालयिता । कारणीभूतरजउपहितो ब्रह्मा स्रष्टा । हिरण्यगर्भस्तु महाभूतकारणत्वाभावान्न ब्रह्मा । तथाऽपि स्थूलभूतस्रष्टृत्वात्कचिद्ब्रह्मेत्युपचर्यते । कारणीभूततमउपहितो रुद्रः संहर्ता । एवं चैकस्यैव चतुर्भुजचतुर्मुखपञ्चमुखाद्याः पुमाकाराः । श्रीभारतीभवान्याद्याश्च रूपाकाराः । अन्ये च मत्स्यकूर्मादयोऽनन्तावतारा लील्यैवाऽऽविर्भवन्ति भक्तानुग्रहार्थमित्यवधेयमिति । विस्तरस्तु न्यायरत्नावल्यां बोध्यः । एवं च साधनचतुष्टयसंपत्परिपाकवतां मुमुक्षूणां ब्राह्मणानामेव बाणलिङ्गशालिग्रामान्यतरावच्छेदेन प्रतिदिनं हरिहरान्यतरलीलाविग्रहावच्छिन्नचैतन्यरूपेश्वराराधनप्रकारः समुचित इति फलितम् । तत्पाकेच्छूनां तु तेषां केवलबाणलिङ्गावच्छेदेन शिवाराधन एवाधिकार इति नियम्यते । न विष्ण्वाराधनात्पुण्यमिति कौर्मवाक्ये नित्यमाराधयेद्धरिमिति नित्यतदाराधनविधायकेऽपि निरुपमपुण्यारव्यफलकथनात्काम्यत्वमपि तत्र प्रतीयत इति तस्य संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यत्वं काम्यत्वमुभयमपि सिध्यति । अथ वा देवमीशानमिति तदीयशिवाराधनविधायके वाक्ये फलगन्धस्याप्यश्रवणात्प्रणवेनाथ वा पुनरित्यनेन निरुक्ताधिकारिणां तदर्चकानां मध्ये मुमुक्षोपयुक्तसंन्यासाश्रमवत्त्वसंभावनायास्तदेकाधिकारिकप्रणवमात्रमन्त्रकरणकार्चनप्रकारोक्तेर्निवेदयीत चाऽऽत्मानं यो ब्राह्मणमितीश्वरमिति तादृङ्मुमुक्ष्वेकधर्मीभूतशरणागत्यपरपर्यायात्मनिवेदनोक्तेर्धर्यायीत देवमीशानं व्योममध्यगतं शिवमिति ।

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम् ।

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ॥

तदादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमयं महाद्भुतम् ।

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ॥

ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षितमसः परस्तात् ।

इति कैवल्यश्रुतिप्रसिद्धकैवल्यकारकध्यानविधानाच्च निरुक्तैकाधिकारिविषयता तस्य समुचितैव । अत एव

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

इत्यादिस्मृतेर्मुख्यब्राह्मणानामुक्तलक्षणमुमुक्षूणामत्रैवाधिकार इत्यभिप्रेत्य बृहज्जाबालोपनिषदि सप्रपञ्चमाघ्रायते शिवार्चनप्रकारः—

अथ ह मुसुण्डो जाबालो महादेवं साम्बं प्रणम्य पुनः पप्रच्छ किं नित्यं ब्राह्मणानां कर्म कर्तव्यं यदकरणे प्रत्यवैति ब्राह्मणः कः पूजनीयः को वा ध्येयः कः स्मर्तव्यः कथं ध्येयः क्व स्थातव्य-
मेतद्ब्रूहि समासेन तं होवाच प्रागुदयादानिर्वर्त्य शौचादिकं ततः
स्नायान्मार्जनं रुद्रसूक्तैस्ततश्चाहतं वासः परिधत्ते पाप्मनोऽपहत्यै, उद्य-
न्तमादित्यमभिध्यायन्नुद्धूलिताङ्गः कृत्वा यथा स्थानं भस्मना त्रिपुण्ड्रं
श्वेतेनैव रुद्राक्षाञ्श्वेतान्वै तत्र संमर्शस्तु यथावाऽन्ये मूर्ध्नि चत्वा-
रिंशच्छिखायामेकं त्रयं वा श्रोत्रयोर्द्वादश कण्ठे द्वात्रिंशत् । बाह्वोः
षोडश षोडश द्वादश द्वादश मणिबन्धयोः षट्षडङ्गुष्ठयोस्ततः
संध्यां कुर्यादहरहः संध्यामुपासीत । अग्निर्ज्योतिरित्यादिभिरग्नौ
जुहुयाच्छिवलिङ्गं त्रिसंध्यमभ्यर्च्य कुशेष्वासीनो ध्यात्वा साम्बं मामेव
वृषभारूढं हिरण्यबाहुं हिरण्यरूपं हिरण्यवर्णं पशुपाशविमोचकं पुरुषं
कृष्णपिङ्गलमूर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वतःसहस्राक्षं सहस्रशीर्षं सहस्र-
चरणं विश्वतोबाहुं विश्वात्मानमेकमद्वैतं निष्कलं निर्गुणं शान्तं शिव-
मक्षरमव्ययं हरिहिरण्यगर्भादिस्रष्टारमप्रमेयमनाद्यन्तं रुद्रसूक्तैरभिषिच्य
सितेन भस्मना बिल्वदलैस्त्रिशाखैराद्वैर्नार्द्वैर्वा न तत्र संमर्शस्ततः पूजा-
सनं कल्पयेच्च नैवेद्यं ततश्चैकादशगुणो रुद्रो जपनीय एकगुणो वा ततः
षडक्षरोऽष्टाक्षरो वा शैवो मन्त्रो जपनीयः । ॐ इत्यग्रे व्याहरेन्नम इति
पश्चात्ततः शिवायेत्यक्षरत्रयम् । ॐ इत्यग्रे व्याहरेन्नम इति पश्चात्ततो
महादेवायेति पञ्चाक्षराणि । इति । अत्र मार्जने तैत्तिरीयाणां रुद्रसू-
क्तानि योगवृत्त्यैवाऽऽपो हि ष्ठादिपवमानान्तान्येव । तत्र योगस्तु रवणं
रुच्छोचनमित्यर्थः । तद्रावयन्ति तन्मूलीभूतपापप्रध्वंसेन विदलयन्त्ये-
तादृशानि यानि शोभनान्युक्तानि तानि रुद्रसूक्तानीति । देवाभिषेके
तु इमा रुद्रायेत्यादि षड्ऋचात्मकं परिणो रुद्रस्येत्यादि तादृशं ब्राह्म-
णीयद्वितीयाष्टकाष्टमप्रश्नप्रसिद्धं सहस्रशीर्षादिलिङ्गैः पुरुषसूक्तं चेति
त्रीणि ग्राह्याणि । न च पुरुषसूक्तं विष्णुपरमेवेति शङ्क्यम् । शौनका-
दिस्मृतिषु तथात्वेऽपि पुरुषं कृष्णपिङ्गलमित्यादिश्रुतिषु शिवेऽपि पुरु-
षशब्दप्रयोगाच्छिवपरत्वमपि युक्तमेव । नन्वत्र ब्राह्मणावच्छेदेनैवेदं
नित्यं शिवार्चनं विहितं कथमस्य साधनचतुष्टयसंपत्परिपाकेच्छुमुमुक्षु-
ब्राह्मणाधिकारिमात्रविषयकत्वं भवता नियम्यत इति चेद्वाढम् । एता-

वताऽस्य निरुक्तकामुकानुष्ठेयत्वेन काम्यत्वं श्रुत्या साक्षान्नित्यत्वेन विहितस्यायुक्तमित्येव त्वदाशयः किल । एवं तर्हि

प्रत्यग्विविदिषां बुद्धेः कर्माण्युत्पाद्य शुद्धितः ।

कृतार्थान्यस्तमायान्ति प्रावृडन्ते घना इव ॥

इति वार्तिकवचनात्सिद्धान्ते संध्यावन्दनादिनित्यकर्मणामपि चित्तशुद्धिद्वारा तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेनेत्यादिश्रुतिस्वारस्यात्सर्वापेक्षाधिकरणन्यायाच्च विविदिषादाढ्योत्पादकत्वमेवोररीकृतमिति मयेह तादृक्कामुकाधिकारिविषयकत्वमेवोक्तमेतावता कथमस्य नित्यत्वं न स्यात्कथं वा काम्यत्वं च स्यात् । तादृक्काम्यत्वस्य नित्यत्वेनाभिमते संध्यावदनान्दावपि सिद्धत्वान्नैवात्र कोऽपि शङ्कावकाशलेशोऽपि । तस्मात्साधनचतुष्टयपरिपाकेच्छुमुमुक्षुब्राह्मणैरहरहर्बाणालिङ्गावच्छेदेन भगवाञ्छिव एव बृहज्जाबालकूर्मपुराणसरण्यैव समर्चनीय इति दिक् । एवं शालिग्रामशिला यत्रेत्यादिवाक्यशेषे मुक्तिस्तत्र न संशय इत्युक्तेर्न विष्ण्वाराधनात्पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकमिति तदाराधनस्यैव निरतिशयवैदिकपुण्यकर्मत्वोक्तेः

कलौ कलिमलध्वंसं सर्वपापहरं हरिम् ।

येऽर्चयन्ति नरा नित्यं तेऽपि वन्द्या यथा हरिः ॥

इति तस्य कलिमलादिसर्वपापध्वंसकत्वहरिवद्वन्द्यत्वफलसंपादकत्वोक्तेश्च सकलपापनाशपूर्वकनिरतिशयपुण्येन हरिवद्वन्द्यताप्रयोजकतत्सारूप्यादिमुक्तिकामैर्ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैः श्रौतार्चनं तु विप्राणामित्यादिवचनोक्तरोत्या श्रीरामश्रीनृसिंहतापिनीयाद्युक्तश्रौतयन्त्रादिसरण्या स्मार्तागमपद्धत्या केवलागमरीत्या च क्रमाच्छालग्रामावच्छेदेन विष्णोरेव केवलस्याऽऽराधनं प्रतिदिनं विधेयम् । तदुक्तं श्रीरामतापनीये-आराधयेद्वाघवं चन्दनाद्यैः । इति तदाराधनं विधायग्रे-तद्भक्ता ये लब्धकामांश्च भुक्त्वा तथा पदं परमं यान्ति ते च । इति । अथोभयपूजाधिकारिणस्तु चित्तशुद्धिद्वारा मुक्तीच्छवः प्रागुदाहृतमहाभारतवचनस्वारस्येन कलिकालावच्छेदेन समर्चनीयत्वतन्मलादिसकलपापविध्वंसकत्वादिना चित्तशुद्धिद्वारोभयोरेव मुक्तिदत्वात् । तत्रापि ये पूजाद्वयसामग्रीशक्तास्तैस्तावत्पूर्वं शिवपूजां विधायैवानन्तरं विष्णुपूजा कर्तव्या । समुदाहृतबोधायनसूत्रे शिवपूजाखण्ड एव तदङ्गतया विष्णोः परिगृहीतत्वेन विष्णुपूजाखण्डे तु विष्णोरङ्गत्वेन शिवस्या-

गृहीतत्वेन शिवस्यैव प्राधान्यध्वननात् । ये त्वशक्तास्तैः सहैव तयोः पूजा निरुक्तगुणप्रधानभावेनैव कार्या न त्वग्राह्यं शिवनिर्माल्यमित्युपक्रम्य शालिग्रामस्य संसर्गात्सर्वं याति पवित्रतामिति वचनात्तीर्थप्रसादग्रहणसिद्ध्यर्थम् । बाणलिङ्गादेः केवलस्यापि तीर्थादिग्राह्यतायाः प्रपञ्चयिषितत्वात् । नापि साम्येन तयोः पूजनं कर्तुं [युक्तम्] । महेश्वरस्य देवतान्तरेण सह साम्येनाऽऽवाहनस्य तत्क्रोधजनकत्वोक्त्या श्रुत्यैवाऽऽर्थिकनिषिद्धत्वात् । तथा च शाकलैराम्नायते—मात्वा रुद्र चुक्रुधामानमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती । इति । अत्र भाष्यं श्रीमाधवीयमेव । हे रुद्र त्वा त्वामनमोभिरयथाक्रियमाणैर्नमस्कारैर्हविर्भिर्वा मा चुक्रुधाम मा क्रोधयाम क्रुद्धं मा कार्ष्म क्रुध कोपेऽस्माण्यन्तालुङ्कि चङ्कि रूपम् । हे वृषभ कामानां वर्षितः । दुष्टुती दुःस्तुत्या, अशोभनया स्तुत्या मा चुक्रुधामेत्येव । तथा सहूती सहूत्यादिसदृशैरन्यैर्देवैः सहाऽऽह्वानेन मा क्रोधयाम । श्रेष्ठो हि स्वस्माद्भूनेन सहाऽऽह्वाने क्रुद्धो भवतीति । न चात्र विसदृशैरित्युक्त्या सदृशदेवान्तरग्रहसंभवेन

यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वा धियो रुद्रो महर्षिः ।

हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु ॥

इति तैत्तिरीयाणां मन्त्रवर्णाश्रिमूर्तीनां मध्ये ब्रह्मणोऽतथात्वात्परिशेषाद्विष्णोरेव तत्समत्वेन तयोः सहार्चनं साम्यबुद्ध्यैवोचितमिति वाच्यम् । न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यत इति श्रुत्यैव तत्समादिनिषेधात् । न चेयं श्रुतिः शुद्धब्रह्मपरा । पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेति वाक्यशेषेश्वरपरत्वस्यैव स्पष्टत्वात् । मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरमिति श्रुत्यन्तरेण शिवस्यैवोमार्धविग्रहस्य मायीश्वरलीलाविग्रहत्वेन वर्णितत्वाच्च । स च लीलाविग्रहो वर्णितः स्फुटमेव याज्ञिक्युपनिषदि—

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।

ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमो नमः ॥ इति ।

अत्रापि श्रीमन्माधवीयमेव भाष्यम्—यदेतत्परं ब्रह्म तत्सत्यमबाध्यं सत्यत्वं च द्विविधं व्यावहारिकं पारमार्थिकं च । हिरण्यगर्भादिरूपं व्यावहारिकं सत्यं, तन्निवारणेन पारमार्थिकसत्यत्वं प्रदर्शयितुमृतं सत्यमिति

विशेष्यते । अत्यन्तसत्यमित्यर्थः । तादृशं ब्रह्म स्वभक्तानुग्रहायोमाम-
 हेश्वरात्मकपुरुषरूपं भवति तत्र दक्षिणे महेश्वरभागे कृष्णवर्णः, उमा-
 भागे वामे पिङ्गलवर्णः । स च योगेन स्वकीयं रेतो ब्रह्मरन्ध्रे धृत्वोर्ध्वरेता
 भवति त्रिनेत्रत्वाद्विरूपाक्षः । तादृशं परमेश्वरमनुसृत्येति शेषः । विश्व-
 रूपाय जगत्कारणत्वेन सर्वजगदात्मकाय विरूपाक्षाय पुरुषायैव नम-
 स्कारोऽस्त्विति । न च किमेतावता रुद्रस्यैवायं लीलाविग्रहविशेष इति
 वाच्यम् । द्रविडपाठानुसारेणैतत्प्राक्तनवाक्ये तस्याः शिखाया मध्ये
 परमात्मा व्यवस्थितः स ब्रह्मेत्यादिरूपे ब्रह्मा चतुर्मुखः शिवो गौरीप-
 तिरिति व्याख्याय पूर्वोक्तप्रकारेणोपासनीयस्य पुरुषस्योपास्यदेवता-
 नमस्कारार्थमेकामृचमाहेत्येतदवतारणेन रुद्रलीलाविग्रहात्मनो गौरीप-
 तिरूपशिवादुमार्धविग्रहस्यास्य मायिमहेश्वरलीलाविग्रहस्य स्पष्टमेव
 पृथक्कथनात् । अत्र तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिरिति माया च तमोरूपेति
 श्रुतेः स्वसंसर्गाध्यासेन तस्याः कनकवर्णत्वं तत्तादात्म्याध्यासेन स्वस्य
 कृष्णवर्णत्वं च । विस्तरस्तु सूतसंहितापराशरपुराणादौ द्रष्टव्यः । ननु
 त्वयैव पुरा हरिहरादय एवेश्वरलीलाविग्रहत्वेनोपपादिता अधुना तूमा-
 र्धविग्रह एव तथात्वेनोच्यत इति कथं न पूर्वोत्तरविरोध इति चेन्न ।
 विभिन्नविषयत्वात् । तथा हि ते हि लीलाविग्रहाः सत्त्वादिगुणोपहित-
 चित्त्वेनैव । अयं तद्गुणमूलीभूतमायोपहितचित्त्वेनैवेति न कोऽपि विरोध-
 गन्धोऽपि । न चैवं तर्हि हरगौर्योस्तमःप्रधानरुद्राख्येश्वरलीलाविग्रहयो-
 रेव निरुक्तमायीश्वरलीलाविग्रह उमार्धविग्रहे किमितिसंमेलनभानं
 किमिति वा न लक्ष्मीनारायणयोर्न वा भारतीपरमेष्ठिनोरिति सांप्रतम् ।
 संहारकारकतमोगुणस्यैव सत्त्वाद्यपेक्षया विक्षेपोपशामकत्वेनाध्याकृतमा-
 यावच्छिन्नचैतन्येश्वरस्वरूपानुकूलतरत्वाद्वाद्यष्टौ प्राज्ञे तथैव दृष्टत्वात्प्रत्युत
 चित्रदीपे माधवाचार्यैः समष्टिसौसु(षु)ततमोनिलीनतत्तद्यष्टिबुद्धिवास-
 नासमष्टिचिदाभासस्यैवेश्वरत्वोपपादनाच्च । तस्माद्युक्तमेवेदं गुणमूर्तीतरे-
 श्वरलीलाविग्रहकथनमिति दिक् । एवं पुरुषार्थचतुष्टयेच्छुभिर्गृहस्थैः
 पञ्चायतनदेवताः समस्ता एव तत्तद्देवताभक्तिप्रयोज्यतत्प्राधान्यस्थापन-
 क्रमेणैव केवलवैदिकमार्गेणैव संपूज्याः । एतेन षडपि पक्षाः परमेश्वर-
 पूजनेऽधिकारिभेदेन व्यवस्थिता भवन्ति । तत्रायं संग्रहः—

वेदान्तावधृतेश्वरैर्मुखभवैर्विष्णुः शिवो वाऽर्च्यता-
 मेतत्साधनपुष्टिलिप्सुभिर्मुमार्धोऽजस्तु तत्तेच्छुभिः ।

शिवस्य पूजने तथो नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन वा यजेदिति कूर्मपुराणे शिवार्चनमन्त्रविकल्पेषु चरमकोट्युक्तषडक्षरस्यापि समुच्चयोऽष्टादशो-
पचारपक्षे । केवलविष्णुपूजायां तूक्तपुरुषसूक्तमेव । यतीनां तु सर्वत्र प्रणव एव । प्रणवेनाथ वा पुनरित्यपि कौर्मोक्तेः । शुद्धश्रौतनिरुक्तप-
ञ्चोपचारपक्षे तु केवलषडक्षर एवेति । एवं तत्तत्पञ्चायतनपूजनेऽपि स्वशाखोक्तायास्तत्तद्वायत्र्या एव पुरुषसूक्तर्क्षु समुच्चय इति सर्वमवदा-
तम् । नन्वथापि लिङ्गावच्छेदेनैव ब्राह्मणानां शिवपूजनमेव यन्नित्यत्वे-
नोच्यते तत्र मूलप्रमाणराजत्वेन बृहज्जाबालोपनिषदेव भवतोदाहृता तथाऽपि तां केचिन्मन्दमतयस्तन्त्रत्वेन जल्पन्तीति चेन्न । इतिहासपुरा-
णाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेदिति वचनात्ताभ्यामेव तेषां पराकरणीयत्वात् । तथा हि । श्रौतसिद्धान्ते सप्तमाध्याये लिङ्गोत्कर्षं प्रकृत्य शिवरहस्या-
ख्येतिहासस्यागस्त्यवाक्यं नारदं प्रत्युदाहरति अगस्त्य उवाच—

पुरा रेवातटे रम्ये मौद्गल्यो मुनिपुंगवः ।

जाबालश्रुतितत्त्वज्ञः शिवपूजापरः स्थितः इत्यादि ।

एवं लिङ्गार्चनचन्द्रिकायामपि तत्प्रस्ताव एवं लिङ्गपुराणवाक्यानि—

जाबालोपनिषत्साध्वी मम ज्ञानस्य सिद्धये ।

प्रधानसाधनान्याह द्विजानामादरेण तु ॥

अविमुक्तं मम क्षेत्रं यन्नाम परमं शुभम् ।

शतरुद्रीयजाप्यं च तथा संन्यासमुत्तमम् ॥

भस्मनोद्धूलनं चैव त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ।

रुद्राक्षधारणं साक्षाद्भक्त्या पार्थिवपूजनम् ॥

मस्मसंपादनं ध्यानं ममैव परमस्य च ।

एतानि साधनान्याह प्रधानानि यमा यथा ॥ इति ।

नन्वेवमपि ज्योतिर्लिङ्गादिस्थिरलिङ्गानि विहाय बाणलिङ्गावच्छेदेनैव ब्राह्मणानां नित्यं शिवार्चनं किमिति भवता नियम्यत इति चेन्न । तथैव स्मरणात् । तद्यथा लिङ्गार्चनचन्द्रिकायामेव कालोत्तरे—

स्थिरलिङ्गे सदा कार्यं सिद्धिकामैः प्रयत्नतः ।

भुक्तिमुक्तिप्रदं पुसां चरलिङ्गे शिवार्चनम् ॥

इत्युक्तम् । तेनस्थिरज्योतिर्लिङ्गाद्यपेक्षयाऽप्याधिक्ये चर एव सिद्धेऽग्रे तत्रैव वर्णादिभेदेन तद्भेद उक्तो विद्येश्वरसंहितावचनैः—

पञ्चायतनैकपरत्वस्यावश्यं वाच्यत्वात् । न च तर्हि विष्ण्वादिपञ्चायत-
नार्चनं तत्तद्भक्तानां किमनुचितमिति वाच्यम् ।

विप्राणां दैवतं शंभुः क्षत्रियाणां तु माधवः ।

वैश्यानां तु भवेद्ब्रह्मा शूद्राणां गणनायकः ॥

इति मनुवचनात्क्षत्रियादिवृत्त्युपजीविनां ब्राह्मणानामपि यथाधि-
कारं विष्ण्वादिपञ्चायतनार्चनस्याप्यौचित्यात् । अत्र ब्रह्मणोऽपूज्यत्वेऽपि
तद्ग्रहणं शक्तिसूर्योपलक्षणार्थमेवेति दिक् । एवं पूज्यस्य शिवकेशव-
योरन्यतरस्य शिवस्यैव केशवस्यैव शिवकेशवयोरुभयोः क्रमेण शिवप्र-
धानसमुच्चयेन तत्तद्भक्ताभिमतशिवादितत्पञ्चायतनस्य च तत्तदधिका-
रिदृशा षोढाविकल्पितस्य परमेश्वरस्य पूजाप्रकारस्तु प्रागुक्तेन श्रौतार्चनं
तु विप्राणां विशेषेण भवेत्सदेति वचनेन स्वशाखोक्ताष्टादशर्चपुरुषसूक्ता-
नुकूलपाराशरपुराणोक्ताष्टादशोपचारैरेव विज्ञेयः । विशेषेणेति पदध्वनि-
तानां बृहज्जाबालोक्तानां पाठक्रमादर्थक्रमो बलीयानिति न्यायेन पूजा-
सनस्नानभस्मधिल्वदलनैवेद्याख्यमुख्यश्रौतपञ्चोपचाराणां प्राणान्तेऽपि
ब्राह्मणेनात्याज्यानामत्रैवान्तर्भावात् । न च बोधायनसूत्रस्यापि तैत्तिरी-
यावश्यकत्वान्माधवोक्तत्वाच्च प्रकृते तद्गीतिकमेव युक्तं हरिहरार्चनमिति
वाच्यम् । तस्य स्वसूत्रत्वाभावात्तदीयानामेव तदावश्यकत्वाद्भगवदाराध-
नस्य पाराशरपुराणोपबृंहितपुरुषसूक्तोक्ताष्टादशर्चिभरष्टादशोपचारैरेव
सति नित्यं संभवे समुचितत्वादसंभवे तु मुख्यनिरुक्तपञ्चोपचारैर्विष्णुप-
क्षेऽप्याराधयेद्वाघवं चन्दनाद्यैरित्याद्यपद्गृहीतपुष्पधूपदीपनैवेद्यान्तपञ्चो-
पचारैरेव कर्तुमुचितत्वाच्च । अत्र स्नानस्य तु तीर्थसिद्धिनान्तरीयकतयैव
सिद्धिः । एवं बृहज्जाबालश्रुतौ रुद्रसूक्तैरित्युक्तेः पारिभाषिकरुद्रसूक्तत्वस्य
बह्वृचदाशतयन्तर्गतसूक्तविशेष एव संभवेऽपि तैत्तिरीयाणां व्युत्पत्तिप-
क्षाङ्गीकारेण शतरुद्रीय एव वक्तुं युक्तत्वेन तैस्तेनैवाभिषेचनं कार्यं तदेकदे-
शीभूतेन पञ्चाक्षरमहामन्त्रवत्त्वान्मुख्यतमेन नमः सोमाय चेत्यनुवाकेन वा ।
नन्वेवमपि बोधायनसूत्रस्य कल्पत्वेन शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं
छन्दो ज्योतिषमिति श्रुतिप्रसिद्धाङ्गत्वात्पाराशरपुराणाभिधोपपुराणापे-
क्षया बलवत्तरत्वमेवातस्तत्सरणिरेव प्रकृते ग्राह्येति चेन्न । स्वशाखो-
क्तपुरुषसूक्तीयकसंख्याकोपचारकथकत्वेन तदनुग्राहकतयोपपुराणस्या-
प्यननुग्राहकाङ्गापेक्षयाऽप्याधिक्यात् । न हि मण्डनहीनत्वेनाननुग्राह-
कललाटाभिधाङ्गापेक्षया मृगाक्षीणामनङ्गेऽप्यनङ्गसाफल्यहेतौ कौकुम-
तिलकेऽस्त्यनाधिक्यम् । इयांस्तु विशेषो यत्केवलस्य प्रधानस्य वा

शिवस्य पूजने तथो नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन वा यजेदिति कूर्मपुराणे शिवार्चनमन्त्रविकल्पेषु चरमकोट्युक्तषडक्षरस्यापि समुच्चयोऽष्टादशो-
पचारपक्षे । केवलविष्णुपूजायां तूक्तपुरुषसूक्तमेव । यतीनां तु सर्वत्र प्रणव एव । प्रणवेनाथ वा पुनरित्यपि कौर्मोक्तेः । शुद्धश्रौतनिरुक्तप-
ञ्चोपचारपक्षे तु केवलषडक्षर एवेति । एवं तत्तत्पञ्चायतनपूजनेऽपि स्वशाखोक्तायास्तैत्तद्वायत्र्या एव पुरुषसूक्तर्क्षु समुच्चय इति सर्वमवदा-
तम् । नन्वथापि लिङ्गावच्छेदेनैव ब्राह्मणानां शिवपूजनमेव यन्नित्यत्वे-
नोच्यते तत्र मूलप्रमाणराजत्वेन बृहज्जाबालोपनिषदेव भवतोदाहृता तथाऽपि तां केचिन्मन्दमतयस्तन्त्रत्वेन जल्पन्तीति चेन्न । इतिहासपुरा-
णाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेदिति वचनात्ताभ्यामेव तेषां पराकरणीयत्वात् । तथा हि । श्रौतसिद्धान्ते सप्तमाध्याये लिङ्गोत्कर्षं प्रकृत्य शिवरहस्या-
ख्येतिहासस्यागस्त्यवाक्यं नारदं प्रत्युदाहरति अगस्त्य उवाच—

पुरा रेवातटे रभ्ये मौद्गल्यो मुनिपुंगवः ।

जाबालश्रुतितत्त्वज्ञः शिवपूजापरः स्थितः इत्यादि ।

एवं लिङ्गार्चनचन्द्रिकायामपि तत्प्रस्ताव एवं लिङ्गपुराणवाक्यानि—

जाबालोपनिषत्साध्वी मम ज्ञानस्य सिद्धये ।

प्रधानसाधनान्याह द्विजानामादरेण तु ॥

अविमुक्तं मम क्षेत्रं यन्नाम परमं शुभम् ।

शतरुद्रीयजाप्यं च तथा संन्यासमुत्तमम् ॥

भस्मनोद्धूलनं चैव त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ।

रुद्राक्षधारणं साक्षाद्भक्त्या पार्थिवपूजनम् ॥

मस्मसंपादनं ध्यानं ममैव परमस्य च ।

एतानि साधनान्याह प्रधानानि यमा यथा ॥ इति ।

नन्वेवमपि ज्योतिर्लिङ्गादिस्थिरलिङ्गानि विहाय बाणलिङ्गावच्छेदेनैव ब्राह्मणानां नित्यं शिवार्चनं किमिति भवता नियम्यत इति चेन्न । तथैव स्मरणात् । तद्यथा लिङ्गार्चनचन्द्रिकायामेव कालोत्तरे—

स्थिरलिङ्गे सदा कार्यं सिद्धिकामैः प्रयत्नतः ।

भुक्तिमुक्तिप्रदं पुसां चरलिङ्गे शिवार्चनम् ॥

इत्युक्तम् । तेनस्थिरज्योतिर्लिङ्गाद्यपेक्षयाऽप्याधिक्ये चर एव सिद्धेऽग्रे तत्रैव वर्णादिभेदेन तद्भेद उक्तो विद्येश्वरसंहितावचनैः—

रसलिङ्गं ब्राह्मणानां सर्वाभीष्टप्रदं भवेत् ।
 बाणलिङ्गं क्षत्रियाणां महाराज्यप्रदं शुभम् ॥
 स्वर्णलिङ्गं तु वैश्यानां महाधनपतित्वदम् ।
 शिलालिङ्गं तु शूद्राणां महाशुद्धिकरं शुभम् ॥
 स्वीयाभावेऽन्यदीयं तु पूजायां न निषिध्यते ।
 स्त्रीणां तु पार्थिवं लिङ्गं सभर्तृणां विशेषतः ॥
 विधवानां निवृत्तानां रसलिङ्गं विशिष्यते ।
 विधवानां प्रवृत्तानां स्फाटिकं परिकीर्तितम् ॥ इति ।

एवं च रसलिङ्गस्य दुर्लभत्वाद्वित्तापेक्षत्वाद्नस्पतिहिंसायत्तत्वाच्च
 ब्राह्मणानां स्वीयाभावेऽन्यदीयं त्वित्युक्तेः

बाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये ।
 न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं न च ॥

इति पूर्वोदाहृतपारिजातगतपुराणवचनाच्च प्रतिष्ठाद्यनपेक्षं बाणलिङ्ग-
 मेव नित्याराधनाहं बोध्यम् । न च त्रिपञ्चवारमित्यादित्वदुदाहृतात्

नर्मदाजलमध्यस्थं बाणलिङ्गमिति स्थितम् ।
 बाणासुरार्चितं लिङ्गं बाणलिङ्गं तदुच्यते ॥

इति लिङ्गार्चनचन्द्रिकायामेव सूतसंहितावाक्यमुक्त्वा त्रिपञ्चेत्यादि
 चोक्त्वा

नद्यां वा प्राक्षिपेद्भूयो यदा तदुपलभ्यते ।
 बाणलिङ्गं तदा विद्धि सर्वलिङ्गोत्तमोत्तमम् ॥

इत्युक्ताच्च वचनात्सिद्धलक्षणं तदपि सुदुर्लभमेवेति वाच्यम् । पक्कज-
 म्बूफलाकारमित्यादिप्रागुदाहृतहेमाद्र्युक्तेन नर्मदेत्यादिप्रकृतोक्तेन च
 लक्षणान्तरेणैव लक्षितस्य तस्य तु सुलभत्वात् । नापि चन्द्रिकायामेव

शिवलिङ्गसहस्राणां पूजया यत्फलं भवेत् ॥
 ततः शतगुणं पुण्यं बाणलिङ्गस्य पूजने ।
 अनन्तबाणलिङ्गानां पूजया यत्फलं भवेत् ॥
 ततोऽनन्तगुणं पुण्यं रसलिङ्गस्य पूजने ।
 ततः शतगुणं पुण्यं सृत्तिकालिङ्गपूजने ॥

इत्यादिशिवरहस्यादिनानाग्रन्थवचनैः पार्थिवलिङ्गस्यैव महता
 प्रबन्धेन प्रशंसनात्तदेव प्रकृतेऽस्त्विति सांप्रतम् । श्रौतसिद्धान्ते समुदा-
 हृतस्थल एव

शिवो नार्मदलिङ्गेषु सर्वदाऽप्यधितिष्ठति ।

नानाविधानि लिङ्गानि तान्युच्यन्ते मयाऽधुना ॥

इति मोहल्यवाक्यमृषीन्प्रत्युपन्यस्य रसोत्पन्नं लिङ्गं जाबालचोदित-
मित्यन्तग्रन्थेनानेकलिङ्गान्युक्त्वा

लिङ्गेष्वेतेषु सर्वेषु लिङ्गत्रयमनुत्तमम् ।

तत्र संपूजितः शंभुः प्रसीदति न संशयः ॥

इति प्रतिज्ञाय

मृद्धाणरसलिङ्गानि श्रेष्ठान्येतेषु वस्तुतः ।

त्रिष्वाद्याद्वाणमुत्कृष्टं रसलिङ्गं ततोऽधिकम् ॥

इति निर्णय मध्ये त्रिपञ्चेत्यादि तल्लक्षणाद्युक्त्वा महता प्रबन्धेन शिव-
रहस्य एवान्ते तथैवोपसंहारात् । तस्माद्वाणलिङ्गमेवेज्यमिति शिवम् ।
नन्वेवं यदि बाणलिङ्गावच्छेदेन ब्राह्मणैर्नित्यं शिव एवार्च्यश्चेत्तर्हि
तत्तीर्थप्रसादोऽपि ग्राह्यः स्याद्वाढं बाणलिङ्गं इत्यादिपूर्वोदाहृतवचनादि-
ष्टापत्तिरिति चेत्तत्र स्वयंजातस्यापि संग्रहात्तस्य तु चलत्वासंभवात्तत्रापि
तथा बाणलिङ्गपदेन स्थापितास्थापितसाधारणस्यैव तस्य ग्रहणात्स्थापि-
तेऽपि बाणलिङ्गे तद्वत्तादृशे चन्द्रकान्ते च तदापत्तिर्दुर्वारैव तत्रापीष्टापत्तौ
यः शिवे निषेध उक्तः स च व्यवस्थितस्तत्रैव यथेति प्रतिज्ञायाग्राह्यं
शिषनिर्माल्यमित्यादिना शालिग्रामसंसर्गेण तद्ग्राह्यतोक्तेर्निरवकाशत्वा-
पत्तिरेवं

ज्योतिर्लिङ्गं विना लिङ्गं यः पूजयति मानवः ।

तस्य नैवेद्यानिर्माल्यभक्षणात्तप्तकृच्छ्रकम् ॥

इतिज्योतिर्लिङ्गेतरयावलिङ्गनैवेद्यादिभक्षणप्रायश्चित्तवाक्यवैयर्थ्या-
पत्तिर्बाणलिङ्गादीनां सर्वेषामप्यतथात्वात्तद्वद्यत्र चण्डाधिकारोऽस्ति न
भोक्तव्यं च मानवैरित्यादिना चण्डाधिकारे तद्ग्रहणं निषिध्य

बाणलिङ्गे चले लोहे सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ।

प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतः सदा ॥

इत्यग्निपुराणवचनेन चण्डाधिकारराहित्यशालिस्थलपरिगणनस्य
नैष्फल्यापत्तिश्च बाणलिङ्गादेः स्थापने स्वयंभ्वादेश्च प्रासादप्रतिष्ठायां
चण्डाधिकारनैयत्येन तत्सत्त्वेऽपि तद्भक्षणादेरुक्तेष्टापत्त्यैव सिद्धत्वादिति

चेत् । अत्रोच्यते—उक्तापत्तिपरिहारार्थमेव बाणलिङ्गे स्वयंजात इत्यादि-
वाक्येषु *तत्तत्प्रत्यनीकापरपरतयैव व्यवस्था न्याय्या । तत्र बाणलिङ्ग
इतिवाक्ये बाणलिङ्गचन्द्रकान्तलिङ्गे अस्थापिते एव शक्तिसंकोचेन ग्राह्ये ।
तेन स्थापितयोस्तयोः प्रतिष्ठाङ्गीभूतचण्डपूजानान्तरीयकसिद्धतदधि-
कारस्थलीयतीर्थादिग्रहणप्रसक्तिव्यावृत्तिः । तद्वदत्र स्वयंजातपदेन
वाक्यान्तरे ज्योतिर्लिङ्गसिद्धलिङ्गादिपदेन च पुराणादिप्रसिद्धलिङ्गान्य-
कृतप्रासादप्रतिष्ठान्येव ग्राह्याणि तदानीं तु तत्र प्रासादप्रतिष्ठाविनामूत-
चण्डाधिकारविरहान्नैव तत्तीर्थादिग्रहणेऽपि क्षतिः । न चाथापि ज्योति-
र्लिङ्गपदेनोपलक्षणविधया यावत्स्थिरलिङ्गान्येव ग्राह्याणि । अत एव—

अग्राह्यं शिवनिर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।

शालिग्रामशिलासङ्गात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥

इति वचनेन [+निषेधस्तथा शालिग्रामशिलासाहित्यमपि] बाण-
लिङ्गादिचरलिङ्ग एव संभवात्तथैव प्रायः शिष्टाचाराच्च प्रोक्तशिलासं-
सर्गेण तीर्थादिग्रहणयोग्यताविधानमपि संगच्छते । तथा च सर्वस्थिर-
लिङ्गेषु तीर्थादिग्रहणं कार्यमेवेति वाच्यम् । तेषु प्रासादप्रतिष्ठाप्रयुक्त-
चण्डाधिकारस्य दुर्निरसत्वात् । बाणलिङ्गस्य तु चलस्य

बाणलिङ्गे चले लोहे सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ।

इत्याद्युक्ताग्निपुराणवाक्येन कण्ठत एव चण्डाधिकृतेः पर्युदस्तत्वाच्च ।
ननु रसलिङ्गे चण्डाधिकारोऽस्ति न वा । नाऽऽद्यः । बाणलिङ्गवत्तत्प्रा-
सादादिप्रयुक्तचण्डाधिकारप्राप्तिसंभवाभावात् । न द्वितीयः । चण्डाधि-
कारविरहस्थलकथकोक्ताग्निपुराणवाक्ये तत्कथनाभावादितिचेदत्रो-
च्यते—रसलिङ्गं किं वनस्पतिरसविशेषमात्रशुद्धबद्धपारदात्मकं विव-
क्षितमुत स्वर्णादिधात्वन्तरेणापि संमिश्रिततदात्मकम् । उभयत्रापि किं
कुक्कुटाण्डाद्याकारपिण्डकामात्रं किं वा साधःपीठसोमसूत्रम् । यद्वा
यथाकथंचिदुभयविधान्यतरसाधारणम् । पक्षषट्केऽपि तैजसत्वानपा-
येन बाणलिङ्गे चले लोह इत्याद्युक्तवाक्ये लोहशब्देन यावत्तैजस-
ग्रहणे सप्रमाणे सति निरुक्तप्रथमविकल्पे द्वितीयपक्षे हेतोः स्वरूपा-

* क. पुस्तके समासे—स्थापितत्वकृतप्रासादप्रतिष्ठात्वादिना प्राप्तो यश्चण्डाधिकारः स एव
तस्य बाणलिङ्गादितीर्थादिग्रहणवाक्यस्य प्रत्यनीकः प्रतिस्पर्धी विरोधीति यावत् । तदपरपरतया
तद्विभ्रपरत्वेनैवेत्यर्थः । + नायं ग्रन्थः ख. पुस्तके ।

सिद्धेः । तद्यथा—*स्वधिते मैत्रं हिंसीरिति निष्पीडय लौहेन क्षुरेणे-
 त्याश्वलायनीयगृह्यसूत्रं चौलप्रकरणे । तत्र वृत्तिः—अनेन मन्त्रेण
 लौहेन क्षुरेण तानि कुशपिञ्जूलानि पीडयति तेषु क्षुरं स्थापयती-
 त्यर्थः । लोके क्षुरो लौह एव प्रसिद्धः । अतोऽत्र तस्यावाच्यत्वालो-
 हशब्दस्ताम्रे वर्तते । शास्त्रान्तरे विहितत्वाच्च । लोहशब्दश्चार्थाद्रज-
 तादिष्वपि वर्तते । अत्र तु ताम्रे । तथा दृष्टत्वात् । तेन क्षुरेणेति ।
 एवं लोहोऽस्त्रीति प्रकृत्य सर्वतैजस इति मेदिन्यपि । एवं च पारदस्य
 पुराणप्रसिद्धशिववीर्यजन्यस्वर्णरजतादितैजसधातुमध्ये परिगणनालोके
 तथा व्यवहाराच्चोक्त एवोक्तवाक्ये लोहशब्देन स्वर्णादिवत्संग्रह इति
 रहस्यं बोध्यं बुधैः । न चैवमपि ताम्रादितैजसलिङ्गस्य स्थापितत्वेनाच-
 लस्यापि तीर्थप्रसादग्रहणापत्तिः । चल इति विशेषणस्य बाणलिङ्ग
 इव लोह इत्यत्राप्यन्वितत्वेन तत्पर्युदासात् । नमपि प्रतिमासु च सर्वासु
 न चण्डोऽधिकृतः सदेति तदीय एवोत्तरार्धे प्रतिमाशब्देन शिवप्रकर-
 णात्तन्मूर्तय एव चिदम्बरनटाद्याः प्रसिद्धास्ताम्रादिधातुमय्यः सर्वश-
 ब्दस्य स्फुटसंकोचकाभावाच्छिलादिमय्योऽपि प्राप्ताः । तथा च
 तासामपि प्रसादादिग्रहापत्तिरिति सांप्रतम् । शास्त्रोक्ततत्परिमाणभे-
 देन व्यवस्थासंभवात् । तथा हि । निर्णयसिन्धौ भार्गवार्चनदीपि-
 कायां भविष्ये—

सौवर्णी राजती ताम्री तन्मयी च तथा भवेत् ।
 पाषाणी धातुयुक्ता वा रीतिकांस्यमयी तथा ॥

रीतिः पित्तलम् ।

* क. पुस्तके समासे—अत्र शौनककारिका । पिञ्जुलेषु क्षुरं न्यस्य स्वधिते मैत्रमित्यथ । अथ
 पीडयतीत्यर्थः क्षुरस्ताम्रमयो भवेत् । इति । अस्यार्थः—ततस्तेषु केशेषु स्वधिते मैत्रं हिंसीरिति-
 मन्त्रेण ताम्रमयं क्षुरं न्यसेत् । स्थामूत्रेषु निष्पीडय पदं वर्तते । तस्यार्थं विवृणोति । पिञ्जुलेषु क्षुर-
 स्थापनं सूत्रगतस्यकल्पपदस्यार्थं इत्यपेक्षायामवपीडयतीत्यर्थः । स्वसूत्रगतपदस्यायमर्थः । क्षुरस्ता-
 म्रमयो भवति । वपनपर्यन्तपात्रासादनसमये तस्य क्षुरस्य चाऽऽसादनं कर्तव्यम् । यत्तु सूत्रे लौहेन
 क्षुरेण छिनसीति । तत्र वृत्तिकारेण लोहशब्दस्ताम्रे वर्तते । रजतादिष्वपि वर्तते इति कृत्वाऽपू-
 र्वार्थत्वात्ताम्रमयो गृह्यते । अत्र विशेषमाह गुरुशिष्यः क्षुरस्य नित्यलोहत्वात्ताम्रत्वं यनलोहगीः ।
 ग्रन्थान्तरेषु बहुषु क्षुरस्ताम्रमयो यतः । इति तटीका । एवं च क्षुरस्य लोके लोहग्रहणं ताम्रमयस्व-
 विधानार्थमेवेति संपिण्डितोऽर्थ इति ।

शुद्धदारुमयी वाऽपि देवतार्चा प्रशस्यते ।
अङ्गुष्ठपर्व आरभ्य वितस्तिर्यावदेव तु ॥
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ।

इत्युक्त्वाऽग्रे तत्रैव देवीपुराणे—

सप्ताङ्गुलं समारभ्य यावच्च द्वादशाङ्गुलम् ।
गृहेष्वर्चा समाख्याता प्रासादेष्वधिका शुभा ॥

इत्यप्युक्तम् । तेन प्रासादयोग्यपरिमाणानां तासां प्रासादप्रतिष्ठाना-
न्तरीयकसिद्ध एव चण्डाधिकार इति स्थापितबाणलिङ्गवत्कोक्तापत्तिः ।
इतरासां तु गृहयोग्यपरिमाणानामिष्ट एव प्रासादादिग्रहस्तथैव शिष्टा-
चारश्चापीति सर्वमवदातम् । नन्वेवमपि निर्णयसिन्धावेव शिवनिर्मा-
ल्यग्रहणनिर्णयं प्रकृत्य सिद्धान्तशेखरे—

धराहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान् ।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥
अन्यदन्नादि ताम्बूलं पानीयं गन्धपुष्पकम् ।
दद्याच्चण्डाय निर्माल्यं शिवभुक्तं च सर्वशः ॥

इत्युक्त्वा तन्निर्माल्यभक्षणादौ प्रायश्चित्तमपि प्रपञ्च्य, इदं ज्योति-
लिङ्गाद्यतिरिक्तविषयम् । तथा च पुरुषार्थप्रबोधे भविष्ये—

ज्योतिर्लिङ्गं विना लिङ्गं यः पूजयति सत्तमाः ।
तस्य नैवेद्यनिर्माल्यभक्षणात्तत्तकृच्छ्रकम् ॥
शालग्रामोद्भवे लिङ्गे बाणलिङ्गे स्वयंभुवि ।
रसलिङ्गे तथाऽऽर्षे च सुरसिद्धप्रतिष्ठिते ॥
हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरौप्यादिनिर्मिते ।
शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते ॥

तथा—बाणलिङ्गे स्वयंभूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते ।

चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शंभोर्नैवेद्यभक्षणम् ॥

लिङ्गे स्वयंभवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते ।

सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत् ॥

यत्र चण्डाधिकारोऽस्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः ।

चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तितः ॥

त्रिविक्रम्याम्—बाणलिङ्गे च लोहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ।

प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥

अत्र-ब्रह्महाऽपि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत् ।

तस्य पापमहं शीघ्रं नाशयिष्ये महाश्रुत ॥

इति स्कान्दादशुचिना न ग्राह्यं शिवनिर्माल्यं किं तु स्नात्वेति स्मार्ताः । अनुपनीतेन न ग्राह्यमिति श्रीदत्तः । शिवदीक्षाहीनैर्न ग्राह्यमिति शैवा इति प्रपञ्चितप्रायश्चित्तस्य ज्योतिर्लिङ्गव्यतिरिक्तविषयत्वं प्रतिज्ञाय तत्र प्रमाणान्युपन्यस्य तेषां व्यवस्थामपि मतभेदेनोक्त्वाऽग्रे तिथितत्त्वे हेमाद्रौ परिशिष्टे—

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।

शालग्रामशिलासङ्गात्सर्वं याति पवित्रताम् ।

पञ्चायतनपूजायां तन्त्रेण विनिवेदितम् ॥

इत्यर्थ इति निरुक्ताधिकारिभिन्नसर्वसाधारणाधिकारिणां शिवतीर्थ-प्रसादग्रहणे शालग्रामशिलासाहचर्यपक्षमपि पञ्चायतनेत्यादिना विवृत्य शिवपुराणे—

ये वीरभद्रशपिताः शिवभक्तिपराङ्मुखाः ।

शंभोरन्यत्र देवेषु ये भक्ता ये न दीक्षिताः ॥

तेषामनर्हमीशस्य तत्प्रसादचतुष्टयम् ।

काशीखण्डे-जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः ।

एष जालंधरो बन्धः समस्तसुरवल्लभः ॥

तथा-स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् ।

त्रिः पिवेच्चिविधं पापं तस्येहाऽऽशु विनश्यति ॥

लिङ्गस्नपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूढ्न्याभिषेचनम् ।

गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः ॥

इदं पूर्ववाक्यवशाद्विश्वेश्वरविषयमिति केचित् । काशीस्थपुराणप्रसिद्धसर्वलिङ्गविषयम् । काशीखण्डे रत्नेश्वरोपाख्याने तथैव दर्शनादित्यन्य इत्यन्तग्रन्थेन शिवानन्यभक्तशिवदीक्षावतामपि शिवप्रसादादिग्रहणव्यवस्थां मतभेदेनैवाऽऽह कमलाकरः । तत्कथं त्वया चलकेवलबाणलिङ्गादेस्तीर्थप्रसादग्रहणे ब्राह्मणादिसर्वसाधारणशुद्धवैदिकाधिकारत्वमुपपाद्यत इति चेन्न । तत्तात्पर्यस्य त्वयैवाबुद्धत्वात् । तथा हि । स तत्र तावच्छिवनिर्माल्यग्रहणविचारं सामान्यतः प्रक्रम्य तत्र सिद्धान्त-

शेखर इत्यादिना प्रथमं निषेधं समुपन्यस्येदं ज्योतिर्लिङ्गादीत्यादिनाऽशुचिना न ग्राह्यं शिवनिर्माल्यं किं तु स्नात्वेति स्मार्ता इत्यन्तेन ग्रन्थेनाकृतप्रासादप्रतिष्ठाकत्वेन चण्डाधिकारविधुराणां ज्योतिर्लिङ्गशालिग्रामोद्भवशिवनाभ्याख्यलिङ्गबाणलिङ्गस्वयंभुलिङ्गपारदलिङ्गर्षिदेवसिद्धप्रतिष्ठितलिङ्गमानसमूर्तिचन्द्रकान्तलिङ्गस्वर्णरजतादिलिङ्गरत्नलिङ्गानां निर्माल्यग्रहणविधानेन तदपवादं स्मार्तपदेनैव स्वसंमतसिद्धान्तत्वेनोक्तवान् । अत एव निर्णयसिन्धुकृतः पक्षभेदोपन्यासस्थले प्राथमिकोपन्यस्तपक्ष एव सिद्धान्तत्वेन संमत इति सांप्रदायिकाः । अथ ज्वरादिनाऽस्नातस्योक्तलक्षणकेवलशिवतीर्थादिग्रहणेऽनधिकारे सति तदनुग्रहार्थं तिथितत्त्व इत्यादिना पञ्चायतनपूजायां तन्त्रेण विनिवेदितमित्यर्थ इत्यन्तग्रन्थं विलिख्य तत्राप्यश्रद्धधानानां श्रद्धाद्युत्पादनार्थं शिवपुराणवाक्यमुक्त्वा चण्डाधिकारशालित्वप्रयोजकप्रासादप्रतिष्ठावतामपि विश्वेश्वरकाशीस्थपुराणप्रसिद्धसर्वलिङ्गानामपि तीर्थमात्रग्रहणं केचित्पदान्यपदाभ्यां स्वासंमतमेव मतभेदेनैवाकथयदिति कस्तेन साकं मम विरोधः । तस्मात्त्वयैव तदाकृतमिदं नाज्ञायीति दिक् । न च शिवपुराणवाक्ये प्रागुक्ते ये न दीक्षिताः । तेषामनर्हमीशस्य तत्प्रसादचतुष्टयमिति पादोदकस्नानोदकनैवेद्यनिर्माल्याख्यप्रसादचतुष्टयं तान्त्रिकं शिवदीक्षावतामेव सेवितुं युक्तं न तु तद्धीनानां शुद्धवैदिकानामिति वाच्यम् । वैदिकानामपि दीक्षासद्भावस्य लिङ्गार्चनचन्द्रिकायामुक्तत्वात् । तथा च तत्र शिवनैवेद्यभक्षणविचारं प्रपञ्चयोक्तम्—नन्वदीक्षितानां निर्माल्यभक्षणं नरकप्रदमित्यादिवाक्यैर्दीक्षारहितानां वैदिकानामनधिकार इति चेन्न । तेषामपि दीक्षासद्भावात् । तदुक्तं स्कान्दे—

अस्ति वैदिकनिष्ठानामपि दीक्षा विमोचनी ।

ददाति शिवतादात्म्यं क्षिणोति च मलत्रयम् ॥

अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता दीक्षाशब्दार्थवेदिभिः । इति ।

सा च वेदतदर्थतदुपदेष्टुषु दृढतमविश्वासरूपा श्रद्धैव । श्रद्धत्स्व सोम्येति श्रद्धावित्तो भूत्वेति श्रुतेः । श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानमिति स्मृतेश्च । ज्ञानदानद्वारा मोचनपरशिवतादात्म्यदानाविद्यातद्याप्येश्वरादितत्कार्याकाशादिदृश्यलक्षणमलत्रयक्षपणेषु तस्या एव क्षमत्वात् । विस्तरस्तु

सूतसंहिताटीकायां माधवीयायामेव द्रष्टव्यः । एवमेव स्मृतिकौस्तुभे शिवरात्रिप्रकरणे स्कान्दे—

शिव उवाच—अनर्हं मम नैवेद्यमित्यादिनैवेद्यं मे नरो भुक्त्वा शुद्ध्यै चान्द्रायणं चरेदित्यन्तं वचनमुक्त्वा, अथैतदपवाद इति प्रतिज्ञाय शिवनारदसंवादे—बाणलिङ्गे स्वयंभूत इत्यादि विलिख्य तथा काशी-खण्डे—जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मन इत्युपक्रम्य स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकमित्यादि जायते तत्र विपाप्मन इत्युक्त्वा, अत्र च भक्षणप्रतिप्रसवः शिवदीक्षावद्विषय इति पुनः प्रतिज्ञाय ज्योतिर्लिङ्गं विनेत्यादि निषेधवाक्यं विलिख्य शालग्रामोद्भव इत्यादि भक्ष्यमितीर्यत इति भविष्योक्तेरिति हेतुमुक्त्वा ज्योतिर्लिङ्गे नैवेद्यादि-स्वीकारस्तु दीक्षारहितैरपि कार्यं इतिप्रतिज्ञाविशेषं कृत्वा ज्योतिर्लिङ्गं विनेत्युक्तवचनादिति तत्रापि हेतुं प्रदर्श्य लिङ्गान्तरेषु तीर्थोदकवन्दन-मात्रं श्रद्धावच्छिवभक्तमात्राधिकारिकमित्यपि प्रतिज्ञान्तरमुक्त्वा

श्रद्धवतां स्वभक्तानामुपसर्गे महत्यपि ।

नोपायान्तरमस्त्येव विनेशचरणोदकम् ॥

ये व्याधयो हि दुःसाध्या बहिरन्तः शरीरिणाम् ।

श्रद्धयेशोदकस्पर्शात्ते नश्यन्त्येव नान्यथा ॥

इति रत्नेश्वरोपाख्याने स्कान्दवचनादिति हेतुं प्रायुङ्क्वानन्तदेवः । न चात्र दीक्षातिरिक्तश्रद्धाबोधनात्त्वया तु दीक्षापदार्थत्वेनैव श्रद्धाया उक्त-त्वाद्नेन सह विरोध एवेति वाच्यम् । प्रागुक्तस्कान्दवचनविरोधेन बृहज्जा-बालश्रुत्युक्ते ब्राह्मणत्वावच्छिन्नस्य संध्यावदनादिवन्नित्यत्वेन विहिते बाणलिङ्गाद्यवच्छेदेन शिवार्चने दृढतमविश्वासरूपश्रद्धाया एव वैदिक-निष्ठदीक्षापदेन मयोक्ततया प्रकृते त्वास्तिक्यमात्ररूपायाः श्रद्धाया महोप-सर्गदुःसाध्याधिव्याध्युपशमकामप्रयोजिकाया अवश्यवाच्यत्वेनाविरो-धात् । यच्चात्र ज्योतिर्लिङ्गेतरलिङ्गानां तीर्थोदकवन्दनमात्रमुक्तं तदपि प्राक्प्रपञ्चितश्रुत्यादिवचननिचयविरोधात्स्थिरलिङ्गविषयमेव बोध्यम् । अत एव पुरुषार्थचिन्तामणौ शिवरात्रिप्रघट्टक एव शिवनिर्माल्यतीर्थ-प्रसादग्रहणविचारं कृत्वा निर्णीतम्—इदं नैवेद्यग्रहणं चरलिङ्ग एवेति । तस्माज्ज्योतिर्लिङ्गस्वयंभ्वादिपुराणप्रसिद्धलिङ्गानां प्रासादप्रतिष्ठाविधि-सिद्धचण्डाधिकारणामपि ये श्रद्धाजडाः शास्त्रतात्पर्यपर्यालोचनाचतु-रास्तीर्थप्रसादादिग्रहणमाचरन्ति नैवेद्यभक्षणमपि कुर्वन्ति ते समुपेक्षया

एव प्रेक्षावद्भिरिति शिवम् । ननु नायमपि नियमो यच्चरलिङ्गावच्छेदे-
नैव सर्वत्र तीर्थप्रसादनिर्माल्यसेवनं कर्तव्यमिति परिगणितचण्डाधि-
कारविधुरलिङ्गभिन्नात्मतायास्तेष्वपि पार्थिवादिषु स्फुटतरत्वादिति
चेत्सत्यम् । निरुक्तपुरुषार्थचिन्तामण्युक्तेर्बाणलिङ्गादिप्रायोभिप्रायक-
त्वात् । अत एवोक्तमाचारकिरणे शिवनारदसंवादे—

बाणलिङ्गे तु चण्डांशो न च निर्माल्यकल्पना ।
सर्वं बाणार्पितं ग्राह्यं भक्त्या भक्तैश्च नान्यथा ॥
ग्राह्याग्राह्यविचारोऽयं बाणलिङ्गे न विद्यते ।
तदर्पितं जलं चान्नं ग्राह्यं प्रसादसंज्ञया ॥ इति ।

चकारान्निर्माल्यकल्पनाऽपि नेत्यर्थः । भक्त्याऽतिप्रीत्या । एवं च भक्तै-
रिति न पौनरुक्त्यम् । न चैवमन्वयव्यतिरेकसिद्धमेव शिवभक्तभिन्नानां
तत्तीर्थप्रसादादिग्रहणनिवारणम् । तथा च नेदं ब्राह्मणसाधारणमिति
वाच्यम् । प्रागुक्तबृहज्जाबालश्रुतेर्विप्राणां दैवतं शंभुरिति समुदाहृतमनु-
स्मृतेश्च ब्राह्मणमात्रस्य शिवैकभक्तत्वयोग्यत्वात् । नापि भक्तिर्हि सा परा-
नुरक्तिरीश्वर इति भक्तिं प्रकृत्य शाण्डिल्यनेश्वरविषयकनिरतिशयानुरा-
गात्मनैव तल्लक्षणाभिधानात्तस्य चाबाधितलोकोत्तरस्वानुकूलगुणज्ञान-
मात्रायत्तत्वेन विधातुं निषेद्धुं वा शास्त्रमतेनाप्यशक्यत्वात्कथं ब्राह्मण-
त्वावच्छेदेन तन्नैयत्यमिति सांप्रतम् । येषां सत्यपि ब्राह्मण्ये जन्मान्त-
रीयदुरदृष्टप्रतिबोधेनोक्तभक्तिप्रयोजकज्ञानानुदयस्तेषां दशविधब्राह्मण-
तायाः शास्त्रान्तरप्रसिद्धतया क्षत्रियादिब्राह्मणत्वस्यैव वक्तव्यत्वादिति
संक्षेपः । नन्वेवं माधवाचार्यैः सूतसंहिताटीकायां निर्माल्यं च निवेद्यं
च विशेषेण विवर्जयेदिति मूलव्याख्याने साधारण्येन सर्वलिङ्गनिर्माल्या-
दिसेवनं निषिद्धम् । तद्यथा । निर्माल्यं च निवेद्यं चेति । तदुक्तमागमे
सर्वज्ञानोत्तरे—

विसर्जितस्य देवस्य गन्धपुष्पनिवेदनम् ।
निर्माल्यं तद्विजानीयाद्वर्ज्यं वस्त्रविभूषणम् ॥
अर्पयित्वा तु तद्दूयश्चण्डेशाय निवेदयेत् ॥ इति ।

तथा कालोत्तरेऽप्युक्तम्—

स्थिरे चले तथा रत्ने सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ।
लोहे चित्रमये बाणे स्थिते चण्डो नियामकः ॥

सिद्धान्ते नोत्तरे तन्त्रे न वामे न च दक्षिणे ।

चण्डद्रव्यं गुरुद्रव्यं देवद्रव्यं तथैव च ॥

रौरवे ते तु पच्यन्ते मनसा ये तु भुञ्जते ॥ इति ।

एवमादिसिद्धान्तमतवचनपर्यालोचनया गन्धपुष्पादेर्नैवेद्यस्य चण्डद्र-
व्यत्वेन सर्वथा वर्ज्यत्वावगतेस्तन्न भुञ्जीतेत्यर्थः । सिद्धान्तव्यतिरिक्तवा-
मदक्षिणादितन्त्रान्तरमते तु यत्र चण्डाधिकारो नास्ति तत्र निर्माल्य-
स्वीकारेऽपि दोषो नास्तीति । तथा चोक्तम्—

बाणलिङ्गे चरे लोहे सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि ।

प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥

अद्वैतमाधनायुक्ते स्थण्डिलेऽथ विधावपि ॥ इति ।

तत्र शैवागमे तु सिद्धान्तस्यैव प्राबल्यात्तन्मतानुसारेण सर्वेष्वपि
लिङ्गेषु सर्वथा वर्जनीयमित्यभिप्रेत्याऽऽह विशेषेणेतीति तत्कथामिति चेन्न ।
विसर्जितस्येत्यादिना बाणे स्थित इति च बाणविशेषणेन चरस्य तस्य
व्युद्स्ततयेष्टापत्तेरिति दिक् । तत्रायं संग्रहः—

पुराणप्रसिद्धेषु सर्वेषु लिङ्गे-

ष्वभून्नाऽऽलयो यावदेवेह तद्वत् ।

मनोरत्नबाणाखिलख्यातधातू-

द्भवे पारदे शंभुनाभौ च मूर्तौ ॥

प्रसिद्धं चरत्वं हि यावन्न ताव-

त्प्रयात्यत्र चण्डाधिकारस्ततोऽत्र ।

निपेयं हि पादोदकं चापि तीर्थं

प्रसादोऽपि भक्ष्यश्च शेषाऽपि धार्या ॥

ततोऽन्येषु सर्वेषु लिङ्गेषु शंभो-

स्तथाऽर्चासु सर्वासु चण्डाधिकारात् ।

न तीर्थादि सेव्यं कदाऽपि द्विजेन्द्रै-

र्न संसृज्यते गण्डकीया शिला चेत् ॥

अयमर्थः—पुराणेति । एतेन ज्योतिर्लिङ्गस्वयंभुसुरार्षिसिद्धादिप्र-
तिष्ठितलिङ्गसंग्रहः । मन इत्यादि । रत्नेति चन्द्रकान्तादेरप्युपलक्षणम् ।
लिङ्ग इत्यार्थिकम् । शंभुनाभौ शिवनामौ शालग्राम इत्यर्थः । १ ।
शेषा निर्माल्यं पुष्पबिल्वादि । २ । अर्चासु मूर्तिषु शंभोरित्यनुषङ्गः ३ ।
अयमपि निर्णयो माधवेतरमतेनैव । तन्मते तु चरबाणालिङ्गस्यैव तीर्थ-

प्रसादनैवेद्यनिर्माल्यसेवनमिष्टं न त्वितरेषां सर्वेषामपि शिवलिङ्गानामिति समुदाहृतसूतसंहिताटीकात एव निर्णयिते । शिवनाभौ तु शालिग्रामोद्भवलिङ्गत्वेनैव न तन्मतेऽपि त्याज्यतेति सर्वमवदातम् । एतदभिप्रायिकैव रुद्रमुक्तं मुञ्जीत रुद्रपीतं पिबेद्बुद्धाघातं जिघ्रेद्बुद्धेणात्तमश्नन्ति रुद्रेण पीतं पिबन्ति रुद्रेणाऽऽघातं जिघ्रन्ति तस्माद्ब्राह्मणाः प्रशान्तमनसो निर्माल्यमेव भक्षयन्तीति बृहज्जाबालश्रुतिरपीति ध्येयम् । एतेन गण्डकीत्यादिवाक्याभासप्रसिद्ध्या तीर्थसिद्ध्यर्थं शालग्रामाद्यावश्यकमिति भ्रमः परास्तः । ननु लिङ्गार्चनचन्द्रिकायां पार्थिवलिङ्गमाहात्म्यप्रस्तावे लैङ्गे—

जाबालोपनिषत्साध्वी मम ज्ञानस्य सिद्धये ।

प्रधानसाधनान्याह द्विजानामादरेण तु ॥

अविमुक्तं मम क्षेत्रं मन्नाम परमं शुभम् ।

शतरुद्रीयजाप्यं च तथा संन्यासमुत्तमम् ॥

भस्मनोद्भूलनं चैव त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ।

रुद्राक्षधारणं साक्षाद्भक्त्या पार्थिवपूजनम् ॥

भस्मसंपादनं ध्यानं ममैव परमस्य च ।

एतानि साधनान्याह प्रधानानि यथा यथा ॥

इति ग्रन्थेन कण्ठत एव ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानामेव द्विजपदवाच्यानां ज्ञानसिद्ध्यर्थं प्रधानसाधनत्वेन पार्थिवलिङ्गस्य यावन्नैवर्णिकाद्वैतपरशिवाप्रतिबद्धसाक्षात्कारेच्छुजनसाधारण्येन पूज्यत्वोक्तेः ।

यथालब्धोपचारैश्च षोडशैः श्रद्धया युतः ।

पूजयेत्पार्थिवं लिङ्गं वेदोक्तविधिना द्विजः ।

इति ब्राह्मणादेस्तत्पूजानित्यत्वोक्तेश्च कथं तद्विहाय बाणलिङ्गमेव त्वया नित्यार्च्यत्वेनोच्यते इति चेदुच्यते । पार्थिवस्य प्रागुक्तचण्डाधिकारविरहेतरत्वेन तीर्थादिग्रहणार्थं बाणलिङ्गार्चनं त्वावश्यकमेव । तथा च सति सामर्थ्ये पूर्वोक्तत्रिकालार्चनवत्पार्थिवलिङ्गार्चनमपि नैव वयं वारयाम इति शालिग्रामादिदेवतान्तरसमुच्चये सर्वत्र शिवतीर्थप्रसादग्रहणमुक्तं हेमाद्रौ । शालिग्रामादिदेवतासमूहे विशेषमाह जाबालिः—

शिवे विष्णवादिभिर्देवैर्वैष्टिते यत्समर्पितम् ।

तद्भुक्त्वा विप्रवर्योऽसौ न भवेद्दोषभाजितः ॥

हारीतः—शालग्रामादिभिः शंभोर्वैष्टितस्य यदर्पितम् ।

तद्भोक्तव्यं द्विजैर्नित्यं ततोऽन्यत्परिवर्जयेत् ॥ इति ।

सर्वथा शिवपूजा केवलं ब्राह्मणानां नित्याऽकरणे प्रत्यवायश्रवणात् । तदुक्तं लिङ्गार्चनचन्द्रिकायामेव बृहज्जाबालोपनिषदि —

अहरहः शिवलिङ्गमनभ्यर्च्य नाश्रीयात्फलमन्नमन्यद्वा यद्यश्रीयाद्रेतो-
मक्षी भवेन्नापः पिबेद्यदि पिबेत्पूयपो भवेत्प्रमादेनैकदा त्वनभ्यर्च्य मां
भुक्त्वा भोजयित्वा वा केशान्वापयित्वा गव्यमपि पञ्च संगृह्योपोष्य
जले रुद्रस्थाने वा जपेच्चिवारं शतरुद्रीयमादित्यं पश्यन्नभिध्यायन्स्वकं
कर्म ततो रौद्रेरेव मन्त्रैर्मार्जनं कुर्यात्ततो भोजयित्वा ब्राह्मणान्पूतो
भवति । अन्यथा परेतो यातनामश्नुते । इति ।

तत्रैवाग्रे—

ब्राह्मणैस्तु शिव एव पूज्यो न देवतान्तरम् । त्वं देवेषु ब्राह्मणोऽस्यहं
मनुष्येषु ब्राह्मणो वै ब्राह्मणमुपधावति । इति प्रपदाख्यसामश्रुतेः ।
पराशरपुराणे च—

ततो विप्रस्य संबन्धः शिवेनैव हि युज्यते ।

संकराः सर्वदेवाश्च वृषलस्तु पुरंदरः ॥

पितामहस्तु वैश्यश्च क्षत्रियः परमो हरिः ।

ब्राह्मणो भगवान् रुद्रः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥

ब्राह्मणो वै सदा लोके ब्राह्मणं चोपधावति ।

महाब्राह्मणमीशानमुपधावेन्न चेत रम् ॥ इति ।

तस्माद्ब्राह्मणैः शिव एव बाणलिङ्गाद्यवच्छेदेन नित्यं समर्चनीयस्त-
त्तीर्थप्रसादनिर्माल्यानि च सेवनीयान्येव चरप्रतीकावच्छेदेन सति
चण्डाधिकारवैधुर्यं इति सिद्धम् । ननु पूर्वोदाहृतनिर्णयसिन्धौ सिद्धा-
न्तशेखरवाक्ये—

धराहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान् ।

विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत् ॥

अन्यदन्नादि ताम्बूलं पानीयं गन्धपुष्पकम् ।

दद्याच्चण्डाय निर्माल्यं शिवभुक्तं च सर्वशः ॥

इति धराद्यंशुकान्तवस्तुषु चण्डेशानधिकार एव शिवार्पितेष्वप्युक्त
इति तान्यपि सेव्यानि स्युरिति चेन्न । तेषां पूजोपकरणसामग्रीत्वात्तत्रैव
विनियोगाच्च । अविभक्तानामपि पृथग्देवपूजामाह प्रयोगपारिजात
आश्वलायनः—

पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजन्मनाम् ।

अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं भवेत्पृथक् ॥ इति ।

अथ शङ्खलक्षणमुक्तं शालग्रामपरीक्षायां स्कान्दे—
 गोक्षीरधवलः स्निग्धो दीर्घनालो बृहत्तनुः ।
 ओंकारनादसंयुक्तः सव्यावर्तः प्रशस्यते ॥
 विशालाग्रं मध्यसूत्रं पृष्ठे दीर्घं तथैव च ।
 वामावर्तं च विज्ञेयं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥

शङ्खस्वरूपमिति शेषः । विष्ण्वर्चने तदावश्यकतोक्ता तत्रैव ब्रह्मा-
 ण्डपुराणे—

शङ्खस्थितेन तोयेन यः स्नापयति केशवम् ।
 कपिलायाः सहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ इति ।

शिवसूर्ययोः केवलयोरर्चने तन्निषेधोऽपि तत्रैव मन्त्रराजानुष्टुब्धिधा-
 ने—सर्वत्रैव प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्यार्चनं विना । इति । नन्वेवं चेदाचार-
 किरणे यदत्रोपक्रमे प्रस्थाम्बुप्रमितः शङ्ख इत्यादि क्रियासारवचनं
 लिखितं तदेव क्रमशो भवेदित्यन्तं संगृह्य

सुश्वेतः प्रांशुशिखरः स्निग्धो दीर्घाम्बुपद्भृतिः ।
 शङ्खः स्यादर्चने योग्यो योऽसावलिकचक्षुषः ॥

इति विलिख्यालिकचक्षुषो भालनेत्रस्य पूजने योग्य इत्यर्थं इत्युक्तं तत्क-
 थमिति चेत्सत्यम् । तस्य शिवपञ्चायतनपरत्वात्तथैव शिष्टाचाराच्चेति
 दिक् । अथ घण्टालक्षणं शालग्रामपरीक्षायां वसिष्ठभरद्वाजसंवादे
 भरद्वाज उवाच—घण्टायाः परमं रूपं श्रोतुमिच्छामीत्यादिप्रश्ने वसिष्ठ
 उवाच—

पञ्चलोहमयी घण्टा रुद्रस्याऽऽह्लादकारिणी ।
 तस्या वादनमात्रेण वाजपेयफलं लभेत् ॥
 हीननादा तु या घण्टा वर्जनीया प्रयत्नतः ।
 तस्मान्नादमयी(यीं)घण्टां कुर्यादीशस्य संनिधौ ॥ इति ।

तद्वादनविधानं तत्रैव पाञ्चरात्रागमे—

आगमार्थं तु देवानां गमनार्थं तु रक्षसाम् ।
 घण्टानादं प्रकुर्वीत पूजाकाले तु यत्नतः ॥ इति ।

आचारकिरणे गारुडे—

स्नाने धूपे तथा दीपे नैवेद्ये भूषणे तथा ।
 घण्टानादं प्रकुर्वीत तथा नीराजनेऽपि च ॥ इति ।

एवं शालग्रामतीर्थग्रहणे करादिद्वारविनिर्णयोऽपि शालिग्रामपरीक्षा-
यामेव—

शालिग्रामशिलातीर्थं सोमपानमनुत्तमम् ।

पात्रान्तरेण तत्तोयं न पिबेच्च कदाचन ॥

इत्यन्तवाक्यजालं विलिख्यैतेषां वाक्यानां प्रायः पाञ्चरात्रवैखान-
सागमादिपठितत्वेन तच्छास्त्रानुगन्तुं प्रति प्रामाण्यमस्तु न वैदिकमार्गा-
नुगन्तुं प्रति ।

विष्णुपादाभिषिक्तं यः करेण पिबते यदि ।

स मूढो नरकं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

इति प्रयोगपारिजातादिधृतस्मार्तानेकवाक्यविरोधादिति । आचार-
किरणे पादौ—

विष्णुपादोदकात्पूर्वं विप्रपादोदकं पिबेत् ।

विरुद्धमाचरेद्यस्तु ब्रह्महा स निगद्यते ॥ इति ।

एवमग्रे तत्र वैष्णवग्रन्थे भारद्वाजसंहितायामित्यादिनैकादश्यामेक-
वारतीर्थग्रहणाद्युक्तं तदपि वैष्णवपरमेव । पूज्यादिनिर्णये सिद्धेऽथ
साधारण्येन पूजानुष्ठानानुक्रमपद्धतिर्बोधायनीयविशेषपद्धतिवदाश्वला-
यनीयगृह्यपरिशिष्टे द्वितीयाध्यायस्थनवमखण्डोत्तरं देवपूजां प्रक्रम्य
तदुपयोगिपूज्याद्यासनविध्यन्तमुक्त्वा ततः प्रातः कर्म संकल्प्य शुचि-
शङ्खादिपात्रं सपवित्रमद्भिः प्रणवेन पूरयित्वा गन्धाक्षतपुष्पाणि
प्रक्षिप्य सावित्र्याऽमिमन्त्र्य तीर्थान्यावाह्याभ्यर्च्य पवित्रपुष्पपाणिस्त-
दुदकेनाऽऽपो हि षेति त्रिभिरात्मानमायतनं यजनाङ्गानि चाभ्युक्ष्य
क्रियाङ्गोदककुम्भं गन्धादिभिरभ्यर्च्य तेनोदकेनैवार्थान्कुर्वीत नमोन्त-
नाम्ना तल्लिङ्गमन्त्रेण वा क्रमेणोपचारान्दद्यात्पुष्पोदकेन पाद्योदकमर्घ्य-
पात्रान्तरेण सगन्धाक्षतकुसुमं दद्यादावाहनमासनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं
स्नानमाचमनं वस्त्रमाचमनमुपवीतमाचमनं गन्धं पुष्पाणि धूपं दीपमुप-
हारमाचमनं मुखवासं स्तोत्रं प्रणामं दक्षिणां नाम स्तोत्राङ्गं प्रादक्षिण्यं
विसर्जनाङ्गमिति । [*एवं देवपूजानन्तरकृत्यमुक्तमाचारकिरणे मरीचिना-

विधाय देवतापूजां प्रातर्होमादनन्तरम् ।

गुरुक्तेन तु मार्गेण मूलमन्त्रं जपेद्बुधः ॥ इति ।

* अयं ग्रन्थः क. पुस्तक उत्तरत्र धनुश्चिह्नस्थले वर्तते ।

तत्रैव तदुत्तरं तीर्थग्रहणमुक्तं मविष्ये—

मामभ्यर्च्य पिबेदेव यः पादसलिलं हरेः ।

स याति परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ इति ।

उपलक्षणमिदम्—

बाणरावणचण्डेशनन्दिभृङ्गिरिटादयः ।

सदाशिवप्रसादोऽयं सर्वे गृह्णन्तु शांभवाः ॥ इति ।

रमा ब्रह्मादयो देवाः सनकाद्याः शुकादयः ।

महाविष्णुप्रसादोऽयं सर्वे गृह्णन्तु वैष्णवाः ॥

इति शिष्टसांप्रदायिकश्लोकाभ्यां पूजान्ते शैवादिपारिषदास्त्रिवेद्या-
वशिष्टप्रसादग्रहणनिर्माल्यधारणयोः ।]

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुञ्जयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे देवपूजाप्रकरणम् ।

अथ प्रयोगः । तत्राष्टादशोपचारा पूजा पुरुषसूक्तेन कार्या । ननु
षोडशोपचारा सर्वैः स्मृतिपुराणैः पुरुषसूक्तेन प्रतिपादितेति श्रूयते ।
सत्यम् । अस्माकं तैत्तिरीयाणां पुरुषसूक्तमष्टादशार्गात्मकमतस्तदनुकूल-
प्रागुक्तपराशरपुराणोक्ताष्टादशोपचारा एव गृह्यन्ते । [*निरुक्तपरिशिष्ट-
मपि स्तोत्रं यथा स्यात्तथा प्रणाममिति स्तोत्रमङ्गमस्यैतादृशं नाम
भगवन्नामसंकीर्तनमिति विसर्जनमङ्गं यस्यैतादृशं प्रादक्षिण्यमिति च
व्याख्यातं चेद्वान्तरभेदेऽप्यष्टादशोपचारसंख्यानुग्राहकं भवत्येव ।] अस्य
च सूक्तस्य पुरुषसूक्तव्यवहारो यज्ञोपयोगित्वं च चित्त्युपनिषद्याख्याने
द्वादशानुवाके माधवाचार्यैर्दर्शितम् । तद्यथा । अथ नारायणनाम्ना
पुरुषसूक्तनाम्ना च ध्यवाह्नियमाणोऽनुवाक उच्यते तस्य विनियोगं
महाग्रावापस्तम्ब आह—

पुरस्तात्प्रतीचीं पुरुषाकृतिं चिनोति पुरुषशिरो भवति सहस्रशीर्षा
पुरुष इत्युपाहितां पुरुषेण नारायणेन यजमान उपतिष्ठत इति ।

बह्वृचोक्तमेव पुरुषसूक्तमन्त्रगृहीतमिति चेत् ।

पारम्पर्यगतो येषां वेदः सपरिवृंहणः ।

तच्छास्त्रं कर्म कुर्वीत तच्छाखाध्ययनं तथा ॥

इति वचनात्परशाखीयं महर्षिरसौ कथं ब्रूयात् । तथा च पूजाया उपचारेष्वपि भेदाः सन्ति न केवलं निर्मूलैवेयमष्टादशोपचारकल्पना । ते च भेदाः पञ्चोपचारादिकाः पूर्वमेवोक्ताः । अतो ध्यानासनपाद्या-
ध्याचमनमधुपर्कस्नानवस्त्रयज्ञोपवीतगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यताम्बूलदक्षि-
णाफलपुष्पाञ्जलिभिरष्टादशोपचारैः पूजनं कार्यम् । अथोक्तपुरुषसूक्तक-
मेण पूजाप्रयोगः । आचम्य प्राणानायम्य शुचौ देश आसनस्थो देश-
कालौ संकीर्त्य श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं तत्पूजनमहं करिष्ये इति संकल्प्य
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षि तमसः परस्तात् ॥

इति श्रुतेर्वामाङ्कस्थितोमं वरदाभयज्ञानव्याख्यानमुद्रोलुसत्पाणिपद्म-
चतुष्टयं सुप्रसन्नं सर्वाभरणभूषितं हिरण्यजटाजूटनिरुद्धगङ्गामिन्दुशे-
खरं निमीलिततृतीयलोचनं नीलकण्ठातिशान्तं द्यष्टवर्षवयस्कनित्यनि-
रुपमयौवनभ्राजमानविग्रहं निष्कलङ्कानन्तचन्द्रप्रभाप्रमोषिरोचिषं भग-
वन्तं श्रीशंकरमृत* सत्यमित्यादिप्रागुक्तश्रुतेरुमार्धविग्रहं वा परमात्मानं
शिव एको ध्येयः शिवंकरः सर्वमन्यत्परित्यज्येतिश्रुतिचोदितनित्यध्या-
नविषयीकृत्य

कृत्वाऽऽदौ मानसीं पूजां ततः पूजां समारभेत् ।

इति मुद्गलपुराणवचनाद्यथेच्छमानसोपचारैः सावकाशं सानन्दं च
संपूज्य शुद्धजलपूरितं कलशं स्ववामभागे संस्थाप्येभं मे वरुणेति
तच्चा यामीति च वरुणमावाह्य गन्धादिभिः संपूज्य दक्षिणतः प्रक्षालितं
शङ्खं त्रिपाद्यामाधाय कलशोदकेन प्रणवेनाऽऽपूर्य पाञ्चजन्यायेत्यादि-
तद्वायव्या गन्धादिभिस्तमभ्यर्च्य तदुदकं सावित्र्याऽभिमन्त्र्य तेन जले-
नाऽऽपो हि षेत्यादितिसृभिः पूजाद्रव्याणि भूमिमात्मानं च प्रोक्षेत् ।
ततो वामभागे ।

जगद्ध्वनिं ततो मन्त्रमातः स्वाहेत्युदीर्य च ।

अभ्यर्च्य वादयन्घण्टामुपचारान्प्रकल्पयेत् ॥

इति पुरुषार्थप्रबोधोक्तेर्गन्धपुष्पाक्षतैर्घण्टां संपूज्य

आगमार्थं तु देवानां गमनार्थं तु रक्षसाम् ।

कुरु घण्टे शुभं नादं देवताह्वानलाञ्छनम् ॥

इतिमन्त्रेण घण्टां संप्रार्थ्य तां वादयेत् । ततः सहस्रशीर्षेति ध्यानं कृत्वा पुष्पमर्पयेत् ॥ १ ॥ पुरुष एवेत्यासनं दद्यात् ॥ २ ॥ एतावानस्येति पाद्यम् ॥ ३ ॥ त्रिपाङ्गुर्ध्वेत्यर्घ्यम् ॥ ४ ॥ तस्माद्विराडित्याचमनम् ॥ ५ ॥ यत्पुरुषेणेति मधुपर्कम् ॥ ६ ॥ ततोऽङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां निर्माल्यं व्यपोह्योत्तरतो गणार्थं त्यक्त्वा स्नानपात्रे देवस्थापनं विधाय सति संभवे सुगन्धतैलैः स्नापयेत् । ततः पञ्चामृतैः स्नापयेत् । तत्राऽऽप्यायस्वेति पयः । दधिक्रावण इति दधि । घृतं मिमिक्षिर इति घृतम् । मधुवाता इति मधु । त्वे क्रतुमपीति शर्करा । ततः सप्तास्याऽऽसन्निति शुद्धोदकस्नानं च समर्प्य ॥ ७ ॥ पात्रान्तरे महाभिषेकार्थं देवस्थापनं कृत्वा प्रागुक्तबोधायनसूत्रानुसारेण रुद्रैकावर्तनेन शिष्टाचारप्रापितेन पञ्चाक्षरमन्त्रवत्त्वेन नमः सोमाय चेत्यनुवाकस्य पुराणादौ महामहिमतया शं च म इत्यस्योदकशान्तिसूत्रे बोधायनेनोक्तत्वेन पुरुषसूक्तस्य

नमकैश्चमकैश्चैव तथा पुरुषसूक्तकैः ।

अभिषेकं न कुर्वन्ति पाँखण्डोपहता जनाः ॥

इति ब्रह्मगीतायां नमकादितौल्यस्यैवाभिषेककर्मण्यतिक्रमे दोषश्रवणद्वारा नित्यविधित्वस्यैव तदभिषेके बोधितत्वेन च नमः सोमाय चेति शं च म इति चानुवाकद्वयेन वा पुरुषसूक्तेन च जलाभिषेकं तत्र कृत्वाऽऽचमनीयं दत्त्वा वस्त्रेण प्रमृज्याऽऽयतने तत्स्थापनं विदध्यात् । ततस्तं यज्ञमिति वस्त्रम् ॥ ८ ॥ आचमनीयं दत्त्वा तस्माद्यज्ञादिति यज्ञोपवीतमाचमनीयं च दत्त्वा ॥ ९ ॥ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच इति गन्धम् ॥ १० ॥ तस्मादश्वेति पुष्पम् ॥ ११ ॥ यत्पुरुषमिति धूपम् ॥ १२ ॥ ब्राह्मणोऽस्येति दीपम् ॥ १३ ॥ चन्द्रमा मनस इति पयआदिनैवेद्यम् ॥ १४ ॥ मध्ये पानीयं हस्तप्रक्षालनार्थं शर्करां तदभावे गन्धं मुखप्रक्षालनार्थमुष्णोदकं शीतोदकं च दत्त्वाऽऽचमनीयं च दत्त्वा ॥ १५ ॥ नाभ्या आसीदिति ताम्बूलम् ॥ १६ ॥ वेदाहमिति दक्षिणाम् ॥ १७ ॥ धाता पुरस्तादिति फलम् । यज्ञेन यज्ञमिति पुष्पाञ्जलिम् ॥ १८ ॥ प्रदक्षिणा नमस्कारांश्च निधनपतये नम इत्यादि सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वित्यन्तैर्मन्त्रैर्भवाय देवाय नम इत्यादिस्वसूत्रगैस्तैः सञ्चिदानन्दरूपायेत्यादिना च कृत्वा, ॐ तद्ब्रह्मेत्यादिसुवरोमित्यन्तेनानुवाकेन स्तुत्वा यो ब्रह्माणं विदधातीत्यादिप्रपद्य इत्य-

न्तेन मन्त्रेणाऽऽत्मानं शरणागतं विनिवेद्याऽऽवाहनं न जानामीत्यादिना क्षमापय्यापराधसहस्राणीत्यादिना स्वापराधानपि विनिवेद्य कर्मेश्वरा-
 यार्पयेत् । तत्सावुण्यार्थं प्रमादादिति यस्य स्मृत्येति च त्रिविष्णुं
 स्मरेत् । पूजान्ते जपस्तोत्रपाठतीर्थप्रसादग्रहणानि तु प्रागुक्तदिशैव कर्त-
 व्यानि । अयं पूजाप्रयोगस्तु हरिहरयोरन्यतरस्य यस्य कस्यचिदीश्वरस्य
 शालग्रामबाणलिङ्गान्यतरावच्छेदेन प्रागुक्तपूजकाधिकारिकः । केवल-
 शिवस्यैव बाणलिङ्गावच्छेदेनार्चनाधिकारिणां तु षडक्षरेणैव निरुक्त-
 निखिलोपचारार्पणम् । तद्वत्केवलविष्णोरेव शालग्रामावच्छेदेन परिच-
 र्याधिकारिणां नारायणाष्टाक्षरविशिष्टोक्तपुरुषसूक्ताष्टादशभिर्मरटादशो-
 पचाराः समुचिताः । एतेन क्रमादुभयार्चनपक्षोऽपि ध्याख्यातः । शिवे
 प्राधान्येऽपि समुच्चित्योभयार्चकानां तु षडक्षरविशिष्टोक्तप्रयोग एव ।
 एवं शिवपञ्चायतनार्चकस्तत्पुरुषाय विद्मह इत्यादिरुद्रगायत्र्या सह
 विष्णुपञ्चायतनार्चकस्तु नारायणाय विद्मह इत्यादितद्गायत्र्या सह
 गणपतिपञ्चायतनार्चकस्तु तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहीत्या-
 दितद्गायत्र्या सह सूर्यपञ्चायतनार्चकस्तु मास्कराय विद्मह इत्यादि-
 तद्गायत्र्या सह शक्तिपञ्चायतनार्चकोऽपि कात्यायनाय विद्मह इत्यादि-
 तद्गायत्र्या सह निरुक्तपुरुषसूक्तिभिरेवोक्तोपचारान्दद्यादिति षण्णामप्य-
 र्चनपक्षाणां क्रमेण दशानामपि प्रयोगव्यवस्था बोध्या । एतदशक्तौ तु
 शिवभक्तैरासनस्नानभस्मबिल्वपत्रनैवेद्याख्यैर्वृहज्जाबालोपनिषदुक्तैः षड-
 क्षरेणैव पञ्चोपचारैर्विष्णुभक्तैरपि नारायणाष्टाक्षरेणैवाऽऽसनस्नानगन्ध-
 तुलसीदलनैवेद्याभिधैस्तैस्तत्तद्वर्चनं यावज्जीवं विधेयमेवेति रहस्यम् ।
 एवमन्यत्रापि बोध्यम् । यतीनां तु बाणलिङ्गादौ शिवः केशवो वा
 प्रणवेनैवोदकेन मस्मना च पञ्चोपचारैरुक्तविधैरेवेश्वरः समाराध्य इति
 दिक् । स्तोत्रपाठस्तु

स्वशाखोपनिषद्गीता विष्णोर्नामसहस्रकम् ।

श्रीरुद्रं पुरुषसूक्तं च नित्यमावर्तयेद्वृही ॥

इति पूर्वोक्त एव ज्ञेयः सर्वसाधारणः । शिवादिपञ्चायतनार्चकानां
 तत्तदथर्वशीर्षपाठोऽपीति शिवम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्वाषाढा-
 पराभिधहिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणाख्ये पूजाप्रयोगः ।

अथ देवपूजाप्रयोगोक्तमन्त्रास्तद्भाष्याणि च संगृह्यन्ते ।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
त्वामवस्युराचके ॥

अत्र माष्यं माधवीयम् । हे वरुण मे मदीयं हवमाह्वानं श्रुधि शृणु
श्रुत्वा चाद्यास्मान्मृडय सुखय । इमं हवं चावस्युः पालनेच्छुस्त्वामा-
चक आ समन्ताच्छब्दयामि प्रार्थयते(ये) ।

तत्रा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।

अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशःस मा न आयुः प्रमोषीः ॥ इति ।

तत्तस्मै वरुणाय ब्रह्मणा मन्त्रेण वन्दमानः, त्वा यामि त्वां
प्राप्नोमि । अयं यजमानो हविर्भिराराध्य त्वद्रक्षणमाशास्ते हे वरुण
अहेडमानः क्रोधरहित इह कर्मणि बोध्यस्मद्विज्ञानाय बुध्यस्व ।
हे उरुशःस प्रमूतस्तुते नोऽस्माकमायुर्मा प्रमोषीः, मा विनाशय
॥ ६ ॥ अथैतदीयमेव पुरुषसूक्तमाष्यम् । एतैरेकादशानुवाकैश्चा-
तुर्होत्रीयचयनमन्त्रा अमिहिताः । अथनारायणनाम्ना पुरुषसूक्तनाम्ना
च व्यवह्रियमाणोऽनुवाक उच्यते । तस्य विनियोगं महाग्नावापस्तम्ब
आह—पुरस्तात्प्रतीचीं पुरुषाकृतिं चिनोति पुरुषशिरो भवति । सह-
स्रशीर्षा पुरुष इत्युपहितां पुरुषेण नारायणेन यजमान उपतिष्ठत इति ।
ब्रह्मभेदेऽपि प्रेतदाहोपस्थाने विनियोगं मरद्वाज आह—नारायणाभ्या-
मुपस्थानम् । इति । अयं चोत्तरश्चोमावनुवाकौ नारायणसंज्ञौ । नारा-
यणाख्येन केनचिद्विषिणा दृष्टत्वात् । जगत्कारणस्य नारायणस्य पुरुषस्य
प्रतिपादकत्वाच्च । तत्रास्मिन्द्वादशेऽनुवाके प्रथमामुचमाह—

सहस्रशीर्षा पुरुषः । सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वा । अत्यतिष्ठद्वशाङ्गुलम् ॥ इति ।

सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः सोऽयं सह-
स्रशीर्षा सहस्रशब्दस्योपलक्षणत्वादनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः । यानि
सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तःपातित्वात्तदीयान्येवेति
सहस्रशीर्षत्वम् । एवमक्षिषु पादेष्वपि योजनीयम् । स पुरुषो भूमिं
ब्रह्माण्डगोलकरूपां विश्वतो वृत्वा सर्वतः परिवेष्ट्य दशाङ्गुलपरिमितं
देशमत्यतिष्ठत् । अतिक्रम्य स्थितः । दशाङ्गुलमित्युपलक्षणम् । ब्रह्मा-
ण्डाद्वाहिरपि सर्वतो व्याप्यावस्थित इत्यर्थः ।

अथ द्वितीयामाह—

पुरुष एवेदं सर्वम् । यद्भूतं यच्च भव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानः । यदन्नेनातिरोहति ॥ इति ।

यद्भूतमतीतं जगद्यच्च भव्यं भविष्यज्जगद्यदपीदं वर्तमानं जगत्सर्वं पुरुष एव । यथाऽस्मिन्कल्पे वर्तमानाः प्राणिदेहाः सर्वेऽपि विराट्-पुरुषस्यावयवास्तथैवातीतागामिनोरपि कल्पयोर्द्रष्टव्यम् । उतापि चासृ-तत्वस्य देवत्वस्यायमीशानः स्वामी यद्यस्मात्कारणादन्नेन प्राणिनां भोग्येनान्नेन निमित्तभूतेनातिरोहति स्वकीयां कारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगद्वस्थां प्राप्नोति तस्मात्प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगद्वस्थास्वीकारान्नेदं तस्य वस्तुतत्त्वमित्यर्थः । अथ तृतीयामाह—

एतावानस्य महिमा । अतो ज्यायाश्च पुरुषः ।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि । त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ इति ।

अतीतानागतवर्तमानरूपं जगद्यावदस्ति तावान्सर्वोऽप्यस्य पुरुषस्य महिमा स्वकीयसामर्थ्यविशेषः । न तु तस्य वास्तवं स्वरूपं वास्तवस्तु पुरुषः । अतो महिम्नोऽपि ज्यायानतिशयेनाधिकः । एतच्चोभयं स्पष्टी क्रियते सर्वाणि भूतानि कालत्रयवर्तीनि प्राणिजातानि अस्य पुरुषस्य पादश्चतुर्थोऽशः । अस्यावशिष्टं त्रिपात्स्वरूपममृतं विनाशरहितं तच्च दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशरूपेऽवतिष्ठते । यद्यपि सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेत्याम्नातस्य परब्रह्मण इयत्ताया अभावादंशचतुष्टयं न निरूपयितुं शक्यं तथाऽपि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षयाऽत्यल्पमिति विवक्षित्वा पाद-त्वोपन्यासः । अथ चतुर्थीमाह—

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः । पादोऽस्येहाभवात्पुनः ।

ततो विष्वङ्गव्यक्रामत् । साशनानशने अभि ॥ इति ।

योऽयं त्रिपात्पुरुषः संसारस्पर्शरहितब्रह्मस्वरूपः सोऽयमूर्ध्व उदैत् । अस्माद्ज्ञानकार्यात्संसाराद्बहिर्भूतः सन्नत्रत्यैर्गुणदोषैरस्पृष्ट उत्कर्षेण स्थितवान् । तस्य योऽयं पादो लेशः सोऽयमिह मायायां पुनराभवत् । सृष्टिसंहाराभ्यां पुनः पुनरागच्छति । अस्य सर्वस्य जगतः परमात्मांशत्वं भगवताऽप्युक्तम्—

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् । इति ।

ततो मायायामागत्यानन्तरं विष्वङ्गदेवतिर्यङ्गनरादिरूपेण विविधः सन्व्यक्रामद्याप्तवान् । किं कृत्वा साशनानशने अभिलक्ष्य साशनं भोजनादिव्यवहारोपेतं चेतनं प्राणिजातमनशनं तद्रहितमचेतनं गिरि-

नद्यादिकं तदुमयं यथा स्वात्तथा स्वयमेवंविधोभूत्वा व्याप्तवानि-
त्यर्थः । अथ पञ्चमीमाह—

तस्माद्विराडजायत । विराजो अधि पूरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत । पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ इति ।

विष्वङ्गव्यक्रामदिति यदुक्तं तदेव प्रपञ्चयते तस्मादादिपुरुषाद्विराड-
जायत ब्रह्माण्डदेह उत्पन्नो विविधं राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराड्विराजो
अधि विराड्देहस्योपरिस्थितमेव तद्देहमाधिकरणं कृत्वा पुरुषस्तद्देहा-
भिमानी कश्चित्पुमानजायत । योऽयं सर्ववेदान्तषेद्यः परमात्मा स
एव स्वकीयया मायया विराड्देहं ब्रह्माण्डरूपं सृष्ट्वा तत्र जीवरूपेण
ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीवोऽभवत् । एतच्चाऽऽथर्वणिका उत्तरता-
पनीये साधु समामनन्ति—स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः
कोशांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैव । इति ।
स जातो विराट्पुरुषोऽत्यरिच्यतातिरिक्तोऽभूद्विराड्व्यतिरिक्तो देव-
तिर्यङ्मनुष्यादिरूपोऽभूत् । पश्चाद्देवादिजीवभावाद्भूर्ध्वं भूमिं ससर्जेति
शेषः । अथो भूमिसृष्टेरनन्तरं तेषां जीवानां पुरः ससर्ज । पूर्यन्ते सप्तभि-
र्धातुभिरिति पुरः शरीराणि । अथ षष्ठीमाह—

यत्पुरुषेण हविषा । देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तो अस्याऽऽसीदाज्यम् । ग्रीष्म इध्मः शरद्भुविः ॥ इति ।

पूर्वोक्तक्रमेण देवशरीरेषूपत्त्रेषु ते देवा उत्तरसृष्टिसिद्ध्यर्थं तत्सा-
धनत्वेन यज्ञमतन्वत । केचिद्यज्ञमन्वतिष्ठन् । बाह्यद्रव्यस्याद्याप्यनि-
ष्पन्नत्वेन हविरन्तरासंभवात्पुरुषस्वरूपमेव मनसा हविष्ट्वेन संकल्प्य
तेन पुरुषाख्येन हविषा यद्यदा मानसं यज्ञमकुर्वत तदानीमस्य यज्ञस्य
वसन्तर्तुरेवाऽऽज्यमभूत् । तमेवाऽऽज्यत्वेन संकल्पितवन्तः । एवं ग्रीष्ममि-
ध्मत्वेन संकल्पितवन्तः । शरत्पुरोडाशादिहविष्ट्वेन संकल्पिता । पूर्वं पुरु-
षस्य हविःसामान्यरूपत्वेन संकल्पः । वसन्तादीनां त्वाज्यादिविशेषरूप-
त्वेनेति द्रष्टव्यम् । अथ सप्तमीमाह—

सप्तास्याऽऽसन्परिधयः । त्रिःसप्त समिधः कृताः ।

देवा यद्यज्ञं तन्वानाः । अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ इति ।

अस्य सांकल्पिकस्य यज्ञस्य गायत्र्यादीनि सप्त च्छदांसि परिधय
आसन् । ऐष्टिकस्याऽऽहवनीयस्य त्रयः परिधय उ(औ)त्तरवेदिकास्तयः

परिधय आदित्यश्च सप्तमः परिधिप्रतिनिधिरूपः । अत एवाऽऽज्ञायते—न पुरस्तात्परिद्धात्यादित्यो ह्येवोद्यन्पुरस्ताद्क्षांस्स्यपहन्ति । इति । ते ह्यादित्यसहिताः सप्त परिधयोऽत्र सप्त च्छन्दोरूपास्तथा समिधस्त्रिसप्त त्रिगुणितसप्तसंख्याका एकविंशतिः कृताः । द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः, इति श्रुताः पदार्था एकविंशतिदारुयुक्तेभ्यमेव भाविताः । यद्यः पुरुषो वैराजोऽस्ति तं पुरुषं देवाः प्रजापतिप्राणोद्दियरूपा यज्ञं तन्वाना मानसं यज्ञं कुर्वाणाः पुरुषं पशुमबध्नन्विराद्रपुरुषमेव पशुत्वेन भावितवन्तः । एतदेवाभिप्रेत्य पूर्वत्र पुरुषेण हविषेस्त्युक्तम् । अथाष्टमीमाह—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् । पुरुषं जातमग्रतः ।

तेन देवा अयजन्त । साध्या ऋषयश्च ये ॥ इति ।

यज्ञं यज्ञसाधनभूतं तं पुरुषं पशुत्वभावनया यूपे बद्धं बर्हिषि मानसे यज्ञे प्रौक्षन्प्रोक्षितवन्तः । कीदृशं चाग्रतः सर्वसृष्टेः पूर्वं पुरुषं जातं पुरुषत्वेनोत्पन्नम् । एतच्च पूर्वमेवोक्तम्—तस्माद्विराडजायत विसजो अधि पूरुषः । इति । तेन पुरुषरूपेण पशुना देवा अयजन्त मानसयज्ञं निष्पादितवन्तः । के ते देवा इति त एवोच्यन्ते—साध्याः सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्राणरूपास्तदनुकूला ऋषयो मन्त्रद्रष्टारश्च ये सन्ति ते सर्वेऽप्ययजन्त । अथ नवमीमाह—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः । संभृतं पृषदाज्यम् ।

पशून्स्तांश्चक्रे वायव्यान् । आरण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥ इति ।

सर्वहुतः सर्वात्मकः पुरुषो यस्मिन्यज्ञे हूयते सोऽयं सर्वहुत्साह-शात्पूर्वाक्तान्मानसाद्यज्ञात्पृषदाज्यं संभृतं संपादितम् । इधि चाऽऽज्यं चेत्येवंविधं भोग्यजातं संपादितमित्यर्थः । तथा वायव्यान्वायुदेवता-काल्लोकप्रसिद्धानारण्यान्पर्शुश्चक्र उत्पादितवान् । आरण्या द्विखुरादयः । तथा च ग्राम्या वाऽश्वाः पशूनामप्युत्पादितवान् । पशूनामन्तरिक्षद्वारा वायुदेवत्वत्वं मन्त्रान्तरव्याख्याने समाम्नातम्—वायवः स्थेत्याह । वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः(?) । अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः । वायव एवै-नान्परिददाति । इति । अथ दशमीमाह—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः । ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् । यजुस्तस्मादजायत । इति ।

छन्दांसि गायत्र्यादीनि । स्पष्टमन्यत् । अथैकादशीमाह—

तस्मादश्वा अजायन्त । ये के चोभयादतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात् । तस्माज्जाता अजावयः ॥ इति ।

अश्वव्यतिरिक्ता गर्दभा अश्वतराश्च ये केचिदूर्ध्वाधोभागयोरुभयो-
र्दन्तयुक्ताः सन्ति तेऽप्यश्ववदजायन्त । तथा गावश्चाजावयश्च ते सर्वेऽ-
प्युत्पन्नाः । अथ द्वादशीमाह—

पत्पुरुषं व्यदधुः । कतिधा व्यकल्पयन् ।

मुखं किमस्य कौ बाहू । कावूरू पादावुच्येते ॥ इति ।

प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादिसृष्टिं वक्तुमत्र ब्रह्मवादिनां प्रश्ना उच्यन्ते ।
प्रजापतेः प्राणरूपादिदेवा यद्यदा पुरुषं विराड् रूपं व्यदधुः संकल्पेनो-
त्पादितवन्तस्तदानीं कतिधा कतिभिः प्रकारैः कल्पितवन्तः । अद्भ्य-
स्स्पष्टम् । अथ त्रयोदशीमाह—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् । बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः । पञ्चा* शूद्रो अजायत ॥ इति ।

योऽयं ब्राह्मणत्वादिजातिविशिष्टः पुरुषः सोऽयमस्य प्रजापतेर्मुखमा-
सीत् । मुखादुत्पन्न इत्यर्थः । योऽयं राजन्यः क्षत्रियजातिः स बाहुत्वेन
निष्पादितो बाहुभ्यामुत्पादित इत्यर्थः । तत्तदानीं यौ प्रजापतेरूरू
तद्रूपो वैश्यः संपन्न ऊरुभ्यामुत्पन्न इत्यर्थः । तथा पादाभ्यां शूद्र उत्पन्नः ।
इयं च मुखादिभ्यो ब्राह्मणादीनामुत्पत्तिः सप्तमकाण्डे स मुखतस्त्रिवृत्तं
निरमिमीतेत्यादौ विस्पष्टमाम्नाता । अतः प्रश्नोत्तरे उभे अपि तत्परत्वे-
नैव योजनीये । अथ चतुर्दशीमाह—

चन्द्रमा मनसो जातः । चक्षोः सूर्यो अजायत ।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च । प्राणाद्वायुरजायत ॥ इति ।

यथा दध्याज्यादिद्रव्याणि गवादिपशव ऋगादिवेदा ब्राह्मणादिमनु-
प्याश्च तस्मादुत्पन्ना एवं चन्द्रादयो देवा अपि तस्मादेवोत्पन्नाश्चक्षो-
श्चक्षुषः । अथ पञ्चदशीमाह—

नाभ्या आसीदन्तरिक्षम् । शीष्णो द्यौः समवर्तत ।

पञ्चां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् । तथा लोकाः अकल्पयन् ॥ इति ।

यथा देवास्तस्मादुत्पन्नास्तथा लोकानप्यन्तरिक्षादीन्प्रजापतेर्नाभ्यां
द्यवयवा अकल्पयन्नुत्पादितवन्तः । अथ षोडशीमाह—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् । आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे ।

सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरः । नामानि कृत्वाऽभिवदन्यदास्ते ॥ इति ।

यथोक्तविराट्पुरुषध्यानमत्र प्रतिपाद्यते । तत्र मन्त्रद्रष्टा स्वकीयं ध्यानानुभवं प्रकटयति—यद्यः पुरुषः सर्वाणि रूपाणि देवमनुष्यशरीराणि विचित्य विशेषेण निष्पाद्य नामानि च देवोऽयं मनुष्योऽयं पशुरं-यमित्यादीनि कृत्वाऽभिवदन्, तैर्नामभिरभितो व्यवहरन्नास्ते । एवं पुरुषं विराजम् । महान्तं सर्वगुणैरधिकम् । आदित्यवर्णमादित्यवत्प्रकाशमानं वेदाहं जानामि ध्यानेन सर्वदाऽनुभवामीत्यर्थः । स पुरुषस्तमसः पारेऽज्ञानात्परस्ताद्वर्तते । अतो गुरुशास्त्ररहितैर्मूढैरनुभवितुमशक्य इत्यर्थः । अथ सप्तदशीमाह—

धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार । शक्रः प्रविद्वान्पुरुषश्चतस्रः ।

तमेवं विद्वानमृत इह भवति । नान्यः पन्था अयनाय विद्यते ॥ इति ।

धाता प्रजापतिर्यं विराट्पुरुषमुदा जहार ध्यातृणामुपकारार्थं प्रख्यापितवान् । चतस्रः प्रदिशश्चतुर्दिक्षु वर्तिनः सर्वान्प्राणिनः प्रविद्वान्प्रकर्षेण जानञ्जशक्र इन्द्रश्च तदनुग्रहार्थं प्रख्यापितवान् । धातुरिन्द्रस्योपदेशान्तं विराट्पुरुषमेवमुक्तप्रकारेण विद्वान्साक्षात्कुर्वन्निहास्मिन्नेव जन्मन्यमृतो मरणरहितो भवति यदा विराट्पुरुषोऽहमिति साक्षात्करोति तदानीं वर्तमानदेहस्य तत्प्रत्यक्षरूपत्वाभावात् । अन्यमरणेनायमुपासको न म्रियते । अयनायामृतत्वप्राप्तयेऽन्यः पन्था यथोक्तविराट्पुरुषसाक्षात्कारमन्तरेणान्यो मार्गो न विद्यते न हि कर्मसहस्रैरमृतत्वं संपादयितुं शक्यते । न कर्मणा न प्रजया धनेनेत्यादिशास्त्रात् । अष्टादशीमाह—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः । तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्ते । यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥ इति ।

अत्र कृत्वानुवाकतात्पर्यं संक्षिप्योपन्यस्यति—देवाः प्रजापतिप्राणरूपा यज्ञेन यथोक्तेन मानसेन संकल्पेन यज्ञं यथोक्तयज्ञस्वरूपं प्रजापतिमयजन्त पूजितवन्तः । तस्मात्पूजनात्तानि प्रसिद्धानि धर्माणि जगद्विषयविकाराणां धारकाणि प्रथमानि मुख्यभूतान्यासन् । एतावता सृष्टिप्रतिपादकोऽनुवाकभागार्थः संगृहीतः । अथोपासनात्तत्फलरूपानुवाक-
भागार्थः संगृह्यते—यत्र यस्मिन्विराट्प्राप्तिरूपे नाके पूर्वं साध्याः

पुरातना विराड्भूषणोपास्तिसाधका देवाः सन्ति तं नाकं विराट्प्राप्तिरूपं स्वर्गं महिमानस्तदुपासका महात्मानः सचन्ते समयन्ति(?) प्राप्नुवन्ति ।

इति श्रीमाधवीये वेदार्थप्रकाशे यजुरारण्यकस्य तृतीयप्रपाठके द्वादशोऽनुवाकः ।

अथ नमः सोमाय चेति शं च म इति चानुवाकद्वयस्यैतदीयमेव भाष्यं संगृह्यते । सप्तमेऽनुवाके यान्यन्यतरतो नमस्काराणि यजुष्युक्तानि तेभ्योऽन्यानि कानिचिदन्यतरतो नमस्काराण्यष्टमेऽनुवाके कथ्यन्ते । तत्र विद्यमानानि सप्तदश यजुष्याह—

नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च नमः शंगाय च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमो अग्रे वधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय नमः शंभवे च मयोमवे च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नम आतार्याय चाऽऽलाद्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च नमः सिकत्याय च प्रवाहाय च ।

उमया सह वर्तत इति सोमः । रुद्रोदनहेतुर्दुःखं तद्वावयति विनाशयतीति । आदित्यरूपेणोद्यकालेऽत्यन्तरक्तस्ताम्रः । उदयादूर्ध्वमीषद्रक्तोऽरुणः । शं सुखं गमयति प्रापयतीति शंगः । पशूनां पालयिता पशुपतिः । विरोधिनो नाशयितुं क्रोधयुक्त उग्रः । दर्शनमात्रेण विरोधिनो भयहेतुर्भीमः । अग्रे पुरतो वधोऽस्येत्यग्रेवधः । एवं दूरेवधः पुरतो दूरे वर्तमानं विरोधिनमनायासेनैव हन्तीत्यर्थः । लोकेऽपि यो यत्र विरोधिनं हन्ति तत्र तद्रूपेणायमेव हन्ता हनीयान् । हरितवर्णानि केशसदृशानि पर्णानि येषां ते हरिकेशास्तथाविधा ये वृक्षाः कल्पतरुप्रभृतयस्तद्रूपोऽयं रुद्र इत्यर्थः । तारः प्रणवप्रतिपाद्यः । शं सुखं भावयत्युत्पादयतीति वा शंभुः । मयः सुखं भावयतीति मयोभूः । एकं विषयसुखमपरं निर्विषयसुखं तयोरिति विवेकः । पित्रादिरूपेण शं लौकिकसुखं करोतीति शंकरः । आचार्यशास्त्रादिरूपेण मोक्षसुखं करोतीति मयस्करः । साक्षात्सुखकारित्वमेताभ्यां पदाभ्यामुक्तम् । एतन्मुखेन कारयितृत्वं पूर्वाभ्यां पदाभ्यामिति विवेकः । शिवः कल्याणरूपः स्वयं निष्कल्मष इत्यर्थः । अतिशयेन शिवतरः स्वभक्तानपि निष्कल्मषान्करोतीत्यर्थः । तीर्थे प्रयागादौ संनिहितस्तीर्थ्यः । कूले

नदीतीरे प्रतिष्ठापितलिङ्गरूपेणावतिष्ठत इति कूल्यः । पारे संसारसमु-
द्रस्य परतीरे मुमुक्षुभिर्ध्येयत्वेनावतिष्ठत इति पार्यः । अवारे अर्वाक्तीरे
संसारमध्ये काम्यफलप्रदत्वेनावतिष्ठत इत्यवार्यः । प्रकृष्टेन मन्त्रजपा-
दिरूपेण पापतरणहेतुः प्रतरणः । तत्त्वज्ञानरूपेण कृत्स्नसंसारोत्तरणहे-
तुरुत्तरणः । संभवत्यपि संसारोत्तरणहेतौ तत्त्वज्ञाने तदुपेक्ष्य काम्यक-
र्मानुष्ठाने संसारे पुनरागमनमातारस्तमर्हतीत्यातार्यः । अलं संपूर्णं
यथा भवति तथा कर्मफलमत्तीत्यलादो जीवः । तयोरन्यः पिप्पलं
स्वाद्वत्तीति श्रुतेः । तस्य प्रेरकत्वेन तत्संबन्धित्वादालाद्यः । शष्पं बाल-
तृणं मङ्गातीरादावुत्पन्नं कुशाङ्कुरादि तदर्हतीति शष्प्यः । नदीमध्यगतं
फेनमर्हतीति फेन्यः । सिकतामर्हतीति सिकत्यः । प्रवाहमर्हतीति
प्रवाह्यः । पुरुषः श्रद्धालुः सन्स्नानादितत्परो नीरं(?) गङ्गादितीरे वर्तते
तद्रूप इति शष्प्यादिशब्दानां चतुर्णां तात्पर्यार्थः । इत्यष्टमोऽनुवाकः ।

तृतीयमाह—

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे
भद्रं च मे श्रेयश्च मे वस्यश्च मे यशश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे
यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे
संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे ऋतं च
मेऽसृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च
मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुगं च मे शयनं च मे सूषा च मे
सुदिनं च मे ।

शंशब्द ऐहिकसुखवाची । मयःशब्द आमुष्मिकसुखवाची । प्रियं
प्रीतिकारणं वस्तु । अनुकामोऽनुकूलत्वनिमित्तेन काम्यमानः पदार्थः ।
एतदुभयमैहिकमेव तारतम्योपेतम् । काम आमुष्मिकः स्वर्गादिः ।
सौमनसो मनःस्वास्थ्यकरो बन्धुवर्गः । भद्रं कल्याणमिह लोके रम-
णीयम् । श्रेयः परलोकहितम् । वस्यो निवासहेतुर्गृहादिः । यशः
कीर्तिः । भगः सौभाग्यम् । द्रविणं धनम् । यन्ता नियामक आचा-
र्यादिः । धर्ता पोषकः पित्रादिः । क्षेमो विद्यमानस्य रक्षणशक्तिः ।
धृतिर्धैर्यमापद्यपि निश्चलत्वम् । विश्वं सर्वजनानुकूल्यम् । महः पूजा ।
संविद्धेदशास्त्रादिविज्ञानम् । ज्ञात्रं ज्ञापयितृत्वसामर्थ्यम् । सूः पुत्रादि-
प्राणसामर्थ्यम् । प्रसूर्भृत्यादिप्रेरणसामर्थ्यम् । सीरं गोलाङ्गलादिकृ-
षिसंधानसंपत्तिः । लयः, तत्प्रतिबन्धनिवृत्तिः । ऋतं यज्ञादिकर्म ।

अमृतं तत्फलम् । अयक्ष्मं राजयक्ष्मादिकप्रबलव्याधिराहित्यम् । अना-
मयज्ज्वरशिरोव्याध्यल्पव्याधिराहित्यम् । जीवातुर्जीवनकारणं व्याधि-
परिहारार्थमौषधम् । दीर्घायुत्वमपमृत्युराहित्यम् । अनमित्रममित्ररा-
हित्यम् । अभयं भयराहित्यम् । सुगं शोभनगमनं सर्वैरङ्गीकृतचरणमि-
त्यर्थः । शयनं शय्योपधानादिसंपत्तिः । सूषा स्नानसंध्यादियुक्तः शोभनः
प्रातःकालः । सुदिनं यज्ञदानाध्ययनादियुक्तं दिनम् । इति तृती-
योऽनुवाकः ।

निधनपतये नमः । निधनपतान्तिकाय नमः । ऊर्ध्वाय नमः । ऊर्ध्व-
लिङ्गाय नमः । हिरण्याय नमः । हिरण्यलिङ्गाय नमः । सुवर्णाय नमः ।
सुवर्णलिङ्गाय नमः । दिव्याय नमः । दिव्यलिङ्गाय नमः । भवाय
नमः । भवलिङ्गाय नमः । शर्वाय नमः । शर्वलिङ्गाय नमः । शिवाय
नमः । शिवलिङ्गाय नमः । ज्वलाय नमः । ज्वललिङ्गाय नमः ।
आत्माय नमः । आत्मलिङ्गाय नमः । परमाय नमः । परमलिङ्गाय
नमः । इति ।

अत्र प्रागुक्तहेतोर्माधवीयभाष्याभावान्मयैव दिङ्मात्रं व्याख्यायते ।
मार्कण्डेयादिवन्निधने मरणे प्राप्ते सत्यपि यः पतिः संरक्षकस्तस्मा
इत्यर्थः । अक्षशौण्डादिष्वत्समासः । अत एव निधनान्मृत्योः पातीति
निधनपस्तस्य भावो निधनपता साऽन्तिके निकटे यस्य तस्मा इत्यर्थः ।
ऊर्ध्वः सर्वोत्कटः । ऊर्ध्वस्योत्कटस्य ब्रह्मणो लिङ्गं ज्ञापकम् । एवं
निर्गुणत्वसगुणत्वाभ्यामेकस्यैव ज्ञाप्यज्ञापकभावोऽग्रे सर्वत्र बोध्यः ।
हिरण्यसुवर्णशब्दौ स्वप्रकाशत्वपरौ । भवः सत्तामात्रः । शृ(शृ)
हिंसायां दृश्यसंहर्ता शर्वः । ज्वलति स्वप्रभत्वेन सदेति तथा । आत्मा-
येत्यार्षम् । स्पष्टमन्यत् । सद्यो जातमित्यादि पञ्चब्रह्ममन्त्राः सभाष्या
अप्युक्तास्तिलकप्रकरणे ।

नमो हिरण्यबाहवेहिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय हिरण्यपतयेऽम्बिका-
पतये उमापतये पशुपतये नमो नमः ।

अत्राप्युक्तहेतोर्मदीयमेवेदं दिङ्मात्रव्याख्यानम् । हेमवर्णपिङ्गलनागा-
दिरूपाङ्गदमण्डितदोर्दण्डायेत्यर्थः । हिरण्यवर्णाय कनककान्तये । हिर-
ण्यरूपाय काञ्चनस्यापि सत्तादिस्वरूपप्रदात्रे । हिरण्यपतये भक्तेभ्यः प्रद-
त्तस्य तस्य पालयित्रे । अम्बिका जगत्पालनशक्तिः । उमा ब्रह्मविद्या ।
पशवः सर्वेऽप्यज्ञत्वाज्जीवा एव । शेषमतिरोहितार्थम् । एवमृत* सत्य-
मितिमन्त्रोऽपि सभाष्योऽप्युक्त एवाधस्तात्पूजाप्रकरणे ।

सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ।

पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः ॥

विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् ।

सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥ इति ।

अत्र माधवीयं भाष्यं यथा—यो रुद्रः पार्वतीपतिः पुराणेषु प्रसिद्धः स एव सर्वजीवरूपेण सर्वशरीरेषु प्रविष्टत्वात्तस्मै सर्वात्मकाय रुद्राय नमोऽस्तु । प्रकृतिपुरुषयोर्मध्ये जडात्मिकां प्रकृतिमपोद्य विनाश्य चिदात्मकः पुरुषो यो विद्यते स एव भक्तानुग्रहाय रुद्रमूर्तिरूपेणावमासते तस्माद्रस्तुतः स रुद्रः सन्महः सदेव सोम्येदमग्र आसीदिति श्रुतिप्रतिपाद्यमबाधितं सद्रूपं तेजस्तादृशाय रुद्राय पुनः पुनर्नमस्कारोऽस्तु । यज्जडं विश्वमस्ति यच्च भूतं चेतनं प्राणिजातमस्ति । इत्थं चेतनाचेतनरूपेण विचित्रं यद्भुवनं जगत्त्रापि यज्जातं पूर्वमेवोत्पन्नं यच्चेदानीं जायमानं स सर्वोऽपि प्रपञ्च एष रुद्रो हि तद्यतिरेकेण वास्तवस्य जगतो निरूपयितुमशक्यत्वात्तादृशाय सर्वात्मकाय रुद्राय नमस्कारोऽस्तु । इति नारायणीये षोडशोऽनुवाकः ।

रुद्रदेवताकं द्वितीयं मन्त्रमाह—

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीदुष्टमाय तव्यसे ।

वोचेम शंतमं हृदे । सर्वो ह्ये० ॥ इति ।

कथं श्लाघायामिति धातोर्हृत्पन्नः कच्छब्दः प्रशंसामाह । ततः कद्रुद्रः प्रशस्तो रुद्रस्तस्मै प्रचेतसे प्रकृष्टज्ञानयुक्ताय मीदुष्टमाय मिह सेचन इति धातुः । अभीष्टानां कामानामतिशयेन सेचकाय कामप्रदायेत्यर्थः । तव्यसे । अत्राऽऽइौ सकारस्य च्छान्दसो लोपः स्तव्यसे स्तोतुं योग्यायेत्यर्थः । हृदे हृदयवर्तित्वेन मद्रमयत्वेन शंतममतिशयेन सुखकरं स्तुतिरूपं वाक्यं वोचेम कथयाम । सर्वो हीति पूर्ववत् । इति नारायणीये सप्तदशोऽनुवाकः ।

अथ स्वसूत्रे गृह्ये हीशानबलौ पठिताः स्वाहान्ता अप्यष्टौ रुद्रतत्पत्नीमन्त्राः प्रोह्यन्ते नमोन्ताः—भवाय देवाय नमः । रुद्राय देवाय नमः । शर्वाय देवाय नमः । ईशानाय देवाय नमः । पशुपतये देवाय नमः । उग्राय देवाय नमः । भीमाय देवाय नमः । महते देवाय नमः । भवस्य देवस्य पत्न्यै नमः । रुद्रस्य देवस्य पत्न्यै नमः । शर्वस्य देवस्य पत्न्यै नमः । ईशानस्य देवस्य प० । पशुपतेर्देवस्य प० । उग्रस्य देवस्य प० । भीमस्य देवस्य प० । महतो देवस्य प० । इति ।

अत्र हरदत्तीयं भाष्यं यथा—अथ भावयतीति भवः । अन्तर्मा-
वितण्यर्थः । समस्तस्य जगतः कर्ता । शर्वः संहर्ता । शृ(शू)
हिंसायाम् । ईशान ईश्वरः । पशुपतिः पशोः सर्वस्य द्विपदश्व-
तुष्पदश्च पाता पशुपतिः । रुद्रो रोदयिता संहारकाले । उग्रोऽन-
भिभवनीयः । उग्रं हास्य राष्ट्रमव्यथ्यं भवतीति दर्शनात् । विभ्य-
त्यस्मात्सर्वाणि भूतानीति भीमः । सर्वेभ्यो महान्देवः । भवस्य
देवस्येत्यादयोऽप्यनेन गता इति । एतस्याऽऽपस्तम्बसूत्रानुसारित्वा-
दत्र पाठव्युत्क्रम इति । एवं सच्चिदानन्दरूपायेत्यादिर्गोपालताप-
नीश्रुतिर्यथा—

सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।

नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ इति ।

अत्र दीपिका—कृष्णाय नम इति संबन्धः । कृष्णशब्दः सच्चिद्वा-
चको नशब्दश्चाऽऽनन्दवाचक इत्यभिप्रेत्य कृष्णशब्दार्थमाह—सच्चिदिति ।
सच्चिदानन्द एव रूपं स्वरूपं यस्य स तस्मै । क्लेशकर्शकत्वं कृष्णशब्दा-
र्थमाह—अक्लिष्टेति । अक्लिष्टमविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशलक्षणक्लेश-
पञ्चकरहितं भक्तजनं करोति तच्छीलाय । तत्सद्भावे मानमाह—वेदा-
न्तवेद्याय । लक्षणावृत्त्या प्रकाश्यायेत्यर्थः । तं त्वौपनिषदं पुरुषं
पृच्छामि वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य इति श्रुतेः स्मृतेश्च । नमस्यतौ(?)पयिकं
रूपमाह विशेषणद्वयेन । गुरवे सर्वहितोपदेष्ट्रे बुद्धेः सर्वेन्द्रियप्राणमनो-
धियां साक्षिणे । एतेन ज्ञानदातृत्वे प्राधान्यं सूचितम् । वेदान्तवेद्यायेति
विषयः सूचित इति । एवं यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च
प्रहिणोति तस्मै । त* ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्य
इति यजुर्वेदीयश्वेताश्वतरशाखोपनिषन्मन्त्रः । अत्रापि दीपिका यथा—
यस्मात्परमेश्वर एव मुमुक्षोः सम्यग्ज्ञान आत्मतयाऽभिव्यक्तः सन्मोक्ष-
हेतुस्तस्मान्मोक्षसिद्ध्यर्थं मुमुक्षोरीश्वरं प्रति शरणतया प्राप्तिमाह—यो
ब्रह्माणमिति । निःसङ्गसुखबोधवपुर्यः परमेश्वरो ब्रह्माणं सर्वजीवस-
मष्टिरूपं हिरण्यगर्भं विदधाति अवान्तरसर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वेन स्वमा-
यया विदधाति ससर्ज सृष्टवान्पूर्वं सर्गादौ यः परमेश्वरः । वै प्रसिद्धौ ।
वेदांश्च प्रहिणोति प्रददौ तस्मै । तस्मात्प्रथमं हिरण्यगर्भाय महाप्रलये
विच्छिन्नसंप्रदायानां वेदानां तस्मादितराधिकारिषु संप्रदायसिद्ध्यर्थं
परमेश्वरस्तस्मै वेदान्प्रददौ तमेवंभूतम् । ह एवार्थः । तमेव देवं ज्ञानस्वभा-

वमात्मस्वभावमात्मबुद्धिप्रसादकरं प्रत्यगात्मानं निर्मलान्तःकरणोपहिते तत्कर्तृत्वेन स्थिता या बुद्धिस्तस्याः स्वाभाविक्याः साधयितारं वा । आत्मबुद्धिप्रकाशमितिपाठ आत्मबुद्धिमहं ब्रह्मास्मीति स्वविषयां बुद्धिप्रकाशयतीति स्वात्मबुद्धिप्रकाशम् । अथ वाऽऽत्मैव बुद्धिरात्मबुद्धिर्बुद्धिर्ज्ञानं स्वरूपानुभवः स एव प्रकाशो यस्येत्यात्मबुद्धिप्रकाशस्तमात्मबुद्धिप्रकाशमित्येवं योजयितव्यम् । मुमुक्षुर्वै वै प्रसिद्धम् । मुमुक्षुस्वाद्यधिकारसंपत्तिर्मेऽनुभवसिद्धेति यावत् । शरणमहं प्रपद्य इति मुमुक्षुरहं मोक्षसिद्ध्यर्थं शरणं प्रपद्य इति ।

अथ पञ्चायतनगायत्र्यः—

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् ।

भास्कराय विद्महे महद्युतिकराय धीमहि । तन्नो आदित्यः प्रचोदयात् ।

कात्यायनाय विद्महे कन्यकुमारि धीमहि । तन्नो दुर्गिः प्रचोदयात् ॥

इति ।

अत्र भाष्यं माधवीयमेव । अथ विभ्रद्गोभिः कुठारं मृगमभयवरौ सुप्रसन्नो महेश इत्याद्यागमप्रसिद्धमूर्तिधरं रुद्रं प्रार्थयते—तत्पुरुषाय० त्, इति । तमागमप्रसिद्धं पुरुषाकारं महादेवं जानीमो ध्यायेम तत्तस्मिन्ध्यानेऽस्मान् रुद्रः प्रेरयतु । अर्कौघामं किरीटान्वितमकरलसत्कुण्डलमित्याद्यागमप्रसिद्धमूर्तिधरं देवं प्रार्थयते—नारा० दिति । नरशरीराणामुपादानभूतान्यन्नादिपञ्चभूतानि नारशब्देनोच्यन्ते । तेष्वपो मुख्यास्ता अयनमाधारो यस्य विष्णोः सोऽयं नारायणः समुद्रजलशायीत्यर्थः । तथा च स्मर्यते—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

अयनं तस्य ताः प्रोक्तास्तेन नारायणः स्मृतः ॥ इति ।

स च कृष्णावतारे वसुदेवस्य पुत्रत्वाद्वासुदेवः । स च स्वकीयेन वास्तवेन परब्रह्मरूपेण ध्यापित्वाद्विष्णुरिति । बीजापूरगदेषुकार्मुकेत्याद्यागमप्रसिद्धमूर्तिधरं विनायकं प्रार्थयते—तत्पु० दिति । गजसमानवक्त्रत्वेन दीर्घस्य तुण्डस्य रत्नकलशादिधारणार्थं वक्रत्वम् । दन्तिर्महादन्तः । भास्करायेत्यादिसूर्यगायत्र्याऽऽन्धपाठस्थत्वेन भाष्याभावस्तस्य द्रविड-

पाठानुसारित्वात् । तथाऽपि तस्या न मया व्याख्यानं तन्यते निगद-
व्याख्यातत्वादेवेति । हेमप्रख्यामिन्दुखण्डात्तमौलिमित्याद्यागमप्रसिद्ध-
मूर्तिधरीं दुर्गां प्रार्थयते—कात्या०दिति । कृत्तिं वस्त इति कात्यो रुद्रः
स एवायनमधिष्ठानमुत्पादको यस्या दुर्गायाः सा कात्यायनी । कुत्सि-
तमनिष्टं निवारयतीति कुमारी । कन्या चासौ कुमारी चेति कन्यकु-
मारी । दुर्गि दु(र्दु)र्गा । लिङ्गादिव्यत्ययः सर्वत्र च्छान्दसो द्रष्टव्य इति ।
एतासां सर्वासां गायत्रीणां प्रयोजनं साधनमनुष्ठानं च भाष्य एवैतै-
रुपसंहारव्याजेन प्रकटितम्—ता एता गायत्र्यश्चित्तशुद्ध्यर्थं ध्यानपुरः-
सरं जापितव्या इति । यदि पूर्वोक्तमाधवग्रन्थे—

शैवं च वैष्णवं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा ।

स्कान्दं च मक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि ॥

इत्युक्तेः स्कन्दोऽपि कस्यचिद्भजनीयश्चेन्नारायणीय एव पठितया
तत्पुरुषाय विद्महे महासेनाय धीमहि । तन्नः पण्मुखः प्रचोदयात् ।
इति तद्गायत्र्यैवाऽऽराध्य इति दिक् ।

इत्योकोपाह्वासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे देवपूजाप्रयोगोक्तमन्त्रभाष्यसंग्रहप्रक-
रणं संपूर्णम् ।

अथ वृद्धयशौचादौ देवार्चनविचारः । तत्र लिङ्गार्चनचन्द्रिकायां
जननाशौचे तथा शावाशौचेऽपि शिवार्चनं न त्याज्यं किं तु स्पर्शर-
हितं कार्यमिति प्रतिज्ञाय प्रपञ्चितम्—तदुक्तं स्कान्दे—

जननाशौचमध्येऽपि कर्तव्यं शिवपूजनम् ।

शावाशौचेऽपि कर्तव्यं विना स्पर्शं प्रयत्नतः ॥

शंकरार्चनकाले तु द्विजो नाशौचदोषभाक् ।

अस्पर्शदोषनाशार्थं सूतकान्ते प्रयत्नतः ॥

रौद्रेण चरुणा कार्यो होमो रौद्रैः सहस्रकम् ॥ इति ।

श्रौतसिद्धान्तेऽपि शिवविष्णवर्चनविषये भगवद्भास्करे शुद्धिमयूखे
मदनपारिजाते चाशौचाभावो दर्शितः । तथा च यमः—

शिवविष्णवर्चने वीक्षा यस्य चाग्निपरिग्रहः ।

स तत्कर्माणि कुर्वीत स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥

तथा च निर्णयसिन्धौ शूलपाणौ लैङ्गे—

वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वाऽपि कर्तनम् ।

न चैवापूज्य भुञ्जीत शिवलिङ्गे महेश्वरम् ॥

सूतके मृतके चैव न त्याज्यं शिवपूजनम् ॥ इति ।

वृद्धपाराशरे—विष्णुध्यानरतानां च सदैव ब्रह्मचारिणाम् ।

गृहमेधिद्विजानां च तथैव व्रतचारिणाम् ॥

वेदतत्त्वार्थवेत्तृणां नित्यस्नानकृतामपि ।

अनुसंसर्गिणामेषां नाशौचं न च सूतकम् ॥ इति ।

अन्यत्र निर्णयसिन्धौ राघवभट्टीये नारदः—

अथ सूतकिनः पूजां वक्ष्याम्यागमवादिनाम् ।

स्नात्वा नित्यं स निर्वर्त्य मानस्या क्रियया तु वै ॥

बाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत् ।

यदि कामी न चेत्कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत् ॥

यत्तु नृसिंहकल्पे—सदा मन्त्रमयं भुक्त्वा यदि स्यादशुचिर्नरः ।

मानसं विहितस्तत्र स्मरेन्मन्त्रं न तूच्चरेत् ॥

तन्मूत्राद्यशौचपरम् । रामार्चनचन्द्रिकायाम्—

अशुचिर्वा शुचिर्वाऽपि गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्नपि ।

मन्त्रैकस्मरणं विद्वान्मनसैव सदाऽभ्यसेत् ॥

तत्रैवाग्रे निर्णयः श्रौतसिद्धान्तकृतेवोक्तः—अयं चाऽऽशौचामावोऽ-

नन्यगतित्व आर्तौ च ज्ञेयः । अत्र मूलमाकरे स्पष्टम् । अत्र दीक्षि-

तस्यावभृथात्पूर्वमेवाशौचाभावः । शिवार्चनचन्द्रिकायाम्—वस्तुतस्तु

तान्त्रिकदीक्षावतामशौचादिसंभवेऽपि नित्यार्चनबाधो नास्ति ।

जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नरैः ।

नास्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम् ॥

इति देवीयामलवचनात् ।

सूतके मृतके चैव धूमोद्गारादिके तथा ।

जप्यं वाऽर्च्यं तथा कुर्यान्मन्त्रन्यासपुरःसरम् ॥

इति मृडानीतन्त्रवचनात् ।

शिवविष्णवर्चने दीक्षा यस्य चाग्निपरिग्रहः ।

ब्रह्मचारियतीनां च शरीरे नास्ति सूतकम् ॥

इति विष्णुयामलवचनात् ।

मृतकेऽमृतके चैव नित्यं विष्णुमयस्य च ।

सानुनयस्य विप्रेन्द्र सद्यः शुद्धिः प्रजायते ॥

इति नारदपाञ्चरात्रवचनात् ।

उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिः प्रजायते ।

इति पराशरवचनात् । अत्र विप्राणामित्युक्तेः क्षत्रियादीनामधि-
कारो नास्तीति प्रतीयते ।

ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं शुचेरप्यशुचेरपि ।

स्त्रीशूद्रस्यापि संस्पर्शो वज्रपातात्सुदुःसहः ॥

इति विष्णुवचनात् ।

विप्रस्य तु सदैवाहं शुचेरप्यशुचेरपि ।

पूजां गृह्णामि शूद्रस्य पुनः स्वाचारवर्तिनः । इति शिववचनात् ।

न चैवापूज्य भुञ्जीत शिवलिङ्गे महेश्वरम् ।

सूतके मृतके चापि न त्याज्यं शिवपूजनम् ॥

इति लिङ्गपुराणवचनाच्चेति । शूद्रस्येत्युपलक्षणं विप्रस्येत्युक्तत्वा-
दिति । एतत्तात्कालिकपूजायामेव । पञ्चयज्ञादौ तु नाधिकारः ।

अग्निहोत्रादिकर्मार्थं शुद्धिस्तात्कालिकी स्मृता ।

पञ्च यज्ञान्न कुर्वीत ह्यशुचिः पुनरेव सः ॥

इति गौतमवचनात् । आदिपदेन तान्त्रिकपूजाजपादि गृह्यते ।
तात्कालिकी यावता कालेन तत्कर्म सिध्यति । नैमित्तिककाम्यपूजायां
तु तान्त्रिकाणामपि नाधिकारः ।

सूतके मृतके चापि वर्तमाने तु नारद ।

कामतः पूजिते मन्त्रे शान्तिकादौ च कुत्रचित् ॥

जपेत्पञ्चशतं मन्त्री सिंहमन्त्रस्य भक्तितः ।

शतत्रयमकामाच्च प्रायश्चित्तविधौ जपेत् ॥

इति नारदपाञ्चरात्रवचनादिति । एवं च लिङ्गार्चनचन्द्रिकोदाहृत-
स्कान्दवचनाच्छुद्धिवैदिकानामपि मानसार्चनं कर्तुमशक्तानां तत्कर्तुं
शक्तानां च साधारण्येन वृद्ध्याद्यवच्छेदेन बाणलिङ्गादौ शिवादीश्वर-
लीलाविग्रहार्चनं नित्यं स्पर्शं विनैव वृद्ध्याद्युत्तरं तु स्पर्शराहित्यदो-
षावमोषार्थं निरुक्तचरुहोमादि च नियतमिति ये वदन्ति ते परास्ताः ।

अयं चाशौचाभावोऽनन्यगतिकत्व आर्तौ च ज्ञेय इति श्रौतसिद्धान्त-
कृता मयूखमदनपारिजातनिर्णयसिन्ध्वाद्युक्ताशौचाभावस्यानन्यगतिक-
त्वपदेन पर्युदस्तदेवार्चनकरणयोग्यशिष्यादिद्वारान्तरराहित्यस्याऽऽर्तिप-
देन ज्वरादिप्रबलपीडावशेन स्नातुमशक्तत्वेऽपि मानसमन्त्रजपाभ्यनुज्ञा-
नस्य सूचितत्वेन शिवविष्णुवर्चने दीक्षेति मयूखादिवाक्येऽथ सूतकिनः
पूजां वक्ष्याम्यागमवादिनामिति निर्णयसिन्धुवाक्ये च तान्त्रिकदीक्षाया
एव स्फुटतया प्रकृतवाक्यस्यापि तत्परतयैव नेतुमुचितत्वात् ।
न चाथ सूतकिन इति वाक्ये न चेत्कामी सम्यक्पूर्ववदा-
चरेदिति निष्कामनित्यार्चनस्य सूतकादावपि तान्त्रिकदीक्षावतां
पूर्ववत्पदेन स्पर्शपूर्वकमेव विधानप्रतीतिः । स्कान्दवाक्यस्य तु
तद्राहित्येनैवोक्तार्चनविधायकत्वात्कथमस्य तत्परत्वमिति सांप्रतम् ।
वैदिकनित्यकर्मणां सूतकिसंध्यावन्दनादीनामुपस्थानाद्यङ्गलोपेऽपि प्रधा-
नानुष्ठानत एवेष्टसिद्धेः । प्रायश्चित्तादर्शनवन्निरुक्तस्कान्दोक्तसूतक्यस्पर्श-
पूजनस्य यदि वैदिककार्यत्वं तर्हि प्रायश्चित्तोक्त्या न भाव्यम् । यतोऽत्र

अस्पर्शदोषनाशार्थं सूतकान्ते प्रयत्नतः ।

रौद्रेण चरुणा कार्यो होमो रौद्रैः सहस्रकम् ॥

इति स्पष्टमेव तच्छ्रवणम् । अतोऽस्य तान्त्रिकैकार्चनपरतामन्तरा
गत्यन्तराभावात्तत्र शिवार्चनचन्द्रिकोक्त्या तान्त्रिकदीक्षावतामेव सूत-
कादावर्चनस्य काम्यादिभिन्नस्य साक्षात्कर्तव्यत्वप्रपञ्चनाच्च । न च
वैदिकानामपि नित्यपूजाया अकरणे प्रायश्चित्तं तदनभ्यर्च्य नाश्रीः
यात्फलमन्नमन्यद्वा यद्यश्रीयाद्रेतोभक्षी भवेन्नापः पिबेद्यदि पिबेत्पू-
यपो भवेत् । प्रमादेनैकदा त्वनभ्यर्च्य मां भुक्त्वा भोजयित्वा वा केशा-
न्वापयित्वा गध्यानपि पञ्च संगृह्योपोष्य जले रुद्रस्थाने जपेश्चिवारं
रुद्रानुवाकमादित्यं पश्यन्नभिध्यायन्स्वकृतकर्म ततो रौद्रैरेव मन्त्रैः
कुर्यान्मार्जनं ततो भोजयित्वा ब्राह्मणान्पूतो भवतीति बृहज्जाबालोप-
निषद्येवोक्तमिति तद्वत्स्कान्दमप्यस्त्वेतद्वैदिकार्चनेऽपीति वाच्यम् । वैष-
म्यात् । तथा हि । निरुक्तोपनिषदि तु प्रधानलोप एव तदुक्तं(?) प्रकृत-
पुराणे तु स्पर्शाख्याङ्गलोप इति । नापि पुराणे तान्त्रिकधर्मोक्त्यसंभवः ।
अधस्तादर्चनप्रकरण एव पराशरपुराणवचसैव वृत्तोत्तरत्वात् । तस्माज्जन-
नाशौचादावीश्वरार्चनं चेतसैव सति सामर्थ्ये यथेच्छं कर्तव्यं

बाह्यं तु शिष्यादिद्वारैव कारयितव्यं तत्राप्यसामर्थ्ये तु शिवादिनामो-
च्चारणमेव शरणमिति दिक् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे वृद्ध्यादिपूजाप्रकरणं संपूर्णम् ।

एवं देवपूजोत्तरं देवबद्धरूपजाऽपि कर्तव्या । तथा च माधवीये श्रुतिः—
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । इति ।

शैवपुराणेऽपि—यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स च शंकरः ।

शिवविद्यागुरूणां च भेदो नास्ति कथंचन ॥ इति ।

मनुरपि—इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।

गुरुशुश्रूषया चैव ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ इति ।

धर्मप्रश्नेऽपि यज्ञोपवीतित्वकरणेनासौ सूचिता—उपासने गुरूणामिति ।
वर्णतो वृद्धानामप्युक्ता तत्रैव—

वर्णज्यायसां कार्या वृद्धतराणां च । इति ।

वर्णतो यो ज्यायान्प्रशस्ततरो भवति तस्यावरेण पूजा कार्याऽध्वन्य-
नुगमनादिका । उत्सवेषु गन्धमाल्यादिका सजातीयानामपि पूजा
कार्या । तरब्निर्देशाद्विद्यावयःकर्मभिर्वृद्धानां ग्रहणम् । हीनानामपी-
त्येके । तथा च मनुः—शूद्रोऽपि दशमी मत इति । पूजा कार्येत्युक्तमित्यु-
ज्ज्वला । वर्षीयान्दशमी ज्यायानित्यमरः । गुरुर्हि मुख्यतमोऽत्र ब्रह्मात्मै-
क्योपदेशेन संपूर्णाविद्यातत्कार्यात्मकद्वैतविध्वंसक एव स्यान्निषेकादि-
कृद्गुरुरिति कोशोक्तगुरुशब्दितपित्राद्यपेक्षयाऽपि । पित्राद्यस्तु गुरवः
प्रागभिवादनप्रकरण एव प्रपञ्चिताः । तथा च समामनन्त्याथर्वणिकाः
प्रश्नोपनिषदि—

त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसि नमः परम-
ऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः

इति सुकेशादिनामकभारद्वाजादिषट्शिष्याणां पिप्पलाभिधगुरुं प्रति
संवादम् ।

सत्याषाढहिरण्यकेश्याभिधभूदेवेद्दशिरोभूषणे

ग्रन्थेऽत्र श्रुतिसूत्रमात्रकलितप्राधान्यके स्वाह्निके ।

ओकोपाह्वयरामवर्यजनुषा श्रीत्रयम्बकेणाऽऽचिते

पूर्वार्धः किरणैश्चतुर्भिरगमत्संपूर्णतां तत्प्रदः ॥ १ ॥

श्रीविद्वद्वररामशास्त्रिसचिवस्तं मोडकोपाह्वयो
 यत्नेनालिखदच्युतो गुरुपदाम्भोजैकरेणुच्युतः ।
 कृत्वा चारुविवेचनं श्रुतियुतं स्मृत्या च युक्त्याऽन्वितं
 स्वाचारागतवेदभागविवृतौ भाष्यादि संगृह्य च ॥ २ ॥

इत्योकोपाह्वश्रीमद्वासिष्ठकुलावतंसश्रीरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते स-
 त्याषाढापराभिधहिरण्यकेश्याचारशिरोभूषणनामके शुद्धवैदिकाह्निके
 चतुर्थभागकृत्ये श्रीगुरुपूजाख्यं त्रयोदशं प्रकरणं चतुर्थकिरणः पूर्वार्धश्च
 संपूर्णः ।

अथाह्वः पञ्चमभागकृत्यम् । तत्राऽऽह माधवीये दक्षः—

पञ्चमे च तथा भागे संविभागो यथार्हतः ।

पितृदेवमनुष्याणां कीटानां चोपदिश्यते ॥ इति ।

व्यासोऽपि—वैश्वदेवं प्रकुर्वीत स्वशाखाविहितं ततः ।

संस्कृतान्नाश्च विविधैर्हविष्यव्यञ्जनान्वितैः ॥

तैरेवान्नैर्बलिं दद्यात् ॥ इति ।

ततो देवार्चनानन्तरमिति माधवाचार्याः । कूर्मपुराणेऽपि—

शालाग्रौ लौकिके वाऽथ जले भूम्यामथापि वा ।

वैश्वदेवस्तु कर्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः ॥ इति ।

भूम्यामिति वक्ष्यमाणा हविष्यक्षारलवणैकोपस्थितभोजनाधिकारिक-
 र्तुकौपासनपचनान्यतराग्निसंबन्ध्युदीचीननिःसारितमस्मरूपपृथग्व्येव पा-
 र्थिवत्वाद्ग्राह्या । शालाग्निस्त्वत्र—

यदि स्याल्लौकिके पाकस्ततोऽन्नं तत्र हूयते ।

शालाग्रौ तत्पचेदन्नं विधिरेष सनातनः ॥

इति माधवीय एव तद्वाक्यशेषस्वारस्यसूचितः । कात्यायनानां स्मार्ता-
 ग्निरेवाऽऽवसथ्याख्यः । तेषामेव तत्रैव पाकवैश्वदेवयोः संमतत्वात् । एवं
 चेदं तत्परमेवेति बोध्यम् । गत्यन्तराभावात् । अत्र पञ्च महायज्ञा उक्ता
 धर्मप्रश्ने—

अहरहर्भूतबलिर्मनुष्येभ्यो यथाशक्ति दानं देवेभ्यः स्वाहाकार आका-
 ष्ठात्पितृभ्यः स्वधाकार ओद्पात्रात्स्वाध्याय इति । इति ।

वैश्वदेवे वक्ष्यमाणेन बलिहरणप्रकारेण भूतेभ्योऽहरहर्बलिर्देय एष
 भूतयज्ञः । मनुष्येभ्यश्च यथाशक्ति दानं कर्तव्यमेष मनुष्ययज्ञः । देवेभ्यः

स्वाहाकारेण प्रदानमाकाष्ठादशनीयामावे काष्ठमपि तावद्देयम् । वैश्वदे-
वोक्तप्रकारेणैष देवयज्ञः । केचिद्वैश्वदेवाहुतिभ्यः पृथग्भूतामिमां मन्यन्ते
देवेभ्यः स्वाहेति मन्त्रमिच्छन्ति देवयज्ञेन यक्ष्य इति संकल्पमिच्छन्ति ।
वयं तु न तथेति गृह्य एवावोचाम । केचिदाहुराकाष्ठादिति वचनाद्दनी-
याभावे भोजनलोपेऽपि यथाकथंचिद्वैश्वदेवं कर्तव्यं पुरुषसंस्कारत्वा-
दिति । अपरे त्वशनीयसंस्कार इति वदन्तो भोजनलोपे वैश्वदेवं न
कर्तव्यमिति स्थितास्तच्चिन्त्यम् । पितृभ्यः स्वधाकारेण प्रदानमोदपात्रा-
दन्नाद्यभाष उदपात्रमपि तावद्देयम् । पात्रग्रहणात्सह पात्रेण देयमेष
पितृयज्ञः । स्वाध्यायस्तस्य विधिरित्यारभ्योक्तो नित्यस्वाध्याय एष
ऋषियज्ञः । इतिशब्दः समाप्तौ । इत्येते महायज्ञा इति । न चायमुपदे-
शक्रमोऽनुष्ठान उपयुज्यते । अनुष्ठानं तु ब्रह्मयज्ञो देवयज्ञो भूतयज्ञः
पितृयज्ञो मनुष्ययज्ञ इति तद्याख्योज्ज्वला । तथा च तत्रैव—अग्रं च
च देयमिति बलिहरणानन्तरमग्रं च देयं देवपितृभूतमनुष्येभ्यः । चका-
रादेते मन्त्राः—देवेभ्यः स्वाहा पितृभ्यः स्वधाऽस्तु भूतेभ्यो नमो मनु-
ष्येभ्यो हन्तेत्युज्ज्वला । एतन्मूलं सह वैप्रश्न आम्नायते तदेवात्र सवै-
द्यारण्यभाष्यमप्युदाह्रियते । नवमे ब्रह्मयज्ञविधिप्रस्तावार्थमुपाख्यान-
मुक्तम् । इदानीं तद्विधिप्रसङ्गेन पञ्च महायज्ञान्विधत्ते—

पञ्च वा एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते सतति संतिष्ठन्ते देवयज्ञः
पितृयज्ञो भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञो ब्रह्मयज्ञः । इति ।

एवं यज्ञानां पाठतः पञ्चत्वम् । न तु स्वरूपविस्तारेण । सतति सततं
दिने दिने प्रतायन्तेऽनुष्ठीयन्ते । सतति प्रतिदिनं संतिष्ठन्ते समाप्यन्ते ।
यस्मिन्दिन उपक्रमस्तस्मिन्दिन एव तत्समाप्तिः । न तु यज्ञान्तरवह्निना-
न्तरापेक्षा । देवयज्ञ इत्यादीनि तेषां नामानि । तत्र देवयज्ञस्य
लक्षणमाह—

यद्ग्नौ जुहोत्यपि समिधं तद्देवयज्ञः संतिष्ठते । इति ।

पुरोडाशादिहविर्मुख्यं तदलाभे समिधमप्यग्नौ देवानुद्दिश्य जुहोतीति
यत्सोऽयं देवयज्ञः । स च सकृद्धोममात्रेण समाप्यते । पितृयज्ञस्य
लक्षणमाह—

यत्पितृभ्यः स्वधा करोत्यप्यपस्तत्पितृयज्ञः संतिष्ठते । इति ।

तत्पिण्डज्ञानासंभवे जलमात्रमपि पितृभ्यः स्वधाऽस्त्विति स्वधा-
शब्देन यद्ददाति सोऽयं पितृयज्ञस्तावतैव समाप्यते । भूतयज्ञस्य
लक्षणमाह—

यद्भूतेभ्यो बलि* हरति तद्भूतयज्ञः संतिष्ठते । इति ।
 वैश्वदेवानुष्ठानादूर्ध्वं बहिर्देशे चाऽऽ वायसादिभ्यो भूतेभ्यो यद्बलि-
 प्रदानं सोऽयं भूतयज्ञस्तावतैव समाप्यते । मनुष्ययज्ञस्य लक्षणमाह—
 यद्ब्राह्मणेभ्योऽन्नं ददाति तन्मनुष्ययज्ञः संतिष्ठते । इति ।
 वैश्वदेवादूर्ध्वं हन्तकारार्थान्नादप्यतिरिक्तमन्नमतिथिभ्यस्त्वयवरेभ्यो
 ब्राह्मणेभ्यो यद्दीयते स मनुष्ययज्ञस्तावतैव समाप्यते । ब्रह्मयज्ञस्य लक्षण-
 माह—
 यस्स्वाध्यायमधीयीतैकामप्यृचं यजुः साम वा तद्ब्रह्मयज्ञः संतिष्ठते ।
 इति ।

स्वस्यासाधारणत्वेन पितृपितामहादिपरम्परया प्राप्ता वेदशास्त्रा
 स्वाध्यायः । तत्र विद्यमानसृगादीनामन्यतममेकमपि वाक्यमधीयीत,
 इति यत्सोऽयं ब्रह्मयज्ञस्तावतैव संतिष्ठत इति । एतदकरणे निन्दाऽपि
 तत्रैव—

यस्याग्नौ न हूयते यस्य चाग्रं न दीयते न तद्भोक्तव्यम् । इति ।
 यस्यान्नस्यैकदेशोऽग्नौ न हूयते यस्य चोद्धृतस्याग्रं न दीयते न
 तद्भोक्तव्यमिति तद्वाख्योज्ज्वला । प्रत्यवायमाह माधवीये व्यासः—

पञ्च यज्ञांस्तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमी ।

तस्य नायं न च परो लोको भवति धर्मतः ॥ इति ।

विस्तरस्तु संस्काररत्नमालायां द्रष्टव्यः । एवं च ब्रह्मयज्ञेतरदेवयज्ञा-
 दिमहायज्ञचतुष्टयं वैश्वदेवं रौद्रबलिहरणान्तं समाप्याऽऽकाष्ठादिति वचना-
 देकसमिद्धोमावधिको देवयज्ञः श्रुत्युक्तेन देवेभ्यः स्वाहेति मन्त्रेण तथा
 पितृभ्यः स्वधाऽस्तु इति मन्त्रेण नित्यश्राद्धाभिधस्तदभावे पलाशादि-
 पत्रपुटकपूरितजलरूपोदपात्रदानात्मकः पितृयज्ञस्तथा श्ववायसपिपीलि-
 कादिभ्यो भूतेभ्योऽपि समुचितान्नदानात्मा भूतेभ्यो नम इति मन्त्रेण
 भूतयज्ञस्तथा मनुष्येभ्यो हन्त, इति ब्राह्मणाद्याचाण्डालान्तमनुष्येभ्यो
 यथाधिकारं सिद्धान्नप्रदानात्मा मनुष्ययज्ञश्चेति शक्तेन पृथगेव कर्तुमु-
 चितम् । वैश्वदेवकर्मण्येव तदन्तर्भाव्य देवेभ्यः स्वाहेत्यादि देवयज्ञाद्या-
 हुतित्रयमपि बलिहरणानन्तरं तत्रैव देयमिति त्वशक्तविषयं बोध्यम् ।
 उभयोः स्वसूत्रादौ पार्थक्येनैव विधानात्तथैव शिष्टाचाराच्च । न च पञ्चम-
 हायज्ञसूत्राद्वैश्वदेवस्य स्वसूत्रे पार्थक्येन क्व विधानमिति वाच्यम् । औपा-

सने पचनाग्नौ वा षड्भिराद्यैः प्रतिमन्त्रं हस्तेनैव ता आहुतीर्जुहुयादिति धर्मसूत्रे कण्ठत एव वैश्वदेवस्य प्रधानं विधायापरेणाग्निः सप्तमाष्टमाभ्यामित्यादिना तदङ्गस्य बलिहरणस्यापि विहितत्वात् । तदिदं पूर्वोत्तरमपश्यतस्तवै[व] बाध्यम् । उज्ज्वला त्वशक्तविषयैवेत्युक्तमेव । तस्मान्नासौ पक्षः सौत्रः । वस्तुतस्तु सृतपितृकश्चेत्कर्ता श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं वैश्वदेवाख्यं कर्म तथा देवयज्ञपितृयज्ञभूतयज्ञमनुष्ययज्ञाभिधब्रह्मयज्ञेतरमहायज्ञचतुष्टयाख्यं च कर्म करिष्य इति संकल्प्यादितेऽनुमन्यस्वेत्यादि नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहेत्यन्तं कर्म कृत्वा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं देवयज्ञेन यक्ष्य इति संकल्प्य यद्वा तथा देवयज्ञेत्यादिनिरुक्तप्राथमिकसंकल्पेनैव देवयज्ञादिचतुष्टयसंकल्पेस्तं विनैव तस्मिन्नेवाग्नावेकामाहुतिं देवेभ्यः स्वाहेति हुत्वा तद्वत्पितृतीर्थेन पितृभ्यः स्वधाऽस्त्विति पितृयज्ञरूपाहुतिबलिदानं कृत्वा तद्वद्भूतयज्ञमनुष्ययज्ञावपि कृत्वा शिष्टं कर्म समापयेत् । एवं च पक्षद्वयमपि संगतमथ लाघवं चाऽऽगतम् । न च स्वधा पितृभ्यः स्वाहेति पितृबलिना सह निरुक्तपितृयज्ञस्य पौनरुक्त्यमिति वाच्यम् । तस्याग्निष्वात्तादिदेवपितृविषयकत्वादत एव तन्मन्त्रे स्वधा स्वाहेत्युभयशब्दपाठात्पितृभ्यः स्वधाऽस्त्वित्यस्य तु मनुष्यपित्रुद्देश्यकपितृयज्ञविषयकत्वाच्च । अत एव तन्मन्त्रे स्वधाकारमात्रपाठ इति न कोऽपि विरोधलेशोऽपि । ननु प्रागुदाहृतशालाग्नावित्यादिकौर्मवाक्ये वैश्वदेवस्तु कर्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृत इति कण्ठत एव वैश्वदेवस्य देवयज्ञत्वमुक्तम् । माधवाचार्यैस्तु त एते देवयज्ञभूतयज्ञपितृयज्ञाद्योऽपि वैश्वदेवशब्देनोच्यन्ते । यत्र विश्वे देवा इज्यन्ते तद्वैश्वदेविकं कर्म । देवयज्ञे च विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति पठित्वा तत्रैव तन्नाम मुख्यम् । येषां तु शाखायां भूतयज्ञेऽप्ययं मन्त्रोऽस्ति तेषां तत्राप्येतन्मुख्यम् । पितृयज्ञे तु च्छत्रिन्यायेन वा नामप्रवृत्तिरिति देवभूतपितृयज्ञात्मकत्वमप्युक्तम् । एतदेव प्रयोगपारिजातादिभिः सकलैरपि प्रायेणाऽऽह्निककारैः प्रपञ्चितम् । संस्काररत्नमालायामपि वैश्वदेवं प्रकृत्य सूत्रकृता तु देवयज्ञादित्रयस्य भिन्नतयाऽनुक्तत्वाद्द्वैश्वदेव एव यज्ञत्रयमन्तर्मवति । तत्र स्वधा पितृभ्य इति मन्त्रस्यैव पितृयज्ञसाधनत्वं द्रष्टव्यम् । न चैवं सति देवेभ्यः स्वाहेत्यादिमन्त्रत्रयस्य कुत्र विनियोग इति वाच्यम् । षडाहुत्यादिरौद्रबल्यन्तकर्मण्यशक्तौ मन्त्रत्रयेण यज्ञत्रयं कर्तव्यमित्येवं

रीत्या विनियोगसंभवादित्यादिना तथैव समर्थितमिति तद्विरोधाद्युक्त-
मेवैतद्वैश्वदेवस्य देवयज्ञादियज्ञत्रयभिन्नत्वाभिधानं भावत्कमिति ।
अत्रोच्यते—यदि निरुक्तग्रन्थैः सह मदुक्तेर्विरोधः स्याच्चेद्भवेदपि मदुक्ता-
द्युक्तत्वम् । तदेव तेषां तात्पर्यपर्यालोचनया नैवं संभवति । तथा हि—
कौर्मवाक्यं तु माधवग्रन्थगमेवेति तदेकतात्पर्यकमित्यविवादमेव । माध-
वाचार्यैस्तु होमप्रकारमाह आश्वलायनः—अथ सायंप्रातःसिद्धस्य हवि-
ष्यस्य जुहुयादित्यादिनाऽऽश्वलायनापस्तम्बकात्यायनसूत्राणि वैश्वदेव-
विषये विलिख्य, अत्र यथाशाखं व्यवस्थेत्युपक्रमे तथा—

अध्ययनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।

होमो देवबलिर्भूतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥

श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पित्र्यो बलिरथापि वा ।

इति कात्यायनवाक्यं विलिख्य, अत्र यथास्वशाखं व्यवस्थेत्येवाभि-
हितम् । एवं चात्र स्वशाखायां पञ्च वा एते महायज्ञा इत्यादिना
सामान्यतः पञ्चमहायज्ञानां देवेभ्यः स्वाहेत्यादिना विशेषतश्च ब्रह्मयज्ञ-
भिन्नानां तेषां षडाहुत्यादिरीद्रबल्यन्ताम्नातवैश्वदेवकर्मणः पार्थक्येनाऽऽ-
ज्ञानात्तद्वाधकं पूर्वोक्तयज्ञत्रयात्मकत्वाभिधायकं तद्वाक्यं कथं स्यात् ।
किं तु तत्प्रथमोदाहृताश्वलायनसूत्रपरमेवेति सहृदया एव विदांकुर्वन्तु ।
एतेन प्रयोगपारिजातादयोऽपि व्याख्याताः । गोपीनाथदीक्षितैस्तु वयं
तु न तथेति गृह्य एवावोचामेति पूर्वोदाहृतपञ्चमहायज्ञसूत्रोज्ज्वलाकृ-
द्वाक्यानुसारेण यद्यपि वैश्वदेवे रौद्रबल्यन्त एव देवयज्ञभूतयज्ञपितृयज्ञा-
न्तर्भाव आपातत उक्तस्तथाऽप्यग्रे प्रागुक्तेऽग्रं च देयमित्येतत्सूत्रे बलि-
हरणानन्तरमग्रं च देयं देवपितृभूतमनुष्येभ्यः । चकारादेते मन्त्राः—
देवेभ्यः स्वाहेत्यादिनिरुक्तमुज्ज्वलाकृत एव व्याख्यानं विलिख्य मनुष्य-
यज्ञव्यतिरिक्तव्याख्यानं विरुद्धं केनचित्प्रक्षिप्तमित्युपेक्षणीयमिति प्रति-
पदोक्तोज्ज्वलाकारवचनविरोधादुक्त्वा तत्रापि देवेभ्यः स्वाहेत्यादि-
मन्त्रत्रय्या अशक्तपरत्वकल्पनाऽस्वरसेन मतान्तराभिप्रायेण वा नेयमि-
त्युक्त्वाऽऽस्तां वाऽग्रं च देयमित्यत्र चकारेण संमतमतान्तराभिप्रायेण
देवेभ्यः स्वाहेत्यादियज्ञत्रयस्य संग्रहः । तथाऽप्यग्निः स एव द्रव्यमपि
तदेव प्रकरणाद्बोधायनोक्तेश्चेति द्रष्टव्यमित्युपपादितम् । तदुक्तिस्तूपक्रम
एव पितृयज्ञं प्रकृत्यैतैरुपन्यस्ता । बोधायनोऽपि—पितृमुद्दिश्यैकं ब्राह्मणं

भोजयेदपि वा दक्षिणेनाग्निं दक्षिणाग्रान्दर्भान्सस्तीर्य तेषु पिण्डं ददाति पितृभ्यः स्वधाऽस्त्वित्यपि वाऽपस्तपितृयज्ञः संतिष्ठते । इति । एतन्मते देवेभ्यः स्वाहेत्यादिमन्त्रत्रयसाध्याः क्रमेण देवयज्ञपितृयज्ञभूत-यज्ञा वैश्वदेवतो भिन्नाः । तत्रोपयुज्यते पितृभ्यः स्वधाऽस्त्वित्ययं मन्त्र इति । एवं च सूत्रकृता त्वित्याद्यन्तर्भवतीत्यन्तं चिन्त्यमेव । अहरहर्भू-तेत्यादिसूत्रे कण्ठत एव तदुपलब्धेः । तथा चाशक्तपरतयैव प्रथमोज्ज्व-लासाफल्ये तदनुरोधेन प्रकृतश्रतिसूत्रयोः,

पञ्च यज्ञान्न कुर्वन्ति तथैवातिथिभोजनम् ।

वैश्वदेवं न कुर्वन्ति पाण्डोपहता जनाः ॥

इति ब्रह्मगीतास्मृतेश्च बाधोऽनुचित एवेति को वा प्राचां वचोभिः सह मदुक्तव्यवस्थायाः परमाणुतुल्योऽपि विरोध इति दिक् । तस्माद्वै-श्वदेवकर्मणः सत्याषाढीयानां देवयज्ञादियज्ञचतुष्टयमपि भिन्नमेवेति ध्येयं धीरैः । इदं चोपवासेऽपि कार्यम् । तदाह कात्यायनः—

सायं प्रातर्वैश्वदेवः कर्तव्यो बालिकर्म च ।

अनश्रताऽपि सततमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥ इति ।

तथाऽपि स्वभक्ष्यफलमूलादिभिरेव तत्संपादनं श्लाघ्यम् ।

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।

अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति संप्राप्ते हरिवासरे ॥

इत्यादिनाऽन्नशब्दितौदनस्य तदानीं निन्दितत्वात् ।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

इति मनुवचनादेतेषामात्मसंस्कारार्थत्वमेव । यस्याग्नौ न हूयते यस्य चाग्रं न दीयत इति पूर्वोदाहृतस्वसूत्रेणोक्तमन्नसंस्कारार्थत्वं तथा—

पञ्चसूना गृहस्थस्य वर्तन्तेऽहरहः सदा ।

कण्ठनी पेषणी चुल्ली जलकुम्भ उपस्करः ॥

एतानि वाहयन्विप्रो बाध्यते वै मुहुर्मुहुः ।

एतासां पावनार्थाय महायज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥

इति यमोक्तसूनाशब्दितहिंसास्थानलक्षितपञ्चविधोक्तहिंसापरिहारार्थकत्वं चाऽऽम्रच्छायादिन्यायेनाऽऽनुषङ्गिकमेव । यदि तु प्रोषितोऽप्यात्म-संस्कारं कुर्यादेवाविचारयन्निति गृह्यपरिशिष्टोक्तेः पिता प्रोषितश्चैश्वदे-

१ क. 'पि द' । २ ख. पाण्डो । ३ ख. 'नां नु दे' । ४ क. 'ण्डणीपे' । ५ क. 'स्कारार्थं कुर्यादेव वि' ।

वादिकं कुर्यादेव तदा गृहस्थितस्य पुत्रस्य वैश्वदेवादौ प्राग्वदनधि-
कारेऽपि

यदि स्याद्भिन्नपाकाशी ग्रामे ग्रामान्तरेऽपि च ।

वैश्वदेवं पृथक्कुर्यात्पितर्यपि च जीवति ॥

इति शाकलोक्तेः स पृथक्कार्य एव परं तु मनुष्यपितृबलिं विना । यदि
चेत्तेनाऽऽज्ञप्तोऽस्त्ययं वैश्वदेवादौ तदा तस्य पृथग्वैश्वदेवाद्यनपेक्षत्वेऽप्यस्य
जीवत्पितृकत्वेऽपि जीवत्पितृकोक्ताप्रकोष्ठापसव्यादिधर्मणैव पितृयज्ञः
कार्य एव । इतरथा तु जीवत्पितृकस्य ब्रह्मयज्ञभिन्नानां चतुर्णामपि
महायज्ञानां वैश्वदेववल्लोप एव । न च वैश्वदेवे तस्यानधिकार एव पञ्च-
महायज्ञानां तु पञ्च वा एते महायज्ञाः संतति प्रतायन्त इति भुतेर्बा-
ह्मणत्वावच्छेदेनैव नित्यत्वाद्द्वेषम्यमेवेति सांप्रतम् । देवयज्ञस्योपासनहोमा-
त्पितृयज्ञस्य वैशंपायनादिपितृतर्पणाच्च यथाकथंचित्सिद्धावपि भूतय-
ज्ञमनुष्ययज्ञयोरस्य स्वातन्त्र्याभावेन लोपावश्यकत्ववत्तयोरपि कुशका-
शालम्बनसिद्धिकरणापेक्षया लोपस्यैवौचित्येन वैश्वदेववृष्टान्तवैषम्या-
भावात् । एतेन पितुः सकाशादपि प्रमादेन कलिकौटिल्यात्कस्यचिद्धि-
भक्तस्यापि पृथग्वैश्वदेवाद्यभावो व्याख्यातः । ननु तर्हि सूनादोषपरि-
हारोऽन्नसंस्कारश्च तस्य कथं स्यादिति चेत्पितृकृतवैश्वदेवादेवेति गृहाण ।
वस्तुतस्तु प्रमत्तस्य तस्य कैव स्वधर्मचिन्ताऽस्माकमित्युपेक्ष्य एव तावृशो
देवानांप्रियः । अस्तु वा तस्यापि यदि स्याद्भिन्नपाकाशीत्यादिपूर्वो-
क्तशाकलवचनात्पूर्ववदेव वैश्वदेवादिः । एवं परस्परं दायं विभज्य
विभक्तानां मृतपितृकाणां भ्रातृणां तु ते विभक्ता एव । उक्तं चेदं
भगवता नारदेन—

भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते ।

विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक्पृथक् ॥ इति ।

अविभक्तत्वे तु विशेषः संस्काररत्नमालायां स्मृत्यन्तरे—

सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम् ।

द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् ॥ इति ।

आश्वलायनोऽपि प्राह विशेषान्तरम्—

वसतामेकपाकेन विभक्तानामपि प्रभुः ।

एकस्तु चतुरो यज्ञान्कुर्याद्वाग्यज्ञपूर्वकान् ॥ इति ।

वाग्यज्ञेत्यत्र चित्रग्वादिवदतदुणसंविज्ञानबहुव्रीहिणा ब्रह्मयज्ञेतरदे-
वयज्ञादिमहायज्ञानामनुष्ठानं सति पाकैक्ये विभक्तत्वेऽपि ज्येष्ठेनैव कार्य-
मिति तात्पर्यम् । पाकमेदे तु स एवाऽऽह—

अविभक्ता विभक्ता वा पृथक्पाका द्विजातयः ।

कुर्युः पृथक्पृथग्यज्ञान्भोजनात्प्राग्दिने दिने ॥ इति ।

एवं ज्येष्ठभ्रातुर्विधुरत्वे दायविभागाभावेन पाकैक्ये सति तेन वैश्व-
देवोऽनग्निकधर्मणैव कार्यस्तेनैव कनीयसां सर्वेषामिष्टसिद्धिः । तस्य
प्रवासे सति तत्कनीयान्साग्निकश्चेत्तेन तथैव कार्यः । निराग्निश्चेत्तद्धर्म-
णैव । एवं पत्न्याऽप्येकाकिन्या प्रोषिते भर्तर्यग्नावाज्याक्तं ग्रासमात्रं
तूष्णीं त्याज्यम् । पाकैक्ये पुनः स एवाऽऽह—

एकपाकाशिनः पुत्राः संसृष्टा भ्रातरोऽपि च ।

वैश्वदेवं न ते कुर्युरेकः कुर्यात्पितैव हि ॥

वैश्वदेवं क्वचित्कर्तुं न शक्नोति पितैव हि ।

पितुरेवाऽऽज्ञया कुर्यात्पुत्रो भ्राता परोऽपि हि ॥

एकान्नाशिषु पुत्रेषु भ्रातृष्वेकत्र सत्सु च ।

तत्रैको वैश्वदेवः स्यात् ॥ इति ।

देशान्तरे तु विशेषः स्मृतिसमुच्चये—

वैश्वदेवः क्षयाहश्च महालयविधिस्तथा ।

देशान्तरे पृथक्कार्यो दर्शश्चाद्धं तथैव च ॥ इति ॥

कनियसो भ्रातुरुपनीतस्य प्रातराशार्थं यद्यन्नं पाचितं ज्येष्ठभ्रात्रा तु
किञ्चित्कार्यवशात्तदानीं वैश्वदेवो न कृतः स्यान्मध्याह्न एव महापाको-
त्तरमेव तस्य कर्तव्यत्वात्तदा तेन कुक्कुटाण्डप्रमाणं घृताक्तमन्नं ग्रासमात्रं
वा पचनाग्नावेव तूष्णीमेव हुत्वा भोक्तव्यम् । तदाह पृथ्वीचन्द्रोदये
गोभिलः—

यस्य त्वेषामग्रतोऽन्नं सिध्येत्स नियुक्तमग्नौ किञ्चिच्छ्रुत्वाऽश्रीयात् ।
इति । नियुक्तं भोज्यमन्नम् । किञ्चिद्ग्रासमात्रम् । तथा च स्मृत्यन्तरं
संस्काररत्नमालायाम्—

वैश्वदेवा(व)[स्या]भावे तु कुक्कुटाण्डप्रमाणं(ण)[कम्] ।

ग्रासमग्नौ संप्रहृत्य किल्बिषात्तु विमुच्यते ॥ इति ।

कृते तु ज्येष्ठेन तन्त्रपक्षेण प्रातःसायं वैश्वदेवे पश्चात्कनिष्ठस्य तस्यापि
वा सायं पाकान्तरसिद्धावहुत्वैव भोक्तव्यम् । पाकासाध्ये जपोपवा-
सादावविभक्तानामप्यधिकारः ।

पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजन्मनाम् ।

अग्निहोत्रं सुरार्चा च संध्या नित्यं पृथग्भवेत् ॥

इति प्रयोगपारिजात आश्वालायनोक्तेः । अत्र सुरार्चायाः पार्थक्यविधानं कुलागतप्रतिमातिरिक्तप्रतिमाविषयमिति गोपीनाथदीक्षिताः । तेन न ।

एकपाकेन वसतामेकं देवार्चनं गृहे ।

वैश्वदेवं तथैवैकं विभक्तानां गृहे गृहे ॥

इति शाकलवाक्यविरोधः । स्त्रियो ग्रासमात्रमन्नं घृतप्लुतमग्नौ प्रास्य भुञ्जीयुरिति स्मृत्यन्तरं तु विधवापरमित्याचाररत्ने । यस्या गृहे न कोऽप्यस्ति तादृशविधवापरमित्याचारदर्पणे । वस्तुतस्तु साधारणे स्त्रीशब्दे संकोचे मानामावान्न स्त्री जुहुयादिति निषेधस्य मन्त्रवद्भोमपरत्वाच्च सधवादिसाधारणमेवेदम् । अत एवोक्तमधस्तादेवं पत्न्याऽप्येकाकिन्येत्यादि । मुख्यस्य करणाशक्तावाहात्रिः—

पुत्रो भ्राताऽथ वा ऋत्विक्किशप्यः श्वशुरमातुलो ।

पत्नीश्रोत्रिययाज्याश्च वृष्टास्तु बलिकर्मणि ॥ इति ।

प्रतिनिधित्वेनेति शेषः । बलिकर्मणीति वचनाद्बलावेव प्रतिनिधिरिति मदनरत्ने । बलिपदं वैश्वदेवोपलक्षणमिति पृथ्वीचन्द्रः । न स्त्री जुहुयादिति निषेधाद्बलिमात्रं पत्नीकर्तृकं न होम इति सत्याषाढादिसूत्रानुसारिण इति संस्काररत्नमालायाम् । ऋत्विक्साहचर्यादिदं साग्निकपरमित्याचारादर्शः । वस्तुतस्त्वशक्तौ पुत्राद्यभावे यः कश्चित्पङ्क्तिव्यवहार्यः स्वसूत्री ब्राह्मण एवापेक्षितः । तदाह गोभिलः—

स्वयं त्वेवैतान्यावद्गृहे वसन्बलीन्हरेदपि वाऽन्यो ब्राह्मणः । इति । अपि वेति निपाताभ्यां कार्यान्तरव्यासक्तिरप्युपलक्ष्यते । निरग्नेस्तु स्वकर्तृकत्वमेवेत्याचारादर्शः । पुत्रादयोऽपि मुख्यानुज्ञयैव । तदाह कश्यपः—

पुत्रो भ्राताऽथ वा ऋत्विक्कुर्याज्ज्येष्ठाभ्यनुज्ञया ।

सोऽपि ऋ[त्वि]क्त्वेन वृतश्चेदेव ।

श्वशुरो मातुलो वाऽपि वैश्वदेवाहुतिं सदा ॥ इति ।

बोधायनस्तु प्रवासादावन्नाद्युपपत्त्यभावे जलेनापि तत्कर्तव्यतामाह—
प्रवासे कुरुते चैतान्यद्यन्नमुपपद्यते ।

न चेदुत्पद्यतेऽन्नं तु अद्भिरेतान्समापयेत् ॥ इति ।

अस्य देशः स्मृतिमञ्जर्याम्—

गृहस्य मध्यदिग्भागे वैश्वदेवं समाचरेत् ।

ततस्तत्पुरतोऽगारद्वारे वैहायसं त्यजेत् ॥ इति ।

एतच्च होम एव । बलिहरणे सूत्रकृता देशविशेषाभिधानात् । तच्च पचनाग्नौ होम एव नोपासनाग्नौ । तस्य नियतस्थानत्वात् ! अथास्य कालः । तत्राऽऽश्वलायनः—

अथ सायं प्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात् । इति ।

स्वसूत्रकृताऽपि नक्तमेवोत्तमेन वैहायस इत्यनेन सूत्रेण सायंप्रातः-
कालौ सूचिताविति संस्काररत्नमाला । स्मृतिमञ्जर्यां तु—

दिवा यामद्वयेऽतीते स्नानं माध्याह्निकं चरेत् ।

पौरुषेण तु सूक्तेन ततो विष्णुं समर्चयेत् ॥

वैश्वदेवं ततः कुर्याद्द्वलिकर्म तथैव च ।

भोजयेदतिथिं पश्चान्द्भोजनं स्वयमाचरेत् ॥ इति ।

तत्र—वैश्वदेवविधिं कृत्वा विष्णोर्नैवेद्यमर्पयेत् । इति व्यासोक्तेः,

वैश्वदेवविशुद्धोऽसौ विष्णवेऽन्नं निवेदयेत् । इति मनूक्तेश्च

विष्णोर्नैवेद्यशेषेण यष्टव्यं देवतान्तरम् ।

पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते ।

इत्यादिपाद्मादिवचनानि तान्त्रिकपराण्युपेक्ष्य

देवार्थमन्नमुद्धृत्य वैश्वदेवं समाचरेत् ।

नैवेद्यमर्पयेत्पश्चान्न यज्ञं तु ततश्चरेत् ॥

इतिप्रयोगसारस्थस्मृत्यन्तरोक्तरीत्या नैवेद्यात्पुरैवासौ कार्यः । रात्रौ तु तत्रैव—

रात्रौ तु देवं नीराज्य वैश्वदेवं समाचरेत् । इति ।

उभयत्र वैश्वदेवानुष्ठानासंभवे प्रातरेव द्विरावृत्त्या सह वा कार्यः ।

तदाहाऽऽश्वलायनः—

प्रातरेव द्विरावृत्त्या कुर्याद्वा सह तौ द्विजः । इति ।

अत्र प्रातःकालः पूर्वाह्न एव ग्राह्यः । सर्वेषां कल्पानां प्रथमप्रयोग-
मारभ्यैव प्रवृत्तेः सर्वत्रदर्शनादिति गोपीनाथदीक्षिताः । यदपि

प्रातरेव कृतेऽपि स्याद्वैश्वदेवद्वये बुधैः ।

सायं सत्यां बुभुक्षायां वैश्वदेवं पुनश्चरेत् ॥

इति पूर्वाह्णे तन्त्रेण वैश्वदेवद्वये कृते सत्यपि सायं पुनः पाके कृते सति वैश्वदेवान्तरविधायकं केषांचिद्वाक्यमुदाहृत्य तन्निर्मूलं विरुद्ध-
त्वान्निबन्धेष्वदर्शनाच्चेति नवीना इति संस्काररत्नमालायामुक्तं तदुचित-
मेव । स्यादिति तिङन्तस्थानन्वितत्वेन श्लोकस्यैवाशुद्धत्वात् । प्रातर्वै-
श्वदेवकर्म देवाद्विस्मृतमपि अस्तोत्तरं सायंहोमात्पूर्वं स्मृतं चेत्तदा वैश्व-
देवमादौ झटिति कृत्वा सायंहोमं कुर्यात् । तथा च यज्ञपार्श्वे—

अकृते वैश्वदेवे चेदस्तमेति गभस्तिमान् ।

वैश्वदेवं ततः कृत्वा सायंहोमं समाचरेत् ॥ इति ।

यदा तु होमोत्तरं स्मरणं तदाऽपि सायंवैश्वदेवात्प्राक्पृथगेव प्रातर्वै-
श्वदेवः कर्तव्यः । न तु तन्त्रेण । तथा च स्मृतिभास्करे—

अकृतो वैश्वदेवश्चेद्दिवा रात्रौ तमाचरेत् ।

पृथगेव प्रकुर्वीत न तु तन्त्रमिहेष्यते ॥ इति ।

एवं सायंवैश्वदेवस्यापि अग्रिमवैश्वदेवात्प्राक्स्मरणं चेत्तदा पृथगेव
कर्तव्यतेति संस्काररत्नमाला । अत्राग्निस्तूक्तो धर्मसूत्रे—

औपासनाग्नौ पचनाग्नौ वा षड्भिराद्यैः प्रतिमन्त्रं हस्तेनैव ता आहु-
तीर्जुहुयात् । इति ।

अत्रोज्ज्वलाकृत्—यत्र पचते स पचनाग्निः । औपासनवतामौपासने
विधुरस्य पचन इति व्यवस्थितो विकल्पः । अन्ये तुल्यविकल्पं मन्यन्त
इत्याह । वैश्वदेवारम्भकालस्तु यथा चन्द्रिकायां संवर्तः—

ततः पञ्च महायज्ञान्कुर्यादहरहर्द्विजः । इति ।

ततो विवाहानन्तरमित्यर्थः । स च विवाहात्पूर्वं दायविभागे जाते
सति चतुर्थीहोमानन्तरमेव नान्यथा । विवाहव्रतमध्ये तदारम्भस्यायुक्त-
त्वात् । तदुक्तं पाणिग्रहणादधि गृहमेधिनोर्व्रतमिति सूत्र उज्ज्वलायाम्—
पाणिर्गृह्यते यस्मिन्कर्मणि तत्पाणिग्रहणं चतुर्थीकर्मान्तो विवाह इत्यर्थः ।
तदादि[ः] पूर्वोऽवधिर्यस्यां क्रियायां सा तथा । क्रियाविशेषणत्वान्नपुंस-
कम् । तत्प्रभृति तदुपलक्षितकालप्रभृति उत्तरकालमारभ्य तस्मादूर्ध्वं
गृहमेधिनोर्गृहस्थाश्रमवतोर्यन्नियतं कर्तव्यम् । जातावेकवचनम् । तदु-
च्यत इति । तत्र प्रातरेवोपक्रमः । सूत्रकृता वैश्वदेवं रौद्रबल्यन्तं विधाया-
नन्तरं नक्तमेवोत्तमेन वैहायस इति प्रातरुपक्रमस्यैव दर्शितत्वात् । ये
भूताः प्रचरन्ति दिवा नक्तं बलिमिच्छन्त इति मन्त्रे प्रातःसायंवाचिनो-
र्दिवानक्तशब्दयोर्ग्रहणे प्रातःकालस्यैव प्राथम्यप्रतीतिः ।

वैश्वदेवं द्विजः कुर्यात्सदा कालद्वयेऽपि च ।
आरम्भो वैश्वदेवस्य दिवा चैव विधीयते ॥

इत्याश्वलायनस्मृतेश्च । अग्न्यायतनमुक्तं स्मृतिसंग्रहे—

वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा ।
अरत्निमात्रं तत्कार्यं विंशत्यङ्गुलमेव वा ॥
प्रादेशमात्रमथ वा चतुरस्रं समन्ततः । इति ।

स्मृतिसारे—वैश्वदेवे प्रकुर्वीत कुण्डमष्टादशाङ्गुलम् ।

मेखलात्रयसंयुक्तं द्विमेखलमथापि वा ॥
स्यादेकमेखलं वाऽपि चतुरस्रं समन्ततः ।

अपि ताम्रमयं प्रोक्तं कुण्डमत्र मनीषिभिः ॥ इति ।

प्रायश्चित्तहेमाद्रौ—न चुह्यां नाऽऽयसे पात्रे न भूमौ न च स्वर्परे ।

वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा ॥ इति ।

अत्र तृतीयचरणस्य चरमचरणेऽप्यनुकर्षः । कुर्यात्स्थण्डिलकुण्डयो-
रित्यपि कुत्रचित्पाठः । संस्काररत्नमालायां तु चुल्लीस्थानमापद्यनुमोदि-
तम् । यत्तु वैश्वदेवं प्रकृत्य—

उपरिष्ठात्स्थिते पात्रे क्रिया चुल्ल्यामपि स्मृता ॥

इति केचित्संग्रहनाम्ना वचनं पठन्ति तन्निर्मूलमापत्परं वा बोध्यमिति ।

अत्र द्रव्यमुक्तं धर्मसूत्रे—

गृहमेधिनो यदशनीयं तस्य होमा बलयश्च । इति ।

गृहमेधिनो यदशनीयं पक्वमपक्वं वोपस्थितं तस्यैकदेशेन होमा बल-
यश्च वक्ष्यमाणाः कर्तव्याः । स्वर्गः पुष्टिश्च तेषां फलमिति व्याख्यातमु-
ज्ज्वलाकृता । निषेधोऽपि तत्रैव—

न क्षारलवणहोमो विद्यते तथाऽयज्ञसंसृष्टस्य । इति । यद्युपवास-
वशेन फलाद्याहारस्तदा तेनैव वैश्वदेवः कार्यः ।

शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम् ।

संकल्पयेद्यदाहारं तेनैव जुहुयादपि ॥

इति गृह्यपरिशिष्टोक्तेः । विश्वप्रकाशेऽपि—

अन्नेन तण्डुलैर्वाऽपि फलेनाद्भिरथापि वा ।

वैश्वदेवं प्रकुर्वीत जपेन्मन्त्रानथापि वा ॥ इति ।

अत्रैवं व्यवस्था—शाकाद्याहारे शाकादिभिः । भोजनेऽन्नेन शृतेन । मर्जितान्नभक्षणे तण्डुलैरपक्वैरेव । सर्वथाऽशनाकरणेऽद्भिः । अतिसंकटे जलस्याप्यभावे वैश्वदेवमन्त्रजप इति गोपीनाथदीक्षिताः । उदकेन वैश्वदेवस्तूदक एव कार्यः । अद्भिरञ्जलिना जल इति चतुर्विंशतिमतोक्तेः । अत्र व्रतविशेष उक्तो धर्मप्रश्ने—

तेषामुपयोगे द्वादशाहं ब्रह्मचर्यमधःशय्या क्षारलवणमधुमांसवर्जनं चोत्तमस्यैकरात्रमुपवासः । इति । तेषां होमानां बलीनां च ये मन्त्रास्तेषामुपयोगे नियमपूर्वके ग्रहणे द्वादशाहं ब्रह्मचर्यं मैथुनवर्जनमधःशय्या स्थण्डिलशायित्वं क्षारलवणादिवर्जनं च भवति । उपयोक्तुरेव व्रतम् । अन्ये पत्न्या अपीच्छन्ति उपयोगः प्रथमप्रयोगः । तत्र च पत्न्या सहाधिकार इति वदन्तः । उत्तमस्योत्तमेन वैहायसमिति वक्ष्यमाणस्य ये भूताः प्रचरन्तीत्यस्यैकरात्रमुपवासः कर्तव्य इति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । नियमपूर्वकं ग्रहणं गुरोः सकाशाद्विद्याग्रहणं तदर्थमित्यर्थः । तथा च बोधायनः—

तेषां ग्रहणे द्वादशरात्रं ब्रह्मचर्यमधःशय्याऽक्षारलवणं मधुमांसवर्जनं त्रयोदशेऽहन्युत्तमस्यैकाहमुपवासः । इति ।

उज्ज्वलाकृन्मतेऽध्ययनाङ्गताऽन्येषां मते कर्माङ्गतेति गोपीनाथदीक्षिताः । नियमं विनाऽधीतवैश्वदेवमन्त्रस्य वैश्वदेवानुष्ठानकाले वैश्वदेवमन्त्राध्ययनाङ्गभूतव्रतानाचरणनिमित्तप्रायश्चित्तानुष्ठानपूर्वकं वैश्वदेवारम्भः । प्रायश्चित्तं तु—

प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं चरित्वाऽऽज्याहुतीः शतम् ।

हुत्वा चैव तु गायत्र्याः स्नायादित्याह शौनकः ॥

इति स्मृत्युक्तं वेदव्रतलोपप्रायश्चित्तमेव साजात्यात् । स्नानपदं तु तत्तन्मन्त्रसाध्यकर्मोपलक्षणमिति । एवं चाग्रये स्वाहेत्यादिमन्त्राध्ययनार्थं व्रतमेकं ये भूता इति मन्त्राध्ययनार्थमपरमिति व्रतद्वयलोपनिमित्तं प्राजापत्यद्वयं गायत्र्याऽऽज्येन शतद्वयं होमश्चेति प्रायश्चित्तं चरित्वा दायविभागे जाते सति प्रशस्तेऽहनि वैश्वदेवं समारभेदिति । व्रतस्य कर्माङ्गत्वपक्षेऽधीतमन्त्रोऽपि वैश्वदेवारम्भकाले व्रतद्वयं कुर्यादेवेति संस्काररत्नमालाकृतः । हस्तेन होमे विशेषस्तत्रैव परिशिष्टे—

उत्ताने न तु हस्तेन अङ्गुष्ठाग्रेण पीडितम् ।

संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्ध्रविः ॥ इति ।

होमकाले सव्यपाणेर्हृदि निधानमुक्तं स्मृतिमञ्जर्याम्—

संकल्पयेद्यदाहारस्तेनैव जुहुयादपि ।

पाणिना जुहुयाद्ध्रौम्यं हृदि सव्यं निधाय वै ॥ इति ।

गोभिलीये—न मुक्तकेशो जुहुयान्नापि(नि) पातितजानुकः ।

अनिपातितजानोस्तु राक्षसैर्ह्वियते हविः ॥ इति ।

अवदानबल्योः प्रमाणं स्मृत्यर्थसारे—

अङ्गुष्ठपर्वमात्रं स्यादवदानं ततोऽपि च ।

ज्यायः स्विटकृदाज्यं तु चतुरङ्गुलसंमितम् ॥

कुक्कुटाण्डकमात्रं तु बलिरित्यभिधीयते ॥ इति ।

आर्द्रामलकप्रमाणमप्युक्तं छन्दोगपरिशिष्टटीकायाम्—

प्राणाहुतिं बलिं चैव आर्द्रामलकमानतः । इति । कुर्यादिति शेषः ।

बलयः सति सूपे तत्संसृष्टेनान्नेन कार्याः । तदुक्तं धर्मसूत्रे—

सति सूपसंसृष्टेन कार्याः । इति ।

सति सूपे तत्संसृष्टा बलयः कार्याः । अन्ये त्वन्नैरपि व्यञ्जनैः संसर्ग-
मिच्छन्ति । तथा च बोधायनः—काममितरेषु । इति । एष एव व्यञ्जन-
संस्कारः । व्यञ्जनसंसृष्टेनान्नेन बलयः कार्याः सति संभव इत्थमिति
व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । तद्देशसंस्कारप्रभृतिविशेषस्तूक्तः संस्काररत्न-
मालायां धर्मप्रश्ने—

बलीनां तस्य तस्य देशसंस्कारो हस्तेन परिमृज्यावोक्ष्य न्युप्य पश्चा-
त्परिषेचनम् । इति ।

बलीनां तस्य तस्य बलेर्देशस्य संस्कारः कर्तव्यः । कः पुनरसौ ।
हस्तेन परिमार्जनमवोक्षणं च तत्कृत्वा बलीनां निर्वपनं न्युप्य पश्चा-
त्परिषेचनं कर्तव्यम् । उपदेशादेव सिद्धे पश्चाद्ग्रहणं मध्ये गन्धमाल्या-
दिदानार्थमित्याहुः । तस्य तस्येति वचनं सत्यपि संभवे सकृदेव परि-
मार्जनमवोक्षणं च मा भूत् । एकस्मिन्देशे समवेतानामपि पृथक्पृथ-
ग्यथा स्यादिति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । अन्यच्च धर्मसूत्रे—

एवं बलीनां देशे देशे समवेतानां सकृत्सकृदन्ते परिषेचनम् । इति ।

यथा षष्णामाहुतीनां तन्त्रं परिषेचनं विभवात्, एवं बलयोऽपि । एकदेशसमवेता उत्तरे ब्रह्मसदन इत्यादयस्तेषां यदन्ते परिषेचनं प्राप्तं पश्चात्परिषेचनमित्यनेन विहितं सकृत्सर्वान्ते सकृत्सकृत्कर्तव्यम् । न प्रत्येकं पृथगिति । असत्यस्मिन्सूत्रे पूर्वस्य तस्य तस्येति वचनाद्यथा परिमार्जनमवोक्षणं च प्रत्येकं पृथग्भवति तथा परिषेचनमिति स्यात् । अत्र चोपदेशवशादेव य एकदेशबलयस्तेषामेव सकृदन्ते परिषेचनं न यादृच्छिक्यसमवाये । तेन यद्यपीच्छयाऽगारस्योत्तरदेशः शय्यादेशः कृतस्तथाऽपि कामलिङ्गस्य पृथक्परिषेचनं भवत्येवेति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । बलिदानप्रकारो धर्मसूत्रे—

अपरेणाग्निः सप्तमाष्टमाभ्यामुदगपवर्गमुदधानं संनिधौ नवमेन मध्येऽगारस्य दशमैकादशाभ्यां प्रागपवर्गमुत्तरपूर्वार्धेऽगारस्योत्तरैश्चतुर्भिः शय्यादेशे कामलिङ्गेन देहल्यामन्तरिक्षलिङ्गेनोत्तरेणापिधान्यामुत्तरैर्ब्रह्मसदने दक्षिणतः पितृलिङ्गेन प्राचीनावीत्यवाचीनपाणिर्दद्याद्द्रौद्र उत्तरो यथादेवतं तयोर्नानापरिषेचनं धर्मभेदान्नक्तमेवोत्तमेन वैहायस इति । अपरेणाग्निमग्नेः पश्चात्सप्तमाष्टमाभ्यां धर्माय स्वाहाऽधर्माय स्वाहेत्येताभ्यां बलिहरणं कर्तव्यं न प्रागपवर्गम् । उदकं यत्र धीयते तदुदधानं मणिकाख्यं तत्संनिधौ नवमेनाद्भ्यः स्वाहेत्यनेन । मध्येऽगारस्यौषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहेत्येताभ्यां प्रागपवर्गम् । अगारस्योत्तरपूर्वार्धे गृह्याभ्यः स्वाहाऽवसानेभ्यः स्वाहाऽवसानपतिभ्यः स्वाहा सर्वभूतेभ्यः स्वाहेत्येतैः प्रागपवर्गमित्येव । कामाय स्वाहेति शय्यादेशे देहलीद्वारस्याधस्तात्तस्याधो वेदिकेत्येके । अन्ये त्वन्तर्द्वारस्य ग्रहणमिति । अत्रान्तरिक्षाय स्वाहेति [*येनाऽपिधीयते द्वारं साऽपिधानी कपाटं तद्गर्लमित्यन्ये । तत्र यदेजति जगति यच्च चेष्टति नाम्नो भागो यन्नाम्ने स्वाहेति ।] उत्तरैर्ब्रह्मसदने । अगारस्येत्यनुवृत्तेः । तस्य यो ब्रह्मसदनाख्यो देशो वास्तुविद्याप्रसिद्धोऽगारस्य मध्ये तत्रोत्तरैः पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्रमसे स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहेत्येतैः प्रागपवर्गमेव । अपर आह—

* नायं ग्रन्थः ख. पुस्तके ।

१ क. 'ङ्गेनो' । २ ख. 'न्तरद्वा' ।

मध्येऽगारस्येत्यत्र देशस्योपयुक्तत्वाद्ब्रह्मा यत्र सीदति गार्होषु कर्मस्वप्ने-
र्दक्षिणतो ब्रह्मसदनस्तत्रेति । अनन्तराणां बलीनां दक्षिणतः स्वधा
पितृभ्य इत्यनेन बलिं कुर्यात् । प्राचीनावीत्यवाचीनपाणिश्च भूत्वा
दक्षिणं पाणिमुत्तानं कृत्वाऽङ्गुष्ठतर्जन्योरन्तरालेन । पितृबलेरुत्तरतो रौद्र-
बलिः । यथादेवतम् । प्राचीनावीत्यवाचीनपाणिरिति नानुवर्तत इत्यर्थः,
नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहेति मन्त्रः । अत्र यद्यपि पशुपतिलिङ्गम-
प्यस्ति तथाऽपि रुद्रस्यैव विशेषणमिति रौद्र इति व्यपदेश्यत्वेनोपप-
न्नम् । देवतास्मरणमपि रुद्रायेत्येव कुर्वन्ति । रुद्राय पशुपतय इत्येके ।
केचित्तूत्तरो मन्त्रो रौद्रः स पशुपतिदेवत्य इत्याचक्षते तेषां देयः प्राग्वो-
दग्वा पित्र्यात् । तयोरनन्तरयोरन्त्ययोरेकस्मिन्देशे समवेतयोरपि नाना
पृथक्परिषेचनं कर्तव्यम् । कुतः । धर्मभेदात् । पित्र्यस्याप्रदक्षिणं
परिषेचनमितरस्य दैवत्वात्प्रदक्षिणमिति । उत्तमेन ये भूताः प्रचरन्ति
नक्तं बलिमिच्छन्तो वितुदस्य प्रेष्याः । तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो हरामि
मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु स्वाहेति नक्तम् । ये भूताः प्रचरन्ति दिवा
बलिमिति दिवा । एवंपदत्यागेन मन्त्रपाठः । आश्वलायनोऽपि—
दिवाचारिभ्य इति दिवा नक्तंचारिभ्य इति नक्तमिति । बलिहरणे
त्यागो न । आहरणमात्रोक्तेर्यजतिजुहोतिचोर्दितत्वामावाच्च ।
अन्यथा तर्पणेऽपि त्यागापत्तेरिति केचिदाहुः । अन्ये तु सूक्तवा-
ककरणत्वान्यथानुपपत्त्या प्रहरतेर्यागकल्पकत्ववदत्रापि चतुर्थीनिर्देशा-
न्यथानुपपत्त्या हरतेर्यागार्थत्वौचित्यादिति प्राहुः । अपर आह—एव-
कारो भिन्नक्रमः । नक्तमुत्तमेन बलिरिति तदन्यतराणां रात्रौ निवृ-
त्तिरिति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । ये भूताः प्रचरन्तीत्यादिबलिस्तु नक्त-
मेव वैहायस इति धर्मसूत्रोक्तेर्निश्येवाऽऽकाशे समुत्क्षेप्यो दिवा तु भुव्येव ।
तदाह बोधयानः—

अथाऽऽकाशमुत्क्षिपन्ति ये भूताः प्रचरन्ति नक्तम् । इति ।

एवं बलीनां निष्काशनं शिष्यादिद्वारैव न तु स्वयं नापि भूतबलि-
प्रदानोत्तरं ते निरीक्ष्याः । तदुक्तं संस्काररत्नमालायां स्मृत्यन्तरे—

द्विजो गृहबलीन्दत्त्वा नैव पश्येत्कदाचन ।

स्वयं नैवोद्धरेन्मोहादुद्धारे श्रीर्विनश्यति ॥ इति ।

यदि कस्यचिद्देवादुद्धर्ता बलीनां प्रवासादौ न कोऽप्यस्ति चेत्तादृक्संक-

टस्थले तन्मेलनमेव गत्यन्तरराहित्यात्स्वयमेव कार्यमिति हृदयम् ।
देवयज्ञादिषु यज्ञशब्दप्रयोगऽपि विद्युद्वृष्टी नैव भवतस्तयोः श्रौतयज्ञ-
विषयत्वादित्यपि तत्रैवोक्तम् । अनग्निकस्य विशेषमाह वसिष्ठः—

अनग्निकस्तु यो विप्रः सोऽन्नं व्याहृतिभिः स्वयम् ।

हुत्वा शाकलमन्त्रैश्च शिष्टाद्भूतबलिं हरेत् ॥ इति ।

अनग्निको भार्याभावेन श्रौतस्मार्ताग्निपरिग्रहाधिकारशून्यः । [*सोऽपि
यदि चेदौरसादिपुत्रवांस्तर्हि

अनाश्रमेऽप्याश्रमी स्यादपत्नीकोऽपि पुत्रवान् ।

इति निर्णयसिन्धौ नक्तनिर्णये संग्रहोक्तेर्गार्हस्थ्यविधिनैव वैश्वदेवं
कुर्यात् । संन्यस्तपितृकश्चेत्तदा

वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति ।

येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥

इति मनूक्तेः पितृभ्यः स्वधाऽस्त्वित्याहुतिं तत्पितृयज्ञार्थं दत्त्वैव
गार्हस्थ्यरीत्यैव विधुरोऽपि वैश्वदेवं पुत्रवांश्चेत्कुर्यादेव । यदा तु शुद्धवि-
धुरस्तदा निरुक्तवसिष्ठस्मृतिरीत्यैव वैश्वदेवं कुर्यादिति रहस्यम् ।
ननु तथाऽपि केऽत्र शाकलमन्त्रा इति चेदुच्यन्ते ।] शकलप्रहरणसाध-
नमन्त्राः शाकलमन्त्रा देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहेत्यारभ्यैनस
एनसोऽवयजनमसि स्वाहेत्यन्ताः । एतच्च शकलप्रहरणं ज्योतिष्टोमे
विहितम् । कर्मप्रदीपे—

अग्न्यादिर्गौतमेनोक्तो होमः शाकल एव च ।

अनग्निकस्य त्वप्येष युज्यते बलिभिः सह ॥ इति ।

अग्न्यादिरग्निवाय्वादिदेवेभ्यो भूरादिव्याहृतिकरणक इत्यर्थं इति
गोपीनाथदीक्षिताः । अपिरवधारणे । अनग्निकस्य त्वेष एव युज्यत इति
संबन्धः । विष्णुस्तु विशेषान्तरमप्याह—

अन्नं व्याहृतिभिर्हुत्वा ततो मन्त्रैश्च शाकलैः ।

प्राजापत्यं हविर्हुत्वा पूजयेदतिथिं ततः ॥ इति ।

प्राजापत्यं हविरिति प्राजापतये स्वाहेत्येकामाहुतिं हुत्वेत्यर्थं इत्यपि
त एव । एवं स्नातको ब्रह्मचारी वा पृथक्पाकी वैश्वदेवं कुर्यादिति
स्मृत्यर्थसारोक्तेस्तयोरप्युक्तानग्निकत्वसाधारण्यादनेनैव प्रकारेण वैश्वदेवो
ज्ञेयः । ब्रह्मचारिणः पृथक्पाकसंभवः श्राद्धादावेव ।

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ॥

इति पराशरोक्तेः । एवमन्यैरपि वक्ष्यमाणैर्विद्यार्थिगुरुपोषकाध्वग-
क्षीणवृत्तिविशिष्टव्याधितैर्भिक्षाशनाधिकारिभिः श्राद्धादिनिमित्तेन पृथ-
क्पाके सति वैश्वदेवादिः क्रियेतैव परं तु नित्यमपि तैः पाकाभावाज्ज-
लेऽप्यसौ कार्य एव । श्राद्धे पिण्डपितृयज्ञादौ च साग्निकादिभेदेन
वैश्वदेवकरणकालनिर्णयः पञ्चमहायज्ञानां वैश्वदेवस्य चाननुष्ठाने
प्रायश्चित्तं च संस्काररत्नमालातोऽवबोधयं विबुधैः । ननु गृहमेधिनो
यदशनीयं तस्य होमा बलयश्चेति सूत्राद्यदशनीयं पक्रमपक्वं वोपस्थित-
मिति तदीयोज्ज्वलावृत्तेश्च यद्यपि हविष्याहविष्यसाधारण्येनाशनीय-
मात्रस्य होमादिविधेर्यस्याग्नौ न हूयते यस्य चाग्रं न दीयते न तद्भो-
क्तव्यमिति सूत्रनिषिद्धाहुतादित्वेन भोक्तुं निषिद्धवस्त्वनवशेषेऽपि न
क्षारलवणहोमो विद्यते तथाऽयज्ञसंसृष्टस्येति सूत्रेण हवनक्रियाकर्मत्वेन
निषिद्धानां क्षारलवणाहविष्याणां भोज्यत्वेनोपस्थितानामपि पदार्थानां
यस्याग्नावित्याद्युक्तसूत्रनिषेधाद्भोज्यत्वमेव प्राप्तम् । इष्टापत्तिरिति चेद्गृ-
हमेधिनो यदशनीयमित्याद्युक्तसूत्रतद्वृत्तिविहितसाधारणहोमीयत्वा-
दिलब्धभोज्यत्वेन विरोधतादवस्थ्यमेवेति चेद्वाढम् । ईदृशस्थले न
क्षारलवणेत्यादिसूत्रशेषेणोपायान्तरमेव प्रदर्शितमिति नात्र विरोधग-
न्धोऽपि । तद्यथा—न क्षारलवणहोमो विद्यते तथाऽयज्ञसंसृष्टस्याहवि-
ष्यस्य होम उदीचीनं भस्मापोह्य तस्मिञ्जुहुयात्तद्धुतमहुतं चाग्नौ
भवतीति । यद्भक्ष्यमाणं पश्यतो लालोत्पद्यते तत्क्षारं गुडादि । लवणं
प्रसिद्धम् । तत्संसृष्टं न होतव्यम् । तथाऽयज्ञं कुलित्थमाषाद्यन्नं तत्संसृ-
ष्टस्यान्नस्य होमो न विद्यते । वरान्नमित्यापस्तम्बः । अथ यस्यैवंविध-
मेव भोजनमुपस्थितं तस्य कथं भोजनं तत्राऽऽहाहविष्यस्य होम उदी-
चीनमित्यादि । औपासनात्पचनाद्वाऽग्नेरुदीचीनं भस्मापोह्योष्णं तस्मि-
न्भस्मनि जुहुयाद्वैश्वदेवममन्त्रमिति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । एकामा-
हुतिं तूष्णीं जुहुयादित्यन्ये निबन्धकाराः । उष्णं भस्मेत्यस्याङ्गारमिश्रि-
तमुष्णं भस्मेत्यर्थः । तथा च बोधायनः—

अङ्गारान्भस्ममिश्रांस्तु उद्धृत्योत्तरतोऽनलात् ।

जुहुयाद्वैश्वदेवं तु यदि क्षारादिमिश्रितम् ॥ इति ।

यत्तु—हविष्याणामभावे तु क्षारादिभिरपीष्यते ।

इत्याचारप्रदीपे स्मृत्यन्तरवचन, तदपि शब्दस्वरसात्क्षारादिभिर-
पीष्यते किमु वक्तव्यं कन्दमूलादिभिरित्यन्नाभावे मूलादिहोमकर्तव्यता-
बोधकम् । उदीचीनं भस्मापोह्येत्येतेन विधिना क्षारादिभिरपि होमः
कर्तव्यस्तेनैव वैश्वदेवसिद्धिरित्येवंपरं वेति संस्काररत्नमालाकृतः । अत
एव व्यासोऽपि—

जुहुयात्सर्पिषाऽभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम् ।

दध्यक्तं पयसाऽभ्यक्तं तदभावेऽम्भसाऽपि वा ॥ इति ।

एतेनोपसेचनद्रव्याण्यपि व्याख्यातानि । उक्तगुडाद्यन्योऽपि क्षारगण
उक्तः संग्रहे—

तिलमुद्गादृते शैब्यं सस्ये गोधूमकोद्रवौ ।

शूक्तं च देवधान्यं चेत्येष क्षारगणः स्मृतः ॥ इति ।

शिम्बी शेंग इति महाराष्ट्रभाषाप्रसिद्धा । तस्यां भवं तथेत्यर्थः ।
शूक्तं पर्युषितमिति गोपीनाथदीक्षिताः । अत्र गोधूमास्त्वारण्यका एव ।
खपले गहू इति भाषाप्रसिद्धा वा । तेषामेव निःसारत्वेन क्षारत्वौचि-
त्यात् । प्रसिद्धानां तु वक्ष्यमाणस्मृत्या हविष्यत्वेन होमीयत्वाच्च । तथा
च स्मृत्यन्तरे—

गोधूमा व्रीहयश्चैव तिला मुद्गा यवास्तथा ।

हविष्या इति विज्ञेया वैश्वदेवादिकर्मसु ॥ इति ।

निषिद्धान्यपि स्मृत्यन्तरे—

कोद्रवं चणकं माषं मसूरं च कुलित्थकम् ।

क्षारं च लवणं सर्वं वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥ इति ।

एवं हविष्याहविष्यादिविस्तरस्तु संस्काररत्नमालायां ज्ञेयः । एतदपि
भस्मनि हवनमहविष्यैकभोजनोपस्थितावेव बोध्यम् । उज्ज्वलाकारैस्त-
थैवोक्तत्वात् । एवमेव निर्णीतं संस्काररत्नमालाकृद्भिः । न च तर्हि
हविष्याहविष्योभयविधपाके हविष्येण वैश्वदेवे तन्मात्रसंस्कारसिद्धाव-
प्यहविष्यस्य तदभाव एवेति वाच्यम् । वैश्वदेवस्य हि प्रागुक्तरीत्याऽऽ-
त्मसंस्कारार्थताया एव मुख्यत्वेन तदभावेऽपि क्षत्यभावात्प्रधानीभूतह-
विष्यहवनमात्रेणैवाऽऽत्मसंस्काराख्यप्रधानसाध्यसिद्धावानुषङ्गिकान्नसं-
स्कारादेरपि सिद्धिसंभवाद्यस्याग्नौ न हूयत इति सूत्रस्य प्रधानपरतयैव

व्याख्यातुमुचितत्वादन्यथाऽतिप्रसङ्गाच्च । तथा हि—गृहमेधिनो यदशनीयं तस्य होमा बलयश्चेति सूत्रे यस्याग्नौ न हूयते यस्य चाग्रं न क्षीयते न तद्भोक्तव्यमिति सूत्रे च यच्छब्दः किं तद्यक्तिपरः किं वा तत्सजातीयैकदेशपरः । आद्य एकस्यामेव स्थाल्यां व्रीहितण्डुलौदनपाकेऽपि तत्तत्तण्डुलव्यक्तीनां संख्यातुं तत्तदेकदेशं समुद्धर्तुं चाशक्यत्वेन स्फुट एवातिप्रसङ्गः । अन्त्ये तु संकोचतादवस्थ्यमेव । तथा च स्वसूत्रवृत्तिकारत्वेनोज्ज्वलाकृत एव मतं वरं सत्याषाढापराभिधहिरण्यकेशिसूत्रीणाम् । अथ यस्यैवंविधमेव भोजनमुपस्थितमित्यादिग्रन्थतात्पर्यध्वनितं सति हविष्यपाके तत्प्रधानीभूतेन शालितण्डुलौदनैकदेशेनाऽऽज्याद्युपसेकपूर्वकं वैश्वदेवहोमः कार्यस्तेनैव सर्वस्यापि तद्दिने पक्वपाच्यहविष्यस्य संस्कारसंभवस्तथैष एव व्यञ्जनसंस्कारो व्यञ्जनसंसृष्टेनान्नेन बलयः कार्याः सति संभव इत्थमित्यपि तदुक्तेरहविष्यस्यापि सूपव्यञ्जनादेः क्षारलवणादेश्च संस्कारः सति सूपसंसृष्टेन कार्या इति कण्ठतः सूत्रोक्तेन सति सूपे तत्संसृष्टा बलयः कार्या इतितद्वृत्तिव्याख्यातेन सूपादिसंसृष्टान्नादिहविष्यबलिकरणेनैव भविष्यतीति सर्वमवदातम् । यदप्यग्रये स्वाहेत्यादिषडाहुतीर्हुत्वाऽथोदीचीनमुष्णं भस्मापोह्य तदन्नमहविष्यक्षारलवणादियुक्तं स्वाहाकारेण जुहोति यस्याग्नौ न क्रियते न तद्भोक्तव्यमिति वचनादित्यन्विलाप्रयोगे सत्यपि हविष्येण वैश्वदेवहोमेन हविष्यान्नसंस्कारे क्षारलवणादेरहविष्यस्य चान्नस्य संस्कारार्थं प्रत्यहमेव वैश्वदेवहुतशोपे तयोः संमेलनं विधाय निरुक्तरीत्या भस्मनि हवनमुक्तं तदापस्तम्बीयविषयम् । तत्प्रयोगस्य तदेकसूत्रीयत्वात्सत्याषाढीयानां त्वस्माकं स्ववृत्तिकारोक्तरीत्यैवेष्टसिद्धौ तदनुपयोगः । पायसादिहविष्यक्षारलवणाहविष्यसंमिश्रिताहवनलाभाच्च । किं गृहमेधिनो यदशनीयं तस्य होमा बलयश्चेति यस्याग्नौ न हूयते यस्य चाग्रं न क्षीयते न तद्भोक्तव्यमिति सूत्राभ्यामन्नसंस्कारार्थत्वमेव वैश्वदेवादेः प्राधान्येन भवतोऽभिमतमुत केवलमेव । नान्त्यः । वायुभक्षणापराभिधनिर्जलमेकादश्याद्युपवासं कुर्वतः क्षेनातनत्वेन विहितानामपि तेषां लोपापत्तेः । नाप्याद्यः । प्रधानप्रयोजनमूलीभूतादनीयस्यैवाभावेन गौणप्रयोजनप्रायश्चित्तस्योक्तव्रतानुषङ्गिकफलत्वेन च पुनस्तथात्वात् । अपि चान्नसंस्कारः पुण्यापूर्वं भोक्तव्येव जनयिष्यत्येवं सूनापरिहारोऽपि

स्वस्यैवानिष्टंनिराकरणेनेष्टद् इत्यन्ततो गत्वाऽऽत्मसंस्कारार्थत्वमेव तयो-
रपि पर्यवस्यतीति तदेवात्र वक्तव्यमिति न काऽप्यनुपपत्तिः । एवं यथा
शरद्वसन्तेषु क्रमाच्छयामाकवीहियवाख्यतत्तदर्तुप्रधानधान्याग्रयणमात्रेण
सर्वधान्यभक्षणार्हत्वसंपादकसंस्करणवत्प्रधानीभूतवीहितण्डुलौदनादि-
वैश्वदेवादेर्निरुक्तरीत्याऽनुष्ठाने सर्वस्याप्यदनीयस्य तत्किमिति न स्यात् ।
तस्मात्सति शालयोदने क्षारलवणवर्ज्यतदितरहविष्ये वा तेनैव वैश्वदेव-
होमः सिक्ताज्यादिना कार्यः । सति सूपे तत्संसृष्टेन तदभावेऽन्यप्रधान-
व्यञ्जनसंसृष्टेन तच्छेषेणैव बलयः सर्वेऽपि रौद्रान्ताः कार्याः । देवयज्ञ-
पितृयज्ञाहुती प्रथमसजातीयेन क्रमादग्नौ भूमौ च भूतयज्ञमनुष्ययज्ञा-
हुती तु द्वितीयसजातीयेनैवेति । एवमहविष्यक्षारलवणाद्येकभोज्योप-
स्थितौ प्रागुक्तरीत्या तेनैवाऽऽज्याद्युपसिक्तेन प्रधानान्तेन भस्मन्येव
वैश्वदेवहोमः पूर्ववत्सूपादिसंसृष्टेन तच्छेषेण बलयस्तथा देवयज्ञाहुति-
स्तेनैव प्रथमेन भस्मनि पितृयज्ञाहुतिस्तु भुवि भूतयज्ञमनुष्ययज्ञाहुती तु
द्वितीयेनैवेति पात्रत्रयेणैव निरुक्तत्रिप्रकारकमन्नमादाय वैश्वदेवदेवय-
ज्ञादियज्ञचतुष्टयानुष्ठानं विधेयमिति सिद्धान्तः । तत्र बलिहरणपरिषेक-
क्रमकारिका संस्काररत्नमालायाम्—

द्वावेको द्वौ च चत्वारः प्रत्येकं त्रितयं तथा ।

दश चैक इति ज्ञेयं स्थानभेदाद्यथाविधि ॥ इति ।

तत्रैव विकल्पोऽपि—ब्रह्मबल्यन्तानां बलीनां सह वा परिषेको
विभवात् । अस्ति चात्र सूत्रम्—तेषां विभवन्ति तन्त्रमङ्गान्यविभव-
न्त्यावर्तन्ते । इति ।

एवं तत्तत्स्थाने बलिहरणाशक्तावपि विकल्पस्तत्रैव—एकत्र चेच्चक्रा-
कारं व्यञ्जनाकारं वा बलिदानं केचिदिच्छन्ति कुर्वन्ति चेदानीमेतदनु-
सारेणैव शिष्टा इति । तत्राऽऽद्यः पक्ष आश्वलायनानामन्त्यस्तु सत्या-
षाढीयानामिति व्यवस्था प्रसिद्धैवेति शिवम् ।

इति श्रीमद्वासिष्ठकुलावतंसेनौकोपाह्वयेन सत्याषाढापराभिधाहिरण्य-
केशिसूत्रिणा श्रीमद्रामार्यसूनुना त्र्यम्बकेण संगृहीते हिरण्यकेश्याचार-
भूषणाख्य आह्निक उत्तरार्धे पञ्चमभागकृत्यकिरणे वैश्वदेवप्रकरणं
संपूर्णम् ।

अथ वैश्वदेवप्रयोगः । तत्रेदानीं लोके प्रायः प्रातः सायं विभिन्नवैश्वदे-

वानुष्ठानस्य भूयः शिष्टेष्वदृष्टत्वात्तन्त्रप्रयोग एव देव यज्ञादिमहायज्ञानु-
ष्ठानविशिष्ट एव प्रथमं लिख्यते । कर्ताऽग्न्यायतनस्य पश्चात्प्राङ्मुख उप-
विश्याऽऽचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं
प्रातःसायं वैश्वदेवौ तन्त्रेण तथा देवयज्ञादिमहायज्ञचतुष्टयं च करिष्य
इति संकल्प्य नैवेद्यपात्रे नैवेद्यार्थं सर्वमन्नं सपरिकरं पृथगुद्धृत्य वैश्व-
देवपात्रे हविष्यप्रधानं शाल्योदनं देवयज्ञादिपात्रे च पृथगुद्धृत्य बलि-
भूतयज्ञादिपात्रे सूपसंसृष्टं तदभावे प्रधानव्यञ्जनसंसृष्टं पृथगेव संगृह्य
धमन्या गृह्यं पचनं वाऽग्निं प्रज्वालयेत् । अत्र देवपवित्रसंस्कारा-
भावपक्षेऽप्यभिघारणं भवत्येवेति गोपीनाथदीक्षितोक्तेस्तस्य पाक्षिक-
त्वादमुकाग्रावित्यादिवत्स नोक्तः । अतस्तूष्णीमेव तदन्नमाज्यादिनाऽ-
भिघार्य, अदितेऽनुमन्यस्वेतिमन्त्रेणाग्नेर्वामभागप्राक्प्रवणमनुमतेऽनुमन्य-
स्वेति स्वाग्न्योर्मध्य उदक्प्रवणं सरस्वतेऽनुमन्यस्वेति अग्नेर्दक्षिणभागे
प्राक्प्रवणं देव सवितः प्रसुवेतीशानीमारभ्य प्रदक्षिणमेवेशानीपर्यन्तमग्निं
जलेन परिषिच्य यावद्धोमं वामहस्ततलं हृदि स्थापयञ्जुहुयात् । वैश्व-
देवहोमार्थपात्रादङ्गुष्ठपर्वमात्रमन्नमादाय संहताङ्गुलिनोत्तानेन हस्तेन
जुहोति—अग्नये स्वाहा । अग्नय इदं न मम । विश्वेभ्यो देवेभ्यः
स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं न मम । ध्रुवाय भूमाय स्वाहा । ध्रुवाय
भूमायेदं न मम । ध्रुवक्षितये स्वाहा । ध्रुवक्षितय इदं न मम । अच्यु-
तक्षितये स्वाहा । अच्युतक्षितय इदं न मम । अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।
अग्नये स्विष्टकृत इदं न मम । अत्र मध्य एव स्विष्टकृदाहुतिर्नेशा-
न्याम् । सूत्रे षण्णामप्याहुतीनामाद्यानां प्राधान्येन होमस्यैव विधाना-
त्स्विष्टकृदाहुतेरस्यास्तदेकान्तःपातित्वेन प्रधानत्वादितरहोमीयस्विष्टकृ-
द्वदङ्गत्वाभावाच्च । तत अदितेऽन्वमःस्थाः । अनुमतेऽन्वमःस्थाः ।
सरस्वतेऽन्वमःस्थाः । देव सवितः प्रासावीः । इति पूर्ववदेवोत्तरपरि-
षेकं कुर्यात् । अथ बलिहरणम् । तत्र यद्यपि बलीनां तस्य तस्येत्यादि-
प्रागुक्तधर्मसूत्राद्यनुसारेण प्रत्येकं बलेः स्थाने हस्तेन परिमार्जनावो-
क्षणे प्राप्ते एव तत्तद्दानात्पूर्वं तथाऽपि गृहस्य तत्तत्स्थाने विहितबलि-
दानसंकोचवदत्रापि प्रथमं व्यञ्जनाकारबलिस्थानं सर्वमेकदैव हस्तेन
परिमृज्यावोक्षणीयम् । ततो बलिदेशमद्भिर्हस्तेन परिमृज्यावोक्ष्य

बलीन्दद्यात् । अपरेणाग्निमुदगपवर्गम् । बल्याद्यर्थान्नपात्रात्सूपादिसं-
 सृष्टं तदादाय धर्माय स्वाहा । अधर्माय स्वाहा । परिषिच्य सूत्रोक्तं
 तत्तद्वलिस्थानं दत्त्वाऽग्नेर्दक्षिणतः प्रागपवर्गं धर्मपङ्क्तौ—अद्भ्यः स्वाहा ।
 परिषिच्य, ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा । रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहा । परि-
 षिच्य, उत्तरतोऽधर्मात्प्रागपवर्गम्—गृह्याभ्यः स्वाहा । अवसानेभ्यः
 स्वाहा । अवसानपतिभ्यः स्वाहा । सर्वभूतेभ्यः स्वाहा । परिषिच्य
 ततो मध्येऽधर्मपङ्क्तौ प्रागपवर्गम्—कामाय स्वाहा । परिषिच्य, अन्त-
 रिक्षाय स्वाहा । परिषिच्य—यदेजति जगति यच्च चेष्टति नाम्नो भागो
 यन्नाम्ने स्वाहा । परिषिच्य—ततो दक्षिणतः प्रागपवर्गम्—पृथिव्यै स्वाहा ।
 अन्तरिक्षाय स्वाहा । दिवे स्वाहा । सूर्याय स्वाहा । चन्द्रमसे स्वाहा । नक्ष-
 त्रेभ्यः स्वाहा । इन्द्राय स्वाहा । बृहस्पतये स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा ।
 ब्रह्मणे स्वाहा । परिषिच्य—पुनर्वैश्वदेवहोमान्नपात्रादन्नमादायैतद्वलीनां
 दक्षिणतः प्राचीनावीती—अप्रदक्षिणं परिमृज्यावोक्ष्य दक्षिणं पाणिमु-
 त्तानं कृत्वा पितृतीर्थेन किञ्चिद्दूरं बलिं दद्यात्—स्वधा पितृभ्यः
 स्वाहा । प्रसव्यं परिषिच्य यज्ञोपवीत्यप उपस्पृशेत् । जीवपितृकश्चे-
 त्स्वधा पितृभ्यः स्वाहा, इति यज्ञोपवीती दद्यात् । ततस्तदुत्तरेण प्रद-
 क्षिणं परिमृज्यावोक्ष्य पुनर्बल्याद्यर्थादन्नादेवाऽऽदाय—नभो रुद्राय
 पशुपतये स्वाहा । प्रदक्षिणं परिषिच्य, अप उपस्पृशेत् । ततो देवयज्ञा-
 द्यर्थान्नपात्रादङ्गुष्ठपर्वमात्रमन्नमादाय देवेभ्यः स्वाहा । देवेभ्य इदं न
 मम । इति तस्मिन्नेवाग्नौ जुहोति । परिषेकस्तु प्रत्येकं प्राग्वदेव सर्वत्र
 यथार्हो बोध्यः । अयं हि देवयज्ञः । ततो नित्यश्राद्धविधिना श्राद्धम् ।
 तदभावे प्राचीनावीती तत एवान्नमादाय पितृभ्यः स्वधाऽस्तु इति पूर्व-
 पितृबलेः पुरस्तात्पितृधर्मेण ददाति । प्रसव्यं परिषिच्य, अयं पितृयज्ञः ।
 यज्ञोपवीत्यप उपस्पृश्य भूतेभ्यो नमः । इति रौद्रबलेः पुरस्ताद्दद्यात् ।
 परिषिच्य, एष भूतयज्ञः । ततो निवीती मनुष्येभ्यो हन्तकारस्तदभावे
 मनुष्येभ्यो हन्त, इति तस्मिन्नेवाग्नौ जुहुयात् । एष मनुष्ययज्ञः । ततः
 प्रजापारमेष्ठ्यधनकामेषु क्रमेण विनियोगात्, श्रीपरमेश्वरप्रसादेन मम
 प्रजापारमेष्ठ्यातिधनाप्त्यर्थं तद्रूपं तं यक्ष्य इति संकल्प्य प्रजापतये
 स्वाहा । प्रजापतय इदं न मम । परमेष्ठिने स्वाहा । परमेष्ठिन
 इदं न मम ।

यथा कूपः शतधारः सहस्रधारो अक्षितः ।

एवा मे अस्तु धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ॥

धनधान्यै स्वाहा । धनधान्या इदं न मम । इति होमार्थादेवान्नात्त-
स्मिन्नेवाग्नौ जुहोति । अथ वा षडाहुत्यादौ पूर्वपरिषेकः । एतद्धो-
मान्त उत्तरपरिषेकः । न मध्यभूताः परिषेकाः । वैश्वदेवप्रकरणस्थत्वा-
दिति संस्काररत्नमालोक्तेस्तांस्त्यक्त्वाऽत्रैव । ततोऽदितेऽन्वमंस्थाः ।
अनुमतेऽन्वमंस्थाः । सरस्वतेऽन्वमंस्थाः । देव सवितः प्रासावीः ।
इति पूर्ववदेवोत्तरपरिषेकं कुर्यात् । ततो येन केनापि शिष्यादिना बलि-
हरणं निष्काशयित्वा तदभावे स्वयमेवैकीकृत्याप उपस्पृश्य तदूर्ध्वं ये
भूता इति मन्त्रेण बलिं दद्यात् ।

ये भूताः प्रचरन्ति दिवानक्तं बलिमिच्छन्तो वितुदस्य प्रेष्याः ।

तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो हरामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु स्वाहा ।

दिवाचारिभ्यो नक्तंचारिभ्यश्च भूतेभ्यः पुष्टिपतये चेदं न ममेति
त्यागः । अयं च बलिर्भूतलिङ्गाद्वैश्वदेवानुष्ठानादूर्ध्वं बहिर्देशे चाऽऽवा-
यसादिभूतेभ्यो यद्बलिप्रदानं सोऽयं भूतयज्ञ इति भाष्याच्च भूतयज्ञान्न-
पेशेणैव देयः । गृहद्वाराद्बहिराकाश एवायं बलिर्दिवाऽपि देयो न भूमा-
विति संस्काररत्नमालोक्तेरयं बलिर्नभस्येव देयः । ततः कर्मसमाप्तिम्
ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्त्विति विधाय त्रिर्विष्णुं स्मरेत् । पृथक्करणपक्षे
संकल्पे प्रातर्वैश्वदेवेति सायंवैश्वदेवेत्यूहः । परं तु यदि प्रातर्वैश्वदेवे
देवयज्ञादित्रयं स्वकाले तर्ह्यनुष्ठितमेवेति पुनः सायंवैश्वदेवे तन्न भवति ।
मनुष्ययज्ञस्तु तदानीमनुष्ठितोऽपि पुनः सायं भवत्येव । वैहायसबलिदाने
क्रमाद्दिवा बलिमिति मन्त्रे दिवाचारिभ्य इति त्यागेऽप्यूहं कृत्वा भूमौ
तथा नक्तं बलिमिति मन्त्रे नक्तंचारिभ्य इति त्यागे चोहं विधायाऽऽ-
काशे बलिर्देयः । जीवत्पितृके वैश्वदेवकर्तारि तु महायज्ञचतुष्टयं नैवेति
प्रागेवोक्तम् । सर्वे बलयः शक्तौ कुक्कुटाण्डप्रमाणास्तदभाव आर्द्रामल-
कप्रमाणाः प्रदेयाः । अथ जले प्रसक्तौ प्रयोगः । शुद्धजलसमीपे प्राङ्-
मुख उपविश्याऽऽचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं
जलरूपेणैव हविषा जलरूपेऽग्नौ प्रातःसायंवैश्वदेवं करिष्य इति संक-
ल्प्याञ्जलिनैव तदाहुतिमन्त्रैर्वैहायसबल्यन्तं जलं दद्यान्नात्र परिषेक-
परिमार्जनादि किमपि असंभवात् । अथानग्निकर्तृकवैश्वदेवप्रयोगः ।
श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमनग्निकविधिना वैश्वदेवं करिष्य इति संकल्प्य पूर्वप-
रिषेकान्ते हस्तेनाऽऽहुतीर्जुहुयात्—भूः स्वाहा । अग्नय इदं न मम ।

भुवः स्वाहा । वायव इदं न मम । सुवः स्वाहा । सूर्यायेदं न मम ।
 भूर्भुवः सुवः स्वाहा । प्रजापतय इदं न मम । देवकृतस्यैनसोऽवयजन-
 मसि स्वाहा । मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । पितृकृतस्यैनसोऽ-
 वयजनमसि स्वाहा । आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । अन्यकृत-
 स्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । अस्मत्कृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा ।
 यद्विवा च नक्तं चैनश्चकृम तस्यावयजनमसि स्वाहा । यत्स्वपन्तश्च जाग्र-
 तश्चैनश्चकृम [* तस्यावयजनमसि स्वाहा । यत्सुषुप्तश्च जाग्रतश्चैनश्चकृ-
 तम(कृम?) तस्यावयजनमसि स्वाहा । यद्विद्वाःसश्चाविद्वाःसश्चैनश्चकृम]
 तस्यावयजनमसि स्वाहा । एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहा । प्रजाप-
 तये स्वाहा । एकादशशाकलमन्त्रहोमे त्वग्नय इदमित्यादिरेव त्यागः ।
 प्रजापतौ तु स्पष्ट एव । अवशिष्टं तु प्राग्वदेव ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
 हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे वैश्वदेवप्रयोगप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ वैश्वदेवोक्तप्रयोगगतमन्त्राणां श्रीमद्विद्यारण्यगुरुभिः प्राक्तना-
 श्रमे माधवाचार्यैरम्भस्य पार इत्यादिब्रह्मणो महिमानमित्यन्ताया नारा-
 यणीयत्वेन प्रसिद्धायाः स्वशाखान्तिमप्रश्नरूपाया याज्ञिक्याख्याया
 उपनिषदस्तु भाष्यं द्रविडपाठानुसारेणैव कृतमित्यधस्तादेवोक्तमतोऽग्नये
 स्वाहेत्यादितत्पठितानां वैश्वदेवमन्त्राणां तदीयद्रविडपाठेनाऽऽम्नानेन
 तैरव्याख्यातत्वात्तदीयं हरदत्तीयमेवाऽऽपस्तम्बीयेकाग्रिकाण्डगतं भाष्यं
 लिख्यते । तद्यथा—

प्राणिपत्य महादेवं हरदत्तेन धीमता ।

एकाग्रिकाण्डमन्त्राणां व्याख्या सम्यग्विधीयते ॥

तत्राऽऽदितो वैश्वदेवमन्त्रा अधीयते । तत्र चोक्तमुभयतः परिषेचनं
 यथा पुरस्तादिति । तस्मात्परिषेचनमन्त्राः पूर्वं व्याख्येयाः । अदितेऽनु-
 मन्यस्व । अदितिरदितिनाम्नी देवमाता हेऽदितेऽनुमन्यस्व मया
 क्रियमाणं कर्मानुजानीहि । अनुमतिरूनचन्द्रा पूर्णमासी । सर-
 स्वती वाग्देवता । छान्दसो गुणः । हे देव सवितः सर्वस्यानुज्ञातः ।
 अस्मानपि प्रसुवानुजानीहि । अथ वैश्वदेवमन्त्राः । तेषामुपयोगे
 द्वादशाहमधःशय्या ब्रह्मचर्यमित्यादि । उपयोगो नियमपूर्वकं विद्याग्र-

हणम् । कर्तुरेतद्वृतम् । केचित्पत्न्या अपीच्छन्ति । अग्नये स्वाहा । ओमित्यनुज्ञातार्थस्तथा स्वाहाकारः प्रदानार्थः । सोमाय स्वाहा । केचिदिमं मन्त्रं नाधीयते । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । विश्वेभ्यः सर्वेभ्यो देवेभ्यः । ध्रुवाय भूमाय स्वाहा । ध्रुवायैकरूपायावृद्धिक्षयरूपाय । भूमाय भूमने ब्रह्मणे । भूमा त्वेष विजिज्ञासितव्य इति च्छान्दोग्यात् । ध्रुवक्षितये स्वाहा । ध्रुवा निश्चला क्षितिर्गतिर्यस्य कार्यवर्गं प्रति तस्मै ध्रुवक्षितये । एवमच्युतक्षितये । अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । रुद्रोऽग्निः स्विष्टकृत् । स्विष्टं सुहुतं करोति । पूर्वत्परिषेचनम् । अंदितेऽन्वमस्थाः । अनुज्ञातवती । प्रासावीः । अनुज्ञातवान् । अथ बलिहरणमन्त्राः । तत्र धर्माधर्मौ प्रसिद्धौ । आपश्च । एवमोषधिवनस्पतयश्च । तत्र तदधिष्ठात्र्यो देवता गृह्यन्ते । रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहा । रक्षसां देवानां च ये जनाः परिचारकास्तेभ्यः । गृहे भवा गृह्या वास्त्वाद्याः प्रसिद्धाः । अवसानं गृहावयवापेक्षं बहुवचनम् । तदधिष्ठानाभ्यो देवताभ्यः । अवसानपतिभ्यः स्वाहा । तस्यैवावसानस्य पातृभ्यो रक्षितृभ्यः । सर्वाणि च भूतानि तेभ्यः । कामः प्रसिद्धः । एवमन्तरिक्षम् । यदेजति । येनापिधीयते द्वारं तदुच्यते । यदा पिधानकाल एजति कम्पते जगति लोके यच्च चेष्टति चेष्टते तस्य नाम्नो नमनशीलस्य भागोऽयं तस्मै नाम्ने स्वाहा । पृथिव्यादयः प्रसिद्धाः । यथा देवेभ्यः स्वाहाकार एवं पितृभ्यः स्वधाकारः । नमो रुद्राय । देवाय । पशुपतये । पशवो हि द्विपादश्चतुष्पादश्च तेषां पत्ये । ये भूता यानि भूतानि प्रचरन्तीतस्ततश्चरन्ति नक्तं बलिमिच्छन्तः । वितुदस्य कुबेरपुत्रस्य (रस्य)? वितुदये कुबेरायायं बलिरिति मन्त्रान्तरे दर्शनात् । तस्य प्रेष्याः कौबेरस्यैव वा प्रेष्याः तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो हरामि । स पुष्टिपतिर्वितुदो मयि पुष्टिं दधातु । अनेन नक्तमेव बलिः । नक्तमेवोत्तमेन वैहायस इति वचनात् । नक्तं बलिमिच्छन्त इति लिङ्गात् । अन्ये नक्तमुत्तमेनैवेति भिन्नक्रममेवकारं व्याचक्षते । तेषां बल्यन्तराणां निवृत्तिः । केचित्पुनर्दिवा बलिमिच्छन्त इत्यूहेन दिवा बलिं हरन्ति । दिवाचारिभ्य इति दिवा नक्तंचारिभ्य इति नक्तमित्याश्वलायनके दर्शनादिति । एवं देवेभ्यः स्वाहा । पितृभ्यः स्वधाऽस्तु भूतेभ्यो नमः । मनुष्येभ्यो हन्तेति देवयज्ञादिमहायज्ञचतुष्टयमन्त्रास्तथा प्रजापतये स्वाहा । परमेष्ठिने स्वाहेति प्रजापारमेष्ठ्यकामप्रदेयाहुति-

मन्त्रद्वयं च, तत्तल्लिङ्गत एव निगद्व्याख्यातम् । अतस्तत्रैवाग्रे पठ्यमानो धनधान्यप्रदेयाहुतिप्रतिबोधकः

यथा कूपः शतधारः सहस्रधारो अक्षितः ।

एवा मे अस्तु धान्यं सहस्रधारमाक्षितम् ॥

धनधान्यै स्वाहेतिमन्त्रः पूर्वोक्तहेतोरेव माधवीयभाष्याभावान्मयैव यथामति व्याख्यायते यथेति । कूपः प्रसिद्ध एव । शतेति । शतादि-शब्दोऽत्रासंख्यातत्वख्यापकः । यथा लोके कश्चिज्जलकूपोऽभ्यन्तरे भूमिगतनाडीविशेषप्रस्रवदसंख्याखण्डधारश्चेदक्षितो भवति मूरितरमपि ततो जलं घटीयन्त्रादिभिः स्वस्वव्यवहारार्थं निष्कासितं चेदप्यक्षय एव संपूर्ण एवावतिष्ठत इत्यर्थः । एव अ इति च्छेदः । एव एवम् । अव्ययानामनेकार्थत्वात् । हे अ अद्यन्तर्यामिन्विष्णो । अकारो वासु-देवः स्यादित्यभिधानात् । मे मम धान्यमुपलक्षणमिदं धनस्य धनधान्यै स्वाहेति लिङ्गात् । सहस्रधारमपरिमितचारुमार्गैरागमनशीलम् । अत एवाक्षितम् । अविनाशि निरुक्तरीत्या भूरितरव्ययेपि परिपूर्णमस्त्वतो धनधान्यै धनानि धीयन्ते नियम्यत्वेन यस्यां तस्यै धनाद्यधिष्ठात्र्यै भव-त्पत्न्यै लक्ष्म्यै स्वाहेति प्रकृतहविर्ददामीति । अथ विधुरवैश्वदेवप्रयो-गपठितानां देवकृतस्यैनस इत्याद्येकादशमन्त्राणां नारायणीयोपनिषद्या-ज्ञातानामपि द्रविडपाठे तदभावेन भाष्यमपि तत्र श्रीमाधवाचार्याणां नास्त्येवाथापि संहितास्थतन्मन्त्रीयभाष्यं श्रीमाधवीयमेव लिख्यते हे शकल विषयैर्यदस्माभिः कृतमेनस्तस्याव[य]जनं विनाशकमसि । एवं मनुष्यपितृमन्त्रयोर्योज्यमिति । अथाग्रे मन्त्राष्टकस्य भाष्याभावेऽपि मयैव तद्विद्मन्त्रेण व्याख्यायते । आत्मशब्दोऽत्र बुद्धिवाची । तेन यावन्मानसं पातकं पर्यवस्यति । अन्यशब्दो जीवान्तरपरः । तथा च यावत्सांसर्गिकं तत्फलति । अस्मच्छब्देन स्थूलदेहः । एवं च यावत्कायिकं तत्सिध्यति । दिवा दिवसे । नक्तं रात्रौ । यद्यदेनः पापं वयं चकृम कृतवन्तस्तस्य पापस्येति संबन्धः । स्वपन्तः स्वप्नं पश्यन्तः । जाग्रतः जाग्रदवस्था-मिन्द्रियैरर्थोपलब्धिरूपामनुभवन्तः । वयमिति शेषः । सुषुप्तः सुषु-प्तिमनुभवन्तः । तत्रापि संस्कारेण शरीरचालनादज्ञातमत्कुणा-दिमरणजन्यपातकसंभवात् । एवं पुनर्जाग्रतः समाधिमनुभवन्त-

स्तत्राप्युक्तरीत्या तत्संभवात् । विद्वांसो जानन्तः । अविद्वांसोऽजानन्तः ।
एनसः पातकसंस्कारात् । स्पष्टमेवान्यत् । इति प्रयोगपठितवैश्वदे-
वमन्त्रभाष्यम् ।

अथ भिक्षादानम् । उपलक्षणमिदं हन्तकारादेः । तथा च माधवीये
कौर्मे—

हन्तकारमथाग्रं वा भिक्षां वा शक्तितो द्विजः ।
दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम् ॥ इति ।

भिक्षादिलक्षणं तत्रैवाऽऽह मनुः—

ग्रासमात्रं भवेद्भिक्षा अग्रं ग्रासचतुष्टयम् ।
अग्रं चतुर्गुणीकृत्य हन्तकारो विधीयते ॥ इति ।

ग्रासप्रमाणमाह विश्वेश्वर्या व्याघ्रः—

चतुरङ्गुलमुत्सेधं चतुरङ्गुलमायतम् ।
एतद्ग्रासप्रमाणं तु व्याघ्रेण परिभाषितम् ॥ इति ।

तत्र व्यवस्थामाह कात्यायनः—यथार्हं भिक्षुकानतिथींश्च संभजेरन् ।
इति । यथार्हमिति । उपकुर्वाणस्य ब्रह्मचारिणोऽक्षारलवणादि । यते-
श्वामध्वादीति कर्कादयस्तद्भाष्यकाराः । अतिथिस्वरूपमाह वैयाघ्र-
पादः—

अध्वनीनमनाहृतं वैश्वदेवेऽप्युपस्थितम् ।
अतिथिं तं विजानीयान्नैकग्रामनिवासिनम् ॥ इति ।
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा ।
वैश्वदेवे तु संप्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥

इति पराशरशातातपावपि । ननु वैश्वदेवात्प्रागेव भिक्षादिप्रदान-
पात्रेऽतिथौ समुपस्थिते कथं कार्यमिति चेद्वैश्वदेवादिपर्याप्तमन्नं पृथक्स-
मुद्धृत्य तत्तत्पात्रे संस्थाप्य तत्तदधिकारिभ्यो भिक्षादि प्रदेयमेव । तदुक्तं
माधवीये नृसिंहपुराणे—

अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षुके गृहमागते ।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ इति ।

कुत एतदिति चेत्तन्मूल एवोक्तं भगवता पराशरेण—

वैश्वदेवकृतं पापं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।

न हि भिक्षुकृतान्दोषान्वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ इति ।

व्याख्यातं चेदं माधवाचार्यैः । वैश्वदेवस्य पश्चात्करणेन प्रसक्तो यो दोषः स भिक्षुदानेन निवर्त्यते । भिक्षापरिहारेण तु यो दोषो नासौ पूर्वकृतेनापि वैश्वदेवेन निवर्त्यत इति । भिक्षाधिकारिणस्तु दर्शितास्तत्रैव व्यासेन—

यतिश्च ब्रह्मचारी च विद्यार्थी गुरुपोषकः ।

अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥

पुराणेऽपि—ज्याधितस्यार्थहीनस्य कुटुम्बात्प्रच्युतस्य च ।

अध्वानं वा प्रपन्नस्य भिक्षाचर्या विधीयते ॥ इति ।

यतिभिक्षादाने नियममाह भगवान्पराशरः—

यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात्पुनर्जलम् ।

तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥ इति ।

तच्च भैक्षं सति विभवे बहुलं दातव्यमित्याहुर्माधवाचार्याः । तथा चोक्तं तत्रैव ब्रह्मपुराणे—

यः पात्रपूरणीं भिक्षां यतिभ्यः संप्रयच्छति ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नासौ दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ इति ।

उपलक्षणमिदं प्राक्प्रणीतादिभैक्षान्तरस्यापि तथा यतीतरनिरुक्त-
भिक्षाधिकारिणामपि । तानि चोक्तानि विश्वेश्वर्यामुशनःस्मृत्या—

माधूकरमसंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम् ।

तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ इति ।

असंकृतमिति माधूकरस्य विशेषणम् । अस्य देवदत्तस्य गृहे भैक्षं विधेयमिति संकल्परहितमित्यर्थः । एतादृशं माधूकरं मधुकरस्य कर्म मधुकर्याः कर्म वेति व्याख्येयम् । तेन करभैक्षस्य प्रथमव्युत्पत्त्या लाभः । मधुकरपदवाच्यस्य भ्रमरस्यायं स्वभावो यद्यत्र कुसुमे मधूपलभ्यते तत्तत्रैव भक्षयित्वाऽन्यत्र गन्तव्यमिति तेन करपात्रमपि यतेस्तादृगेवेति सुप्रसिद्धमेव । द्वितीयव्युत्पत्त्या तु यथा मधुकरी हि मधुमक्षिका कुसुमेभ्यो मध्वेकत्र संचित्य भक्षयति तद्वद्यत्यादीनामपि वस्त्रे संचित्य भैक्षस्य लाभः । एवमपि धुकारस्य कथं दैर्घ्यमिति यदि विभाव्यते तदाऽमधु

मधु यथा संपद्यते तथा करोतीति मधु(धू)करो निरुक्तद्विविधभिक्षाधिकारी परमहंसः संन्यासी तस्य कर्म माधूकरमिति साधुत्वं बोध्यम् । एतेषां पञ्चविधभैक्षणामपि स्वरूपाणि तद्वाक्यैरेव तत्रैवोक्तानि—

मनःसंकल्परहितान्गृहांस्त्रीन्पञ्च सप्त वा ।

मधुवदाहरणं यत्तन्माधुकरमिति स्मृतम् ॥ इति ।

शयनोत्थापनात्प्राक्च प्रार्थितं भक्तिसंयुतैः ।

तत्प्राक्प्रणीतमित्याह भगवानुशना मुनिः ॥

भिक्षाटनसमुद्योगात्प्राक्केनापि निमन्त्रितम् ।

अयाचितं तु तद्भैक्षं भोक्तव्यं मनुरब्रवीत् ॥

उपस्थानेषु यत्प्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन च ।

तत्कालिकमिति ख्यातं तदत्तव्यं मुमुक्षुणा ॥

सिद्धमन्नं भक्तजनैरानीतं यन्मठं प्रति ।

उपपन्नं तदित्याहुर्मुनयो मोक्षकाङ्क्षिणः ॥ इति ।

अत्र माधूकरविशेषीभूतकरपात्रभैक्षेतरपञ्चस्वपि यथाकामं यती-
तरोक्ततदधिकारिणां योग्यत्वं ज्ञेयम् । यतयो भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशन्ति
पाणिपात्रमुदरपात्रं वेत्यारुण्युपनिषदि तेषामेव तत्राधिकारबोधनात्तथैव
शिष्टाचाराच्च । पाणिरञ्जलिर्दक्षिणपाणिर्वा । भिक्षार्थं पात्रं पाणिपात्रम् ।
उदरपात्रं वोदरं जठरं ग्रासागमनसमये मुखप्रसारेण पात्रं भिक्षाप्रक्षे-
पस्थलमिति तद्दीपिकोक्तेश्च । एतेन यः पात्रपूरणीं भिक्षां यतिभ्यः
संप्रयच्छतीति प्रागुक्तब्रह्मपुराणवचोऽपि व्याख्यातम् । उदरपात्रत्वं
हि देवहृत्यादिवत्सर्वथात्यौगयोगपरिपाकपारवश्येन परैकपोष्यशरीरतारू-
पजीवन्मुक्त्यवस्थाविशेषापन्नसंन्यासित्व एव शास्त्रसंमतं नेतरथेत्यास्तां
विस्तरः । अथ प्राक्प्रणीतादिचतुर्विधभैक्षप्रदाने कथं यतयः पूज्या
इत्याकाङ्क्षायामुच्यते—यतिषु प्राक्प्रणीतादित्रिविधभिक्षान्यतमभैक्षार्थं
गृहमागतेषु चतुर्थभैक्षपक्षे स्वयं तन्मठं प्रति भिक्षान्नं गृहीत्वा गतश्चे-
दपि तान्प्रति वन्दनं न कुर्यात् । तथैव शिष्टाचाराद्बृहद्विश्वेश्वर्या
तन्मूलवचनानामपि सत्त्वस्य तैः कथ्यमानत्वाच्च । वस्तुतस्तु वन्दनमा-
त्रेणैव श्रीमद्भिः संतोष्यं मन्त्रिकटेऽन्यदन्नादिकं किञ्चिन्नास्ति देयमि-
दानीं श्रीमद्भ्य इति ततो ध्वननसंभवात्तन्नैव कुर्वन्ति शिष्टाः । एतेन
माधूकराद्यन्यतमं भैक्षसंकल्पं कृत्वा मठादेः प्रस्थितेषु यतिषु वर्त्मन्य-

न्येन केनापि वन्दनं माधूकरे मैक्षाशनात्प्रागितरत्र तत्पूजातः प्राक्च
 नैव कर्तव्यं तथैव शिष्टाचारात्सुयुक्तिकत्वात्तेषामुक्तवन्दनध्वननमात्रे-
 णापि भैक्षभोजनजन्यतृप्तिसमानतृप्तिमन्तृत्वशीलस्यैवात्यावश्यकत्वाच्चेति
 सिद्धम् । परं त्वभ्युत्थानप्रत्युद्गमनादिसत्कारस्तु कर्तव्य एव । सर्वा अस्य
 देवता गृहानभ्यागच्छन्ति यस्यैव ब्राह्मणो विद्वान्गृहमभ्येति तमनभ्यु-
 त्तिष्ठतः प्राणदेवता अपक्रामन्तीति हारीतेन,

प्रीयते स्वागतेनाग्निरासनेन शतक्रतुः ।

पितरः पादशौचेन भोजनेन प्रजापतिः ॥

इति बृहस्पतिना चान्वयव्यतिरेकाभ्यां तथा ।

अपूजयन्हि काकुत्स्थ तपस्विनमुपागतम् ।

दुःखार्तश्च परे लोके श्वमांसानि च खादति ॥

इति पुराणवचनेन च सामान्यतोऽपि यदा विद्वत्तपस्विशब्दितमुक्त-
 मुमुक्ष्वन्यतरस्य त्र्यन्यतमाश्रमिणो ब्राह्मणस्यातिथेः सत्काराद्यावश्यकं
 तदा चतुर्थाश्रमवतस्तस्य तत्कैमुत्यसिद्धमेवेति बोध्यम् । अतः पाद्यासने
 समुचिते दत्त्वा मण्डलं चतुरस्रमेव कृत्वा तदुपरि पलाशाद्युक्तपात्रान्यतम-
 मतैजसमेव पात्रं विशुद्धं संस्थाप्य सगन्धतुलसीदलेन सप्रणवनारायणा-
 ष्टाक्षरमहामन्त्रेणैव ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मबुद्ध्या तानभ्यर्च्य तेनैव मन्त्रेण त्रिवारं
 साष्टाङ्गं तानभिवन्देत् । तत्र मण्डलस्यापि पूजनं लोके कुर्वन्ति ।
 शिष्टास्तु यतिश्रेष्ठास्तत्पूजनविसर्जनं विधाय पुनर्मण्डलं कारयन्त्यतो
 ज्ञायते तन्निर्मूलमिति केचित् । न च केनचित्संभावितेन भक्तज-
 नेन भैक्षभोजनार्थं राजतादितैजसमपि तेषां पात्रं स्थापितं चेत्का क्षति-
 रिति वाच्यम् ।

सर्वेषामेव भिक्षूणां त्यक्तसर्वममत्वंतः ।

अतैजसानि पात्राणि भुज्यर्थं क्लृप्तवान्मनुः ॥

इति विश्वेश्वर्यां विष्णुवचनात् । ब्रह्मचारिणस्तु विशेष उक्तो माधवा-
 चार्यैः—ब्रह्मचारिणे स्वस्तीति वाचयित्वा तद्धस्ते जलं प्रदाय भिक्षा-
 दानं कार्यम् । तदाह गौतमः—स्वस्तिवाच्य भिक्षादानपूर्वमितीति ।
 पश्चाद्ब्रह्मचारिणे भिक्षां दद्यादिति शेषः । अत एव ज्ञायते स्नातकादि-
 विद्यार्थ्यादीनां चतुर्णां तथाऽर्थहीनत्वकुटुम्बप्रच्युतत्वोभयविशिष्टव्याधि-

तस्य च तूष्णीमेव भिक्षाप्रदानमिति । अनेकभिक्षुभैक्षप्रदाने विशेषः श्रीमाधवाचार्यैर्दर्शितः—बहुषु भिक्षुकेष्वगतेष्वशक्तेन किं कर्तव्यमित्याशङ्क्याऽऽह—

दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ।

इच्छया चान्यतो दद्याद्विभवे सत्यवारितम् ॥ इति ।

निगदव्याख्यातमेतदिति । ननूक्तभिक्षुकैस्तद्भिक्षान्नं कियद्दूरदेशपर्यन्तं नीतं चेद्भक्ष्यमित्यत्रास्ति कश्चिन्नियमो न वा । आद्ये द्रविडदेशे प्रायः शिष्टा अपि गृहस्थादयः प्रवसन्तः पञ्चसप्तदिवसमोजनपर्याप्तं दध्योदनं पात्रविशेषे निधाय तद्यष्टिकाग्रे निबध्य दशयोजनपर्यन्तमपि प्रत्यहमभ्यवहरन्तः कथं नयन्ति । अन्त्येऽतिप्रसङ्ग इति । अत्रोच्यते—

शतहस्तगतं चान्नं दशक्रोशगतं पयः ।

देशान्तरगतं तोयमपेयं जाह्नवीं विना ॥

इतिवचनाद्गृहाद्गृहिः शतहस्तपरिमितदेशाद्वर्गागेव नीतं भैक्षाद्यन्नं भोक्तव्यं नोर्ध्वमिति नियम्यते । तदपि

तण्डुलोऽग्न्यम्बुसंयोगात्पिष्टं लवणयोगतः ।

शाकं त्रितयसंयोगाद्भन्नत्वं प्रतिपद्यते ॥

इत्युक्तलक्षणमोदनादनादिसाधारणमपि न तु भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमित्यमरोक्तेरोदनमात्रं न वाऽद्यतेऽस्ति च भूतानीत्याम्नायान्तोक्तव्युत्पत्तिसिद्धं फलादिसर्वसाधारणं तस्य प्रकृतेऽनुपयोगात् ।

एवं च—तैलपक्कं घृतपक्कं पक्कं केवलवह्निना ।

तदन्नं फलवद्ग्राह्यमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥

इतिवचनात्तादृशं तदग्रेऽपि नीतं चेन्न क्षतिः । तत्रापि शिष्टाचाराद्गोधूमादिपिष्टं दुग्धसंपीडितं विधाय तदीयपूरकादिकं तैलादिपक्कं तथा केवलतैलादिसंपर्केण भर्जितं च विवाक्षितं न तु पूर्वजलसंपीडितं पश्चात्तैलादिपक्कम् । एवं केवलवह्निपक्कमपि भ्राष्ट्रभर्जितचणकादि । तथा दुग्धादिसंपीडितगोधूमादिपिष्टकृतखर्परादिभर्जितपूरकाद्यपि ग्राह्यम् । यद्यपि पिष्टं लवणयोगत इत्युक्तेरलवणपिष्टस्य जलसंमेलनेन कृतपूरकाद्यप्यन्नत्वाभावात्फलवदेव ग्राह्यमिति धार्मिकमन्याः केचिद्ब्रूवन्ति ते शिष्टाचाराभावादेव गोदोहवन्निराकरणीयाः । व्रताध्ययनादिहीनयत्यादिभिक्षुविषये त्वाह वसिष्ठः—

अवता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः ।

तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥ इति ।

चोरेति । चोरेभ्यः प्रागुक्तावतानधीयानभैक्षचरद्विजेभ्यः प्रच्छन्नत्वेन गृहमेधिपुण्यरूपसर्वस्वापहारकत्वाद्भिक्षुकवेषधारिपाठञ्चरेभ्य इत्यर्थः । भक्तं भिःसा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमित्यमरादन्नं प्रददाति तथेति यावत् । सा च भिक्षा दर्व्यादिनैव देया न तु हस्तेन । तदाह यमः—

हस्तदत्ता च या भिक्षा सलिलं व्यञ्जनानि च ।

भुक्त्वा ह्यशुचितां याति दाता स्वर्गं न गच्छति ॥ इति ।

किं च साऽपि यावदाहारमेव ग्राह्या । तदाह संस्काररत्नमालायां यमः—

आहारमात्रादधिकं न क्वचिद्भैक्षमाहरेत् ।

युज्यते स हि दोषेण कामतोऽधिकमाहरेत् ॥ इति ।

यः कामत इच्छातोऽधिकं भोजनपर्याप्तितोऽधिकं यद्याहरेत्तदा स दोषेण युज्यत इत्यर्थः । तेनाऽऽकस्मिकाधिकाप्तावपि न दोषः । एवं यद्यधिकं भैक्षं देवादागतं चेत्तर्हि तद्गवादिभ्य एव देयं न तु ब्राह्मणादिभ्य इत्याह प्रयोगपारिजातेऽत्रिः—

माधूकरं समाहृत्य ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ।

स याति नरकं घोरं भोक्ता चान्द्रायणं चरेत् ॥ इति ।

मनु—यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ।

तयोरन्नं न भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

इतिप्रायश्चित्तमयूखस्थवृद्धयाज्ञवल्क्यवचनैकवाक्यतयाऽत्रिस्मृतिरपि यतिब्रह्मचारिमात्रपरैवेति चेन्न । यत्यादिभिन्नभिक्षूणां माधूकरान्नदानाभ्यनुज्ञायाः काप्यनुपलब्धेः । माधूकरं समाहृत्येत्यादिसामान्यवचना-नौचित्याच्च । नापि

बहिर्जलाशयं गत्वा समुपस्पृश्य वाग्यतः ।

विभज्य याचितं शेषं भुञ्जीताशेषमात्रकम् ॥

इतिभागवतैकादशस्कन्धस्थयतिधर्मप्रकरणवचनेन तेषामपि विभज्येति माधूकरभैक्षमितरार्थिदेयत्वेन प्रतीयत इति सांप्रतम् । तद्विभागस्य विष्णुब्रह्मार्कभूतनैवेद्यपरत्वेनैव तद्दीकोक्तेः । न चैवं तर्हि पाराशरे—

सांतानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ।
गुर्वर्धिपितृमात्रार्थिस्वाध्यायाध्युपतापिनः ॥

इति भिक्षादानप्रकरणे यदुक्तं तत्र सांतानिकः संतानाय विपद्युक्तः सन्द्रव्यार्थी । सर्ववेदसः सर्वस्वदक्षिणं यागं कृत्वा निःसत्त्वमापन्नः सन्द्रव्यार्थी । गुरुशुश्रूषार्थं पितृशुश्रूषार्थं मातृशुश्रूषार्थं च द्रव्यार्थी । स्वाध्यायप्रवचननिर्वाहाय द्रव्यार्थी । उपतापी रोगी । एतान्विचार्य भिक्षां दद्यादिति शेषः प्रकरणाद्धोध्य इति संतानादिभ्योऽपि माधूकरप्रदानं प्रतीयते तत्कथमिति वाच्यम् । गुरुपोषक इति वचनान्तरेणैव गुरवे तथा

वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या शिशुः सुतः ।
अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥

इति मनुस्मृत्या च मात्रादिभ्योऽपि तद्दानस्य क्षीणवृत्तेरुचितत्वात् । तां च भिक्षां प्रशंसत्यत्रिः—

शाकभक्षाः पयोभक्षा ये चान्ये पवनाशनाः ।
सर्वे ते भैक्षभक्षस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ इति ।

यतिब्रह्मचारीतरभिक्षोर्वैश्वदेवो जल एवेति दिक् ।

इत्योकोपाह्वासिष्ठकुलावतंसश्रीरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषा-
ढहिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे भिक्षाप्रदानप्रकरणम् ।

अथातिथिभोजनम् । तदुक्तं धर्मप्रश्ने—

अतिथिनेवाग्रे भोजयेत् ॥ इति ।

अतिथिलक्षणमाह तत्रैव—

स्वधर्मयुक्तं कुटुम्बिनमभ्यागच्छन्धर्मपुरस्कारो नान्नप्रयोजनः सोऽति-
थिर्भवति । इति । आदितो यच्छब्दो द्रष्टव्यः । अन्ते स इति दर्शनात् ।
मध्ये श्रोत्रियलक्षणोपदेशात्तदुपजीवनेन सूत्रं योज्यम् । यः श्रोत्रियः
स्वधर्मयुक्तं स्वधर्मनिरतं कुटुम्बिनं भार्यया सह वसन्तं गृहस्थम् । आश्र-
मान्तरनिरासार्थमिदमुक्तम् । न हि ते पच्यमाना भवन्ति भिक्षवो हि
ते । अभ्यागच्छन्नुद्दिश्याऽऽगच्छन्धर्मपुरस्कारः । आचार्यार्थं भिक्षणं
धर्मस्तत्पुरस्कारः । कर्मण्यण् । धर्मप्रयोजनो नान्नप्रयोजनः । य एवंभूतः
सोऽतिथिर्भवतीत्युज्ज्वला । तत्पूजने फलमपि तत्रैव—

तस्य पूजायां शान्तिः स्वर्गश्च । इति ।

तस्यातिथेः पूजायां कृतायां शान्तिरुपद्रवाणामभाव इह प्रेत्य च स्वर्गो भवतीत्युज्ज्वला । अन्यथा हानिरप्युक्ता तत्रैव—

अग्निरिव ज्वलन्नतिथिरभ्यागच्छति । इति ।

पञ्चयज्ञान्तेऽतिथीनेवाग्रे भोजयेदित्युक्तम् । तत्सप्रकारं वक्तुं तस्या-
वश्यं कर्तव्यतामनेनाऽऽह । अतिथिर्गृहानभ्यागच्छन्नग्निरिव ज्वलन्नभ्या-
गच्छति तस्मादसौ भोजनादिभिरवश्यं तर्पयितव्यः । निराशस्तु गच्छन्गृहं
दहेदित्युज्ज्वला । अनधीतातिथौ विशेषस्तत्रैव—

ब्राह्मणायानधीयानायाऽऽसनमुदकं भोजनमिति देयं न प्रत्युत्तिष्ठेत् ।
इति ।

यद्यनधीयानो ब्राह्मणोऽतिथिरागच्छेत्तदा तस्मा आसनादिकं देयं
प्रत्युत्थानं न कर्तव्यमित्युज्ज्वला । क्षत्रियवैश्यातिथावपि तत्रैव—
राजन्यवैश्यौ च । इति ।

अधीयानावपि नोत्तिष्ठेदतिथिपूजा कार्थैवेत्युज्ज्वला । शूद्रातिथौ
विशेषस्तत्रैव—

शूद्रमभ्यागतं कर्मणि नियुञ्ज्यादथास्मै । इति ।

यदि शूद्रो द्विजानतिथिरभ्यागच्छति तमुदकाहरणादौ कर्मणि नियु-
ञ्जीताथैतस्मिन्कृते तस्मै भोजनं दद्यादित्युज्ज्वला । अतिथ्यभावे
तत्रैव—

काले स्वामिनावन्नार्थिनं न प्रत्याचक्षीयाताम् । इति ।

काले वैश्वदेवान्तेऽन्नार्थिनमुपस्थितं स्वामिनौ गृहपती न प्रत्याच-
क्षीयातामवश्यं किञ्चित्तस्मै देयमित्युज्ज्वला । अभावे किं कर्तव्यमि-
त्यत्राऽऽह तत्रैव—

अभावे तृणानि भूमिरुदकं कल्याणी वागित्येतानि सतोऽगारे न
क्षीयन्ते कदाचनेति । इति ।

आपस्तम्बधर्मप्रश्नव्याख्याने हरदत्ताश्च भूमिरुपवेशनयोग्या । उदकं
पादप्रक्षालनयोग्यम् । तृणानि शय्यासनयोग्यानि । कल्याणी वाक्स्वा-
गतमायुष्मन्निहाऽऽस्यतामित्यादिका । एतानि भूम्यादीनि सतोऽगारे सत्पु-
रुषस्य निर्धनस्यापि गृहे कदाचिदपि न क्षीयन्त इति । एतत्फलमपि
धर्मप्रश्ने—

एवंवृत्तावनन्तलोकौ भवतः । इति ।

यौ गृहमेधिनौ तावदेवंवृत्तौ भवतस्तयोरनन्ता लोका भवन्ति ।
ज्योतिष्टोमादिभ्योऽपि हि कतिपयदिनसाध्येभ्यो दुष्करमेतदन्ताद्व्रतमित्यु-
ज्ज्वला । अन्तादिति । अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसामिति भगव-
द्वचनाद्विनश्वरफलत्वेन कतिपयदिनसाध्येभ्योऽपि ज्योतिष्टोमादिभ्योऽपि
दुष्करमनन्तब्रह्मरूपस्याननुभूतस्यैव चित्तशुद्धिद्वारा फलस्य जनक-
त्वेन तत्कामनया विषयिणस्तत्र झटितिप्रवृत्त्यसंभवाद्दुष्करमित्यर्थः ।
अन्नदाने पात्रविचारो नेत्युक्तं तत्रैव—

सर्वान्वैश्वदेवे भागिनः कुर्वीताऽऽश्वचाण्डालेभ्यः ॥ इति ।

वैश्वदेवान्ते भोजनार्थमुपस्थितान्सर्वानेव भागिनः कुर्वीताऽऽश्वचा-
ण्डालेभ्यः । अभिविधावाङ् । तेभ्यः किञ्चिद्देयम् । तथा च मनुः—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।

वायसानां कृमीणां च शनकैर्निक्षिपेद्भुवि ॥

इत्युज्ज्वला । पुनस्तत्रैव—

नानर्हञ्च्यो ददातीत्येके । इति ।

अनर्हञ्च्यश्चण्डालादिभ्यो न दद्यादित्येके मन्यन्ते । तत्र दानेऽभ्युदयः ।
अदानेऽप्रत्यवाय इति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । अयं संविभागो भृत्या-
द्यनुपरोधेनेत्युक्तं तत्रैव—

ये च नित्या भृत्यास्तेषामनुपरोधेन संविभागो विहितः । इति ।

ये नित्या नियतभृत्या दासकर्मकारकादयस्तेषामुपरोधो यथा न
भवति तथा वैश्वदेवान्ते संविभागः कर्तव्य इत्युज्ज्वला । तेभ्योऽपि यथा-
धिकारक्रममन्नं देयमेवेत्याशयः । नित्योऽयं मनुष्ययज्ञ इत्युक्तं तत्रैव—

स एष प्राजापत्यः कुटुम्बिनो यज्ञो नित्यं प्रततः । इति ।

य एषोऽभिहितो मनुष्ययज्ञः स प्राजापत्यः प्रजापतिना दृष्टस्तद्दे-
वस्यो वा कुटुम्बिनो नित्यं प्रततो यज्ञः । नाग्निष्टोमादिवत्कादाचित्क
इत्युज्ज्वला । कालत्रयेऽपि कर्तव्य इत्युक्तं तत्रैव—

यत्प्रातर्मध्यंदिने सायमिति ददाति सवनान्येव तानि । इति ।

त्रिषु कालेषु दीयमानान्यन्नानि अस्य यज्ञस्य प्रातःसवनादीनि
भवन्ति तस्मात्सर्वेषु कालेषु दातव्यमित्युज्ज्वलाकृतम् । विस्तरस्तु धर्मप्रश्न
एष द्रष्टव्यः । मनुष्ययज्ञलक्षणं श्रुतावपि—

यद्ब्राह्मणेभ्योऽन्नं ददाति स मनुष्ययज्ञः संतिष्ठते । इति ।

अत्र माधवीया व्याख्या—मनुष्ययज्ञस्य लक्षणमाह वैश्वदेवाकूर्ध्वं हन्तकारान्नव्यतिरिक्तमन्नमतिथिभ्यो वरेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यद्दीयते स मनुष्ययज्ञस्तावतैव समाप्यत इति । माधवीये बोधायनोऽपि—

अहरहर्ब्राह्मणेभ्योऽन्नं दद्यान्मूलफलशाकानि वेत्यथैनं मनुष्ययज्ञं समाप्नोति । इति ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुश्चयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे मनुष्ययज्ञाभिधातिथिभोजनप्रकरणम् ।

अथ भोजनविधिः । तस्य कालमाहाऽऽचारार्के मनुः—

सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ।

नान्तरा भोजनं कार्यमग्निहोत्रसमो विधिः ॥ इति ।

न चात्र प्रातःशब्दाग्निहोत्रनिदर्शनाभ्यामुषस्येव तदापत्तिः । दिव-
सस्य तु पञ्चमे भागे भोजनमाचरेदिति तत्रैव कात्यायनोक्तेः । रात्राव-
प्यावश्यकतातिशयस्तत्रैवाऽऽश्वलायनस्मृतौ—

अष्टम्योश्च चतुर्दश्यो रात्रावश्नाति नित्यशः ।

एकादश्यामुपवसेच्छुक्लपक्षे विशेषतः ॥

अर्कद्विपर्वरात्रौ च चतुर्दश्यष्टमी दिवा ।

एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ इति ।

तत्राऽऽदौ द्विराचमनमुक्तं धर्मप्रश्ने—

भोक्ष्यमाणस्तु प्रयतो द्विराचामेद्विः परिसृजीत सकृदुपस्पृशेत् । इति ।

व्याख्या तूक्ता प्रागाचमनप्रकरणे । भोजनविधिर्माधवीये मनुना
दर्शितः—

मुक्तवत्सु तु विप्रेषु स्वेषु मृत्येषु चैव हि ।

मुञ्जीयातां ततः पश्चाद्वशिष्टं तु दंपती ॥ इति ।

विष्णुपुराणे—ततः सुवासिनीदुःखिगर्भिणीवृद्धबालकान् ।

भोजयेत्संस्कृताग्नेन प्रथमं तु परं गृही ॥ इति ।

धर्मप्रश्नेऽपि—शेषभोज्यतिथीनां स्यात् । इति ।

अतिथिनेवाग्रे भोजयेदित्येव सिद्धे वचनमिदं प्रमादाद्यद्यन्नं न दत्त-

मतिथये तन्न भुञ्जीतेत्येवमर्थमित्युज्ज्वला । भोजन इतिकर्तव्यतामाह
माधवीये मनुः—उपलिप्ते समे स्थाने शुचौ श्लक्ष्णसमन्विते ।

चतुरस्रं त्रिकोणं वा वर्तुलं चार्धचन्द्रकम् ।

कर्तव्यमानुपूर्व्येण ब्राह्मणादिषु मण्डलम् ॥ इति ।

व्यासोऽपि—पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्यात्प्राङ्मुखो मौनमास्थितः ।

हस्तौ पादौ तथैवाऽऽस्यमेषु पञ्चार्द्रता मता ॥ इति ।

तत्र पवित्रमुक्तं स्मृतिभास्करे—

ब्रह्मयज्ञे जपे चैव ब्रह्मग्रन्थिर्विधीयते ।

भोजने वर्तुलः प्रोक्त एवं धर्मो न हीयते ॥ इति ।

तदकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं तत्रैव—

मुक्तैर्दर्भैर्न भोक्तव्यं भुक्त्वा देव्याः शतं जपेत् ।

इत्याचारकिरणेन । इदं च स्वसूत्रेऽनुक्तत्वात्तथाशिष्टाचाराभावाच्च
कृताकृतमेवेति प्रतिभाति । धर्मप्रश्नेऽपि—

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत । इति ।

दक्षिणामुखत्वमपि तत्रैव सापवादम्—

दक्षिणामुखो वाग्यतो भुञ्जीतानायुष्यं त्वेवंमुखस्य भोजनं मातुरि-
त्युपदिशन्ति । इति ।

एवंमुखस्य भोजनं तस्य भोक्तुर्यां माता तस्या अनायुष्यमनायुष्क-
रमिति धर्मज्ञा उपदिशन्तीत्युज्ज्वला । आचारार्के तु प्रयोगपारिजाते
स्मृतिमञ्जर्यामन्यतरजीवनेऽपि तन्निषेधः—

पितरौ जीवमानौ चेन्नाश्रीयाद्दक्षिणामुखः ।

तयोस्तु जीववानेकस्तथैव नियमः स्मृतः ॥

इति स्पष्टः । आचाररत्ने स्मृतिमञ्जर्याम्—

पुत्रवान्स्वगृहे नित्यं नाश्रीयादुत्तरामुखः ॥ इति ।

तत्रैव मनुः—श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते, इति ।

आचारार्केऽपि स एव—

आयुष्मान्प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्वी दक्षिणामुखः ।

धनवान्पश्चिमायां तु धर्मवानुत्तरामुखः ॥ इति ।

माधवीय आश्वमेधिके—

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीयात्प्राङ्मुखश्चाऽऽसने शुचौ ।

पादाभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा पादेनैकेन वा पुनः ॥ इति ।

आसनं तूक्तं काष्ठपीठं सद्भर्मतत्त्वे—

श्रीपर्ण्यादिकृतासनो द्विजवरः क्षमामण्डले भूमिपः । इति ।

श्रीपर्णी भद्रपर्णी च काश्मर्यश्चापीत्यमरः । श्रीपर्णी नाम शिवण इति कोकणगुर्जरादौ प्रसिद्धो वृक्षविशेषः । आसने वर्ज्यान्याहाऽऽचारार्के प्रचेताः—

गोशकृन्मृन्मयं भिन्नं तथा पालाशपैप्पलम् ।

लोहबद्धं सदैवाऽऽर्कं वर्जयेदासनं बुधः ॥ इति ।

भोजनपात्रं धर्मप्रश्ने—औदुम्बरश्चमसः सुवर्णनाभो भोजनीयं प्रशस्तो न चान्येनाभिभोक्तव्यः (व्यम्?) । इति ।

चमु अदने चम्यते यत्र चमसो भोजनीयं भोजनाहं पात्रं स औदुम्बरस्ताम्रमयः सुवर्णनाभः सुवर्णेन मध्येऽलंकृतः । प्रशस्तो भोजने । अन्येन भोजनकर्तुः पित्राऽपि तत्पात्रे न भोक्तव्यम् । अभिधात्वर्थानुवादी । भोक्तव्य इति पुंलिङ्गपाठेऽप्येष एवार्थ इत्युज्ज्वला । अथ ताम्रकम् । शुल्बं भ्लेच्छमुखं द्यष्टवरिष्ठोदुम्बराणि च । इत्यमरः । माधवीये पैठीनसिरापि—

सौवर्णे राजते ताम्रे पद्मपत्रपलाशयोः ।

भाजने भोजने चैव त्रिरात्रफलमश्नुते ॥

एक एव तु यो भुङ्क्ते विमले कांस्यभाजने ।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम् ॥ इति ।

धर्मप्रश्ने—परिमृष्टं लौहं प्रयतं यन्निर्लिखितं दारुमयम् । इति ।

लौहं लोहविकारभूतं कांस्यादि भोजनपात्रं भस्मादिभिः परिमृष्टं सत्प्रयतं भवति । तत्र भस्मना कांस्यमाम्लेन ताम्रं राजतं शकृता सौवर्णमद्भिरिति स्मृत्यन्तरवशाद्द्रष्टव्यम् । यद्दारुमयं भाजनं निर्लिखितं तष्टं सत्प्रयतं भवतीत्युज्ज्वला । पुनरपि तत्रैव—न नावि भुञ्जीत तथा प्रासादे कृतभूमौ तु भुञ्जीत नाऽऽप्रीते मृन्मये भोक्तव्यमाप्रीतं चेदभिदग्धः । इति ।

नाव्यासीनो न भुञ्जीत शुद्धेऽपि पात्रे । प्रासादो दारुमयो मञ्चस्तत्रापि न भुञ्जीत । भूमावपि भुञ्जानः कृतायां गोमयादिना संस्कृतायां

मुञ्जीत । यदि मृन्मयेऽपि मुञ्जीत तदाऽन्येनाऽऽप्रीते मुञ्जीत । आप्रीतं क्वचित्कार्ये पाकादावुपयुक्तम् । आप्रीतमेव लभ्यते तदाऽग्निनाऽभितो दग्धे तत्र मोक्तव्यमित्युज्ज्वला । आपस्तम्बधर्मप्रश्ने तथा प्रासाद इति-सूत्रे हरदत्तैः—अपर आह प्रासादोऽपि यदा मृदा कृतभूमिर्भवति न केवलो दारुमयस्तदा तत्र मुञ्जीतेत्येवं व्याख्यातम् । तत्र पद्मपलाश-पत्रयोर्गृहिणो भोजनं निषिद्धम् ।

पलाशपद्मपत्रेषु गृही मुक्तवैन्दवं चरेत् ।

ब्रह्मचारियतीनां तु चान्द्रायणफलं लभेत् ॥

इति व्यासस्मरणात् । एवं कांस्यपात्रं गृहस्थैकविषयम् । यत्यादीनां तन्निषेधात् ।

ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ।

यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥

इति प्रचेतोवचनात् । कांस्यपात्रमानमाचाररत्नचन्द्रोदयेऽत्रिराह—

पञ्चाशत्पलिकं कांस्यं द्व्यधिकं भोजनाय वै ।

गृहस्थैस्तु सदा कार्यमभावे हेमरौप्ययोः ॥ इति ।

तत्रैव प्रचेताः—पलाद्विंशतिकान्नावागत ऊर्ध्वं यदृच्छया । इति ।

तत्रैवापरार्के—सप्तम्यां नैव कुर्वीत ताम्रपात्रे च भोजनम् ॥ इति ।

तत्र—तैल(लं) स्त्री मधु माषान्नं परान्नं कांस्यभोजनम् ।

दिवासुप्तं पुनर्भुक्तं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥

इत्यादिनिषिद्धदिने रम्भादिपत्रेष्वेव भोजनम् । तानि च

रम्भाकुटजमध्वाम्रजम्बूपनसचम्पकाः ।

पद्मोदुम्बरपालाशाः पवित्रं दशपर्णकम् ॥

इतिपैठीनस्युक्तानि ग्राह्याणि । निषिद्धान्याह गोवर्धनाह्निके व्यासः—

वटाश्वत्थार्कपर्णेषु कुम्भीतिन्दुकपर्णयोः ।

कोविदारकरञ्जेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

आचाररत्ने स्मृतिरत्नावल्याम्—

वल्लीपलाशपत्रेषु स्थलजे पुष्करे तथा ।

गृहस्थस्तु न चाश्रीयाद्भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

उक्तादन्यानि मध्यमानि । कोकणे तु द्वादश्यां फल्गुपत्राणि मोज-
नार्थमवश्यं गृह्णन्ति शिष्टाः । काकोदुम्बरिका फल्गुर्मलयूर्जघनेफला ।
इत्यमरः । बोरवाडा इति देशभाषायां प्रसिद्धम् । आचारकिरणे गर्गः—

रम्भापलाशपत्रेषु यः कुर्यात्पारणं क्वचित् ।

सप्तजन्मकृतं पुण्यं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

तत्र रम्भा ह्यारण्यैव ग्राह्या । रम्भाकुटजेत्यादिप्रागुक्तविधेः । न
च विनिगमनाविरहः । द्रविडादिशिष्टाचारस्यैव विनिगमकत्वात् ।
यद्वा भोजनपात्रवर्ज्यप्रकरणे कदलीगर्भपत्रेति प्रयोगपारिजातोक्तेस्त-
त्परं तत् । तथा पर्णपृष्ठमणिशिलामयादीत्यपि तदुक्तवर्ज्यान्तरं द्रष्ट-
व्यम् । एतेन काचपात्रमपि व्यावृत्तम् । तस्यापि मणिविशेषैकविकार-
जत्वादिति दिक् । एवं पलाशोऽपि वल्लीपलाशेत्युक्तवाक्यात्स एव ।
पारिजाते—

करे कर्पटके चैव ह्यायसे ताम्रभाजने ।

वटाश्वत्थार्कपत्रेषु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

इति ताम्रपात्रनिषेधोऽपि स्वसूत्रोक्तताम्रपात्रविशेषेतरविषयः । तत्रापि
गोक्षीरपायसादि तु नैव भोक्तव्यम् । तदुक्तमाचाराकिरणेपुराणसमुच्चये—

आज्यपात्रे स्थितं तक्रं मधुमिश्रं तु यद्घृतम् ।

ताम्रपात्रे स्थितं गव्यं त्रिषु सर्पिः सुरासमम् ॥

मृगुः—गव्यं ताम्रेण संयुक्तं कांस्ये चैवेक्षुगोरसः ।

सकांस्यं नारिकेलाम्बु मद्यतुल्यं घृतं विना ॥ इति ।

त्रिषु तक्रमधुताम्रपात्रेषु पूर्वोक्तेष्वित्यर्थः । घृतं विना घृतमिश्रितं
नारीकेराम्बु तु सकांस्यपात्रगतमपि न तथेत्यर्थः । एतेन कांस्यपात्र-
मपि व्याख्यातम् । विशेषमाह तत्रैव मनुः—

ताम्रे गव्यं भुजौ मद्यं समं च परिवेषणे ।

दोहे पाके तथा होमे ताम्रे गव्यं न दुष्यति ॥ इति ।

वस्तुतस्तु दोहपाकयोरपि नैव शिष्टाचारः । यतो भूम्याद्युपलेपनार्थ-
मपि गोमयजलमपि स्त्रियोऽपि नैव ताम्रपात्रे निदधतीति सर्वत्र प्रसि-
द्धम् । अथोक्तपात्रे परिवेषणप्रकारमाहाऽऽचारकिरणे यमः—

शाकादि पुरतः स्थाप्यं भक्ष्यं भोज्यं च वामतः ।
अन्नं मध्ये प्रतिष्ठाप्यं दक्षिणे घृतपायसे ॥
ओदने परमन्ने च घृतपात्रं यदि स्थितम् ।
तदाज्यं च भवेद्रक्तं तदन्नं मांसमुच्यते ॥ इति ।

माधवीये शातातपोऽपि—

हस्तदत्तानि चान्नानि प्रत्यक्षं लवणं तथा ।
मृत्तिका लवणं चैव गोमांसाशनवत्स्मृतम् ॥ इति ।

पैठीनसिरपि—लवणं व्यञ्जनं चैव घृतं तैलं तथैव च ।

लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत् ।
द्वर्गा देयं घृतान्नं तु समस्तव्यञ्जनानि च ॥
उदकं यच्च पक्वान्नं यो द्वर्गा दातुमिच्छति ।
स भ्रूणहा सुरापश्च स स्तेनो गुरुतल्पगः ॥ इति ।

उदकस्य द्वर्गा प्रदानप्रसङ्गस्तु यदि भोजनसमाप्त्यन्तं वामहस्तेन
पात्रधारणं मौनं चेत्यादिनियमोऽङ्गीकृतो न तु प्राणाहुत्यन्तमेव तदो-
त्तरापोशनार्थमेव पत्न्यादितः । न चात्र प्रत्यक्षं लवणं तथेति प्रत्यक्ष-
लवणस्य निषेधाल्लवणं व्यञ्जनमित्यादिहस्तदत्तस्य निषेधनान्तरीयक-
सिद्धद्वर्गादत्तसकललवणजातीयतद्ग्रहणविधानपर्यवसानमिति वाच्यम् ।

सैन्धवं लवणं यच्च यच्च सामुद्रिकं भवेत् ।
पवित्रे परमे ह्येते प्रत्यक्षे अपि नित्यशः ॥

इति आचाराकीर्दाहृतशूलपाण्युक्तभविष्यवचनात् । एवं च सामुद्र-
सैन्धवाख्ये लवणे तु प्रत्यक्षे अपि हस्तादन्धेनैव द्वर्गादिना परि-
वेषणीये मृत्तिकालवणं त्वप्रत्यक्षमप्यभक्ष्यमेव । तदितरलवणानि त्वप्र-
त्यक्षाण्येव भक्ष्याणीति सिद्धम् । अथ धारादोषविचारः । तथाचोक्तं
जातिविवेके—

पञ्चद्विडमध्ये तु धारादोषो न विद्यते ।
नार्मदाद्यैर्यदा धारा दीयते घृतदुग्धयोः ॥
तदा पात्रं परित्यज्य पुनः स्नानेन शुध्यति ।
पञ्चद्विडमध्ये तु धारैका घृतदुग्धयोः ॥
न निषिद्धा महाराज क्वाथीधारैव दुष्यति ।
दधिपायसयोर्धारा सर्वेषामेव दूषिता ॥

वस्तुतस्त्वन्नयोनिसंबन्धं विना पात्रादौ भुक्तवत्सु घृतधारा निषिद्धा ।
आचारोऽपि शिष्टैस्तथैव क्रियते । उक्तं च विष्णुपुराणे—

एकपङ्क्त्युपविष्टानामेकान्नमश्रतां नृणाम् ।
एकेन दीयमानेन धारादोषो न विद्यते ॥

तथा मात्स्ये—यस्यैव योनिसंबन्धोऽप्यन्नसंबन्ध एव च ।

धारादोषं न मन्येत तत्रैव घृतदुग्धयोः ॥ इति ।

नार्मदा नर्मदातीरवासिनो गौडगुर्जरभेदाः । आद्यशब्देन सर्वेऽपि ते
ग्राह्याः । क्वाथी क्वाथसंबन्धिनी क्वाथिकायास्तादृक्कथिततक्रस्य चिञ्चिण्या-
दिसारस्यापीत्यर्थः । यद्यपि नैवं शिष्टाचारस्तथाऽपि शास्त्रार्थस्त्वेवमेव
श्रेयान् । अत एव केचिच्छिष्टाः सकृत्परिवेषणमेव कारयन्तीति दिक् ।
तत्रापि लोहेतरदर्व्यादिपात्रमेव परिवेषणे ग्राह्यम् । तदाह विश्वेश्वर्या-
मत्रिः—

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते ।

भोक्ता विष्ठासमं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥ इति ।

प्रयोगपारिजातेऽपि परिवेषणं प्रकृत्य—तत्र मक्ष्यं दक्षिणभागे लेह्यं
च वामभागे परिवेषयेत् । इति ।

एवं—शाकादि पुरतः स्थाप्यं दक्षिणे घृतपायसम् ।

इत्यपि वचनान्तरं ज्ञेयम् । तेन परिशेषादोदनो मध्य एव परिवेष्यः
सूपं च तद्वर्गिव चोष्यं परिपक्वादिशाकस्थान एव । पेयं दुग्धादि
पायसादिवदेव । तथा खाद्यमपि खण्डं लड्डुकादिकम् । क्वाथिकादिकं
तु लेह्यवद्दामत एव तद्वच्चित्रान्नादि भोज्यमप्योदनवन्मध्य एवेति । एवं
सर्वं सिद्धमन्नं पत्न्यादिना परिवेषयित्वा वैश्वदेवात्पूर्वं समुद्धृतं यद्देवनै-
वेद्यपात्रे सर्वं सोपस्करमन्नं यद्यदि दिवाचार्यादिबलिदानोत्तरं किञ्चि-
त्कालमुक्तभिक्षुकातिथ्यभिप्रतीक्षणे कृतेऽपि कश्चिद्देवान्नैवाऽऽगतश्चेत्त-
द्भिक्षाप्रदानार्चनादिव्यापारान्तरपारवश्याभावात्परमेश्वरं प्रति यथाविधि
निवेदितमेव स्यात्तदा तु गोग्रासमेव यथाविधि समर्प्य पूर्वोक्तरीत्या
सति संभवे बालवृद्धादीन्भोजयित्वा यथाविधि स्वयं भोक्तव्यम् । यदि
तु यत्यादयो भिक्षाधिकारिणस्तथाऽतिथयश्च केचिदुपागतास्तथा प्रागु-
क्तरीत्या नैवेद्याद्यवश्यप्रथमकर्तव्याद्वैश्वदेवादपि भिक्षवोऽभ्यर्हितास्तदा

नैवेद्याक्षत्रं तत्त्वस्य कैमुत्यसिद्धत्वादेव माधूकरभिक्षाधिकारिभ्यो यत्या-
दिभ्यो यथाविधि भिक्षां दापयित्वा तदितरप्राक्प्रणीतादिभिक्षाधिका-
रिणां यत्यादीनामतिथीनां चोक्तरीत्या समर्चनमेव विलम्बासहिष्णुतयै-
वात्यावश्यकत्वात्प्रथमं यथोक्ततारतम्यतो विधाय देवयज्ञादेः पृथक्करण-
पक्षे पितृस्थानीयमप्येकं प्रकीर्णकप्रकरणे वक्ष्यमाणलक्षणं ब्राह्मणं
नित्यश्राद्धविधिना समभ्यर्च्य निरुक्तरीत्या पात्राणि परिवेष्य नैवेद्यप्र-
दर्शनं कुर्यात् । तत्र मन्त्रो ये देवा दिव्येकादश स्थेत्यादिः श्रौतः । नैवेद्यं
गृह्यतां देवेत्यादिः स्मार्तश्च प्रसिद्ध एव । नित्यश्राद्धस्वरूपमुक्तमाचा-
रार्के पुराणे—

नित्यश्राद्धं तु यन्नाम देवहीनं तदुच्यते ।

तत्तु षट्पुरुषं ज्ञेयं दक्षिणापिण्डवर्जितम् ॥ इति ।

ननु कातीयास्तु वैश्वदेवाङ्गमपि पितृबलिं नैवेद्यं समर्प्यैव प्रयच्छन्ति
भवता तु तत्समर्पणमिदानीं सर्वं पात्रपरिवेषणानन्तरमेव कथ्यते वस्तु-
तस्तु नैवेद्यसमर्पणं पूजावसर एव समुचितं तदानीं खाद्यादिनैवेद्यं तदु-
त्तरमुक्तावसरेऽधुना महानैवेद्यं समर्पणीयमिति विभागस्य नैर्मूल्यमेवेति
चेन्न । कात्यायनीयोदाहरणस्यास्मान्प्रत्यनुपयुक्तत्वात्प्रत्युत न हि कर्मणि
कर्मारम्भ इति न्यायेन वैश्वदेवस्यासमाप्तावेव निरुक्तनैवेद्यनिवेदनकर्मा-
रम्भस्य सुतरामनुचितत्वाद्देवपूजायाः श्रीमाधवाचार्यैस्तर्पणानन्तरमेव
चतुर्थभागान्तिमकृत्यत्वेनोक्तत्वाद्द्वैश्वदेवस्य तु तदुत्तरमेव एञ्चमभागस्य
प्राथमिककृत्यत्वेनोक्तत्वान्निरुक्तमाधवीयादितत्तत्कर्मकालविधायकनिब-
न्धानामेव द्विविधनैवेद्यनिवेदनमूलत्वाच्च । ततो ये देवा दिव्येकादश
स्थेत्यादिमन्त्रेणैव यतिभ्यो हस्तोदकं दत्त्वा सतुलसीदलेन शुद्धजलेन
प्रणवव्याहृतिविशिष्टगायत्रीं पठन्क्रमेण सर्वाणि पात्राणि संप्रोक्ष्य
प्रजापते न त्वदित्यादिमन्त्रेणातिथ्यादिभोजनसंकल्पं तथैको विष्णुरित्या-
दिना नित्यश्राद्धीयब्राह्मणभोजनसंकल्पं नमो देव्यै महादेव्या इत्यादि-
मन्त्रेण सति संभवे सुवासिनीभोजनसंकल्पं कृत्वा दक्षिणां दत्त्वा यन्तु
नदय इत्यादिनाऽन्नरूपिणः परमात्मनः प्रार्थनां कृत्वा गोघ्रासं निवेद-
येत् । तत्रायं मन्त्रः—

सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ।

घ्रासं गृह्ण मया दत्तं गौर्मातस्त्रातुमर्हसि ॥ इति ।

एवं गन्धादिभिर्गां संपूज्य तस्या अन्नसमर्पणं यथासामर्थ्यं कुर्यात् ।
ततः स्वयं गन्धालंकृतः ।

[*अथ—स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्याद्धुत्वा चैव तु मस्मना ।

देवानभ्यर्च्य गन्धेन सर्वपापापनुत्तये ॥

इतिभद्रोजिदीक्षिताह्निके संग्रहवचनाच्चन्दनतिलकं प्रकृत्य तद्देवब्राह्मणेभ्यः समर्प्येत्यादिप्रयोगपारिजातवचनाच्च देवादिपूजनानन्तरं चन्दनतिलकधारणं कर्तव्यम् । तदुक्तं भागवते—

त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोलंकारचर्चिताः ।

उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥

इति श्रीकृष्णं प्रत्युद्धवचनेन । ननु मदनपारिजाते चन्दनतिलकं प्रकृत्य ब्राह्मे—

तिलकं वै द्विजः कुर्याच्चन्दनेन यदृच्छया ।

ऊर्ध्वं पुण्ड्रं द्विजः कुर्यात्क्षत्रियस्तु त्रिपुण्ड्रकम् ॥

अर्धचन्द्रं तु वैश्यस्य वर्तुलं शूद्रजातिषु ।

इति वचनात् । तथाऽऽचारार्के कात्यायनः—उभयं चन्दनेनैवेति वचनाच्च ब्राह्मणेन चन्दनकरणकमूर्ध्वपुण्ड्रधारणमेव कर्तव्यमिति चेन्न । मदनपारिजातवचनस्य चन्दनेन यदृच्छयेतिपूर्ववचनानुसारेण स्वस्वकुलाचारपरम्परानुसारेणैव तिर्यगूर्ध्वं वा कर्तव्यम् । एतेनाऽऽचारार्कीयकात्यायनवचनमपि व्याख्यातम् । तद्यथा—एकस्य तुल्यकालावच्छेदेनोभयधारणं तु वक्तुमशक्यमेव । तथा कालान्तरावच्छेदेन विकल्पे वक्तव्ये तत्रोच्छृङ्खलापत्तेर्नियामकमार्गे+]पूर्वोक्तयत्यादीन्संप्राथ्यं यथेच्छं तेषु भुक्तवत्सु हस्तोदकादि तेभ्यो दत्त्वा मुखशुद्धयर्थं तुलसीदलमधिकारिभ्यस्ताम्बूलं दक्षिणां च दत्त्वा विसर्जितेषु तेषु सत्सु स्वयं भुञ्जीयात् । तत्प्रकारस्तु प्रागुक्त एव सामान्यतस्तथाऽप्युच्यते । तत्र निषिद्धानि माधवीये ब्रह्माण्डपुराणे दर्शितानि—

यस्तु पाणितले भुङ्क्ते यस्तु फूत्कारसंयुतम् ।

प्रसृताङ्गुलिभिर्यच्च तस्य गोमांसवच्च तत् ॥

नाजीर्णं भोजनं कुर्यात्कुर्यान्नोऽति बुभुक्षितः ।

हस्त्यश्वरथयानोष्ट्रमास्थितो नैव भक्षयेत् ॥

श्मशानाभ्यन्तरस्थो वा देवालयगतोऽथ वा ।
 शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चाऽऽसने ॥
 आर्द्रवासा नाऽऽर्द्रशिरा न चायज्ञोपवीतवान् ।
 न प्रसारितपादस्तु पादारोपितपाणिमान् ॥
 न बाहुसक्थिसंस्थश्च न च पर्यङ्कमास्थितः ।
 न वेष्टितशिराश्चापि नोत्सङ्गकृतभाजनः ॥
 नैकवस्त्रो दृष्टमध्यो नोपानत्कृतपादकः ।
 न चर्मोपरिसंस्थश्च चर्मावेष्टितपार्श्ववान् ॥
 ग्रासशेषं न चाश्रीयात्पीतशेषं पिबेन्न च ।
 शालमूलफलेक्षूणां दन्तच्छेदैर्न भक्षयेत् ॥
 बहूनां भुञ्जतां मध्ये न चाश्रीयात्त्वरान्वितः ।
 वृथा न विकिरेदन्नं चोच्छिष्टः कुत्रचिद्व्रजेत् ॥ इति ।

बुभुक्षितोऽप्यति

द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तृतीयमुदकेन च ।
 मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत् ॥

इतिवचनोक्तार्धोदरपूरणादधिकं भोजनं नो कुर्यादिति संबन्धः । उद्ध-
 प्राप्तिः शूद्रस्य । बाहुसक्थिसंस्थो बाहुना वामदोष्णा सक्थिनि संस्थाऽ-
 वस्थितिर्यस्य स तथेत्यर्थः । सक्थि क्लीबे पुमानूरुरित्यमरः । वामबाहुना
 वामसक्थिसमवलम्बेन वामकपोलतलं वामपाणितलेनैवाऽऽश्रयितुं वामो-
 र्ध्वञ्जुत्वदशायां संभवत्येवेति तथात्वेन भोजनं न कार्यमिति तात्पर्यम् । चर्म
 वैयाघ्रादि । त्रैवर्णिकानामन्यप्राप्त्यभावात् । शूद्रविषयं चेदमुद्धवत् ।
 तत्रैव बृहस्पतिः—

न स्पृशेद्वामहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन ॥

न पादौ न शिरो बस्ति न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥ इति ।

उशना—नोऽङ्त्वा मिष्टमश्रीयाद्बहूनां चैव पश्यताम् ।

नाश्रीयुर्बहवश्चैव तथै(था) चैकस्य पश्यतः ॥ इति ।

आदित्यपुराणे—नोच्छिष्टं ग्राहयेदाज्यं यज्ञोच्छिष्टं च संत्यजेत् ।

शूद्रमुक्तावशिष्टं तु नाद्याद्भाण्डस्थितं त्वपि ॥ इति ।

उच्छिष्टं स्वपात्रे भोजनोत्तरमुर्वरितमाज्यं घृतं न ग्राहयेत् । भार्या.

भृतकदासैर्न स्वीकारयेदित्यर्थः । यज्ञोच्छिष्टं होमाद्युर्वरितमाज्यमेवात्राप्यनुषज्जते । तेषामाज्यादीतरोच्छिष्टाधिकारिता तूक्ता तत्रैव वृद्धमनुः—

पीत्वाऽऽपोशनमश्रीयात्पात्रदत्तमगर्हितम् ।

भार्याभृतकदासेभ्य उच्छिष्टं शेषयेत्ततः ॥ इति ।

उच्छिष्टशेषणं तु घृतादिव्यतिरिक्तविषयम् । तदाह पुलस्त्यः—

भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात्प्राज्ञः कथंचन ।

अन्यत्र दधिसक्त्वाज्यपललक्षीरमध्वपः ॥ इति ।

अत्र पललं क्षत्रियादिविषयम् । अपां भोजनपात्रे प्राप्तिस्तु प्रागुक्तरित्या बोध्या । पृथक्पात्रस्थपीतानवशेषस्य पृथगेवाभिहितत्वात् । शूद्रभुक्तावशिष्टं त्वत्रातिथिप्रकरणोक्तशूद्रातिथेः किञ्चित्प्राणाहरणादिकं गृहकार्यं कारयित्वैव तस्मा अन्नं देयमित्यतो त्रैवर्णिकानामाचाण्डालान्तानामप्यन्नप्रदानेनाऽऽतिथ्यादिकं स्वभोजनोत्तरमेव कार्यमिति तात्पर्यं नो चेत्तेभ्यो दत्तावशिष्टं तदन्नं शूद्रभुक्तावशिष्टं स्यात्तस्य हि नाद्यादिति कण्ठत एव निषेधः । एवं भाण्डस्थितं भोजनपात्रेतरपात्रस्थितमपि नाद्यादिति योजना । तत्रैव कूर्मपुराणेऽपि—

नार्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नाऽऽर्द्रवस्त्रधृत् ।

न भिन्नभाजने चैव न भूभ्यां न च पाणिषु ॥

नोच्छिष्टो घृतमादद्यान्न मूर्धानं स्पृशन्नपि ।

न ब्रह्म कीर्तयित्वाऽपि न निःशेषं न भार्यया ॥

नागारे न च वाऽऽकाशे न च देवालयादिषु । इति ।

भोजनं कुर्यादिति प्रकरणाद्बोध्यम् । मध्याह्नपदमत्र दिनार्धपूर्वोत्तरैकैकघटिकामिलितकालमात्रपरम् । तस्य कालस्य कुतुपत्वेन पितृयज्ञोचितत्वात्पञ्चधादिनविभागानुसारेण मध्याह्नस्य प्रकृतेऽष्टधैकविभागभिन्नोचितकालग्रहणेऽस्मिन्नाचारप्रकरणेऽनुपयोगस्याधस्तादेवाभिहितत्वात् । पाणिष्विति बहुवचनं तत्तद्भोक्तृपाण्यभिप्रायकम् । उच्छिष्टः सन्स्वहस्तेन घृतं नाऽऽदद्यादित्यर्थः । न चैवमन्नादेः स्वहस्तेनाऽऽदानातिप्रसङ्गः । घृतमपि स्वहस्तेन नाऽऽदद्यादिति विवक्षितत्वात् । एवं चान्नाद्यनादानस्य कैमुत्यसिद्धिः । तेनाऽऽम्रफलादिकं तूच्छिष्टोऽपि स्वहस्तेनाऽऽदद्यादेवेति फलितम् । तथैव शिष्टाचारादिति रहस्यम् । यथाश्रुते

तु भोजने प्रथमपरिविष्टादन्यस्य घृतस्योच्छिष्टत्वदशायां पुनर्ग्रहणं यत्प्रायः सर्वशिष्टैः क्रियते तद्वाधयेतेति । ब्रह्म वेदस्तत्कीर्तयित्वा पठन्नित्यर्थः । अगारमत्र पाकागारमेव । आकाशमप्यूर्ध्वभूमिके काष्ठमात्रविरचिते मृत्तिकादिभिरघटितभूमिके स्थल इत्यर्थः । आदिपदेनाग्निहोत्रागारादि ग्राह्यम् । याज्ञवल्क्योऽपि—

न भार्यादर्शनेऽश्रीयान्नैकवासा न संस्थितः । इति ।

अत्र मिताक्षरा—न भार्यादर्शने तस्यां पुरोऽवस्थितायामश्रीयात् । अवीर्यवदपत्योत्पत्तिर्भयात् । तथा च श्रुतिः—

जायाया अन्ते नाश्रीयात् । अवीर्यवदपत्यं भवति । इति ।

अतस्तया सह भोजनं दूरादेव निरस्तम् । नैकवासा नापि संस्थित उत्थितोऽश्रीयादिति संबध्यत इति । एवं चाष्टविधमैथुनान्तर्गतप्रेक्षणशब्दितसाभिलाषावेक्षणवत्प्रकृतेऽपि वीर्यवदपत्यसिद्ध्यर्थं धैर्यमञ्जकं तदेव निषिद्धम् । अन्यथा पाकपरिवेषणादावन्यत्रोक्तं तदेकाधिकारित्वं बाधितं स्यादिति तत्त्वम् । क्वचित्सहंभुक्तिप्रसवोऽपि माधवीय आदित्यपुराणे—

ब्राह्मण्या भार्यया सार्धं क्वचिद्भुञ्जीत चाध्वनि ।

अधोवर्णस्त्रिया सार्धं भुक्त्वा पतति तत्क्षणात् ॥ इति ।

तत्रैव वृद्धमनुरपि—

न पिबेन्न च भुञ्जीत द्विजः सव्येन पाणिना ।

नैकहस्तेन च जलं शूद्रेणाऽऽवर्जितं पिबेत् ॥

पिबतो यत्पतेत्तोयं भाजने मुखनिःसृतम् ।

अभोज्यं तद्भवेदन्नं भोक्ता भुञ्जीत किल्बिषम् ॥

अत्रिः—तोयं पाणिनखाग्रेषु ब्राह्मणो न पिबेत्क्वचित् ।

सुरापानेन तत्तुल्यमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥

पाणीति । स्पृष्टेषु सत्स्वित्यर्थः । तत्रैव शातातपः—

उद्धृत्य वामहस्तेन यत्तोयं पिबति द्विजः ।

सुरापानेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः ॥ इति ।

आश्वमेधिके—

पानीयानि पिबेद्येन तत्पात्रं द्विजसत्तम ।

अनुच्छिष्टं भवेत्तावद्यावद्भूमौ न निक्षिपेत् ॥ इति ।

आचारकिरणे स्मृतिसंग्रहेऽत्र व्यवस्था—

जलपात्रं तु निक्षिप्य मणिवन्धे च दक्षिणे ।
विप्रो भोजनकाले तु पिबेद्वामेन पाणिना ॥
धारया नोदकं पेयं पीत्वा दोषमवाप्नुयात् ।
जलपात्रेण तत्पेयमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ इति ।

एवं च भोजनकाले वामहस्तेन पानीयपानपात्रं प्रगृह्य दक्षिणकरम-
णिवन्धे तन्निधाय पात्रमोठाभ्यामस्पृशन्नेव जलधारामप्यनवलोकयन्नेव
शनैः शनैर्निःशेषं जलं पिबेदित्यर्थः । उक्तपात्रनिहितमन्नं नमस्कुर्यात् ।
तदुक्तं ब्रह्मपुराणे—

अन्नं दृष्ट्वा प्रणम्याऽऽदौ प्राञ्जलिः कथयेत्ततः ।
अस्माकं नित्यमस्त्वेतदिति भक्त्या च वन्दयेत् ॥ इति ।

वन्दनानन्तरकृत्यमाह गोभिलः—अथातः प्राणाहुतिकल्पोक्तव्याह-
तिमिर्गायत्र्याऽभिमन्त्र्य, ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामीति सायं सत्यं
त्वर्तेन परिषिञ्चामीति प्रातरिति ।

बोधायनोऽपि—सर्वावश्यकावसाने तु प्रक्षालितपाणिपादोऽप आचम्य
शुचौ संवृत्ते देशे प्राङ्मुख उपविश्योद्धृतमाह्नियमाणं भूर्भुवः स्वरोमि-
त्युपस्थाय वाचं यच्छेद्भ्यस्तं महाव्याहृतिभिः प्रदक्षिणमन्नमुदकं परि-
षिच्य सव्येन पाणिनाऽविमुञ्चन्नमृतोपस्तरणमसीत्यपः पीत्वा पश्चान्नेन
प्राणाहुतिभिर्जुहोति प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवो मा विशाप्रदा-
हाय प्राणाय स्वाहा । अपाने व्यान उदाने समाने निविष्ट इत्यादिर्य-
थालिङ्गमनुषङ्गः । एवं पश्चान्नेन तूष्णीं भूयो व्रतयेत्प्रजापतिं मनसा
ध्यायेदिति । प्राणाहुतिष्वङ्गुलिनियममाह शौनकः—

तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठलग्रा प्राणाहुतिर्भवेत् ।
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरपाने जुहुयात्ततः ॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्व्याने च जुहुयाद्ध्रुविः ।
तर्जनीं तु बहिः कृत्वा उदाने जुहुयात्ततः ॥
समाने सर्वहस्तेन समुदायाहुतिर्भवेत् ।
स्वाहान्ताः प्रणवाद्याश्च नाम्ना मन्त्राश्च वायवः ॥
जिह्वयैव ग्रसेदन्नं दशनेन न संस्पृशेत् । इति ।

माधवीये तु जिह्वाग्रसने विशेष आश्वमेधिके दर्शितः—

यथा रसं न जानाति जिह्वा प्राणाहुतौ नृप ।

तथा समाहितः कुर्यात्प्राणाहुतिमतन्द्रितः ॥ इति ।

अथवा सर्वा आहुतयो मुक्तकनिष्ठिकेन करेण होतव्या इति संस्काररत्नमालायामत्र प्रकारान्तरमप्युक्तम् । अत्र बह्वृचपरिशिष्टे स्वेतत्प्रकरणे सर्वाभिरेव वेति विकल्पो दर्शितः । एवं ततः पाद-
चैलादिरजोविष्ट(पुद्?)दोषपरिहारार्थं तृणकाष्ठव्यतिरिक्तहेमरौप्यता-
म्रकांस्यान्यतमनिर्मिताभिन्नयन्त्रिकायां तैजसं भोजनपात्रं निधाय काष्ठे
मौनं विहाय लौकिकवाक्यान्यनुच्चारयन्निति प्रयोगपारिजाते प्राणाहु-
त्युत्तरं मौनविसर्जनं यन्त्रिकाविशेषे भोजनपात्रविशेषस्थापनमप्यु-
क्तम् । एतेन समुदाहृतबोधायनसूत्रे वाचं नियच्छेदिति वाङ्निरो-
धमुक्त्वा पाकपात्रादिभ्यः समुद्धरणपूर्वकं भोजनपात्रं आह्वियमाणं
परिवेपितं भूर्भुवः स्वरोमित्युपस्थानशब्दितप्रार्थनविषयीकृतमेतादृशमन्नं
महाव्याहृतिभिर्भूः स्वाहेत्यादिचतसृभिः प्रदक्षिणं न्यस्तं कृतबलि
प्रति प्रदक्षिणमेवोदकं परिषिच्य सव्येन पाणिना वामहस्तेनावि-
मुञ्चन्नर्थाद्भोजनपात्रमत्यजन्नमृतोपस्तरणमसीत्यादिना पञ्चप्राणाहुत्य-
नुष्ठानं तत्तन्मन्त्रप्रतीकग्रहणतः सुविधाय तूष्णीं भूयो व्रतयेदिति सकृ-
देवाऽऽहुत्यन्तरमपि विधाय प्रजापतिं मनसा ध्यायेदिति तत्र प्रजा
पतेर्ध्यानमुक्तं तत्र यद्द्वामहस्तेन पात्रावलम्बनं गाढमौनं चोक्तं तत्प्राणा-
हुत्यनुष्ठानपर्यन्तमेवेति निश्चीयते । प्राणाग्निहोत्रस्यैव वैधभोजनत्वाद्
ग्निभोजनस्य तु रागतः प्राप्तत्वाच्च । तथा च माधवीये वाग्यमं प्रक्रम्य
पुराणे—

स्नास्यतो वरुणः शक्तिं जुह्वतोऽग्निः श्रियं हरेत् ।

मुञ्जतो मृत्युरायुष्यं तस्मान्मौनं त्रिषु स्मृतम् ॥ इति ।

यत्त्रिणोक्तं—

मौनव्रतं महाकष्टं हुंकारेणापि नश्यति ।

तथा सति महादोषस्तस्मात्तन्नियतं चरेत् ॥ इति ।

तदेतत्काष्ठमौनाभिप्रायम् । एतच्च पञ्चग्रासादर्वाग्निषयम् । तथा च
बृद्धमनुः—

अनिन्दन्भक्षयेन्नित्यं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।

पञ्च ग्रासान्महामौनं प्राणाद्याप्यायनं महत् ॥ इति ।

अस्यार्थः—अनिन्दल्लोकनिन्दामकुर्वन् । तथा वाग्यतो वाचा नियतः शिवविष्णुनामोच्चारणेतरयावत्प्रयोजनवाग्व्यापार इत्यर्थः । एवमन्नमकुत्सयन् । कुत्सा निन्दा च गर्हण इत्यमरात् । अन्नं न निन्द्यात्तद्व्रतमिति-श्रुतिनिषिद्धामन्ननिन्दामकुर्वन्सन्निति यावत् । नित्यमन्नं भक्षयेत्सर्वदा भोजनं कुर्यादिति संबन्धः । भोजनकालावच्छेदेनैतच्चितयं परिपालयेदित्याशयः । पञ्च ग्रासांस्तु महामौनं काष्ठमौनं यथा स्यात्तथा भक्षयेत्प्राणाहुत्यन्तमेव गाढमौनं कुर्यादित्यर्थः । तत्र हेतुः—यतस्तन्महत्प्राणाद्याप्यायनमिति । एतेन

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीयात्प्राङ्मुखश्चाऽऽसने शुचौ ।

पादाभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा पादेनैकेन वा पुनः ॥

इति माधवीयोदाहृतमाश्वमेधिकवचनमपि प्राणाहुत्यन्तमेव भूमौ पादस्पर्शपरमिति व्याख्यातमिति दिक् । एवं च सत्यं त्वर्तेनेत्यादिना प्रदक्षिणं परिवेषितपात्रपरिषेचनं विधाय भूः स्वाहेत्यादिना प्रदक्षिणमेवाऽऽहुतिचतुष्टयं दक्षिणतः प्रदाय पुनः प्रदक्षिणं परिषेचनं यत्सत्याषाढीयाः शिष्टाः कुर्वन्ति तन्निर्मूलमिति वदन्तः प्रत्युक्ताः । उदकं परिषिच्येत्यादिनिरुक्तबोधायनवाक्यस्यैव तत्र मूलत्वान्माधवाचार्यैर्बोधायनस्तु सर्वमेतत्संगृह्याऽऽहेत्यवतारितत्वात्तैत्तिरीयाणामबोधायनीयानां सर्वेषामपि स्वसूत्रानुक्तांशे तस्यैवाऽऽवश्यकत्वाच्च । तत्रापि बलिचतुष्टयपरिषेचनमेव शास्त्रीयं पात्रेण सहैव तत्परिषेचनं तु वृथैव । एवं ब्रह्मणे स्वाहेति षष्ठीमप्याहुतिं यज्जुह्वति तत्राऽऽबालं सर्वेषां निरुक्तप्रजापतिध्यानासंभवात्तन्नामपर्यायेण तदनुष्ठानमित्यभिसंधायैव शिष्टाचारादुचितमेव तत् । यस्तु प्रजापतिं ध्यातुं शक्तस्तेन तूष्णीमेवोक्तरीत्या तत्कार्यमिति तात्पर्यम् । तदुत्तरं ब्रह्मणि म आत्माऽसृतत्वायेत्यक्षरेणाऽऽत्मानं योजयेदिति माधवाचार्यवचनान्निरुक्तमन्त्रेणाद्वैतब्रह्मात्मैक्यभावनं तदनुसंधानं चानुक्रमेण भावनायां शक्तैरज्ञैस्तज्ज्ञैश्च कर्तव्यमेव । तदितैरेस्तु मन्त्रपठनमात्रम् । न चान्नपत इतिमन्त्रेण निरुक्तबल्युत्तरमन्नाभिमन्त्रणं शिष्टाः कुर्वन्ति तत्कथं बोधायनेन नोक्तमिति वाच्यम् । मन्त्रलिङ्गत एव तस्य प्रसिद्धत्वात् ।

अत एव गोपीनाथदीक्षितैरिमं मन्त्रं विलिख्येत्यनेनाह्नमभिमन्त्रयत इत्युक्तम् । आचारार्के स्मृत्यन्तरे—

चित्राहुतीरनुद्धृत्य यो भुङ्क्ते ग्रासपञ्चकम् ।

अद्यं स केवलं भुङ्क्ते ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥ इति ।

तदसंभवे तदाच्छादनं मेलनं वा । प्राणाहुत्यूर्ध्वं संग्रहे—

पञ्चप्राणाहुतेः पश्चाच्छिखाग्रन्थि विसर्जयेत् ॥

इति शिखाग्रन्थिनिर्मोचनमुक्तम् । तत उदकस्पर्शः । तदुक्तं धर्मप्रश्ने—

[*केशानङ्गं वासश्चाऽऽलभ्याप उपस्पृशेत् । इति ।

व्याख्या तूक्ता प्रागाचमनप्रकरणे । भोजने यज्ञोपवीतित्वमुक्तमाप-
स्तम्बधर्मप्रश्ने—] सोत्तराच्छादनश्चैव यज्ञोपवीती भोजने ॥ इति ।

व्याख्या तूक्ता पूर्वं वस्त्रधारणप्रकरण एव । प्राणाहुत्यनन्तरं भोजन-
पात्रं तैजसं चेत्संज्ञे यन्त्रिकायां संस्थाप्य भोजनं कार्यमिति माधवी-
येऽप्युक्तम् । तच्च पात्र भूमौ स्थापनीयम् । तदुक्तं कूर्मपुराणे—

पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्याद्भूमौ पात्रं निधाय तु ।

उपवासेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः ॥ इति ।

तच्च स्थापनं प्राणाहुतिपर्यन्तं पश्चात्तु यन्त्रिकायामारोप्य भोक्त-
व्यम् । तदाह व्यासः—

न्यस्तपात्रस्तु भुञ्जीत पञ्च ग्रासान्महामुने ।

शेषमुद्धृत्य भोक्तव्यं श्रूयतामत्र कारणम् ॥

विप्रुषां दोषसंस्पर्शः पादचेलरजस्तथा ।

मुखेन भुक्ते विप्रोऽपि पित्रर्थं तु न लुप्यति ॥

इति पैतृकभोजने भूमिपात्रप्रतिष्ठापनं न लोपनीयमित्यर्थ इति ।
भोजनक्रमो माधवीये विष्णुपुराणे—

अश्रीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् ।

लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तादिकं ततः ॥

प्राग्द्रवं पुरुषोऽश्रीयान्मध्ये तु कठिनाशनः ।

अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्यं न मुञ्चति ॥ इति ।

धर्मप्रश्ने—अनर्हद्भिर्वा समानपङ्क्तौ । इति ।

* नायं ग्रन्थः क. पुस्तके ।

सर्वत्र वाशब्दः समुच्चये । अभिजनविद्यावृत्तरहिता अनर्हास्तैः सह
समानपङ्क्तौ न भुञ्जीतेत्युज्ज्वला । माधवीये बृहस्पतिः—

अप्येकपङ्क्त्या नाश्नीयाद्ब्राह्मणः स्वजनैरपि ।
को हि जानाति किं कस्य प्रच्छन्नं पातकं भवेत् ॥
एकपङ्क्त्युपविष्टानां दुष्कृतं यद्दुरात्मनाम् ।
सर्वेषां तत्समं तावद्यावत्पङ्क्तिर्न भिद्यते ॥ इति ।

पङ्क्तिभेदप्रकारं स एवाऽऽह—

अग्निना भस्मना चैव स्तम्भेन सलिलेन वा ।
द्वारेण चैव मार्गेण पङ्क्तिभेदो बुधैः स्मृतः ॥ इति ।

माधवीये कात्यायनः—

चाण्डालपतितोदक्या वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तमः ।
भुञ्जीत ग्रासमेकं तु दिनमेकमभोजनम् ॥

आश्वमेधिके—केशकीटावपन्नं च मुखमारुतवीजितम् ।

अन्नं तु राक्षसं विद्यात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ इति ।

केशादिविषये धर्मप्रश्ने-यस्मिंश्चानेकशः स्यादन्यद्वाऽमेध्यं तदप्यभो-
जनम् ।

एतच्च पाकदशायामेव पतितेन केशेन सह यत्पक्कमन्नं तद्विषयम् ।
भोजनकाले तु केशपाते घृतप्रक्षेपादिना संस्कृतं भोज्यम् । अन्यद्वा
नखादि यस्मिन्नन्ने स्यात्तदप्यभोज्यम् । इदमपि पूर्ववत् । अत्र
बोधायनः—

कीटनखकेशाखुपुरीषाणि दृष्टानि तावन्मात्रमन्नमुद्धृत्य शेषं
भोज्यम् ॥ इति ।

वासिष्ठस्तु कामं तु केशकीटानुद्धृत्याद्भिः प्रोक्ष्य भस्मनाऽवकीर्य वा
प्रशस्तमन्नं भुञ्जीतेति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । माधवीये शातातपः—

अश्यासनोपविष्टस्तु यो भुङ्क्ते प्रथमं द्विजः ।

बहूनां पश्यतां सोऽज्ञः पङ्क्त्या हरति किल्बिषम् ॥ इति ।

गोभिलः—एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणां सह भोजने ।

यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं नाश्नीयुरितरेऽप्यनु ॥

मोहात्तु भुङ्क्ते यस्तत्र तप्तं सांतपनं चरेत् ।

भोजने विघ्नकर्ताऽसौ ब्रह्महाऽपि तथोच्यते ॥ इति ।

आश्वमेधिके—उदक्यामपि चाण्डालं श्वानं कुक्कुटमेव च ॥
भुञ्जानो यदि पश्येत्तु तदन्नं तु परित्यजेत् ॥ इति ।

उदक्या रजस्वला । तत्रैव गौतमोऽपि—

काहलभ्रमणग्रावणां चक्रस्योलूखलस्य च ।

एतेषां निनदो यावत्तावत्कालमभोजनम् ॥ इति ।

छत्राकनिषेधो धर्मप्रश्ने—क्याकमभोज्यमिति ब्राह्मणम् ॥ इति ।

क्याकु च्छत्राकम् । तदभोज्यमभक्ष्यं ब्राह्मणग्रहणमुक्तार्थमित्युज्ज्व-
लाकृत् । छत्राकं शिलीन्धाभिधं श्वेतवर्णं छत्राकारं प्रावृडारम्भे ह्युत्क-
रादावाविर्भवतीति सुप्रसिद्धमेव । एवं श्वेतमेव वृन्ताकमभक्ष्यम् । बिल्धं
वृन्ताकमुच्चैः सितमपि कपिकच्छ्रुं कलञ्जं कलिङ्गमिति श्राद्धकारिकास्व-
भक्ष्यं प्रकृत्य दर्शनात् । उच्चैः सितं वृन्ताकमित्यन्तश्चेतमेव वर्ज्यं न
कृष्णमित्यर्थः । निर्णयसिन्धौ तु षोडशतिथिषु षोडश वर्जनीयत्वेन
कथितानि—

कूष्माण्डं बृहतीफलानि लवणं वर्ज्यं तिलोऽम्लं तथा

तैलं चाऽऽमलकं दिवं प्रवसता शीर्षं कपालान्त्रके ।

निष्पावाश्च मसूरिकाः फलमथो वृन्ताकसंज्ञं मधु

द्यूतं स्त्रीगमनं क्रमात्प्रतिपदादिष्वेवमाषोडश ॥ इति ।

अत्र कूष्माण्डादारभ्याऽऽमलकपर्यन्तं काम्यत्वेन कथितम् । अग्रे
दिवं प्रवसता स्वर्गेच्छुनेति फलकथनात् । शीर्षादारभ्य नित्यत्वेन वर्ज्यं
कथितम् । अत्र शीर्षं नारिकेलम् । कपालमलाबु । अन्त्रकं पडवळ
इति प्रसिद्धम् । निष्पावाः पावटे इति प्रसिद्धाः । मधु ब्राह्मणानां माक्षि-
कम् । क्षत्रियादीनां तु मद्यमपि । ब्राह्मणस्य तु सर्वदैव तन्निषेधस्य
श्रुतिस्मृतिसहस्रसिद्धत्वात् । तथा च धर्मसूत्रे—

सर्वमद्यमपेयम् ।

सर्वं मद्यं मदकरमपेयम् । अत्र स्मृत्यन्तरवशाद्यवस्था । अत्र मनुः—

गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।

यथैव ता न पातव्यास्तथा सर्वा द्विजोत्तमैः ॥ इति ।

सुराव्यतिरिक्तं तु मद्यं ब्राह्मणस्य नित्यमपेयम् । तथा च गौतमः—

मद्यं नित्यं ब्राह्मणस्य ॥ इति ।

क्षत्रियवैश्ययोस्तु ब्रह्मचारिणोरित्युज्ज्वला । सुरेति । तुशब्देन क्षत्रियादेर्यथा कदाचित्कामतः सुरेतरमद्यं पेयं न तथा ब्राह्मणस्य किं तु तस्य सर्वथा नित्यमपेयमेव तत् । सुरा तु सर्वेषां मनुनैव निषिद्धेति न तत्प्रसक्तिरिति दिक् । अन्यत्स्पष्टमेव । प्रतिपदमारभ्य पूर्णिमान्तं पञ्चदश, अमावास्यां गृहीत्वा षोडशदिवसेषु क्रमेण कूष्माण्डादीन्षोडश पदार्थान्नैव भक्षयेदित्यर्थः । औषधार्थं सर्वेषामप्यपवादः संस्काररत्नमालायां पुनरुपनयनप्रसङ्गे सुमन्तुना दर्शितः—एतान्येवाऽऽतुरस्य भिषक्क्रियायामप्रतिषिद्धानि । इति ।

आतुरस्य व्याधितस्य, विकृतो व्याधितोऽपदुः । आतुरोऽभ्यमितोऽभ्यान्त इत्यमरात् । अथ भोजने कर्तव्यताविशेषो धर्मप्रश्ने—

यावद्भासं संनयन्नस्कन्दयन्नाभिजिहीताभिजिहीत वा कृत्स्नं ग्रासं ग्रसीत सहाङ्गुष्ठम् । इति ।

यावद्भासं यावदेवाशितुं शक्यं तावदेव संनयन्पिण्डीकुर्वन्नस्कन्दयन्मूमावन्नलेपानपातयन्कृत्स्नं ग्रासं ग्रसीतेत्यन्वयः । सहाङ्गुष्ठमास्ये ग्रासप्रवेशे यथाऽङ्गुष्ठोऽप्यनुप्रविशति तथा सर्वानेव ग्रासानुक्तेन प्रकारेण ग्रसीतेति । मध्ये क्रियान्तरविधिः । नाभिजिहीत । भोजनपात्रं सव्येन पाणिना न विमुञ्चेत् । अभिजिहीत वा विमुञ्चेद्वा । किमर्थमिदम् । यावता प्रकारान्तरं संभवति । सत्यम् । प्रक्रमात्तु नियम्यत इतिन्यायेनैवंप्रकारः प्रथमे भोजने स एवान्तादनुष्ठातव्य इत्येवमर्थमिदमित्युज्ज्वलाव्याख्या । पुनस्तत्रैव—

न च मुखशब्दं कुर्यात्पाणिं च नावधुनुयात् । इति ।

भोजनदशा यावदिदमेवमुत्तरम् । पाणिरत्र दक्षिण इत्युज्ज्वलाव्याख्या । अन्यदपि तत्रैव—

दङ्गिरूपस्य नापच्छिन्द्यात् । इति ।

अपूपग्रहणं मूलफलादेरप्युपलक्षणम् । द्वितीयार्थे षष्ठी । दन्तैरपूपं नापच्छिन्द्यात्किं तु हस्तादिकैरपच्छिद्य भक्षयेदित्युज्ज्वला । ननु प्राग्वहितं माधवोदाहृतादित्यपुराणोक्तं क्वचिन्मार्गावच्छेदेन ब्राह्मण्या भार्यया सहापि भोजनं कार्यमेवेति तद्युक्तं सत्याषाढीयेतरपरं वा । सूत्रे तन्निषेधात् । तदुक्तं धर्मप्रश्ने—

उपेतस्त्रीणामनुपेतस्य चोच्छिष्टं वर्जयेत् । इति ।

अत्रोज्ज्वलाकृताऽपि तस्मात्केषुचिज्जनपदेषु भार्यया सह भोजनमाचरन्ति तस्य दुराचारत्वमनेन प्रतिपाद्यत इति । अत्रोच्यते—सौत्र-

बहुवचनस्वारस्येन सवर्णासवर्णभार्यामात्रं यदि प्रतीयते तर्हि तदसव-
र्णभार्यापरम् । यदि बहुत्वसार्थक्यार्थं कस्यचिद्ब्राह्मणस्य बहुसवर्णमा-
र्यात्वस्यापि संभवात्तदभिप्रायकत्वमुन्नीयते तथाऽपि तत्संदातनपरम् ।
एतेनोज्ज्वलाकृद्बचनमप्युज्ज्वलितमेव । निरुक्तवचनस्य देशकालवि-
शेषपरत्वेन विभिन्नविषयतया संभवत्युभयाविरोधे सूत्रान्तरशाखा-
न्तरपरत्वकल्पनाया अन्याय्यत्वादिति तत्त्वम् । मदनपारिजाते याज्ञ-
वल्क्यः—

अनर्चितं वृथाभासं केशकीटसमन्वितम् ।
शुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम् ॥
उदक्यास्पृष्टसंघुष्टपर्यायान्नानि वर्जयेत् ।
गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पदा स्पृष्टं च कामतः ॥

अनर्चितमवज्ञापूर्वकं दत्तम् । शुक्तं कालेनाऽऽम्लीभूतम् । पर्युषितं
रात्र्यन्तरितम् । एतच्च दध्यादिव्यतिरिक्तम् ।

न पापीयसाऽन्नमश्रीयात् । न द्विः पक्वं न शुक्तं न पर्युषितमन्यत्र
रागखाण्डवतक्रदधिगोधूमयवपिष्टविकारेभ्यः । इति शङ्खस्मरणात् ।

यदुद्घुष्य दीयते तत्संघुष्टान्नम् । अत्र पतिप्रसवः—

अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम् ।
अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥ इति ।

रागखाण्डवस्तूक्तो महाभारतटीकार्या द्रोणपर्वणि षोडशराजकी-
पोपाख्याने चतुर्धरैः—

नूतनाम्रफलक्राथः सक्षीरघृतनागरः ।
खाण्डवः स्यादसौ रागसंयुक्तो रागखाण्डवः ॥ इति ।

एवममक्षयान्तरमप्याह याज्ञवल्क्यः—देवतार्थं हविः शिशुं लोहिता-
तान्ब्रश्चनांस्तथा । इति । अत्र मिताक्षरा—देवतार्थं बल्युपहारनिमित्तं
साधितम् । हविर्हवनार्थं सिद्धं प्राग्घोमात् । शिशुः शोभाञ्जनः । लोहि-
तान्वृक्षनिर्यासान्ब्रश्चनप्रभवान्वृक्षच्छेद्जातान् । अलोहितानामपि ।
यथाऽऽह मनुः—

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्ब्रश्चनप्रभवांस्तथा ॥ इति ।

लोहितग्रहणाद्विष्णुकर्पूरादिनो न निषेध इति । तथा स एव—

पलाण्डुं विड्वराहं च छत्राकं ग्रामकुक्कुटम् ।

लशुनं गृञ्जनं चैव जग्ध्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ इति ।

अत्रापि मिताक्षरा—पलाण्डुः स्थूलकन्दनालो लशुनानुकारी ।
विड्वराहो ग्रामसूकरः । छत्राकं सर्पच्छत्राकम् । ग्रामकुक्कुटः प्रसिद्धः ।
लशुनो रसोनः । सूक्ष्मश्वेतकन्दनालः । गृञ्जनं लशुनानुकारी लोहितः
सूक्ष्मः कन्दः । एतान्पट्ट सकृत्कामतो जग्ध्वा भक्षयित्वा चान्द्रायणं
वक्ष्यमाणलक्षणं चरेत् । ग्रामकुक्कुटच्छत्राकयोः पूर्वप्रसिद्धयोरिहाभि-
धानं पलाण्ड्वादिसमप्रायश्चित्तार्थम् । मतिपूर्वाचिरंतनाभ्यासे—

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ।

पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेन्नरः ॥

इति मनूक्तम् । अमतिपूर्वाभ्यासे—

अमत्यैतानि षड् जग्ध्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ।

चान्द्रायणं वाऽपीति द्रष्टव्यम् । लशुनपलाण्डुगृञ्जनविड्वराहग्राम-
कुक्कुटकुम्भीकभक्षणे द्वादशरात्रं पयः पिबेदिति वेदितव्यमिति । एवं
विड्वजानि कुविकानि चेति याज्ञवल्क्यवचनव्याख्याने विड्वजानि
मनुष्यादिजग्धबीजपुरीषोत्पन्नानि पुरीषस्थान उत्पन्नानि तण्डुलीयक-
प्रभृतीनि । कवकानि च्छत्राकादीनि च वर्जयेदिति प्रत्येकं संबध्यत इति-
विज्ञानेश्वरोक्ततण्डुलीयकशब्दितं तान्दुलजा इति महाराष्ट्रभाषाप्रसिद्धं
शाकं बोध्यम् । एवं धर्मप्रश्ने सुरामद्ययोः पाननिषेधमभिधायोक्तम्—तथै-
लकं पयः । अविरेलका तस्याः क्षीरमपेयमित्युज्ज्वला । उष्ट्रीक्षीरमृगी-
क्षीरसंधिनीक्षीरयमसूक्षीराणीति । उष्ट्रमृगौ प्रसिद्धौ । या गर्भिणी दुग्धे
सां संधिनीति शास्त्रान्तरे प्रसिद्धा । एककालदोहेत्यन्ये । एकस्मिन्गर्भे
याऽनेकगर्भं सूते सा यमसूः । उष्ट्र्यादीनां क्षीराण्यपेयानि । इतिकरणा-
देवंप्रकाराणामेकशफानां क्षीराण्यपेयानि । तथा च मनुः—

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां महिषीं विना ।

स्त्रीक्षीरं चैव वज्यानि सर्वशूकानि चैव हि ॥

अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमेकशफं तथा ।

आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः ॥ इति[इति] । उज्ज्वला ।
विस्तरस्तु तत्रैव ज्ञेयः । अभोज्यान्नमाह याज्ञवल्क्यः—

अग्निहीनस्य नान्नमद्यादनापदि । इति ।

अत्र मिताक्षरा—अग्निहीनस्येति । भौतस्मार्ताधिकाररहितस्य शूद्रस्य प्रतिलोमजस्य चाधिकारवतोऽप्यग्निरहितस्यान्नमनापदि नो भुञ्जीत न प्रतिगृह्णीयात् । तस्मात्प्रशस्तानां स्वकर्मविशुद्धजातीनां ब्राह्मणानां प्रतिगृह्णीयाच्चेति गौतमस्मरणात् । पुनः स एवाऽऽह—

कदर्यबद्धचोराणां क्लीबरङ्गावतारिणाम् ।
वैणाभिशस्तवार्षुष्यगणिकागणदीक्षिणाम् ॥

मिताक्षरा—कदर्यः

आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत् ।
लोभाद्यः पितरौ भृत्यान्कदर्यं इति स स्मृतः ॥

इत्युक्तः । बद्धो निगडादिना वाचा संनिरुद्धश्च । चोरो ब्राह्मणसुवर्णव्यतिरिक्तापहारी । क्लीबो नपुंसकः । रङ्गावतारी च चारणमल्लादिः । वेणुच्छेदनजीवी वैणः । अभिशस्तः पतनीयैः कर्मभिर्युक्तः । वार्षुष्यो निषिद्धवृद्ध्युपजीवी । गणिका पण्यस्त्री । गणदीक्षी बहुयाजकः । एषामन्नं नाश्नीयादिति अनुवर्तते । पुनः स एवाऽऽह—

चिकित्सकातुरकुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम् ।
कूरोग्रपतितव्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिनाम् ॥

मिताक्षरा—चिकित्सको भिषग्वृद्ध्युपजीवी । आतुरो महारोगौघस्पृष्टः ।

वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमहोदरभगंदराः ।

अशांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥ इति ।

कुद्धः कुपितः । पुंश्चली व्यभिचारिणी । मत्तो विद्यागर्वितः । विद्विद् शत्रुः । कूरो वृढाभ्यन्तरकषायः । वाक्कायव्यापारेणोद्वेजक उग्रः । पतितो ब्रह्महत्यादिना । व्रात्यः पतितसावित्रीको दाम्भिको वञ्चकः । उच्छिष्टभोजी शुक्तोक्षिताशी । एतेषां चिकित्सकादीनामन्नं नाश्नीयादिति । पुनः स एवाऽऽह—

अवीरा(र)स्त्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम् ।

शास्त्रविक्रयिकर्मरतन्तुवायश्ववृत्तिनाम् ॥

मिताक्षरा—अवीरा स्त्री स्वतन्त्रा । व्यभिचारमन्तरेण पतिपुत्ररहिते-
त्यन्ये । स्वर्णकारः स्वर्णस्य विकारकृत् । स्त्रीजितः सर्वत्र स्त्रीवशवर्ती ।
ग्रामयाजी शान्त्यादिकर्ता । बहूनामुपनेता च । शास्त्रविक्रयोपजीवी ।
कर्मारो लोहकारस्तक्षादिश्च । तन्तुवायः सूचिशल्योपजीवी । श्वभि-

वृत्तं जीवनमस्यास्तीति श्ववृत्ती । एतेषामन्नं नाभीयादिति । पुनः स एवाऽऽह—

नृशंसराजराजैककृतघ्नवधजीविनाम् ।
 चेलधावसुराजीविसहोपपतिवेश्मनाम् ॥
 पिशुनानृतिनोश्चैव तथा चाक्रिकबन्दिनाम् ।
 एषामन्नं न मोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा ॥

मिताक्षरा—निर्दयो नृशंसः । राजा भूपतिः । तत्साहचर्यात्पुरोहितश्च । यथाऽऽह शङ्खः—मीतावगीतरुदितावध्युष्टक्षुतपरिभुक्तविस्मितोन्मत्तावधु-तराजपुरोहितकृतघ्नाः । वधजीवी प्राणिवधेन वर्तमानः । चैल(चे)लधा-वको(धावो) वल्लनिर्णेजकृत् । सुराजीवी मद्यविक्रयी । उपपतिर्जारः । सहोपपतिना वेश्म यस्य[स]सहोपपतिवेश्मा । पिशुनः परदोषख्यापकः । अनृती मिथ्याभिवादी । चाक्रिकस्तैलिकः शाकटिकश्च । अभिशस्तचा-क्रिकतैलिक इतिभेदेनाभिधानात् । बन्दिनः स्तावकाः । सोमविक्रयी सोम-लताविक्रेता । एषामन्नं न मोक्तव्यम् । सर्वे चैते कदर्यादयो द्विजा एव । कदर्यादिदोषदुष्टा अभोज्यान्नाः । इतरेषां प्राप्त्यभावात् । प्राप्ति-पूर्वकत्वाच्च प्रतिषेधस्य । अग्निहीनस्य नान्नमद्यादनापदीत्यत्र शूद्रस्या-भोज्यान्नत्वमुक्तम् । इति निषिद्धान्नाः पुरुषा इति । यश्च

शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणः ।
 भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चाऽऽत्मानं निवेदयेत् ॥

इति भगवता याज्ञवल्क्येन प्रतिप्रसवोऽपि शूद्रविषयेऽभ्यधाय्यसावाप-न्मात्रपरः । अनापदीत्येवोपक्रमात् । तथा च पारमर्ष सूत्रम्—सर्वा-न्नानुमतिः प्राणात्यये तद्दर्शनादिति । विस्तरस्तु श्रीमद्भगवत्पादीयभा-ष्यादावेव बोध्योऽत्र गौरवभयान्न प्रपञ्च्यत इति दिक् । एवं संस्काररत्न-मालायां पुनरुपनयनप्रयोजकान्यमक्षा(क्ष्या)णि प्रपञ्चितानि । तद्यथा प्रयोगपारिजाते—

लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा शुनम् ।
 उपनायं पुनः कुर्यात्तप्तकृच्छ्रं तथैव च ॥ इति ।

लशुनः प्रसिद्धः । गृञ्जनं लशुनतुल्यः कन्द इति विज्ञानेश्वरः । यदीयं चूर्णं गायकाः कण्ठशुद्ध्यै विटाश्च मद्यार्थमश्नन्ति स पञ्चविशेष इति माधवः ।

विषदिग्धेन शल्येन यो मृगः परिहन्यते ।
अमक्ष्यं तस्य तन्मांसं तद्धि गृञ्जनमिष्यते ॥

इत्यपरार्कः । यत्तु हेमाद्रिः—गाजराख्यं मूलं गृञ्जनमित्याह । यच्च
माधवः—मूलविशेषो गाजरापरपर्यायो गृञ्जनमित्याह । उभयमपि न ।
गृञ्जनं चुक्रिकां चुक्रं गाजरं पोतिकां तथा ।

इति ब्राह्मे पृथङ्निर्देशानुपपत्तेः । चुक्रिका चुका इति भाषया
प्रसिद्धा । चुक्रु(क)मत्यम्लं दधि । पोतिका पोई इति प्रसिद्धा । एतच्च
पुनरुपनयनं बुद्ध्या मक्षणे । अबुद्ध्या मक्षणे तु तप्तकृच्छ्रमात्रम् ।

छत्राकं लशुनं चैव पलाङ्गं गृञ्जनं तथा ।

चत्वार्यज्ञानतो जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रं चरोद्विजः ॥

इति बृहस्पत्युक्तेः । पलाण्ड्याद्येकनाशरोगे तु नैष दोषः । तथा च
पलाद्याद्यनुवृत्तौ सुमन्तुः—

एतान्येवाऽऽतुरस्य भिषक्क्रियायामप्रतिषिद्धानि । इति ।

पुनस्तत्रैवापरार्के—रेतोविण्मूत्रकरनिर्मथितदधिवहिर्वेदिपुरोडाशमक्ष-
णानामत्यभ्यासेऽतिकृच्छ्रः पुनरुपनयनं च । इति ।

वहिर्वेदि पुरोडाशमक्षणं लौकिकपुरोडाशमक्षणम् । एतच्च ज्ञानतः ।
अज्ञानतस्तूपवासः । तथा च कौर्मे—

शणपुण्यं शाल्वलीं च करनिर्मथितं दधि ।

वहिर्वेदि पुरोडाशं जग्ध्वा नाद्यादहर्निशम् ॥ इति ।

एवं—न शङ्केन पिबेत्तोयं न खादेत्कूर्मसूकरौ ॥ इति ।

वृन्ताकं च कलिङ्गं च बिल्वौदुम्बरभिःसटाः ।

उदरे यस्य जीर्यन्ते तस्य दूरतरो हरिः ॥ इति ।

अमक्ष्यं मक्ष्यमित्याहुस्तिलसर्षपसंयुतम् ।

विना मांसं च मद्यं च गृञ्जनं लशुनद्वयम् ॥

इत्यादिस्मृत्यन्तराण्यपि निषेधतद्यवस्थादिबोधकानि तप्तदग्रन्थेभ्यो
ज्ञेयानीत्यलं पल्लवितेन । अत्र कूर्मस्तदाकारः सुरणाख्यः कन्दः प्रसिद्ध
एव । सूकरस्तु तदाकारः कन्द एव गोराडु इति महाराष्ट्रभाषाप्रसिद्धः ।
भिःसटोऽपि श्लेष्मातकारव्यः, भोंकर इति तत्प्रसिद्धः फलविशेष एव ।

कलिङ्गं कलिंगड इति तथा । एवं कोद्रवादिदन्नानामप्यनापदि
भक्षणनिषेधादिकं शास्त्राशिष्टाचाराभ्यां विज्ञेयम् । बलिदानाकरणे
प्रायश्चित्तं संस्काररत्नमालायामाह जातूकर्ण्यः—

अकृत्वा यश्चित्रबलिं भुङ्क्ते विप्रस्त्वनापदि ।

प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ इति ।

आपोशनाकरणप्रायश्चित्तमाह संवर्तः—

आपोशनमकृत्वा तु भुङ्क्ते योऽनापदि द्विजः ।

भुञ्जानस्तु यदा ब्रूयाद्गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ इति ।

अष्टशतमष्टोत्तरशतम् । भोजने परस्परं स्पर्शं स्मृतिसारे—

यदि भोजनकाले तु ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ।

त्यक्त्वा तदन्नमुत्थाय प्राणायामत्रयं चरेत् ॥ इति ।

प्रयोगदर्पणे स्मृत्यन्तरे तु—

यदि भोजनकाले तु ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ।

तदन्नमत्यजन्भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ इत्युक्तम् ।

यज्ञोपवीतं विना निवीतादिनैव प्रमादाद्भोजने लघुहारीतः—

विना यज्ञोपवीतेन भुङ्क्ते तु ब्राह्मणो यदि ।

स्नानं कृत्वा जपं चैव उपवासेन शुध्यति ॥ इति ।

जपो गायत्र्याः । जपोऽत्राष्टोत्तरसहस्रमेव वक्ष्यमाणवाक्यात् । अज्ञा-
नतस्तु—

ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते ब्राह्मणो यद्यकामतः ।

गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुध्यति ॥ इति ।

अष्टसहस्रमष्टोत्तरसहस्रम् । स्मृत्यन्तरे—नीलीक्षेत्रोत्पन्नान्नादिभुक्तौ
चान्द्रं नीलीं धृत्वा यदन्नादि दीयते तत्र दातुर्भोक्तुश्च सांतपनम् । इति ।

यत्तु शङ्खः—नीलीवस्त्रं परीधाय भुक्त्वा स्नानार्हको भवेत् ॥ इति,

तदज्ञानविषयम् । स्मृत्यन्तरे—

कम्बले पट्टसूत्रे च नीलीदोषो न विद्यते ।

इति तदपवादोऽपि । संस्काररत्नमालायामेव स्मृत्यन्तरे—

भुक्त्वाऽनाचम्योत्थाने सद्यः स्नानमस्थिदूषितान्नभक्षणे घृतप्राशनं
दन्तपाते चेदं मुखरक्तादिदुष्टे त्रिरात्रं दीपोच्छिष्टमभ्यङ्गोच्छिष्टं च तैलं
भुक्त्वा नक्तमाचरेत् । इति ।

भोजनकाले रेतोमूत्रपुरीषोत्सर्गे ब्रह्मपुराणे—

रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गश्चेत्प्रमादतः ।

तदाऽऽदौ तु प्रकर्तव्या तेन शुद्धिर्मुदाऽम्बुभिः ॥

पश्चादाचम्य तु जले जप्तव्यमघमर्षणम् । इति ।

एतदनिर्गीर्णग्रासविषयम् । सकृन्निर्गीर्णग्रासे तु आपस्तम्बः—

मुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ।

उच्छिष्टमशुचित्वं च प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥

आदौ कृत्वा तु वै शौचं ततः पश्चादुपस्पृशेत् ।

अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥ इति ।

यत्तु शातातपः—कृत्वा मूत्रविडुत्सर्गं मोहाद्भुङ्क्तेऽथ वा पिबेत् ।

त्रिरात्रं तत्र कुर्वीत प्राणायामत्रयं ततः ॥ इति,

तद्भूयो ग्रासाशने । त्रिरात्रमित्यत्रोपोषणमिति शेषः । विडुत्सर्गः
पुरीषोत्सर्गः । भोजनकालेऽशुचितायां शातातपः—

अथ भोजनकाले चेदशुचिर्भवति द्विजः ।

भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति ॥

भक्षयित्वा तु तं ग्रासमहोरात्रेण शुध्यति ।

अशित्वा सर्वमन्नं तु त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥ इति ।

एतत्सर्वं प्राणाहुत्युत्तरं ज्ञेयमिति गोपीनाथदीक्षिताः । शब्ददुष्टान्ना-
शने संस्काररत्नमालायां ब्रह्मपुराणे—

भक्ष्यं त्वभक्ष्यवाक्येन यद्दद्याद्रोषधर्मतः ।

गुरोरपि न भोक्तव्यं वाग्दुष्टं तन्महापदि ॥ इति ।

तद्भक्षणे प्रायश्चित्तमाह गौतमो वाग्दुष्टादि प्रक्रम्य—छर्दनं घृतप्राशनं
च । इति ।

एतच्चाकामतः । कामतस्तु शङ्खः—

वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाजने भावदूषिते ।

भुक्त्वाऽन्नं तु द्विजः पश्चाच्चिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ इति ।

व्रतमत्रोपवासः । भावदुष्टं कलिङ्गादि । वाग्दुष्टं प्रागुक्तरोषादिना
दुःशब्देनोक्तम् । शिङ्गाडे इत्यादिदेशभाषादूषितमपि । भावदूषितभाजनं
काचादि चषकादि । संवर्तः—

केशकीटावपन्नं च नीलीलाक्षोपघातितम् ।

श्वाद्यस्थिचर्मसंस्पृष्टं भुक्त्वा घोषवसेदहः ॥ इति ।

इवमापद्यकामतः । अनापदि कामतस्तु शङ्कः—

दूषितं केशकीटैश्च मार्जारैर्मूषकैस्तथा ।

मक्षिकाचटकैश्चैव त्रिरात्रं तु मतं चरेत् ॥ इति ।

कामतोऽभ्यासे प्रचेता दुष्टकीटादीनुपक्रम्य—

एतैः काकादिभिश्चैव यदन्नं दूषितं भवेत् ।

तदन्नं कामतो जग्ध्वा कृत्स्नं सांतपनं चरेत् ॥ इति ।

अकामतोऽर्धमिति गोपीनाथदीक्षिताः । यत्त्वाह विष्णुः—

मुक्त्वाऽस्पृश्यं तथाऽशौचिकीटकेशैश्च दूषितम् ।

कुशोदुम्बरबिल्वाद्यैः पनसाम्बुजपत्रकैः ॥

शङ्खपुष्पी सुवर्चादिकाथं पीत्वा विशुध्यति ॥ इति,

तदापद्यशक्तविषयमित्यपि त एव ।

सिद्धान्ने केशकीटादिपाते तु प्रचेताः—

अन्नं भोजनकाले तु मक्षिकाकेशदूषितम् ।

अनन्तरं स्पृशेदापस्तदन्नं मस्मना स्पृशेत् ॥ इति ।

ब्राह्मेऽपि—चण्डालपतितामेधैः कुनसैः कुठिभिस्तथा ।

ब्रह्मघ्नसूतिकोदक्याकौलेयककुटुम्बिभिः ॥

व्युष्टं वा केशकीटाक्तं मृद्भस्मकनकाम्बुभिः ।

शुद्धमद्यादिति ।

कौलेयकः श्वा । कुटुम्बी कीटविशेषः । व्युष्टं पर्युषितम् । तत्रैव संवर्तः—

घृतस्य माजने मुक्त्वा अथवा मिन्नमाजने ।

अहोरात्रोषितो मुक्त्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥

मिन्नं माजनं कांस्यमेव । ताम्ररजतसुवर्णाश्मशङ्खस्फटिकानां मिन्न-
मपीति देवलस्मरणात् ।

मिन्नकांस्ये तु योऽश्रीयान्नद्यां स्नात्वा जपेद्विजः ।

गायत्र्यष्टसहस्रं तु एकं भक्त्वा (क्त) स्तदा शुचिः ॥

इति बोधायनोक्तेश्च । एतच्च ज्ञानतः । संवर्तोक्तं त्वज्ञानविषयमि-
त्यपि त एव । भुञ्जानस्य क्षुते संग्रहे—

क्षुतं भोजनमध्ये चेज्जायते यस्य कस्यचित् ।

आदित्यं जन्मभूमिं च स्मरेत्प्रोक्षितमस्तकः ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—परिवेषणे रजोदृष्टौ तत्स्पृष्टास्य त्यागः । एवं चण्डालसूतिकास्पृष्टेऽपि । इति ।

विस्तरस्तु माधवहेमाद्याद्याकरेषु द्रष्टव्य इत्यलं पल्लवितेन । एतच्च भोजनं सायंप्रातः कार्यम् । तदुक्तं धर्मप्रश्ने—

कालयोर्भोजनमवृत्तिश्चास्य । इति । कर्तव्यं सायं प्रातश्च नान्तरा । परिसंख्येयम् । भोजनस्य रागतः प्राप्तत्वात् । अन्नेन तृप्तिं न गच्छेद्या-वत्तृप्तिं न मोक्तव्यामित्युज्ज्वला । याज्ञवल्क्योऽपि—नातितृप्तोऽथ संवि-शेदिति । अथात्रान्तिमकर्माऽऽह बोधायनः—अमृतापिधानमसीत्युप-रिष्टादपः पीत्वाऽऽचान्तो हृदयदेशमभिसृशति । प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रो मा विशान्तकस्तेनाग्नेनाऽऽप्यायस्वेति पुनराचम्य दक्षिणपादाङ्गुष्ठे पाणिं निःस्रावयति ।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽङ्गुष्ठं च समाश्रितः ।

ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणति विश्वमुक् ॥ इति ।

हुतानुमन्त्रणादूर्ध्वहस्तः समाचरेत् । श्रद्धायां प्राणे निविश्यामृतं हुतम् । शिवो मा विश । प्राणमन्नेनाऽऽप्याय श्रद्धायामपाने श्रद्धायां ध्याने श्रद्धायामुदाने श्रद्धायां समाने निविश्येत्यादिर्यथालिङ्गमनुषङ्गः । ब्रह्मणि म आत्माऽमृतत्वायेत्यक्षरेणाऽऽत्मानं योजयेत्सर्वक्रतुयाजिनामा-त्मयाजी विशिष्यत इत्याह भगवान्बोधायन इति । धर्मप्रश्नेऽपि—

आचम्य चोर्ध्वं पाणी धारयेदाप्रोदकीभावात्ततोऽग्निमुपस्पृशेत् । इति ।

मुक्त्वाऽऽचम्य पाणी ऊर्ध्वं धारयेद्यावत्प्रगतोदकौ शुष्कोदकौ भवतो भुक्त्वा चाग्निरुपस्पृ(स्प्र)ष्टव्य इति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । अत्रा-ग्निपदेन भौताग्न्याद्यन्यतरमस्मैव शुद्धार्थमुपस्पर्शनाहं न तु साक्षाद-ग्निरयोग्यत्वात् । भोजनान्ते कृत्यमाह माधवीये देवलः—

भुक्त्वोच्छिष्टं समादाय सर्वस्मात्किञ्चिदाचमेत् ।

उच्छिष्टभागधेयेभ्यः सोदकं निर्वपेद्भुवि ॥

तत्र मन्त्रः—रौरवे पूयनिलये पद्मारुदनिवासिनाम् ।

प्राणिनां सर्वजन्तूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ इति ।

तदुपर्युदकदानप्रकार आचारकिरणे ब्रह्माण्डे—

अमृतापिधानमसीत्येवं हि कुशपाणिना ।

पैतुकेण च तीर्थेन भूमौ दद्यात्तदर्थिनाम् ॥ इति ।

[+गण्डूषप्रकारादिकं त्वाचारकिरणे—

गण्डूषद्वितयं कृत्वा क्षालयेच्च ततः करौ ।
 मृदा हस्तौ शोधयित्वा दन्तांश्चैव तृणादिना ॥
 हस्तौ चापि कू(स्तावाकू)परं पादावाजानु क्षालयेत्ततः ।
 कृत्वा द्वादश गण्डुषांस्त्रिराचम्य विशुध्यति ॥ इति ।

तत्रैव च व्यासः—

गण्डूषकरणात्पूर्वं हस्तं प्रक्षालयेद्विजः ।
 हतं दैवं च पित्र्यं च आत्मा चैवोपपातकैः ॥

तत्रैव गण्डूषे विकल्पान्तरमपि । तत्र षोडश गण्डूषाः । भोजनान्ते
 तु षोडशेत्याचार्योक्तेरिति ।] ततः समाचमनप्रकारो माधवीये देवलेन
 दर्शितः—

भुक्त्वाऽऽचाभेद्यथोक्तेन विधानेन समाहितः ।

शोधयेन्मुखहस्तौ च मृदाऽद्भिर्घर्षणैरपि ॥

तच्च घर्षणं तर्जन्या न कर्तव्यम् । तदाह गौतमः—

गण्डूषस्याथ समये तर्जन्या वक्त्रचालनम् ।

कुर्वीत यदि मूढात्मा रौरवे नरके पतेत् ॥ इति ।

व्यासः— हस्तं प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पिबेदविचक्षणः ।

स देवांश्च पितृंश्चैव ह्यात्मानं चैव घातयेत् ॥ इति ।

भोजने नियमान्तरं धर्मप्रश्ने—

न रसान्गृहे भुञ्जीतानवशेषानतिथिभ्यः । इति ।

आगामिभ्योऽतिथिभ्यो यथा न किञ्चिद्गृहेऽवशिष्यते तथा गठ्या-
 द्यो रसा न भोक्तव्याः सद्यः संपादितुमशक्यत्वादिति व्याख्यातमुज्ज्व-
 लाकृता । निन्दितमात्मार्थं दिव्यान्नपाचनादि तत्रैव—

नाऽऽत्मार्यमाभिरूपमन्नं पाचयेद्विशेषेणापुमान् । इति ।

आत्मार्थमुद्दिश्याभिरूपमन्नं स्वादु अपूपादि न पाचयेद्ब्रह्मस्थपुरुषा-
 दन्यो न सर्वथा पाचयेदित्युज्ज्वलाकृत् । पाके तु पुंसां स्त्रीणां च
 साधारण्येनाधिकारः । अस्मिन्देशेऽग्निमुपसमाधास्यन्स्यादित्यस्मिन्सूत्रे
 तु पाके स्त्रियो न भवन्ति । उपसमाधास्यन्नितिलिङ्गस्य विवक्षितत्वात् ।
 आर्याः प्रयता इत्यत्र तु भवन्तीत्येतैरेव व्याख्यातत्वात् । [*श्राद्धच-
 न्द्रिकायामाश्वलायनः—

समानप्रवरैर्मित्रैः सपिण्डैश्च गुणान्वितैः ।

कृतोपकारिभिश्चैव पितृपाकः प्रयच्छते ॥ इति ।

पत्न्याः पाककर्तृत्वे लिङ्गं हेमाद्रौ प्रभासखण्डे—

अथैतानि पपाचाऽऽशु सीता जनकनन्दिनी । इति ।

व्यासोऽपि—गृहिणी चैव सुस्नाता पाकं कुर्यात्प्रयत्नतः । इति ।

तत्र वर्ज्याः पात्रे—रजस्वलां च पाखण्डां पुंश्वलीं पतितां तथा ।

त्यजेच्छूद्रां तथा वन्ध्यां विधवां चान्यगोत्रजाम् ।

व्यङ्गकर्णां चतुर्थाहःस्नातामपि रजस्वलाम् ॥

वर्जयेच्छ्रान्द्रपाकार्थममातृपितृवंशजाम् । इति ।

पाकपात्राणि हेमाद्रावादित्यपुराणे—

पचेदन्नानि सुस्नातः पात्रेषु शुचिषु स्वयम् ।

स्वर्णादिधातुजातेषु मृन्मयेष्वपि चाद्विजः ॥

अच्छिद्रेषु अलिप्तेषु तथाऽनुपहतेषु च ।

नाऽऽयसेषु न भिन्नेषु दूषितेष्वपि कर्हिचित् ॥

पूर्वं कृतोपयोगेषु मृन्मयेषु न तु क्वचित् । इति ।

अथ गर्भस्त्रीहस्तपाकभोजननिषेधः—

षष्ठे मासे तु संप्राप्ते गर्भिण्याश्चैव हस्ततः ।

न भोक्तव्यं विशेषेण इति शातातपोऽब्रवीत् ॥

नारदसंहितायाम्—द्विजस्य धर्मपत्नी तु अन्तर्वत्नी यदा भवेत् ।

पञ्चमे निर्गते मासे तस्या हस्ते न भोजनम् ॥

शिवसंहितायाम्—गर्भिणी तु यदा भार्या विप्रादीनां विशेषतः ।

तस्या हस्ते न भोक्तव्यं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

सप्तमादधिके मासि गर्भिण्या यदि पच्यते ।

अन्यगोत्रैर्न भोक्तव्यमापद्यपि तु कर्हिचित् ॥

प्रयोगसारे—मासे षष्ठे सप्तमे चाष्टमे वा

प्राप्ते पत्न्या नैव कुर्यात्कदाचित् ।

होमं दानं देवयात्रां तथैव

तस्या हस्तेनाशनं विप्रवर्यः । इति ।

अत्र—अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नीतिश्रुतेः सैव नित्यपाकाधिका-
रिणी मुख्या तस्याः प्रोक्तसगर्भत्वे निषिद्धान्ये(द्धेति)दिक् ।] आत्मार्थ-
पाकस्तु श्रीमद्भगवद्गीतास्वेव निन्दितः—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ इति ।

माधवीयेऽत्रिः—आचान्तोऽप्यशुचिस्तावद्यावत्पात्रमनुद्धृतम् ।

उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद्यावन्नोन्मृज्यते मही । इति ।

अत्रोन्मार्जनप्रकारो धर्मप्रश्ने—यत्र भुज्यते तत्समुह्य निर्हृत्यावोक्ष्य तं देशममत्रेभ्यो लेपान्संकृष्याद्भिः संसृज्योत्तरतः शुचौ देशे रुद्राय निनये-
देवं वास्तु शिवं भवति । इति ।

यत्र स्थाने भुज्यते तत्र समुह्य निर्हृत्यावोक्ष्य तं देशममत्रेभ्यो लेपा-
न्संकृष्य समुह्यान्यामत्रोच्छिष्टादिकं समूहीकृत्य निर्हरेदन्यतो निर्हृत्य तं
देशमवोक्षेत् । ततोऽमत्रेभ्यो येषु पाकः कृतस्तान्यमत्राणि तेभ्योऽ-
न्नलेपान्व्यञ्जनलेपांश्च संकृष्य काष्ठादिनाऽवकृष्याद्भिः संसृज्योत्तरतः
शुचौ देशे रुद्रायेदमस्त्विति निनयेदेवं कृते वास्तु शिवं समृद्धं भवती-
त्युज्ज्वला । तत आचमनं कर्तव्यम् । तत्तूक्तं प्रागेव तत्प्रकरणे—अन्नले-
पानुच्छिष्टलेपांश्चेत्यादिना । भोजनं प्रशंसति माधवीये कूर्मपुराणे—

सर्वेषामेव यागानामात्मयागः परः स्मृतः ।

योऽनेन विधिना कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ इति ।

धर्मप्रश्नेऽपि—आहिताग्निरनङ्गांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः ।

अश्रन्त एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्रताम् ॥ इति ।

कालयोर्भोजनमित्ययमपि नियमो नास्तीति पठ्यते । अनङ्गुद्धरणं
दृष्टान्तार्थम् । सिध्यन्ति कार्यक्षमा भवन्तीत्युज्ज्वला । आचमनोत्तरं
विशेषमाह माधवीये शातातपः—

आचम्य पात्रमुत्सृज्य किञ्चिदार्षेण पाणिना ।

मुख्यान्प्राणान्समालभ्य नाभिं पाणितलेन च ॥ इति ।

स्पृशेदिति शेषः । ततस्तुलसीदलभक्षणमुक्तं पादौ शालिग्रामस्तोत्रे—

भोजनानन्तरं विष्णोरर्पितं तुलसीदलम् ।

भक्षणात्सर्वपापघ्नं चान्द्रायणशताधिकम् ॥ इति ।

अथाङ्गपरिपाकाद्यर्थमीश्वरस्मरणाद्युक्तं माधवीये विष्णुपुराणे—

स्वस्थः प्रशान्तचित्तस्तु कृतासनपरिग्रहः ।

अभीष्टदेवतानां तु कुर्वीत स्मरणं नरः ॥

अग्निराप्याययेद्धातुं पार्थिवं पवनेरितः ।
 दत्तावकाशो नभसा जरयेदस्तु मे सुखम् ॥
 अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च ।
 भवत्वेतत्परिणतौ ममास्त्वव्याहतं सुखम् ॥
 प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ।
 अन्नं पुष्टिकरं चास्तु ममास्त्वव्याहतं सुखम् ॥

अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं मयाऽन्नं जरयत्वशेषम् ।
 सुखं च मे तत्परिणामसंभवं यच्छत्वरोगं मम चास्तु देहम् ॥
 विष्णुः समस्तेन्द्रियदेहदेही प्रधानभूतो भगवान्यथैकः ।
 सत्येन तेनान्नमशेषमत्र आरोग्यदं मे परिणामभेतु ॥

विष्णुरता(?) तथैवान्नं परिणामश्च वै तथा ॥
 सत्येन तेन वै भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ।
 इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमृज्य तथोदरम् ॥
 अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ॥ इति ।

एवम्—अगस्तिं कुम्भकर्णं च शनिं च वडवानलम् ।
 आहारपरिपाकार्थं स्मरामि च वृकोदरम् ॥ इति ।
 आ(वा)तापी भक्षितो येन वा(आ)तापी(पि) च महाब(तथेत्व)लः ।
 अगस्त्यस्य प्रसादेन भोजनं मम जीर्यताम् ॥ इति ।
 शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं चेन्द्रमश्विनौ ।
 भोजनान्ते स्मरेद्यस्तु तस्य चक्षुर्न नश्यति ॥ इति च ।

इति श्लोकपठनमपि कर्तव्यम् । ततस्ताम्बूलग्रहणमुक्तं माधवीये
 मार्कण्डेयेन—

भूयोऽप्याचम्य कुर्वीत ततस्ताम्बूलभक्षणम् ॥ इति ।

भूयः पुनर्भोजनान्ते भूमिशुद्धयन्ते चाऽऽचम्य ताम्बूलभक्षणं कुर्वीतेति
 संबन्धः । ताम्बूलभक्षणे नियममाह माधवीये वसिष्ठः—

सुपूगं च सुपत्रं च सुचूर्णेन समन्वितम् ।
 अदत्त्वा द्विजदेवेभ्यस्ताम्बूलं वर्जयेद्बुधः ॥
 एकपूगं सुस्वारोग्यं द्विपूगं निष्फलं भवेत् ।
 अतिश्रेष्ठं त्रिपूगं च ह्यधिकं नैव दुष्यति ॥

पर्णमूले भवेद्वाधिः पर्णाग्ने पापसंभवः ।
 चूर्णपर्णं हरेदायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥
 तस्मादग्रं च मूलं च शिरां चैव विशेषतः ।
 चूर्णपर्णं वर्जयित्वा ताम्बूलं खादयेद्बुधः ॥ इति ।

निन्द्यं चूर्णं पाद्रे कार्तिकमाहात्म्येऽमक्ष्यं प्रकृत्य—प्राण्यङ्गमामिषं
 चूर्णम् । इति । प्राण्यङ्गं चूर्णमामिषमित्यर्थः । एतत्तु कोकणे शिपीचूर्ण-
 नाम्ना प्रसिद्धम् । अपि चात्र विशेषो भोजनकुतूहले—

विद्याकामोऽनिशं रात्रौ ताम्बूलं नैव भक्षयेत् ।
 अनिधाय मुखे पर्णं पूगं खादति यो नरः ॥
 दशजन्म दरिद्रः स्यान्मरणे न हरिं स्मरेत् ।
 क्रमुकं पञ्चनिष्कं स्यात्ताम्बूल्याश्च पलद्वयम् ॥
 गुञ्जाद्वयं चूर्णमानं ताम्बूलक्रम उत्तमः ॥ इति ।

अधिकं तु रतौ वक्ष्यामः । एवमाहारशुद्धावतिसावधानतया भाष्यम् ।
 तस्या एव चित्तशुद्धिद्वारा श्रुत्या कण्ठत एव मोक्षोपयोगित्वस्य दर्शित-
 त्वात् । तथाचाऽऽम्नायते छान्दोग्योपनिषदि—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः । स्मृतिलम्भे सर्व-
 ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः । इति ।

सत्त्वस्य चित्तगतसत्त्वगुणस्य शुद्धिः । रजस्तमसोऽभिभवनिरासेन
 वैमल्यमित्यर्थः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
 हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे भोजनप्रकरणं संपूर्णम् ॥

अथ संस्काररत्नमालात एव सारतः प्रयोगो निरुक्तभोजनविध्यपे-
 क्षितत्वान्निख्यते । निष्काम आयुष्कामश्च प्राङ्मुखोऽजीवन्मातृपित्रन्य-
 तरः कीर्तिकामो दक्षिणामुखः श्रीकामः प्रत्यङ्मुखः पित्र्य एषोदङ्मुखः
 प्रागुक्तपीठ एव भूमावपि वोपविश्य वर्तुलग्रन्थिमत्पवित्रं धृत्वा तदङ्ग-
 माह्नियमाणं भूर्भुवः सुवरोमिति उपस्थाय पूर्वोक्तपात्रे यथाविधि परि-
 विष्टं तत्सप्रणवव्याहृतिगायत्र्याऽभ्युक्ष्याजीवत्पितृकेण तर्जन्यां रौप्यं
 धृतं चेत्तन्निष्काश्य प्रादेशमात्रे चतुरस्रे मण्डले निहितं भोजनपात्रं वाम-
 हस्तेन धृत्वा दक्षिणहस्ते जलमादाय ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामीति

सायं संत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामीति प्रातरन्नं परिषिच्य भोजनपात्रस्य दक्षिणतो दशाङ्गुलं पञ्चाङ्गुलं वा स्थलं विहाय तत्र तूष्णीमेवाभ्युक्ष्य कृताभिघारादन्नात्किञ्चित्किञ्चित्स्वस्वाङ्गुष्ठपर्वपरिमाणमन्नं गृहीत्वा भूः स्वाहा भुवः स्वाहा सुवः स्वाहा भूर्भुवः सुवः स्वाहेति प्राक्संस्थमुद-क्संस्थं वा तत्तद्दिङ्मुखत्वानुरोधेनोदाहृतबोधायनसूत्रात्सर्वत्र प्रदक्षिण-मेव वोक्ताभ्युक्षितस्थले बलीन्निर्वप्य ततो बलीनेव सदाचारात्सपात्र-बलीन्वा परिषिच्य बलिनिष्काशनार्थं शिष्यादेरसंभवे तदाच्छादनार्थं च पर्णादेरप्यसंभवे तांस्तदैवैकीकृत्य हस्तं प्रक्षाल्य

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।

प्रप्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।

इत्यन्नमभिमन्त्र्य ततो गोकर्णाकृतिहस्ते माषनिमज्जनपरिमितं जल-मादाय श्रद्धायां प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि । श्रद्धायामपाने निवि-ष्टोऽमृतं जुहोमि । श्रद्धायां व्याने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । श्रद्धायामु-दाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । श्रद्धायाः समाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । ब्रह्मणि म आत्माऽमृतत्वाय । इत्यात्मानं परमात्मनि संयुक्तं भावयित्वा, अमृतोपस्तरणमसीत्युदकं प्राश्य श्रद्धायां प्राणे० शिवो मा विशा-प्रदाहाय । प्राणाय स्याहा । श्रद्धायामपाने० अपानाय स्वाहा । श्रद्धायां व्याने० व्यानाय स्वाहा । श्रद्धायामुदाने० उदानाय स्वाहा । श्रद्धायाः समाने० समानाय स्वाहा । इति साङ्गुष्ठाभिर्मुक्तकनिष्ठिकाभिः समस्ताभिरङ्गुलीभिः पञ्च प्राणाहुतीः प्रजापतिं परमात्मानं ध्यातुं शक्त-श्वेतदध्यानपूर्वकं तूष्णीमशक्तश्चेद्ब्रह्मणे स्वाहेति षष्ठीमप्याहुतिं हुत्वा वामहस्तेनाङ्गुष्ठतर्जनीमध्यमाभिः कृतं पात्रालम्बनं वाङ्निरोधं पीठा-दधःपादस्थापननियमं च विहाय पञ्चार्द्रः प्रागेव सत्रशिस्राग्रन्थि विमुच्योदकस्पर्शं विधाय ब्रह्मणि म आत्माऽमृतत्वायेति ब्रह्मात्मैक्यम-नुसंधाय वामहस्तेनाङ्गं पादौ शिरो बस्ति पदा भोजनपात्रं चास्पृशन्स-र्वाभिरेव साङ्गुष्ठाभिरप्रसृताभिरङ्गुलिभिः समग्रं ग्रासं मुखे निवेशयन्फू-त्कारमकुर्वन्ननजीर्णं स्वोदरतुरीयभागमपूरयन्नार्द्रशिरःपरिधानवस-नोऽप्रसारितपादोऽवेष्टितशिरा अनुत्सङ्गकृतभाजनोऽवामभागस्थजल-पात्रः शब्दं लेह्याद्यास्वादनेऽप्यकुर्वन्श्रुत्याद्यनुच्चारयन् वृथाकथाः

संवर्जयन्मगवन्नामैव मुहुः समुच्चारयन्बहुषु भुञ्जानेषु स्वयं त्वर-
याऽनवभुञ्जन्नुदकपानकाले तत्पात्रादुदकं भोजनपात्रेऽनवपातयंस्तत्राप्य-
नवशेषयन्वामहस्तेन तत्पात्रं दक्षिणमणिबन्धे संस्थाप्य पात्रमोष्ठाभ्या-
मस्पृशन्नहृष्टतद्द्वार एव जलं पिबन्यावान्निषिद्धेतरपात्रे यावन्निषिद्धे-
तरान्नं कामादिवृत्तिनिरोधपूर्वकं सावधान एव सुखं यथाविधिसंप्रदायं
भुञ्जीयात् । एवं सर्वेषां भोजने जाते पात्रस्थं लवणं जलेनाऽऽप्लाव्य

रौरवादिनिमग्नानां देहिनामन्नमिच्छताम् ।

तृप्तयेऽन्नमिदं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

इत्युच्छिष्टान्नभागभ्य उच्छिष्टमन्नं दत्त्वा—

रौरवे पूयनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम् ।

अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

इति तदुपर्युदकं दद्यात् । जीवत्पितृकस्याप्येतदिति केचित् । नेत्यन्य
इति गोपीनाथदीक्षिताः । शिष्टाचारस्तूत्तरापोशनं (न)शेषजलदा-
नस्यैव । उभयमप्यविरुद्धं प्राक्तनजलस्याप्युच्छिष्टहस्तस्थितत्वेनोच्छि-
ष्टत्वाविशेषात् । ततः पूर्ववत्करे जलमादाय, अमृतापिधानमसि ।
इति पीत्वा तच्छेषं निरुक्तदत्तान्नोपरि दत्त्वोत्तिष्ठेत् । एकपङ्क्त्युपवि-
ष्टानां मध्ये कश्चिन्मक्षिकाद्युपघातेन प्रमादादिना वोत्तिष्ठेत्तदा शिष्टं
भोजनपात्रस्थितमन्नं परित्यजेत् । संकटेऽग्निभस्मोदकदर्भद्वारैर्व्यवधा-
नेन पङ्क्तिभेदः कार्यः । भोजनपात्रस्थलवणाप्लावने प्राणायामत्रयम-
ष्टोत्तरशतं गायत्रीजपश्च । उत्तरापोशनानन्तरं भोजनपात्रस्पर्शं स्नानं
प्राणायामश्चेति गोपीनाथदीक्षिताः । ततो भोजनपात्रं निष्काशयित्वा
प्रथममेकं गण्डूषमेव विधाय हस्तौ मुखं च तर्जनीतराङ्गुलिभिः प्रक्षाल्य
लोहितनिःसरणं विना यावद्दन्तलग्नमुच्छिष्टं निर्गमिष्यति तावन्नि-
ष्काश्य षोडश गण्डूषान्कृत्वा मुखं पादौ च प्रक्षाल्य द्विराचम्य भूमि-
मुपलेपयित्वाऽभावे स्वयं विलिप्य हस्तपादप्रक्षालनं कृत्वाऽऽचम्य तां
भूमिं संस्पृश्य द्विराचम्य प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रो मा विशान्तकः ।
तेनान्नेनाऽऽप्यायस्व । इति हृदयमभिसृश्य पुनराचम्य

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽङ्गुष्ठं च समाश्रितः ।

ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति विश्वमुक् ॥

इति दक्षिणपादाङ्गुष्ठे दक्षिणपाणिना जलं निषिच्य श्रद्धायां प्राणे निविश्यामृतं हुतम् । प्राणमन्त्रेणाऽऽप्यायस्व । श्रद्धायामपाने० हुतम् । अपानमन्त्रेणाऽऽप्यायस्व । श्रद्धायां व्याने नि० हुतम् । व्यानमन्त्रेणा० । श्रद्धायामुदाने निविश्यामृतं । उदानमन्त्रे० श्रद्धायां समाने नि० हुतम् । समानम० । इत्यूर्ध्वहस्तो हुतानुमन्त्रणं कुर्यात् । ब्रह्मणि म आत्माऽमृत-
त्वाय । इति ब्रह्मणि स्वात्मानं कैवल्यार्थं योजयित्वा तं ततो ब्राह्मणे-
भ्यस्ताम्बूलं दत्त्वा स्वयं भक्षयेत् । एतावत्कर्तुमशक्तस्तु अन्नाभिमन्त्र-
णान्तं कृत्वाऽमृतोपस्तरणमसीत्युदकं पीत्वा प्राणाय स्वाहा । अपाना-
य० । ध्यानाय० । उदानाय० । समानाय० । इत्येतैरेव मन्त्रैः पूर्ववदाहुती-
र्हुत्वाऽन्तेऽमृतापिधानमसीत्युदकपानमेव समन्त्रकं कर्म नान्यत्किमपि
कुर्यादिति गोपीनाथदीक्षिताः । ऊर्ध्वं वाङ्म आसन् । इति मुखमालभेत् ।
नसोः प्राण इति मुखनासिके युगपत् । सकृदेव मन्त्रः । द्विवचनलि-
ङ्गात् । अक्षयोश्चक्षुः । इति चक्षुषी तथैव । कर्णयोः श्रोत्रम् । इति
श्रोत्रे । बाहुवोर्बलम् । इति बाहू । ऊरुवोरोजः । इत्यूरू एव वामहस्तेन ।
अरिष्टा विश्वान्यङ्गानि तनूः । तनुवा मे सह नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।
इति शिरःप्रभृति नाभ्यन्तं दक्षिणेन तदधः पादान्तं वामेन हस्तेन
सर्वाण्यङ्गानि आलभेत् । वयः सुपर्णा० बद्धान् । इति दक्षिणतदितर-
चक्षुषी दक्षिणपाण्यङ्गुष्ठानामिकाभ्यां क्रमेण निमृजीत । नमो रुद्राय०
पाहि । इति रुद्रविष्णू उपतिष्ठते । त्वमग्ने द्युभि० शुचिः । इति जाठर-
मग्निमुपतिष्ठते । शिवेन मे संतिष्ठस्व० ते नमः । इति यज्ञमूर्तिमीश्वरं
संप्रार्थयेत् । ततोऽगस्तिं कुम्भेत्यादिश्लोकत्रयं पठेत् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषण उत्तरार्धे पञ्चमभागकृत्यात्मके पञ्चम-
किरणे भोजनप्रकरणं सप्तमं संपूर्णम् ।

अथ नैवेद्ययतिभैक्षदानयोर्भोजनप्रकरणे विनियुक्तस्य ये देवा इति
मन्त्रस्य श्रीमाधवीयं भाष्यं यथा—

ये देवा दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थाप्सुषदो महिनैकादश
स्थ ते देवा यज्ञमिमं जुषध्वम् । इति ।

अप्सुषदोऽबुपलक्षितेऽन्तरिक्षे सीदन्तीत्यप्सुषदः । महिना स्वमहिम्ना
तत्र सीदन्ति हे देवा ये यूयं प्रत्येकमेकादशावस्थितास्ते सर्वे यज्ञमिमं

सेवध्वमिति । अथ मोजनप्रयोगस्थसर्वमन्त्राणां क्रमेण श्रीमाधवीयमेव भाष्यं लिख्यते । तत्र व्याहृत्यादेरर्थस्तु प्रागुक्त एव । यद्यप्येते मन्त्रास्तु नैव मोजनप्रयोगगास्तथाऽपि तदव्यवहितपूर्वत्वात्तत्त्वेन व्यवहृताः ।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् । इति ।

हे प्रजापते त्वदन्यः कोऽपि पुरुष उत्पन्नानि तान्येतानि विश्वानि न परिबभूव परिभवितुं समर्थो नाभूत् । परिभवः सृष्टेरप्युपलक्षणम् । सृष्टिसंहारयोः शक्त इत्यर्थः । अतस्ते तव वयं यत्कामा जुहुमस्तत्फल-
मस्माकमस्तु । वयं धनानां पतयः स्यामेति । एवम्—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥

इति देव्यथर्वशीर्षमन्त्ररतु निगदव्याख्यातः ।

यन्तु नद्यो वर्षन्तु पर्जन्याः । सुपिप्पला ओषधयो भवन्तु ।

अन्नवतामोदनवतामामिक्षवताम् । एषां राजा भूयासम् ॥

नद्यो नद्यः सर्वा यन्तु पूर्णं प्रवहन्तु । पर्जन्या मेघाः स्वस्वकाले वर्षन्तु । ओषधयो व्रीह्यादयः सुपिप्पलाः शोभनफलोपेता भवन्तु । अदनीयानि प्रशस्तभक्ष्यभोज्यानि येषु ग्रामेषु ते ग्रामा अन्नवन्तः प्रभू-
तेन व्रीहिप्रियङ्गवाद्योदनेन युक्ता ओदनवन्तः । आमिक्षाशब्देन दधिकीरादिरसद्रव्याण्युपलक्ष्यन्ते तैर्युक्ता आमिक्षवन्तस्तादृशानामेषां ग्रामाणां राजा स्वामी भूयासम् । इति सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदप्रकाशे तैत्तिरीयब्राह्मणभाष्यम् ।

ओदनमुद्ब्रुवते । परमेष्ठी वा एषः । यदोदनः । परमामेवैनं श्रियं गमयति ।

अत्रापि तदीयमेव भाष्यं संहितायां राजसूयप्रश्नव्याख्यानावसरे प्रस-
ङ्गप्राप्तब्राह्मणस्याप्येतस्य विवरणे—अधिदेवनकाल ओदनं पणत्वेन सर्वं परस्परं ब्रूयुः । अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्त इति श्रुतेरोदनः परमेष्ठिरूपः । तथा सत्योदनपणप्रतिज्ञया परमां श्रियं जयमानः प्राप्नोतीति । एवं चैत-
न्मन्त्रद्वयमन्नरूपिणः परमात्मनः प्रार्थनार्थमपि लिङ्गाश्रियोक्तुं युक्तमेव । ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामीति सायम् । सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामीति

प्रातः । ऋतशब्देन मानससत्यवाचिनाऽग्निरत्र विवक्षितः । वाचिकस-
त्यवाचिना सत्यशब्देनाऽऽदित्यो विवक्षितः । तथा सति ऋतमग्निं त्वामा-
दित्येन परितः सिञ्चामीति सायंकालीनस्यार्थः । सत्यमादित्यं त्वाम-
ग्निना परिषिञ्चामि परितः सिञ्चामीति प्रातःकालीनस्यार्थ इति ।

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।

प्रप्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ इति ।

हेऽन्नपतेऽग्नेऽनमीवस्य रोगरहितस्य शुष्मिणो बलहेतोरन्नस्य प्राप्तिं
नोऽस्मभ्यं देहि । प्रकर्षेण हविषो दातारं यजमानं प्रतारिष प्रकर्षेण
दुरितात्तारय । नोऽस्माकं द्विपदे चतुष्पदे मनुष्याय पशवे चोर्जं बलं धेहि
संपादयेति । श्रद्धायां प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि । श्रद्धायामपाने० ।
श्रद्धायां व्याने० । श्रद्धायामुदाने० । श्रद्धाया* समाने नि० । ब्रह्मणि
म आत्माऽमृतत्वाय । अमृतोपस्तरणमसि । श्रद्धायां प्राणे निविष्टोऽमृतं
जुहोमि । शिवो मा विशाप्रदाहाय । प्राणाय स्वाहा । श्रद्धायाम-
पाने निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवो मा विशाप्रदाहाय । अपानाय
स्वाहा । श्रद्धायां व्याने० । व्यानाय स्वाहा । श्रद्धायामुदाने० । उदा-
नाय स्वाहा । श्रद्धाया* समाने० । समानाय स्वाहा । ब्रह्मणि म आत्माऽ-
मृतत्वाय । अमृतापिधानमसि । श्रद्धायां प्राणे निविश्यामृत* हुतं प्राण-
मन्नेनाऽऽप्यायस्व । श्रद्धायामपाने० अपानमन्नेनाऽऽप्यायस्व । श्रद्धायां
व्याने० व्यानमन्ने० । श्रद्धायामुदाने० उदानमन्ने० । श्रद्धाया* समाने०
समानमन्ने० । अत्र भाष्यं माधवीयं प्रागुक्तरीत्या द्रविडपाठीयम् । अथ
भोजनादावर्षां प्राशने मन्त्रमाह—अमृतोपस्तरणमसीति । पीयमान हे
जल त्वममृतं विनाशरहितं प्राणदेवताया उपस्तरणमसि । यथा शयना-
र्थस्य मञ्चकस्योपरि पटादिकमुपस्तीर्यते तद्वत्प्राणदेवताया इदमुपस्तर-
णम् । तथा च वाजसनेयिनः प्राणविद्यायां प्राणदेवताया जलवस्त्रत्वमाम-
नन्ति तस्मादशिष्यन्नाचामेदशित्वाऽऽचामेदेतमेव तदन्नमनग्रं कुर्वत इति
नारायणीये द्वात्रिंशोऽनुवाकः । जलप्राशनाबुध्वं प्राणाहुतिमन्त्रं दर्शयति—
प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि प्राणाय स्वाहा । अपा० । व्याने० । उदाने० ।
समाने० । ब्रह्मणि म आ०येति । पञ्चसु शरीरगतवायुभेदेषु मध्ये
प्रथमे प्राणनामके वायौ निविष्ट आदरयुक्तोऽहम् । अमृतं स्वादुभूतम् ।
इदं हविर्जुहोमि प्रक्षिपामि तच्च प्राणदेवतायै स्वाहा हुतमस्तु । एवम-

पानादिषु योज्यम् । एतैः पञ्चभिराहुतिभिरमृतत्वाय मोक्षाय मे
 मदीय आत्मा जीवो ब्रह्मणि परमात्मन्येकी भवत्विति शेषः ।
 इति नारायणीये त्रयस्त्रिंशोऽनुवाकः । प्राणाहुतिष्वेव विकल्पि-
 तानि मन्त्रान्तराणि दर्शयति—प्राणे नि०शिवो० । प्राणा० । अपा० ।
 ध्याने० । उदाने० । समाने० । ब्रह्मणि०येति । हूयमान हे
 इत्यविशेष त्वं शिवः शान्तो भूत्वा मां प्रविश । किमर्थमप्रदाहाय
 क्षुत्संपादितदाहशान्त्यर्थम् । अन्यत्पूर्वव्याख्येयम् । इति नारायणीये
 चतुस्त्रिंशोऽनुवाकः । भोजनादूर्ध्वमपां प्राशने मन्त्रमाह—अमृतापिधान-
 मसीति । पीयमान हे जल त्वममृतमविनश्वरमपिधानमाच्छादकमसि ।
 इति नारायणीये पञ्चत्रिंशोऽनुवाकः । भुक्तस्यानुमन्त्रणे मन्त्रमाह—
 श्रद्धायां प्राणे निविश्यामृत* हुतम् । प्राणमन्त्रेनाऽऽप्यायस्व । अपाने०-
 ध्याने० उदाने० समाने० ब्रह्म० अमृ० येति । वैदिककर्मणि विश्वासातिशयः
 श्रद्धा तस्यां सत्यां प्राणवायौ निविश्य, आदरातिशयं कृत्वाऽमृतम-
 विनश्वरं स्वादुभूतमिदं हविर्मया हुतम् । हे प्राणाभिमानिदेव हुतेनान्ने-
 नाऽऽप्यायस्व वर्धय । स्पष्टमन्यत् । इति नारायणीये षट्त्रिंशोऽनुवाकः ।
 अनुमन्त्रणादूर्ध्वं हृदयाभिमर्शने मन्त्रमाह—प्राणानां ग्रन्थिरसि । रुद्रो
 मा विशान्तकः । तेनान्नेनाऽऽप्यायस्वेति । हे हृदयवर्तिन्नहंकार त्वं वायु-
 रूपाणामिन्द्रियरूपाणां च प्राणानां ग्रन्थिरपरस्परविश्लेषाय ग्रन्थनहे-
 तुरसि तादृक्त्वं रुद्रस्तदभिमानिदेवतारूपोऽन्तको दुःखस्य विनाशको
 भूत्वा मा मां विश । मच्छरीरे प्रविष्टो भव । तेन मन्दुक्तेनान्नेनाऽऽप्या-
 यस्व मामभिवर्धय । इति नारायणीये सप्तत्रिंशोऽनुवाकः । क्षुधादिज-
 नितचित्तविक्षेपशान्तेरूर्ध्वं भोक्तुर्जीवस्य परमेश्वररूपत्वानुसंधानहेतुं
 मन्त्रं दर्शयति—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽङ्गुष्ठं च समाश्रितः ।

ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति विश्वमुक् ॥ इति ॥

हृदयमध्यगताकाशोऽङ्गुष्ठपरिमितः । तत्र वर्तमाना बुद्धिरपि तावती
 तथाऽवच्छिन्नो जीवरूपः पुरुषोऽप्यङ्गुष्ठमात्रः । स च स्वकीयया ज्ञानक्रिया-
 शक्त्याऽङ्गुष्ठं समाश्रितः । चकारान्मस्तकं चाऽऽश्रितः । आपादमस्तकव्या-
 गित्यर्थः । सर्वोपाधिसंबन्धमन्तरेण स्वकीयेन वास्तवेन रूपेण सर्वस्य जगत
 ईशो नियन्ता । अत एव विश्वमुक् । सर्वं जगद्भुक्ते तादृशः स प्रभुरीश्वरः
 प्रीणात्वनेन भोजनेन प्रीतो भवतु । इति नाराय० अष्टात्रिंशोऽनुवाकः ।
 प्रथ वाङ्म आसन्नित्यादीनां प्रयोगेऽङ्गुस्पर्शादौ विनियुक्तानां नारायणी-

यानामेव मन्त्राणां भाष्यं माधवीयमान्धपाठीयत्वेन [*तत्र नास्त्येष यद्यप्यथापि तैत्तिरीयसंहिताया एव पञ्चमाष्टकपञ्चमप्रश्नान्तर्गतनवमानु-
वाकस्थानां तेषामेव संहितात्वेन पठितानां तत्रत्यभाष्यमेवेदं मयाऽत्र संगृह्यते । मे मदीया येयं वाक्सेयमासन्, आस्ये मुखे सुस्थिता भवतु ।
नसो ना(र्ना)सिकाछिद्रयाः(योः)प्राणः सुस्थितो भवतु । तथाऽक्षिगोल-
कयोश्चक्षुरिन्द्रियं कर्णगोलकयोः श्रोत्रेन्द्रियम् । बाह्वोर्नानाविधव्यापा-
रसामर्थ्यमूर्ध्वोर्गमनसामर्थ्यम् । तथा विश्वान्यङ्गान्यरिष्टानि सर्वेऽप्यव-
यवा हिंसाराहिता भवन्तु । तनुरवयवीभूतं शरीरमपि मे तनुवा मदीयेन
शरीरेण सह ते तुभ्यं नमः साष्टाङ्गदण्डप्रणामोऽस्तु । अतो मां त्वं मा
हिंसीरिति । इयं हि प्रकृते परमेश्वरस्यैव तत्र श्रौताग्नेरिवेह जाठराग्नि-
रूपिणः प्रार्थनेति द्रष्टव्यम् ।]

वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम् । प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।

अपध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुः । मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥

अस्य मन्त्रस्य तैत्तिरीयब्राह्मणेऽपि द्वितीयकाण्डे विद्यमानत्वात्तत्र-
त्यमेव श्रीमाधवीयं भाष्यमिदम् । केचिद्वषय इन्द्रमुपसेदुः । कार्यार्थं
प्राप्तिरुपसत्तिः । कीदृशा ऋषयः । वयः पक्षिमूर्तिधारिणः । अत एव
सुपर्णाः शोभनपक्षोपेताः । प्रियमेधा अधीतस्य श्रुतस्य च धारणशक्ति-
र्मेधा तस्यां प्रीतियुक्ता । नाधमानाः किञ्चित्कार्यं याचमानाः । स एव

* धनुश्चिह्नान्तर्गतग्रन्थस्थाने ख. पुस्तकेऽप्रेतनो ग्रन्थो वर्तते—नास्त्येवातस्ते मयैव यथामति
दिङ्मात्रं व्याख्यायते (न्ते) । वाङ्म आसन्, मे मम । आसन् । आस्य इत्यर्थः । पद्मोमास्-
द्दित्यनुशासनेनास्यशब्दस्याऽऽसन्नादेशः । सप्तम्यभावश्छान्दसः । वागीर्वाग्वाणी सरस्वतीत्यम-
रात्सरस्वती तिष्ठत्विति सर्वत्र शेषो द्रष्टव्यः । नसोर्निरुक्तसूत्रादेव नासिकञोरित्यर्थः । प्राणः
सुपुष्टः प्राणवायुरित्यर्थः । अक्षोरार्षमक्षिशब्दस्येवन्तत्वम् । अक्षोरित्यर्थः । चक्षुः प्राग्बदेव
पुष्टं चक्षुरिन्द्रियमिति यावत् । एवं कर्णयोः श्रोत्रम् । बाहुवोर्बलम् । ऊरुवोरोज इति व्याख्येयम् ।
अरिष्टा विश्वान्यङ्गानि तनूर्मे तनूः स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनुरित्यमरान्मूर्तिरित्यर्थः । अरिष्टारिष्ट-
न्दितामङ्गलविकला भवत्वित्यर्थः । तथा विश्वानि सर्वाणि अङ्गानि अवयवजातान्यरिष्टानि सन्त्विति
विभक्तिविपरिणामः कार्यः । तनुवा मे सह नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः । हे परमेश्वरोति पूर्वं
मुत्तरत्र च सर्वत्र संबुद्धपध्याहारो बोध्यः । ते तव नमः कायिकादित्रिविधप्रद्वीभावोऽस्तु ।
षष्ठीयं चतुर्थ्यर्थे । नमःस्वस्तीत्यादिना नमःशब्दयोगेऽपि चतुर्थ्या एवानुशासनात् । अतो मे
तनुवा तन्वा मूर्त्या सह विश्वान्यङ्गानीत्यनुकृष्य मा मा हिंसीर्वाप्तया मैव च्छिन्धीत्यादरातिशया-
बधो(यो द्योत्यत इ)त्यन्वयः कार्यः ।

याञ्जाप्रकारः स्पष्टीक्रियते—हे इन्द्र ध्वान्तमज्ञानलक्षणमन्धकारमपोर्णुहि
 अपसारय । चक्षुर्ज्ञानिलक्षणां दृष्टिं पूर्धि पूरय । निधयेव शृङ्खलयेव ।
 अज्ञानेन बद्धानस्मान्मुमुग्धि । तस्मादज्ञानबन्धान्मोचय नमो रुद्राय
 विष्णवे मृत्युर्मे पाहि । अत्रापि माधवीयभाष्याभावान्मयैवायमपि मंत्रो
 व्याख्यायते । मृत्युरिति प्रथमा छान्दसी मृत्योः सकाशात् । एवं मे
 माम् । त्वमग्ने द्युभिस्त्व० शुचिः । अत्र तथा शिवेन मे संतिष्ठस्वेत्यत्र च
 माधवीयमेव भाष्यमिदम् । त्वमग्ने० स्परि । त्वं वने० शुचिः । अग्ने
 त्वं द्युमिः स्वर्गेनिमित्तभूतैस्तत्र तत्र यागशालासु जायसे । किं च
 त्वमाशुशुक्षणिः । आद्रां भूमिं शीघ्रमेव शोषयसि । जायसे त्वमद्भ्यो
 वर्षधाराभ्योऽशनिरूपेण । जायसे त्वमश्मनस्परि । पाषाणस्योपरि
 पाषाणान्तरसंघट्टनेन जायसे । त्वं वनेभ्यो दावाग्निरूपेण जायसे । ओष-
 धीभ्य ओषधीकार्येभ्यो भेषजेभ्यस्त्वं जायसे । यद्वा वंशद्वयसंघर्षणा-
 दिभ्यो जायसे । नृणां नृपते सर्वेषामपि मनुष्याणां पालक त्वं गृहे गृहे
 शुचिः शुद्धिहेतुः संजायसे । पुनर्दाहेन मृन्मयमित्यादिस्मृतेरिति ।
 शिवेन मे संतिष्ठस्व० ते नमः । हे यज्ञ मे शिवेन सर्वोपद्रवशमनरूपेण
 संतिष्ठस्व समाप्तिं गच्छ । तथा स्योनेन सुखप्राप्तिरूपेण सुभूतेन सुदु-
 निष्पन्नत्वाकारेण । ब्रह्मवर्चसेन मन्त्रबलेन च संतिष्ठस्व । तथा यज्ञस्य
 यजमानस्य ऋद्धि फलमनुलक्षी(क्षयी)कृत्य संतिष्ठस्व । हे यज्ञ ते तवो-
 पसमीपे नमोऽस्तु । त्रिरभिधानमत्यादरार्थमिति ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुड्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
 हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषण उत्तरार्धे पञ्चमभागकृत्यात्मके पञ्चम-
 किरणे भोजनप्रयोगपठितमन्त्रभाष्यात्मकमष्टमं प्रकरणं संपूर्णम् ।
 पञ्चमः किरणश्च ॥

अथ षष्ठभागकृत्यं तत्र कर्तव्यजातं माधवीये दक्षेण दर्शितम्—

भुक्त्वा तु सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत् ।

इतिहासपुराणायैः षष्ठसप्तमकौ नयेत् ॥ इति ।

अन्नपरिणामनप्रकारस्तूक्तः प्रयोगपारिजाते—द्वात्रिंशन्मात्रकालं वाम-
 भागेन शयित्वा पञ्चविंशन्मात्रकालं दक्षिणभागेन शयित्वा द्वादशमा-
 त्रकालं मध्यभागेन शयित्वा निद्रामकुर्वन्पुनः पूर्ववदासित्वेति । स्त्रियां
 मात्रा ऋटिः पुंसीत्यमरादेकमात्रो ह्रस्व इत्युक्तह्रस्वैकवर्णोच्चारणका-

लोऽत्र मात्रेत्यर्थः । एवं च क्रमादैकाग्र्येण षोडशवारं द्वादशवारं षड्वारं च शिवेतिह्रस्ववर्णद्वयोच्चारणेन तादृशसूक्ष्मकालपरिगणनमीश्वर-स्मरणमात्मानुसंधानं च कर्तव्यम् । अत्रेतिहासपुराणाद्यैरित्याद्यशब्दगृहीतं शास्त्रादिपाठनाद्येव सप्तमभागे कार्यम् । इतिहासादिपठनादि तु षष्ठ एवेति प्रतिभाति तत्राप्यावश्यकं तु

स्वशाखोपनिषद्गीता विष्णोर्नामसहस्रकम् ।
रुद्रं पुरुषसूक्तं च नित्यमावर्तयेद्ब्रूही ॥

इति वचनाद्गीताद्येव । अन्यत्त्वैच्छिकं यथावकाशं च दिवास्वापादि तु नैव कार्यम् । तदाह माधवीयेऽत्रिः—

दिवा स्वापं न कुर्वीत स्त्रियं चैव परित्यजेत् ।

आयुः क्षीणं दिवा निद्रा दिवा स्त्री पुण्यनाशिनी ॥ इति ।

धर्मप्रश्नेऽपि—अहन्यसंवेशनम् । इति ।

संवेशनं निद्रा तदहनि न कर्तव्यमित्युज्ज्वलाकृत् । आपस्तम्बधर्मे हरदत्तास्तु संवेशनं मैथुनमिति व्याचख्युः । प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ग्रह्निवा रत्या संयुज्यन्ते इति प्रश्नोपनिषद्याथर्वणिका अपि समामनन्ति । विवृतं चेदं श्रीमद्भगवत्पूज्यपादपादारविन्दैस्तद्भाष्ये—प्राणमहारात्मानं वै एते प्रस्कन्दन्ति निर्गमयन्ति शोषयन्ति वा स्वात्मनो विच्छिद्यापनयन्ति । ये के दिवाऽहनि रत्या रतिकरणभूतया सह स्त्रिया संयुज्यन्ते मैथुनमाचरन्ति मूढाः । यत एवं तस्मात्तन्न कर्तव्यमिति प्रतिषेधः प्रासङ्गिक इति अहरात्मानमहरमिमानिदेवतात्मना विहितध्यानमित्यर्थः । इतिहासास्तावन्महारामायणमहाभारतशिवरहस्याभिधास्त्रयः प्रसिद्धा एव । पुराणानि तूक्तानि द्विधा । महापुराणान्युपपुराणानि । तत्राऽऽद्यानि लिङ्गार्चनचन्द्रिकायां स्कान्दे शंकरसंहितायाम्—

यथा वेदेषु शास्त्रेषु विश्वाधिक उमापतिः ।

पुरुषः परमः साक्षात्पतिः पाशविमोचकः ॥

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिरनाकुलः ।

मङ्गलं मङ्गलानां च पावनानां च पावनम् ॥

सर्वमङ्गलकोपेतमुत बभ्रुः सुमङ्गलः ।

आगमान्तगिरो नित्यमसृतं प्रवदन्ति हि ॥

तद्वदेव पुराणानि शिवं साम्बं सदाशिवम् ।
स्वतन्त्रमेकमद्वैतं प्रवदन्ति निरङ्कुशम् ॥

इत्युपक्रम्य—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं मागवतं तथा ।
भविष्यं नारदीयं च मार्कण्डेयमतः परम् ॥
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गं वाराहमेव च ।
स्कान्दं च वामनं चैव मात्स्यं कौर्मं च गारुडम् ॥
ब्रह्माण्डं चेति पुण्योऽयं पुराणानामनुक्रमः ॥ इति ।

द्वितीयानि पाराशरपुराणे—

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहं ततः परम् ।
नन्द्याख्यं शिवधर्माख्यं द्वाैर्वासिं नारदीयकम् ॥
कौपिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम् ।
ब्रह्माण्डं वारुणं कालीपुराणाख्यं तथैव च ॥
वासिष्ठलैङ्गसंज्ञं च साम्बं सौरं तथैव च ।
पाराशरसमाख्यं च मारीचं भार्गवाह्वयम् ॥ इति ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निके षष्ठभागकृत्याख्यः षष्ठः किरणः संपूर्णः ।

अथ सप्तमभागकृत्यम् ।

तत्र—इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमकौ नयेत् ॥

इति प्रागुदाहृतवाक्यगताद्यपदेन शास्त्रादिपठनाद्येवात्र कर्तव्यम् ।
तदाह माधवीयेऽत्रिः—

इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ।

वृथा विवादवाक्यानि परिवादांश्च वर्जयेत् ॥ इति ।

नन्वत्र धर्मशास्त्राण्येवोक्तानि तर्हि किं ज्ञानशास्त्रेषु सर्वथा यतीतरा-
नधिकार एवेति चेत्सत्यम् । तत्र मुख्योऽधिकारस्तु संन्यासिनामेव ।
अन्येषामपि सत्यां दृढतरमुमुक्षायां प्रारब्धप्राबल्यात्संन्यासे प्रतिबन्धेऽपि
यथावकाशं शास्त्रेऽप्यस्त्येवाधिकारः । तदुक्तं तत्रैव विष्णुपुराणे—

अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ।

सच्छास्त्रादिविनोदेन सन्मार्गादविरोधिना ॥

दिनं नयेत्ततः संख्यामुपतिष्ठेत्समाहितः ॥ इति ।

तत्र सतः कालत्रयाबाध्यस्याद्वैतब्रह्मणो यच्छास्त्रं ब्रह्मसूत्रभगवद्गी-
तादशोपनिषद्भाष्यबृहद्वार्तिकेतरवार्तिकविवरणवाचस्पत्यादीतरोपदेश-
साहस्र्यादिगौणमेव ग्राह्यम् । बृहद्वार्तिकस्य शापवशाद्यत्येकाधिका-
रित्वान्द्वाष्यादेर्गृहस्थाद्यधिकारसत्त्वेऽपि पूर्वाह्नो वै देवानामिति श्रुतेर्देवी
संपद्विमोक्षायेति स्मृतेश्च पूर्वाह्न एव तस्य विचार्यत्वात् । प्रकृतसमये
सुतरामप्राप्तत्वाच्च । ज्ञानशास्त्राधिकारव्यवस्था तूक्ता सूतसंहितायां
प्रथमेखण्डे विष्णुं प्रति श्रीशंकरेण—

निवृत्तिधर्मनिष्ठस्तु ब्राह्मणः पक्वजेक्षण ।
उक्तो मुख्याधिकारीति ज्ञानाभ्यासे मया हरे ॥
अन्ये च ब्राह्मणा विष्णो राजानश्च तथैव च ।
वैश्याश्च तारतम्येन ज्ञानाभ्यासेऽधिकारिणः ॥
द्विजस्त्रीणामपि श्रौतज्ञानाभ्यासेऽधिकारिता ।

अत्र टीका माधवी—द्विजस्त्रीणामिति अथ हैनं गार्गी वाचक्रवी
पप्रच्छेत्यादौ गार्ग्यादेर्व्यवहारदर्शनादस्तिपदस्य पूर्वार्धेन संबन्धः ।

मू० अस्ति शूद्रस्य शुश्रुषोः पुराणेनैव वेदनम् ।
वदन्ति केचिद्विद्वांसः स्त्रीणां शूद्रसमानताम् ॥

टी०—स्त्रीणां शूद्रसमानतामिति । तथाऽऽहुः—

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥ इति ।

गार्गमित्रेय्यादीनामपि श्रुतिवाक्यान् तत्त्वावबोधः । किं तु पौरुषेयै-
रेव वाक्यैर्जातस्तत्त्वावबोध आख्यारूपया श्रुत्या व्यवहृत इत्येतावदिति
ते मन्यन्त इत्यर्थ इति । एवं च विधिप्रतिषेधोभयसत्त्वाद्विधिनिर्णयसि-
न्धुक्तायाः

पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं च वेदस्य सावित्रीवाचनं तथा ॥

इति स्मृतिविहितोपनयनादिविशिष्टद्विजाङ्गनाया विषयः । निषेध-
स्त्वन्यासाम् । अत एवोक्तं वायवीये माघमाहात्म्ये—

नारीणां चैव शूद्राणां तन्त्रमार्गेऽधिकारिता ।
तन्त्रज्ञानेऽपि शूद्राणां न तु ग्रन्थपुरःसरम् ॥

तत्र या ब्राह्मणी नारी तस्या ग्रन्थपुरःसरम् ।

तन्त्रज्ञानेऽधिकारोऽस्ति केचित्संकरजातयः ॥

एतेषां नाऽऽनुपूर्व्येण कथामात्राधिकारिता ।

चाण्डालपुल्कसादीनां नाममात्रेऽधिकारिता ॥ इति ।

नारीणामित्यादि । तन्त्रमार्गे भारतादीतिहासपुराणगततन्त्रप्रक्रियो-
क्तज्ञानमार्ग इत्यर्थः । तन्त्रज्ञान इतिपादः पूर्वान्वयी । केचिदितिपाद-
स्तुत्तरान्वयी । सन्तीत्यार्थिकम् । स्पष्टमन्यत् । एवं सन्ति च तानि
शास्त्राणि च सच्छास्त्राणि कापिलपातञ्जलाख्यसांख्यद्वयं व्युत्क्रमेण
शेश्वरनिरीश्वरवादघटितं तथा कणादगौतमप्रणीतं क्रमाद्वयायद्वयं तथा
जैमिनीयं पूर्वमीमांसाशास्त्रं चेत्यास्तिकपञ्चदर्शनानि । उत्तरमीमांसायास्तु
पूर्वाह्न एवाभ्यासकाल इत्यनुपदमेवोक्तमिति न तद्ग्रहः । व्याकरणमहा-
भाष्यस्यापि शिष्टाचारात्स एव कालः । तदितरग्रन्थानां तु मनुयाज्ञव-
ल्क्यपाराशरादिधर्मशास्त्रवत्संग्रहादेव तत्त्वेन तत्संग्रहः । सच्छास्त्रादी-
त्यत्राऽऽदिशब्देन काव्यालंकारनाटकादेः संग्रहः । तत्राप्यविरोधिनेति
विनोदविशेषणात्प्रतिवादित्वादिवशसंभावितकलहादेर्व्युदासः । एवं
सन्मार्गादितिहेतुकथनाद्धर्मविरुद्धकामशास्त्रस्य तथा मन्त्रशास्त्रस्य
तद्वन्नास्तिकषड्दर्शनीतत्प्रकरणादेश्च निरासः । मन्त्रेत्युपलक्षणं तन्त्राग-
मादेरपि । एवं चात्र

वृथाविवादवाक्यानि परिवादांश्च वर्जयेत् ।

इत्यत्रिवचनात्सन्मार्गादेर्विरोधिनेति विष्णुपुराणवचनाच्च सूचिताः
सामयाचारिकाः सर्वे धर्मास्तेषां संग्रहः स्वीयधर्मप्रश्नोक्त एव सप्रपञ्च-
मुच्यते—

आत्मप्रशंसां परगर्हामिति च वर्जयेत् । इति ।

प्रशंसां स्तुतिम् । गर्हां निन्दाम् ।

सह वसन्सायं प्रातरनाहूतो गुरुदर्शनार्थो गच्छेत् । इति ।

सह वसन् । एकास्मिन्ग्रामे वसन्नित्यर्थः ।

नाप्रोक्षितमिन्धनमग्नावादध्यात् । इति ।

श्रौते स्मार्ते लौकिकेऽग्नावप्रोक्षितमिन्धनं नाऽऽध्यात्केचिल्लौकिके-
नेच्छन्तीत्युज्ज्वला । अत्रैतत्प्रसङ्गस्तु शीतादिकाले शकटीप्रज्वालना-
र्थमेव ।

मूढस्वस्तरे चास*स्पृशन्पानप्रयतान्प्रयतो मन्येत तथा तुणकाष्ठेषु
निखातेषु । इति ।

पतितचण्डालसूतकोदक्याशवस्पृष्टिस्तत्स्पृष्ट्युपस्पर्शनं सचैलमिति
गौतमः । तस्मिन्विषये चेदमुच्यते । शयनतयाऽऽसनतया वाऽऽस्तीर्णप-
लालादिः स्वस्तरः । पृषोदरादिदर्शनाद्रूपसिद्धिः । यत्रातिश्लक्ष्णतया
पलालादेर्भूलाग्रविभागो न ज्ञायते स मूढः । मूढश्चासौ स्वस्तरश्च मूढ-
स्वस्तरस्तस्मिन्पतितादिष्वप्रयतेषु यदि कश्चित्प्रयत उपविशेन्न च तान्सं-
स्पृशेत्स प्रयतो मन्येत । यथा प्रयतमात्मानं मन्यते प्रयतोऽहमस्मीति
तथैव मन्येत । नैवंविधविषये तत्स्पृष्टिन्यायः प्रवर्तत इति । तृणकाष्ठे-
ष्वपि भूमौ निखातेषु तथाऽत्र तत्स्पृष्टिन्यायो न भवतीति व्याख्यातमु-
ज्ज्वलाकृता ।

अग्निं नाप्रयत आसीदेत् । इति ।

अप्रयतः सन्नग्निं नाऽऽसीदेदिति उज्ज्वलाकृत् । न स्पृशेदित्यर्थः ।

न चैनमुपधमेत् । इति ।

एनमग्निं नोपधमेत्स्मार्तं श्रौतं तूपधमेदित्युज्ज्वलाशयः । एवं च
स्मार्तादिमग्निं समीपे स्थित्वाऽपि धमेत् । वेणुधमन्या प्रज्वालयेत्तस्य
वैधत्वेन तत्सामीप्यस्यैवाऽऽनश्यकत्वाल्लौकिके तु शीतनिवारणाद्यर्थं यदि
संकटे स्वयमेव धमेच्चेद्दूरं स्थित्वैव धमेत्तत्स्फुलिङ्गादिसंपर्कसंभवादिति
भावः ।

खट्वायां च नोपदध्यात् । इति ।

अग्निं खट्वाया अधस्तान्नोपदध्यात् । अत्राप्यशक्तौ न दोष
इत्युज्ज्वला ।

नेमं लौकिकमर्थं पुरस्कृत्य धर्मांश्चरेत् । इति ।

इमं लौकिकं लोके विश्रुतम् । ख्यातिलाभपूजादिकमर्थं प्रयोजनं
पुरस्कृत्याभिसंधाय धर्मान्न चरेदित्युज्ज्वला ।

[* अग्निमादित्यमपो ब्राह्मणान्देवताद्वारं प्रतीवातं च शक्तिविषये
नाभिप्रसारयीत । इति ।

अग्न्यादीन्प्रति पादौ न प्रसारयेत् । शक्तिविषये सतीत्युज्ज्वला ।]

ब्राह्मणगोरिति पादोपस्पर्शनं वर्जयेद्धस्तेन चाकारणात् । इति ।
ब्राह्मणं गां च पादेन नोपस्पृशेत् । इतिशब्दः प्रकारे । विद्यावयोवृद्धा-
नामब्राह्मणानामपि वर्जयेत् । कारणमभ्यङ्गकण्डूयनादि तेन विना हस्ते-
नाप्युपस्पर्शनं वर्जयेत् । पूर्वोक्तानामेवेत्युज्ज्वला ।

देवतानां सुराज्ञश्च गोर्दक्षिणानां कुमार्याश्च परीवादान्वर्जयेत् । इति ।
अग्न्यादिदेवतानां सुराज्ञश्च गोर्दक्षिणानां हिरण्यानामपि कुमार्याश्च
कन्यायाश्च दोषान्सतोऽपि न कथयेदित्युज्ज्वला ।

नैयमिकानि श्रूयन्ते यथाऽग्निहोत्रमातिथेयं यच्चान्यदेवं युक्तम् । इति ।
नैयमिकानि नियमेन कर्तव्यानि नित्यानि कर्माणि श्रूयन्ते । कानि
पुनस्तान्यग्निहोत्रमातिथेयमऽतिथिपूजा ।

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।

एवं गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षवः ॥ इति ।

यच्चान्यदेवं युक्तमेवंविधं श्राद्धादीत्युज्ज्वला ।

ऋत्वे वा जायाम् । इति ।

ऋतुकाले वा जायामुपेयात् । ऋत्व इति रूपसिद्धिरित्येतद्धारण्यो-
ज्ज्वला ।

तृणच्छेदनलोष्टविमर्दननिष्ठीवनानि चाकरणात् । इति ।

तृणच्छेदनाद्यकारणाद्वर्जयेत् । निष्ठीवनकारणं प्रतिश्यायादिरितरत्र
सृषेत्युज्ज्वला ।

यच्चान्यत्परिचक्षते यच्चान्यत्परिचक्षते । इति ।

यच्चान्यदेवं युक्तमाचार्यः परिचक्षते वर्जयेत्तदप्यक्षक्रीडादि वर्जयेत् ।
द्विरुक्तिः प्रश्नसमाप्तिकृतेत्युज्ज्वला ।

नित्यमुदधान्यान्यद्भिररिक्तानि स्युर्गृहमेधिनोर्व्रतम् । इति ।

गृहे यावन्त्युदधानानि उदकपात्राणि घटकरकादीनि तानि सदाऽ-
द्भिररिक्तानि स्युस्तदपि गृहमेधिनोर्व्रतमित्युज्ज्वला ।

तिष्ठन्सव्येन पाणिना दक्षिणं बाहुमुपसंगृह्याऽऽचार्यमाचामयेदन्यं वा
समुदेतम् । इति ।

तिष्ठन्निति प्रह्व उच्यते स्थानयोगात् । न हि तिष्ठन्नाचामयितुं
प्रभवति । सव्येन पाणिना दक्षिणमालभ्य दक्षिणेन करकादि गृही-
त्वाऽऽचार्यमाचामयेत्स्वयमेव शिष्यः साक्षात् । एवं हि स धर्मयुतो
भवति । आचार्ये प्रकृते पुनराचार्यग्रहणमातिथ्यादन्यत्राप्याचार्यमाचा-
मयेतैवमाचामयेदिति । वाशब्दः समुच्चये । अन्यमप्येवमाचामयेत्स चेत्स-
मुदेतः कुलशीलविद्यावृत्तरूपेतो भवतीत्युज्ज्वला ।

विद्यया च विद्यानाम् । इति ।

परीवादाक्रोशांश्च वर्जयेत् । ऋग्वेद एव श्रोत्रसुखः । अन्ये भूषणक-
टुका इति परीवादः । तैत्तिरीयमुच्छिष्टशाखा । याज्ञवल्क्यादीनि ब्राह्म-
णानीदानींतनानि । इत्यादय आक्रोशा इत्युज्ज्वला ।

सर्वाण्युदकपूर्वाणि दानानि । इति ।

सर्वाणीति वचनान्द्रिक्षाऽप्युदकपूर्वैव देयेत्युज्ज्वला ।

पाणिमूढं ब्राह्मणेन नाप्रोक्षितमभितिष्ठते । इति ।

ब्राह्मणस्य पाणिमूढमुपलिप्तं संमृष्टं वा प्रदेशमप्रोक्षितम् । नाभिति-
ष्ठेत्प्रोक्ष्यैवाधितिष्ठत इत्युज्ज्वला ।

अग्निं ब्राह्मणं चान्तरेण नातिक्रामेदनुज्ञाप्य वाऽतिक्रामेत् । इति ।

अग्नेर्ब्राह्मणस्य मध्ये न गच्छेत् । अग्ने स्पष्टम् ।

ब्राह्मणांश्च । इति ।

मध्ये नातिक्रामेदित्युज्ज्वला ।

अग्निमापश्च न युगपद्धारयेदग्नीनां संनिवापं वर्जयेद्वचनात् । इति ।

अग्निमुदकं च युगपन्न धारयेत्पृथगवास्थितानामग्नीनामेकत्र समवा-
पनं न कुर्यादग्नावाग्निं न क्षिपेदित्यन्ये अवचनात् । आवापवचने
सति तु कुर्यादित्युज्ज्वला ।

प्रतिमुखमग्निमाह्नियमाणं नाप्रतिष्ठितं भूमौ प्रदक्षिणी कुर्वीत । इति ।

यदाऽस्य गच्छतः प्रतिमुखमग्निराह्नियते तदा न तं प्रदक्षिणी कुर्यात्स
चेद्भूमौ प्रतिष्ठितो न भवति । प्रतिष्ठिते चाग्नौ प्रदक्षिणी कुर्या-
दित्युज्ज्वला । अत्र भूमावप्रतिष्ठितमिति मूलेऽग्निविशेषणं तु प्रति-
मुखमाह्नियमाणमिति विशेषणान्तरेण सह विरुद्धमेव । न ह्याह्नि-
यमाणस्य तस्य भूमौ प्रतिष्ठितत्वलक्षणं स्थापितत्वं तत्कालावच्छेदेन
संभवति नामेत्यतस्तद्भूमौ स्थापितस्य तस्य प्रदक्षिणीकरणैकविधा-
यकतया पर्यवस्यतीत्यभिसंधायैवोक्तमुज्ज्वलाकारैः प्रतिष्ठिते चाग्नौ प्रद-
क्षिणी कुर्यादिति ।

पृष्ठतश्चाऽऽत्मनः पाणी न संश्लेषयेत् । इति ।

स्वे पृष्ठभागे स्वपाणिद्वयं न संश्लेषयेन्न बध्नीयात्स्वयमित्युज्ज्वला ।

आत्ततेजसां भोजनं न वर्जयेद्भस्मतुषाधिष्ठानं च । इति ।

आत्ततेजांसि तक्रकाञ्जिकादीनि तानि नोपभुञ्जीत । भस्मतुषांश्च
नाधितिष्ठेन्नाऽऽक्रामेदित्युज्ज्वला ।

पादयोः प्लेङ्गोलनं जानुनि चात्याधानं जङ्घाया नखैश्च नखच्छे-
दनवादनस्फोटनानि ष्ठीवनानि चाकारणाद्यच्चान्यत्परिचक्षते योक्ता च
धर्मयुक्तेषु द्रव्यपरिग्रहेषु प्रतिपादयिता च तीर्थं यन्ता चातीर्थं यतो न
भयं स्यात्संग्रहीता च मनुष्यान्भोक्ता च धर्माविप्रतिषिद्धान्भोगानेव
वर्तमान उभौ लोकावभिजयति । इति ।

प्लेङ्गोलनमान्दोलनमितस्ततश्चालनम् । एकस्मिञ्जानुनीतरजङ्घाया
अत्याधानमवस्थापनं वर्जयेत् । पर्वाङ्गुलीनां स्फोटनान्यकारणात् ।
कारणं वातादि । वादनस्फोटनानि समासपाठेऽप्येष एवार्थः । यच्चान्य-
दुक्तव्यतिरिक्तं तृणच्छेदनादि परिचक्षते गर्हते तदपि वर्जयेत् । धर्मा-
विरुद्धा ये द्रव्यपरिग्रहास्तेषु योक्ता, उत्पादयिता स्यात् । तीर्थं गुणव-
त्पात्रं यात्रा वा तत्र द्रव्यस्यार्जितस्य प्रतिपादयिता स्यात् । यन्ता
नियन्ता । अप्रदाताऽतीर्थेऽयन्ता(?) च स्यात् । यतः पुरुषादप्रतिपादने न
भयं स्यात् । भयसंभवे तु पिशुनादिभ्यो देयम् । अर्थप्रदानप्रियवचना-
द्यनुसारेण मनुष्याणां संग्रहशीलः स्यात् । एवं महत्या पुष्ट्या युक्त
उक्तप्रकारमनुतिष्ठन् । उभौ लोकावभिजयति । भोगेनेमं लोकं तीर्थं
प्रतिपादनेन चामुं लोकमित्युज्ज्वला । येषु कर्मसु पुरोडाशाश्वरवस्ते
कार्या इति । येषु दर्शपूर्णमासादिषु पुरोडाशा विहिता गृहस्थस्य
तेष्वस्य तत्स्थाने चरवः कार्या इत्युज्ज्वला ।

नवे सस्ये प्राप्ते पुराणमनुजानीयात् ॥ इति ।

नवे धान्ये प्राप्ते श्यामाकनीवारादौ जाते पुराणं पूर्वसंचितं सस्य-
मनुजानीयात्परित्यजेत् । अत्र मनुः—

त्यजेदाश्वयुजे मासि ह्युत्पन्नं पूर्वसंचितम् ।

जीर्णान्यन्नानि वासांसि पुष्पमूलफलानि च ॥ इत्युज्ज्वला ।

इति श्रीमद्वासिष्ठकुलावतंसौकोपाह्वयश्रीरामार्यसृनुना त्र्यम्बकशर्मणा
संगृहीत आचारभूषणार्ये सत्याषाढहिरण्यकेश्याह्निके सप्तमभागकृत्या-
ख्यः सप्तमकिरणः संपूर्णः ।

अथाष्टमभागकृत्यम् । तदाह माधवीये दक्षः—

अष्टमे लोकयात्रा तु बहिः संध्या ततः पुनः ॥ इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि—

अहःशेषं समासीत शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः ।
उपास्य पश्चिमां संध्यां हुत्वाऽग्निं तमुपास्य च ॥
भृत्यैः परिवृतो भुक्त्वा नातितृप्तोऽथ संविशेत् ।

अत्राऽऽद्यवचनेन लोकयात्रावशात्पादुकादिप्राप्तौ तन्नियममाह स्मृति-
रत्नावल्यामापस्तम्बः—

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसंनिधौ ।
आहारे जपकाले च पादुके परिवर्जयेत् ॥
आरुह्य पादुके यस्तु गृहाद्देवगृहं व्रजेत् ।
छेत्तव्यौ चरणौ तस्य नान्यो दण्डो विधीयते ॥ इति ।

अथ श्राद्धभोजिनां संध्यावन्दने विशेषः पारिजाते—

दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धमुद्दिजः ।
ततः संध्यामुपासीत शुध्येत तदनन्तरम् ॥ इति ।

इदं संध्याधिकारार्थं न तु श्राद्धभोजनप्रायश्चित्तम् । तस्य प्रायश्चित्त-
ग्रन्थेभ्य एव ज्ञेयत्वादिह विलेखनस्यानुपयोगाद्काण्डपाण्डित्यापत्तेश्च ।
अथ सायंसंध्या । तत्कालमाह संवर्तः—

सादित्यां पश्चिमां संध्यामर्धास्तमितभास्कराम् । इति ।

गौणकालस्तु स्कान्दे—

उदयात्प्राक्तनी संध्या घटिकात्रयमिष्यते ।
सायंसंध्या त्रिघटिका चास्तादुपरि भास्वतः ॥ इति ।

तत्र संकल्पे सायमित्यूहः । अग्निश्च मा मन्युश्चेत्यादिपाणिमन्त्रः ।
अर्घ्यदानं तु प्रत्यङ्मुखेनोपविश्य भूमावेव कार्यम् । उपस्थाने तु
प्राच्यादिक्रम एव युक्तः । केचित्तु प्रतीच्यादिक्रमोऽत्रेत्याहुरिति गोपी-
नाथदीक्षिताः । ततो होमः । स च दिवाभोजनोत्तरं प्राप्तोऽपि न दोषा-
येति व्रतराजार्के वराहपुराणे—

स्नानं संध्या तर्पणादि जपहोमसुरार्चनम् ।
उपोषितेन कर्तव्यं सायंकालाहुतिं विना ॥ इति ।

उपलक्षणमिदं सायंसंध्यादेरपि । एवं होमं विधाय सायं शिवपूजै-
वावश्यं कार्या । तदुक्तं लिङ्गार्चनचन्द्रिकायां कौर्मि—

नाऽऽराधयति यः सायं देवदेवोत्तमं शिवम् ।
स पिशाचो भवेच्चैव नात्र कार्या विचारणा ॥ इति ।

शिवगीतायामपि--

प्रदोषे यो मम स्थानं गत्वा पूजयते तु माम् ।

स परां श्रियमाप्नोति पश्चान्मयि विलीयते ॥ इति ।

स्कान्देऽपि—

अतः प्रदोषे शिव एक एव पूज्यो न चान्ये हरिपद्मजाद्याः ।

तस्मिन्महेशे विधिभेज्यमाने सर्वे प्रसीदन्ति सुराधिनाथाः ॥ इति ।

अभिषेकादिविस्तरतः पूजां कर्तुमशक्तौ गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याख्य-
पञ्चोपचारैस्त्वसाववश्यं कार्यैव । तत्प्रकारस्तूक्तः पुरैव तत्प्रकरणे । ततः
सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ॥

इतिवचनात्सायं पाके प्रातस्तन्त्रेणोभयकालिके वैश्वदेवेऽननुष्ठिते
सायं वैश्वदेवावश्यकता । तत्र कश्चिद्विशेषो माधवीये विष्णुपुराणे
दर्शितः—

पुनः पाकं समुत्पाद्य सायमप्यवनीपते ।

वैश्वदेवनिमित्तं वै पत्न्या सार्धं बलिं हरेत् ॥

तत्रापि श्वपचादिभ्यस्तथैवान्नविसर्जनम् ।

अतिथिं चाऽऽगतं तत्र स्वशक्त्या पूजयेद्बुधः ।

दिवाऽतिथौ तु विमुखे गते यत्पातकं नृप ।

तदेवाष्टगुणं पुंसां सूर्योढे विमुखे गते ॥

तस्मात्स्वशक्त्या राजेन्द्र सूर्योढमतिथिं नरः ।

पुजयेत्पूजिते तस्मिन्पूजिताः सर्वदेवताः ॥

कृतपादादिशौचश्च भुक्त्वा सायं ततो गृही ।

गच्छेच्छय्यामस्फुटितां ततो दारुमयीं नृप ॥ इति ।

अत्र हि पत्न्या सार्धं बलिं हरेदिति वचनात्सायं वैश्वदेवबलिहरणे
पत्नीनैकट्यावश्यकतेति प्रतिभाति । एवं सायमागतोऽतिथिः सूर्योढ-
इति रामाण्डारादयस्तस्य पारिभाषिकीं सूर्योढसंज्ञामाहुः । सूर्य उढोऽति-
क्रान्तो येन स तथा सूर्यास्तोत्तरमागत इति व्युत्पत्त्याऽपि सेति ध्येयम् ।
तत्र संकल्पे सायमित्यूहं कृत्वा नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहेत्यन्तं कृत्वाऽ-
दितेऽन्वित्याद्युत्तरपरिषेकं विधाय ये भूताः प्रचरन्ति नक्तं बलिमित्या-
द्येवोक्त्वा छदिःप्रदेशे नभस्येवोर्ध्वं बलिर्देवो न भूमौ नक्तं चारिभ्य
इदमिति त्यागश्च । ततो हस्तादि प्रक्षाल्यातिथिं भोजयित्वा स्वयं
भोजनं कुर्यात् । तत्र वर्ज्यकालः । आचाररत्नेऽपराके—

अयने रविसंक्रान्तौ रविवारे च पर्वसु ।

मृताहे जन्मदिवसे न कुर्यान्निशि भोजनम् ॥ इति ।

मृताहे पित्रोरिति शेषः । यदि तत्र प्रदोषचतुर्थीसोमवारव्रतप्रयुक्तं रात्रावपि परमेश्वरार्चनोत्तरं तत्तत्समये पारणावश्यकत्वेन भोजनं प्राप्तं तदा मध्याह्ने श्राद्धं विधाय तदानीमवग्रहणं विधाय तच्छेषं किञ्चिदुप-
वासामञ्जकं घृतादि तदानीं प्राश्योचितं तच्छेषं परमान्नाद्यपि संस्थाप्य रात्रौ पुनः पाकं कारयित्वा देवार्चनवैश्वदेवनैवेद्यातिथिभोजनादिकं विधाय स्वयं तेन साकं तद्भुञ्जीयादिति मृताह इति रात्रिभोजनवर्जन-
निमित्तनिचयान्तःसंगृहीतस्यैतस्य सामान्यवचनस्य तत्तन्निबन्धसहस्र-
प्रकटतत्तद्व्रतपारणाविधायकविशेषवाक्यैरुत्सर्गापवादन्यायेन बाध एव ।
न चेदं नित्यं निषेधनं निरुक्तभोजनविधानं तु काम्यमेव तद्व्रतानामेव
काम्यत्वेन तदङ्गस्य तथात्वं तु कैमुत्यसिद्धमिति वाच्यम् । तेषामपि
तद्विधायकवाक्यपर्यालोचनयोभयविधत्वस्यापि संभवात् । ननु भवतु
प्रदोषादेस्तथात्वं सोमवारव्रतस्य तु नैतद्वक्तुं युक्तमिति चेन्न । तस्यापि
तथात्वस्य श्रुतावपि प्रसिद्धत्वात् । तथा ह्याथर्वणिकाः समामनन्ति
बृहज्जाबालोपनिषदि—

ये चान्ये काश्यां पुरीषकारिणः प्रतिग्रहरतास्त्यक्तमस्मधारणास्त्यक्त-
रुद्राक्षधारणास्त्यक्तसोमवारव्रतास्त्यक्तान्तर्गृहयात्रास्त्यक्तपञ्चाक्षरजपा-
स्त्यक्तरुद्रजपास्त्यक्तभैरवार्चना भैरवीं घोरां यातनां नानाविधां काश्यां
परेता भुक्त्वा ततः शुद्धा मां प्रपद्यन्ते । इति ।

नन्वेतस्यार्थवादस्य ततश्चाप्रमादेन निवसेत्काश्यामिति काशीनिवा-
सविधिमात्रशेषत्वं वाच्यम् । तथाचाऽऽस्तां तद्वासिनां तत्स्वीकारोत्तरं
तदत्यागरूपं नित्यत्वमिति चेत्सत्यम् । तस्य तथात्वेऽपि चित्तशुद्धिद्वारा
मोक्षेतराफलकत्वं तु निर्विवादमेव । तत्तु संध्यावन्दनादिनित्येष्वपि
प्रसिद्धमेव । तस्माद्युक्तैवोक्तव्यवस्थेति दिक् । विस्तरस्तु स्वयमेव तत्त-
द्व्रतग्रन्थादावालोचनीय इहात्यनावश्यकत्वान्नोक्त इति शिवम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निकेऽष्टमभागकृत्याख्ये किरणे यात्रादिप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ केचिच्छिष्टाः सायंसंध्योत्तरं ध्रुवमण्डले ब्रह्मोपस्थानं स्वशा-
स्वारण्यकस्थसहवैनामकप्रश्नप्रसिद्धं कुर्वन्ति । तदप्यत्राऽऽयुष्करत्वात्ति-

स्यत्वाच्च समाधवीयभाष्यं संग्राह्यमिति लिख्यते । इदानीं सर्वयागार-
म्भेषु आयुष्करं ब्रह्मोपस्थानं विधित्सुस्तन्मन्त्रमाह । अथ वा सायंका-
लीनसंध्यावन्दनादूर्ध्वं ध्रुवमण्डले परब्रह्मोपस्थानार्थं मन्त्रमाह—

मूः प्रपद्ये भुवः प्रपद्ये स्वः प्रपद्ये भूर्भुवः स्वः प्रपद्ये ब्रह्म प्रपद्ये ब्रह्म-
कोशं प्रपद्येऽमृतं प्रपद्येऽमृतकोशं प्रपद्ये चतुर्जालं ब्रह्मकोशं यं मृत्यु-
र्नावपश्यति तं प्रपद्ये देवान्प्रपद्ये देवपुरं प्रपद्ये परीवृतो वरीवृतो
ब्रह्मणा वर्मणाऽहं तेजसा कश्यपस्य । इति ।

य एते पृथिव्यादयस्त्रयो लोका यश्चैषां लोकानां संघस्तत्सर्वं प्रपद्ये
प्राप्नोमि । ब्रह्मशब्देन चतुर्मुखस्य शरीरमुच्यते तस्य कोशः स्थानं
जनो लोकोऽमृतशब्देन विराट्कारणीभूतसूत्रात्मोच्यते । तस्य कोश-
स्थानमव्यक्तमेतच्चतुर्विधं प्रपद्ये भजामीत्यर्थः । चतुर्विधा अन्नमयप्राण-
मयमनोमयविज्ञानमयाः कोशा जालवदावरका यस्य पञ्चमकोशस्य तं
चतुर्जालं परब्रह्मणः कोशम् । यमानन्दमयं मृत्युर्नावपश्यति न हि तस्य
कारणरूपस्य कार्यवद्विनाशोऽस्ति तादृशं कोशमहं प्रपद्ये । देवानिन्द्रा-
दींस्तेषां पुरं देवपुरं च प्रपद्ये । अहं तेन ब्रह्मणा वर्मणा कवचरूपेण
परमात्मना परीवृतः परितो वेष्टितो वरीवृतः पुनःपुनर्वेष्टितः । यथा
कश्यपस्य प्रेक्षकस्य पश्यकः कश्यपो भवतीतिन्यायेन सर्वसाक्षिण ईश्व-
रस्य तेजसा परीवृतोऽहम् । ईदृशो रक्षकोऽयं ब्रह्मा तदुपस्थानेन मृत्युं
तरामीत्यर्थः । ब्रह्मोपस्थानकाले सर्वात्मकस्य परमेश्वरस्य शिशुमारा-
ख्यजलग्रहरूपत्वं ध्यानार्थं दर्शयति—

यस्मै नमस्तच्छिरो धर्मो मूर्धानं ब्रह्मोत्तरा हनुर्यज्ञोऽधरा विष्णुर्हृद-
य* संवत्सरः प्रजननमश्विनौ पूर्वपादावत्रिर्मध्यं मित्रावरुणावपरपादा-
वग्निः पुच्छस्य प्रथमं काण्डं तत इन्द्रस्ततः प्रजापतिरभयं चतुर्थम् ।
इति । यस्मै परब्रह्मणे नमः सर्वैर्नमस्कारः क्रियते तत्परं ब्रह्मात्र शिशु-
माराख्यध्यातव्यस्य जलग्रहस्य शिर उत्तमाङ्गस्थानम् । योऽयमनुष्ठेयो
धर्मः स मूर्धानं मूर्धस्थानीयः शिरसो मूर्धश्चैकस्मिन्नेवाऽऽयतन ऊर्ध्वाधो-
भागभेदेन भिदा । योऽयं चतुर्मुखो ब्रह्मा सोऽयं तस्य ग्रहस्योत्तरा
हनुः । यो विष्णुः सोऽयं हृदयस्थानम् । यः संवत्सरः सोऽयं प्रजनने-
न्द्रियस्थानीयः । यावश्विनौ तौ तस्य ग्रहस्य पूर्वपादौ । योऽयमत्रि-

मुनिः सोऽयं मध्यशरीरम् । यौ मित्रावरुणौ देवौ तावपरपादौ शिशु-
मारस्य । पुच्छे बहवो भागास्तत्राग्निः पुच्छस्य प्रथमं काण्डं प्रथमो
भागस्तत ऊर्ध्वमिन्द्रो द्वितीयस्ततोऽप्यूर्ध्वं प्रजापतिस्तृतीयो भागः ।
ततोऽपि भयरहितं परं ब्रह्म चतुर्थो भागः । एवं ध्यातव्यानवयवा-
न्संपाद्यावयविनं दर्शयति—

स वा एष दिव्यः शाक्रः शिशुमारः । इति ।

यस्मै नमस्तच्छिर इत्यादिनाऽभयं चतुर्थमित्यन्तेन वाक्येन योऽयं
निरूपितः स एष दिव्यो दिवि भवः शाक्रोऽत्यन्तशक्तिमात्रशिशुन्मा-
रयति मुखेन निगिरतीति शिशुमारो जलग्रहविशेषः स हि जलमध्येऽ-
त्यन्तविवृतेन मुखेन मनुष्यान्गृह्णातीति । यदैवं ध्यातव्यो ग्रहो निरूपि-
तस्तद्ध्यानं तत्फलं च दर्शयति—

य एवं वेदाप पुनर्भृत्युं जयति जयति स्वर्गं लोकं नाध्वनि
प्रमीयते नाग्नी प्रमीयते नाप्सु प्रमीयते नानपत्यः प्रमीयते लब्धान्नो
भवतीति ।

यः पुमान्दिव्यं शिशुमारं वेद मनसा ध्यायति स पुनरपमृत्युं
जयति । मार्गादिमरणरूपोऽपमृत्युविशेषश्च न भवति । दुर्मरणं तस्य
न भवतीत्यर्थः । लब्धान्नः सर्वत्र सुलभान्नो भवति । अथ ध्यानानन्त-
रमनुमन्त्रणमाह—

ध्रुवस्त्वमसि ध्रुवस्य क्षितमसि त्वं भूतानामधिपतिरसि त्वं भूतानां
श्रेष्ठोऽसि त्वां भूतान्युपपर्यावर्तन्ते नमस्ते नमः सर्वं ते नमो नमः शिशु-
कुमाराय नमः । इति ।

अनेन मन्त्रेणोदङ्मुखो भूत्वा ध्रुवमण्डलं पश्यन् शिशुमाररूपेण
तमुपतिष्ठेत् । हे शिशुमार त्वं ध्रुवोऽसि विनाशरहितोऽसि तथा ध्रुवस्य
जगत आकाशादेः क्षितं विनाशस्थानमसि । भूतानां सर्वेषां प्राणिनां
त्वमधिपतिरसि । अत एव भूतानां मध्ये श्रेष्ठोऽसि । भूतानि सर्वाणि
त्वामुपेत्य परितः सेवन्ते तस्मात्ते तुभ्यं नमोऽस्तु । यत्सर्वं जगत्तवाधीनं
तथा सति नमः । सर्वं त्वदीयाय सर्वस्मै नमः । तथा ते नमः
सर्वस्य स्वामिने तुभ्यमपि नमः । किं बहुना नमः शिशुकुमाराय
नमः । शिशुमारस्य जलग्रहविशेषस्य कुमारो बालकस्तदाकारो यो ध्रुव-

स्तस्मै नमस्कारोऽस्तु । उभयनमस्कारोऽयं मन्त्रः । तच्च नमस्कारद्वय-
मादरार्थम् ।

इति माधवीये वेदार्थप्रकाशे यजुरारण्यके द्वितीयप्रपाठक एकोनविं-
शोऽनुवाकः । एवमत्र भीष्मस्तवराजोऽपि पठनीयः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणेऽष्टमभागकृत्याख्येऽष्टमकिरणे शिशु-
मारोपस्थानभाष्यादिप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ पत्नीधर्माः । ते तु प्रातःकालाभिधप्रथमभागकृत्यात्मके प्रथमकि-
रणे पत्नीविशेषकृत्यप्रकरणे किञ्चित्तत्कालोचिताः कथिता एवाथापि
सप्रपञ्चमिह सामान्यविशेषाभ्यां निरूप्यन्ते । तथा चोक्ताः प्रयो-
गपारिजाते—विवाहसमये स्वर्णमयं लिङ्गाकारमाभरणं मङ्गलसूत्रेण
संयोज्य भर्ता

माङ्गल्यतन्तुनाऽनेन भर्तृजीवनहेतुना ।

कण्ठे बध्नामि सुभगे सा जीव शरदः शतम् ॥

इति पठन्कन्याकण्ठे बध्नीयात् । तस्मिञ्जीर्णे सद्यः पूर्ववद्बध्नीया-
दित्युक्त्वैवमुक्तगृहस्थधर्मानाचरन्स्त्रीभिस्तदुक्तधर्माचरणं कारयेदिति
तत्प्रसङ्गमुपन्यस्य तत्र सभर्तृकस्त्रीधर्मप्रयोग इति प्रतिज्ञाय जपं तपस्ती-
र्थसेवां प्रव्रज्यां मन्त्रानुष्ठानं देवपूजां चाकुर्वती जडं बधिरं पङ्कं कार्ण-
मन्धं हस्तरहितं कुष्ठिनं दरिद्रमाढ्यं प्रियमप्रियं वृद्धं युवानं रोगान्वितं
क्रोदिनं पिशाचं विदग्धं मूकं कुत्सितं लुब्धं कातरं ललनालम्पटं वा
पतिं द्वेषोपहासं मनसाऽपि व्यभिचारं च मनोवाक्कायकर्मभिर्देवबुद्ध्याऽ-
भ्युत्थानाभिवादनपादप्रक्षालनासनदानधर्मानुकरणार्थसंगमनादिसेवाः
प्रत्यक्षे परोक्षे च भर्तुः प्रियवस्तुनि प्रियमप्रियवस्तुन्यप्रियं समे समं च
कुर्वती स्वदेहपुत्रेष्वपि स्नेहं त्यक्त्वा भर्तृचित्तानुरञ्जनं भर्तुराज्ञा(ज्ञां?)
द्वेषोपहासादि विना श्वशुरसेवां च कुर्वती प्राप्ते काले गुरुयतिबन्धवति-
थ्यभ्यामतपुत्रदासीजनानां द्वेषोपहासादि विना यथाशक्त्यासनप्रियभा-
षणजल्पधनधान्यवस्त्रैर्यथोचितं संभावनां च कुर्वती नृमृगादिकेशधार-
णमकुर्वती स्वदेहसंस्कारप्रसादितकेशकबरी हरिद्राकुङ्कुमसिन्दूराञ्जन-
धारणं नाभ्यादिगुल्फपर्यन्तं परिधानीयवस्त्रकूर्पासकरकर्णभूषणधारणं च

पुष्पताम्बूलसेवां कुर्वती, उत्तरीयवस्त्रं विना बन्धुगृहमगच्छन्ती गमन-
काले त्वरितगमनमकुर्वती श्वशुरादिभिस्ताडिताऽपि परगृहमगच्छन्ती
प्रत्यहं प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा गृहोपकरणानि शुद्धानि कृत्वा कुद्दाल-
दात्रपुटकादीनि च तत्तत्स्थाने निवेश्य संमार्जन्या गृहं संसृज्य गृहमुप-
लिप्य तत्र प्रत्यहं गृहदेवताः संपूज्य चतुर्दशीभानुभौममन्दवासरव्यति-
रिक्तदिनेषु गृहं गोमयेनोपलिप्य रङ्गवह्नयादिभिरलंकृत्य द्वारदेशं संपूज्य
सूर्यायार्घ्यममन्त्रकं ददती भवानीमुपसौवीरभाण्डं पूजयन्ती तत्समीपे
स्वधृतमाल्यानि शूर्पे तृणं वृथालूखले मुसलं च न क्षिपन्ती पत्यौ भुक्त-
वति भोजनं मुदिते संतोषं दुःखिते दुःखं सुप्ते तद्गृहे पश्चाच्छयनं पूर्वमेव
प्रबोधं च कुर्वती भोजनकाले पत्या यद्भुक्तं तदेव भुञ्जाना पत्या
यद्विर्जितं तदेव वर्जयन्ती नाऽऽहूताऽन्यत्र गच्छन्ती पतिवश्चनमकु-
र्वती, अन्यैः प्रकामं वीक्षिता प्रलोभिता जनसंमर्दे स्पृष्टाऽपि विकारम-
गच्छन्ती वणिकप्रव्रजितवैद्यवृद्धव्यतिरिक्तान्यपुरुषेण संभाषणं परपुरुषेण
वीक्षिता वीक्षणं हसिता हास्यं स्तनविवरणं चाकुर्वती गणिकाधु-
र्ताभिसारिणीप्रव्रजिताप्रेक्षणिकामायाकुहककारिकादुःशीलादिभिः सहै-
कत्रावस्थानभेताभिः सह संभाषणं चाकुर्वती, अहंकारकामक्रोधान्द्वा-
रोपसेवनं गवांक्षावेक्षणमसत्प्रलापं वृथा हास्यमुच्चैर्हास्यं भर्तृमनःक्षोभ-
करकार्यं चाकुर्वती पत्यनुज्ञां विना जपहोमदानव्रतदेवपूजादिकमस-
ह्ययं स्वबन्धुभ्यो दानं चाकुर्वती पत्यौ पश्यति तैलाभ्यङ्गोद्वर्तनस्नान-
दन्तधावनालकप्रसाधनवस्त्रभूषणधारणभोजनवमननिद्राञ्जनकर्माण्यकु-
र्वती मूत्रपुरीषोच्छिष्टष्ठीवनपादसेचनान्तर्मार्जितरजांसि गृहाद्दूरे
विसर्जयन्ती धान्यगृहकोशगृहद्रव्यवद्गृहमहानसागारभोजनगृहपय-
स्विनीशयनगृहकार्पासतन्तुकरणगृहगोष्ठक्षीरपचनस्थानदधिमथनस्था-
नेषु धातुविकारेण कृत्रिमस्त्रीकल्पनं मयूरपक्षखण्डबन्धनमन्नशाकक्षीरद-
धितक्रघृततैलाभ्यञ्जनं होमाग्निधूपस्नानपरिक्रियां च कुर्वती गृहदेह-
ल्यादिषु विघ्नेश्वरनन्दिपद्ममहापद्मैरावतलक्ष्मीर्धातुविकारेण कल्पयन्ती
मध्याह्ने सायंकाले च गृहाभ्युक्षणं कुर्वती सायंकालादिसूर्योदयपर्यन्तं
दीपाप्रक्षेपणं कुर्वत्येवं प्रत्यहं वर्तेतेति । तत्र दीपकालमाहाऽऽचारार्के
मरीचिः—

रवेरस्तं समारभ्य यावत्सूर्योदयो भवेत् ।

यस्य तिष्ठेद्गृहे दीपस्तस्य नास्ति दरिद्रता ॥

तस्य दिङ्नि नियममपि—

आयुर्दः प्राङ्मुखो दीपो धनदः स्यादुदङ्मुखः ।

प्रत्यङ्मुखो दुःखदोऽसौ हानिदो दक्षिणामुखः ॥ इति ।

तत्र देवताद्यर्थं घृतदीपः कर्पूरदीपश्च तैलदीपादौ तृणादिशलाकां प्रज्वालय तयैव प्रज्वाल्यो न तु साक्षात् । दीपाग्नेर्निन्दितत्वात् । तदुक्त-
माचारकिरणे—

दीपाग्निं दीपतैलं च मद्यं चाप्येवमादिकान् ।

स्पृष्ट्वा स्नायात्सचेलस्तु पुनराचम्य शुध्यति ॥ इति ।

एवं च साऽपि शलाका सति संभवे वह्न्यन्तर एव प्रज्वाल्या । एतेन तैलादिकव्यावहारिकदीपोऽपि व्याख्यातः । सोऽपि सति संभवे दीपान्तर-
ज्वाल्या नैव प्रज्वालयः किं तु शकट्या(लाका)दिस्थितवह्निज्वाल्यैव । तत्रात एव शलाकां स्थापयन्ति । तच्चोभयोपयोगि भवति वार्तमानिक-
दीपस्य पुरस्करणार्थं गते चास्मिन्दीपान्तरात्प्रज्वालनार्थं च । तदुक्तं
लैङ्गे—

दीपेन दीपं प्रज्वालय दरिद्रो व्याधितो भवेत् । इति ।

एवं दीपप्रलोपनं पुरुषस्य निषिद्धम् ।

दीपप्रलोपनं पुंसां कूष्माण्डच्छेदनं स्त्रियाः ।

अचिरेणैव कालेन वंशच्छेदो भवेद्ध्रुवम् ॥ इति वचनात् ।

एवं दीपे वर्तिकाद्वयमेव नियमेन संयोज्यमेकेश्वरप्रकाशनार्थमन्या
स्वव्यवहारार्थं च । अन्यथेश्वराय दीपप्रदर्शनं वा न स्यात्तत्सत्त्वे तदपि
तद्दीपप्रकाशेन व्यवहरज्जनस्य देवद्रव्यापहारित्वापत्तेश्च । एवं दीपान्तर-
रस्य तैलादिकं सति तस्मिन्दीपान्तरेणैव पूरणीयम् । आयुरपहारमाव-
नासत्त्वात् । कुर्वन्ति सर्वं प्रायेणैवमेव शिष्टाः । समुदिते तु सूर्ये दीपप्र-
क्षेपः परिहितवसनपल्लवादिपवनेन कार्य एव नार्या । सायंकालादीत्यु-
क्तपारिजातग्रन्थे तथैवाऽऽर्थिकप्रथितेः । ततः पत्युर्होमशिवपूजासामग्रीं
संनिवेश्य वैश्वदेवाद्यर्थं पुनः पूर्ववत्सकलपाकसामग्रीं संपाद्य तं विधाय
होमवद्वलिहरणकालेऽपि तन्निकटे स्थित्वा प्राग्बदतिथिभोजनादिभू-
मिशुद्धयन्तं यथाविधि साधु विदध्यात् । तत्राष्टधाविभक्तदिनभागेषु

सौभाग्यवतीनां क्रमेण कृत्यसंग्रहः सौभाग्यकल्पद्रुमेऽष्टस्रग्धराभिः संपा-
दितः स एवेहापि लिख्यते—

बुद्ध्वा ब्राह्मे मुहूर्ते निजपतिचरणौ संप्रणम्याऽऽस्यमस्य
प्रेक्ष्य प्रेम्णाऽथ नैजं शुभमुकुरतले भूमिमभ्यर्च्य पत्नी ।
प्रातःस्मृत्यादि कृत्वा पतिपरिचरणं संविधायैव वेणीं
संरच्याऽऽधाय भाले तिलकमथ गलाधो निमज्जेत्सुभूषा ॥ १ ॥
तूष्णीं सूर्याय दत्त्वाऽर्घ्यमथ तदितरं वासरं प्राप्य मथ्यं
दध्यत्रापीष्टमेतत्किल समुदयतः पूर्वमेवेति वृद्धाः ।
दुग्धं ताम्रान्यपात्रे सजलमलमधिश्चित्य तद्भाण्डशुद्धिः
कार्या पूजोपचारोच्चयरचनमथो शाकसंशोधनादि ॥ २ ॥
सामग्री संनिवेश्या समुचितपचनस्योत्तमा संविशोधय
वारां पात्राणि वार्भिः पटशुचिभिरलं पूरणीयानि नूतनैः ।
गङ्गादेः संगृहीतैः कररुहजनितं स्पर्शमद्धा विहाय
भर्तुः स्नानादिसामग्र्यपि तदभिमता तत्र तत्रोपनेया ॥ ३ ॥
स्नायात्पाकार्थमग्रे स्वयमतुलशुचिः पावकः संनिवेश्य-
श्चुह्यां संप्रोक्षितैधस्तदुपरि सुनिरीक्ष्यैव संस्थापनीयम् ।
त्रिज्वालं तं प्रणम्याऽऽश्वि(श्व)नलजलमरुद्धीममप्यूर्ध्वमत्र
स्थाप्यं चर्वादिपात्रं समुचितजलवत्संपिधानादियुक्तम् ॥ ४ ॥
पाके सिद्धे निवेद्यः स च पतिचरणौ वैश्वदेवादिसिद्ध्यै
तत्तत्पात्रेषु चर्वाद्युचितमुपनिवेश्याथ भिक्षादि देयम् ।
पत्याज्ञामाप्य तूर्णं तदभिहितलसत्सर्वपात्रेषु चान्नं
युक्त्या भूयो विविक्तं सपदि सुपरिवेष्यं यथाशास्त्रमेव ॥ ५ ॥
पत्युस्तृप्तावथैतत्परममृतमिति प्रज्ञयोच्छिष्टमस्य
पात्रेऽन्यान्नेन सार्धं द्रुततरमुपभुज्यास्य ताम्बूलशेषम् ।
भुक्त्वा भूम्यादिशुद्धिर्निखिलपचनवत्पात्रशुद्धिश्च कार्या
दत्त्वाऽऽचाण्डालमन्नं समुचितनिलये स्थापनीयं च किञ्चित् ॥ ६ ॥
धान्यद्रव्यस्वभूषारसविविधलसंत्वाद्यदिव्यौषधानां
स्थानान्यालोच्य शय्यारचनमुखमलं गन्धपुष्पादि सर्वम् ।
सामग्रीजातमारान्निजसुरतविधेः साधनीयं प्रयत्ना-
न्नैजाङ्गे वस्त्रभूषाप्रभृति पतिमनस्तोषकृद्धारणीयम् ॥ ७ ॥

पत्ये पाद्यं निवेद्यं रजनिभुजियुजे वैश्वदेवादिसिद्ध्ये
 सामग्री संनिवेश्या शुचिपचनगृहे दीपनीयाः प्रदीपाः ।
 नत्वा देवाग्निवृद्धान्पतिमपि सहसा होमपूजादिसिद्ध्ये
 सामग्रीं संनिवेद्याहरिव भुजिविधौ प्रस्वपेत्तेन सार्धम् ॥ ८ ॥
 इत्थं पत्न्या विभक्तं व्यवहरणमहर्दिग्विभागेषु सर्वं
 सामान्यात्तेन नित्यं स्वपतिपदसरोजैकसक्तान्तरङ्गा ।
 नारी वर्तेत चेत्स्यात्तदनुगमनिशं चारुधर्मार्थकामैः
 साकं कैवल्यमत्रेत्युदितमिदमभूद्च्युतेनेशतुष्ट्यै ॥ ९ ॥

ये च स्त्रीणां विशेषधर्मास्तथा ये नैमित्तिकरजस्वलात्वगर्भिणीत्वसू-
 तिकात्वादिप्रयुक्तधर्मास्ते सर्वेऽपि सौभाग्यकल्पद्रुमत एव विज्ञेयास्तथा
 संस्काररत्नमालादितोऽपि । अत्र तु ग्रन्थगौरवभियाऽनतिप्रयोजकत्वाच्च
 नैव ते संगृह्यन्त इति शिवम् ।

इति श्रीमद्रासिष्ठकुलावतंसौकोपाह्वश्रीरामार्यसूनुना ड्यम्बकशर्मणा
 संगृहीत आचारभूषणाख्ये सत्याषाढहिरण्यकेश्याह्निकेऽष्टमभागकृत्या-
 त्मकाष्टमकिरणे पत्नीनित्यधर्मनिरूपणप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ शयनम् । तत्र माधवीये गार्ग्यः—

स्वगृहे प्राक्शिराः शेते ह्यायुष्यं दक्षिणाशिराः ।

प्रत्यक्शिराः प्रवासे तु न कदाचिदुदक्शिराः ॥ इति ।

तत्रैव पुराणे—रात्रिसूक्तं जपेत्स्मृत्वा सर्वांश्च सुखशायिनः ।

नमस्कृत्याव्ययं विष्णुं समाधिस्थं स्वपेत्निशि ॥ इति ॥

प्रयोगपारिजाते नर्मदास्तिकप्रार्थनमन्त्रौ—

नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि ॥

नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः ॥ इति ।

जरत्कारोर्जरत्कार्यां समुत्पन्नो महायशाः ।

आस्ति(स्ती)कः सत्यसंधो मां पन्नगेभ्योऽभिरक्षतु ॥ इति च ।

सर्पापसर्पं भद्रं ते दूरं गच्छ महायशाः ।

जनमेजयस्य सत्रान्त आस्तीकवचनं स्मर ॥ इत्यपि

शिष्टाः संपठन्ति सर्पप्रार्थनम् । सुखशायिनो गोभिलेन दर्शिताः—

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महामुनिः ।

कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः ॥ इति ।

शय्यास्थाने गोमयोपलेपनाद्यपि विधेयम् । तदाहाऽऽचारमयूखे गार्ग्यः

शुचिं देशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेत् ।

वैदिकैर्गारुडैर्मन्त्रैरभिमन्त्रय स्वपेत्ततः ॥ इति ।

एवं शय्यास्थान उपानदादिस्थापनमप्युक्तमाचारार्के स्कान्दे—

उपानहौ वेणुदण्डमम्बुपात्रं तथैव च ।

ताम्बूलादीनि सर्वाणि समीपे स्थापयेद्गृही ॥ इति ।

शयनस्थानस्येति शेषः । माधवीये शयनीये वर्ज्यान्याह मार्कण्डेयः—

शून्यालये श्मशाने च एकवृक्षे चतुष्पथे ।

महादेवगृहे चापि मातृवेश्मनि न स्वपेत् ॥

न यक्षनागायतने स्कन्दस्याऽऽयतने तथा ।

कुलच्छायासु च तथा शर्करालोष्टपांसुषु ॥

न स्वपेच्च तथा गर्ते विना वीक्षां कथंचन ।

धान्यगोविप्रदेवानां गुरूणां च तथोपरि ।

न चापि मग्नशयने नाशुचौ नाशुचिः स्वयम् ॥

नाऽऽर्द्रवासा न नग्नश्च नोत्तरापरमस्तकः ।

नाऽऽकाशे सर्वशून्ये च न च चैत्यद्वुमे तथा ॥

नाऽऽर्द्रवासाः स्वपेन्न पलाशशयने न पञ्चदारुकृते न गजभग्नकृते न
विद्युद्दग्धे नाग्निप्लुष्टे न बालमध्ये न वारिमध्ये न धान्ये न गोगेहे न
हुताशसुराणामुपरि नोच्छिष्टो न दिवेति ।

विष्णुपुराणेऽपि—नाविशालां न वै मग्नां न समां मलिनां न च ।

न च जन्तुमयी(यीं) शय्यामधितिष्ठेदनांस्तृताम् ॥ इति ।

उशना—न तैलाभ्यक्तशिराः स्वपेन्नादीक्षितः कृष्णचर्मणि ॥ इति ।

दक्षः—प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासरतो भवेत् ।

यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ इति ।

आचारार्क आश्वलायनः—

पत्नीमृतुमतीं स्निग्धां तृप्तां भोगविवर्जिताम् ।

उपेयान्मध्यरात्र्यन्ते जीर्णेऽन्ने तृप्तमानसः ॥ इति ।

मञ्चलक्षणमुक्तं तत्रैव शिल्पशास्त्रे—

चतुरशीतिपर्वाणि दैर्घ्येण परिकल्पयेत् ।

षष्ट्यङ्गुलानि विस्तारं मञ्चकं हस्तसंमितम् ॥ इति ।

पर्यङ्कोऽप्युक्तस्तत्रैव—आयामः सप्ततालं स्याच्चतुस्तालं च विस्तृतः ।

द्वितालमुन्नतं ज्ञेयमेतत्पर्यङ्गुलक्षणम् ॥ इति ।

तालादिमानं तत्रैव प्रयोगरत्ने स्मृत्यन्तरे—

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं भवेन्मानचतुष्टयम् ।

प्रादेशतालगोकर्णवितस्तिस्तु यथाक्रमम् ॥ इति ।

माधवीये हारीतः—सुप्रक्षालितचरणतलो रक्षां कृत्वोदकपूर्णघटा-
दिमङ्गलोपेतआत्माभिरुचितामनुपहतां सुत्रामाणमिति पठन्, शय्याम-
धिष्ठाय रात्रिसूक्तं जपित्वा विष्णुं नमस्कृत्य सर्पापसर्प भद्रं त
इतिश्लोकं जपित्वेष्टदेवतास्मरणं कृत्वा समाधिमास्थायान्यांश्च वैदिका-
न्मन्त्रान्सावित्रीं जपित्वा मङ्गल्यश्रुतं शङ्खं च शृण्वन्दक्षिणाशिराः
स्वपेदिति । अत्र स्त्रीगमनं तच्चर्तौ कर्तव्यमित्युक्तं धर्मप्रश्ने—

ऋतौ च संनिपातो दारेणानुव्रतम् । इति ।

ऋतुदर्शनमारभ्य षोडशाहोरात्रपरिमित ऋतुस्तत्र संनिपातः प्रयोगो
दारेण कर्तव्यः । छान्दसमेकवचनम् । बहुवचनान्तो हि दारशब्दः ।
शास्त्रतो नियमो व्रतं तदनुरोधेन । तत्र मनुः—

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।

चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः स हि गर्हितः(?) ॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्द्या एकादशी च या ।

त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः ॥

अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।

ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥ इति ।

याज्ञवल्क्यस्तु—एवं गच्छन्निन्नयं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत् ॥ इति ।

आचार्यस्तु चतुर्थीप्रभृतिगमनमाह—

चतुर्थ्यां* स्नातां प्रयतवस्त्रामलंकृतां ब्राह्मणसंभाषामाचम्योपह्वयते ।
इति ।

आपस्तम्बोऽपि—चतुर्थीप्रभृत्याषोडशीमुत्तरोत्तरां युग्मां प्रजानिःश्रे-
यसमृतुगमनमित्युपदिशन्ति । इति ।

तदिह षोडशरात्रिष्वदितः सर्वथा तिस्रो वज्र्याश्चतुर्थ्येकादशी त्रयो-
दश्याचार्येणानुज्ञानाः । मनुना निषिद्धाः । इतरा दश तासु युग्मासु
पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । तत्र चोत्तरामुत्तरामितिव-
चनात्षोडश्यां रात्रौ मघादियोगाभावे गच्छतः सर्वत उत्कृष्टः पुत्रो
भवति । चतुर्थ्यामवमः । मध्ये कल्प्यम् । षोडशस्वेव गमनं गर्भहेतुः ।
तत्रापि प्रथममेवंस्थिते नियमविधिरयम्—योग्यत्वे सत्यृताववश्यं संनि-
पतेत् । असंनिपतन्पुत्रोत्पत्तिं निरुन्धानः प्रत्यवेयादिति । तथा च दोष-
स्मृतिः—

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति ।

तस्या रजसि तन्मासं पितरस्तत्र शेरते ॥ इति ।

पुत्रंगुणार्थितया पूर्वा वर्जयतो न दोषः । अन्ये तु परिसंख्यां
मन्यन्ते—ऋतावेव संनिपतेन्नान्यत्रेति । तेषामृतावनियमनाद्गमनेऽपि
दोषाभावः । दोषस्मरणमनुपपन्नं स्यात् । सर्वथा विधिर्न भवति ।
रागप्राप्तत्वात्संनिपातस्येत्युज्ज्वलाव्याख्या । चतुर्थ्यामित्यादि यदुज्ज्व-
लाकारैः स्वगृह्यसूत्रमुदाहृतं तस्य स्वकीयत्वादेवावश्यं व्याख्यानमपे-
क्षितं न तु तदुदाहृतत्वेऽप्यापस्तम्बसूत्रवदुपेक्षणीयत्वमिति तच्चिरात्रे
स्नातां प्रयतवस्त्रां शुद्धवस्त्रामलंकृतां माल्यानुलेपनभूषणैः । ब्राह्मण-
संभाषां विशिष्टेन ब्राह्मणेन प्रथमं संभाषणं कृतवतीं भर्ता प्रयतोऽपि
कर्मार्थं पुनराचम्य चतुर्थ्यां रात्र्यां मैथुनार्हामुपह्वयते समीपमाह्वयत
इति मातृदत्तः । संस्काररत्नमालायां मरीचिरपि—

भर्तुः शुद्धा चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला ।

दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुध्यति ॥ इति ।

अत्राऽऽचाररत्ने व्यवस्थामाहाऽऽपस्तम्बः—

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते ।

गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथंचन ॥ इति ।

स्मार्तरत्नमालायां पराशरः—

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति ।

घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ इति ।

अत्र नियमस्तत्रैव कामशास्त्रे—

पक्षान्निदाघे हेमन्ते नित्यमन्यर्तुषु त्र्यहात् ।

स्त्रियं कामयमानस्य जायते न बलक्षयः ॥ इति ।

तत्रापि वक्ष्यमाणनिषिद्धदिनानि त्यक्त्वाऽवश्यमेव गन्तव्यम् । अनृतावपि गमनमुक्तं धर्मसूत्रे—

अन्तरालेऽपि दार एव ब्राह्मणवचनाच्च संवेशनम् । इति ।

अन्तराले मध्य ऋत्वन्तरालेऽपि संनिपातः स्यात् । दार एव सकामे सति । अथाऽऽत्मनो जितेन्द्रियतया न तादृशपारवश्यं तथाऽपि भार्यायामेवेच्छन्त्यां तद्रक्षणार्थमवश्यं संनिपतेदिति वक्ष्यति । अप्रमत्ता रक्षथ तन्तुमेतमित्यादि । अनुव्रतीम(तमि?)त्यनुवृत्तेः प्रतिषिद्धेषु दिनेषु न भवति । यदिदमनन्तरोक्तं संवेशनं तत्र ब्राह्मणवचनं प्रमाणं काममाविजनितोः संभवामेतीत्युज्ज्वला । याज्ञवल्क्योऽपि—

यथाकामी भवेद्दाऽपि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् ।

स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्षया यतः स्मृताः ॥ इति ।

वरमिन्द्रदत्तवरम् । प्रयोगपारिजातेऽपि—अनृतावपि पत्न्याऽभ्यर्थितः सन्यज्ञोपवीतं पृष्ठतः कृत्वोपगच्छेत् । वन्ध्या बहुप्रजाऽपि कामान्धा चेदनिशं यथाशास्त्रमुपगच्छेत् । इति ।

तामिति शेषः । अथ संभोगे कृत्यम् । स्मार्तरत्नमालायां रतिसमये दीपसांनिध्यमुक्तं रतिप्रकाशे—दीपसमीपे रतिं कुर्यात् । इति । अयं च दीपो भार्ययैव प्रज्वालनीयः । तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे—

भार्यैव दीपं प्रज्वाल्य पत्युश्चित्तानुवर्तिनी ।

नमस्कृत्य तु भर्तारं रमयेत्सह तेन तु ॥ इति ।

आसूर्योदयं दीपस्थापनासामर्थ्ये तु आचारप्रकाशे स्मृतिसंग्रहे—

कञ्चुकोत्थेन मरुता दीपं नैव निवारयेत् ।

आननोत्थेन वातेन हस्तसंजातवायुना ॥

विसृजेति समुच्चार्य लोपयेद्दीपमञ्चलात् ।

तावच्च तूष्णीं स्थातव्यं यावच्छेषः प्रशाम्यति ॥ इति ।

विसृजेत्यत्र दीपः संबोध्यः । हे दीप विसृज ज्योतिरिति शेषः । विसृज त्वं त्यजेत्यर्थः । अञ्चलादञ्चलेन । शेषो दीपशेषः ।

प्रदोषकाले या नारी पतिसंगममाचरेत् ।

आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

इति वचनाद्वित्यादौ तथा सुरतस्य दुष्टफलकत्वस्मरणाच्च प्रदोषकालः
सूर्यास्ताद्विमुहूर्तात्मा सुरते वर्ज्य एव ।

पादो लग्नतनुश्चैव उच्छिष्टं ताडनं तथा ।

कोपो रोषश्च निर्भर्त्सः संभोगे न च दोषभाक् ॥

कुतः—शास्त्रस्य विषयस्तावद्यावन्मन्दरसो नरः ।

रतिचक्रे प्रवृत्ते तु न शास्त्रं नापि च क्रमः ॥

इति वैद्यके भावप्रकाशे रात्रिचर्याप्रकरणे प्रतिपादनात्कान्तया पति-
शरीरे स्वपादस्पर्शनादयोऽपराधाः सुरते तु नैव मन्तव्याः । एवं

कञ्चुकेन समं नारी भर्तुः सङ्गं समाचरेत् ।

त्रिभिर्वर्षेश्च मध्ये वा विधवा भवति ध्रुवम् ॥

ताडपत्रमिलत्कर्णां यदि मैथुनमाचरेत् ।

पञ्चमे सप्तमे वर्षे वैधव्यमिह जायते ॥

कामातुरेण पतिना संयोगे यदि याचिता ।

निवारयति तं नारी बालरण्डा भवेत्सदा ॥

इति वचनात्सुरते कञ्चुकताडपत्रधारणं भर्तृप्रार्थनप्रत्याख्यानं च
कदाऽपि नैव कार्यम् । दाराणामपि भर्त्राऽलंकरणं कार्यमित्युक्तं धर्मसूत्रे—
निशायां दारं प्रत्यलंकुर्वीत । इति ।

दारं प्रतीतिवचनादुपगमनार्थमलंकरणं तेन भार्याया अशक्त्यादिना
उपगमनायोग्यत्वे नायं नियम इत्युज्ज्वला । स्रगनुलेपनधारणमुक्तं
तत्रैव—

अनाविःस्रगनुलेपनः स्यात् । इति ।

नाऽऽविर्भूते प्रकाशिते स्रगनुलेपने यस्य स एवंभूतो न स्यादित्यु-
ज्ज्वला । माल्यं मालास्रजावित्यमरः । अनुलेपनं चन्दनादिना । पत्न्या
अपि सुमण्डितत्वमवश्यमेव ।

कुङ्कुमं चाञ्जनं चैव ताम्बूलं सिन्दुरं तथा ।

धौतवस्त्रं च कुसुमं संयोगे च सुखावहम् ॥

इति वचनान्नित्यम् । कुङ्कुमं भाषया केशर इति प्रसिद्धम् । अथ
कुङ्कुमम् । काश्मीरजन्माग्निशिखमित्यमरात् । मैथुने निवीतित्वमुक्तमा-
चाररत्नेऽत्रिणा—

ऋषितर्पणचाण्डालभाषणे शववाहने ।

विण्मूत्रोत्सर्जने स्त्रीणां रतिसङ्गे निवीतयः ॥ इति ।

अत्र निवीतं मनुष्याणामित्यनुवाददर्शनात्, निवीतना भवितव्य-
मिति भूः प्रजापतिनेति सूत्रे मातृदत्तोक्तिरपि । निवीतिलक्षणं कोशे—
उपवीतं यज्ञसूत्रं प्रोद्धृते दक्षिणे करे ।

प्राचीनावीतमन्यस्मिन्निवीतं कण्ठलम्बितम् ॥ इति ।

अन्यस्मिन्वामकरे । एवं मैथुनकाले तर्जन्यां रूप्यं चेत्परित्याज्यम् ।
शिखाग्रन्थिश्च विसर्जनीयः ।

तर्जनीं रौप्यसंयुक्तां ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम् ।

भोजने मैथुने मूत्रे कुर्वन्कृच्छ्रेण शुध्यति ॥

इति संग्रहे प्रायश्चित्तश्रवणात् । मूत्रमुपलक्षणं पुरीषोत्सर्गस्यापि ।
रजोदर्शनात्प्रागपि गमनमुक्तमाचाररत्ने कश्यपसंहितायाम्—

वर्षद्वादशकादूर्ध्वं यदि पुष्पं बहिर्न हि ।

अन्तः पुष्पं भवत्येव पनसोदुम्बरादिवत् ॥

अतस्तत्र प्रकुर्वीत तत्सङ्गं बुद्धिमान्नरः । इति ।

एवं यस्तु—प्राग्रजोदर्शनात्पत्नीं नेयाद्गत्वा पतत्यधः ।

व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ॥

इति दक्षाश्वलायनाभ्यां निषेध उक्तः स बह्वृचादिविषयः ।
तैत्तिरीथैस्तु रागप्राप्तौ गमनं कार्यमेवेति सुदर्शनवृत्तिरपि । तत्रापि यदि
रमण्यनुकूला न तु बलात्कारेण ।

गलत्ताम्बूलवदनां नग्नामाक्रन्दरोदनाम् ।

दुर्मुखीं च क्षुधायुक्तां संयोगे परिवर्जयेत् ॥

इति निषेधात्सुरतस्योभयप्रसादसाध्यस्यैव सात्त्विकसुखहेतुत्वाच्च ।
अत एव सुप्रक्षालितचरणतल इति पूर्वोदाहृतहारीतोक्तेः, अनाविः-
स्रगनुलेपनः स्यादिति च तादृक्स्वसूत्राच्च पत्न्यैव पादप्रक्षालनं यक्षक-
र्दमादिनाऽनुलेपनं नानाविधसंफुल्लमल्लिकादिस्रंगादिसमर्पणं धूपाघ्रापणं
कर्पूरादिप्रदीपप्रदर्शनं नानाविधकामेहामोदकानेकविधापूपादिखाद्यादि-
समर्पणं ततः सुप्रतप्तससिताकजातीफलकाश्मीरकस्तूरीसुवर्णदलादिसं-
स्कृतकोष्णगोपयःपाथनं करमुखशुद्ध्यार्थं पानाचमनाद्यर्थं यथोक्तोद-

कादिनिवेदनं ताम्बूलप्रदानं चावश्यं कार्यम् । यक्षकर्दमलक्षणमुक्तमभियुक्तैः—

कस्तूरिकाया द्वौ भागौ द्वौ भागौ चन्दनस्य च ।
कुङ्कुमस्य त्रयो भागाः शशिनस्त्वेक एव हि ॥
यक्षकर्दमनामैष समस्तसुरवल्लभः ॥ इति ।

यद्यप्येतत्प्राक्पूजाप्रकरणे कथितमेवाथापि देवार्थं कथिताद्यक्षकर्दमान्मनुष्यार्थमत्र कथितस्य तस्यान्यदेव स्वरूपं स्यादिति शङ्काशान्त्यर्थमेवेदं पुनः कथनम् । स्त्रीणां पत्येकदेवत्वात् । एवं ताम्बूलसामग्र्यपि प्रकृतैकात्युपयोगिनी सौभाग्यकल्पद्रुमे स्रग्धरयोक्ता । यथा—

संपच्यन्नागवल्लीविशिरदलकुलं पूगखण्डं सुधेष-
त्सारोऽल्पः खादिरोऽथाग्निशिखसृगमदस्वर्णवातामकं च ।
कैक्कोलं जातिपत्रं फलमपि च तथैलाफलं सहवङ्गं
ताम्बूले संप्रयोज्या इति मदनमितास्तत्प्रवृद्ध्यै पदार्थाः ॥ इति ।

एतादृशं ताम्बूलं भर्त्रे भक्त्या भूयो दत्त्वा तन्मुखतः स्वयमपि तेन संचर्व्य शेषं दत्तं प्रेम्णा प्रसादैकधियैव ग्राह्यम् । तथा तेनाप्यनयाऽन्यताम्बूलं संचर्व्य दत्तं चेत्प्रेम्णैव ग्राह्यम् । तदुक्तं—

भर्त्रुच्छिष्टं सदा भोज्यमन्नं ताम्बूलमेव च ।
उच्छिष्टं तु न भुञ्जीत गृहस्थो गृधनं विना ॥ इति ।

अत्र गृधनं गृध् इच्छायामिति धातोरिच्छाशब्दितकामैकपुरुषार्थं मैथुनप्रसङ्ग इत्यर्थः । अथ शय्यां प्रति सुरतार्थं समधिरोहं भर्त्राज्ञयैव समुत्थाय

दीपेनाऽऽत्मतनुच्छायां भर्तुश्चोपरि चेत्यजेत् ।
तौ दंपती दरिद्रत्वं मा मुञ्चतां विनिश्चितम् ॥

इतिवचनात्तदुपरि प्रदीपप्रकाशव्यवधानेन स्वच्छायामपातयन्त्येव ।
नमस्कृत्वा भर्तृपादौ पश्चाच्छय्यां समाविशेत् ।
नारी सुखमवाप्नोति न च दुःखप्रभागिनी ॥

इतिवचनात्तच्चरणकमले नमस्कृत्य मञ्चकमधितिष्ठेत् । ततः पतिः सुप्रसन्न एव सुप्रसन्नायां पत्न्यां भगवद्वात्स्यायनमुनिप्रणीतकामशास्त्रप्रकरणनिपुणस्तदुक्ताविधिनैव सुरतमालिङ्गनचुम्बनादिबहिःसंभोगपू-

र्धकमन्तःसंभोगाख्यं यथेच्छमाचरेत् । तत्तु सर्वं तत एव ज्ञेयम् ।
तज्ज्ञानस्यैवात्राऽऽवश्यकत्वात् । तथा चोक्तम्—

कामशास्त्रमविज्ञाय रमते यो नरः स्त्रियाम् ।

यथा गोगणमध्यस्थो वृषो रतिमवाप्नुयात् ॥ इति ।

बहिःसंभोगस्तूक्तो धर्मप्रश्रीयव्याख्यायामुज्ज्वलाख्यायां मैथुनं चरे-
दितिसूत्रे—

उपचारक्रियाः केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् ।

एकशय्यासनक्रीडाश्चुम्बनालिङ्गने तथा ॥ इति ।

एवं सामान्यतो भोगाष्टकमप्युक्तं जातिविवेके—

सुगन्धं वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजने ।

शय्या च भूषणं चैव भोगाष्टकमुदाहृतम् ॥ इति ।

एवमन्येऽपि वसन्ताद्युचितास्तालवृन्ताद्या ऊह्याः । अथ रतिः ।
तत्प्रकारस्तूक्तो मयूखे—

संस्मृत्य परमात्मानं पत्न्या जङ्घे प्रसारयेत् ।

योनिं स्पृष्ट्वा जपेत्सूक्तं विष्णुर्योनिं प्रजातये ॥

रेतः सिञ्चेत्ततो योन्यां तस्माद्गर्भं विभर्ति सा ॥ इति ।

तैत्तिरीयश्रुत्या त्वत्रोपासनमपि ध्यानरूपं विहितम् । प्रजातिरमृत-
मानन्द इत्युपस्थ इति भृगुवह्न्याम् । श्रीमद्भगवत्पादपादारविन्दपरा-
गैरत्र भाष्यमध्येवमेव कृतम्—प्रजातिरमृतममृतत्वप्राप्तिः पुत्रेण ऋण-
विमोक्षद्वारेणाऽऽनन्दः सुखमित्येतत्सर्वमुपस्थानिमित्तं ब्रह्मैवानेनाऽऽत्म-
नोपस्थे प्रतिष्ठितमित्युपास्यमिति । विवृतं चैतद्भाष्यमेव श्रीमत्सुरेश्वरा-
चार्यचरणनलिनैरेतद्वार्तिके—

ब्रह्मोपस्थ उपासीत प्रजात्यादिगुणात्मकम् ।

प्रजातिः पुत्रपौत्रादिरमृतत्वं तथा पितुः ॥

आनन्दः पुरुषार्थोऽत्र सोऽप्युपस्थाश्रयो भवेत् ॥ इति ।

व्याख्यातं चैतद्वार्तिकमित्थमेव श्रीमदानन्दज्ञानैः—प्रजातिरित्यादि
व्याचष्टे—ब्रह्मेति । आदिशब्दार्थं कथयति—प्रजातिरिति । संताना-
विच्छित्या शुद्ध्यादिद्वारेण पितुर्ज्ञानोत्पत्त्यां भवत्यमृतत्वम् । आनन्दश्च
वैषयिकं सुखमुपस्थबलादिति प्रसिद्धेस्तथा च प्रजात्यादिगुणविशिष्टं

ब्रह्मोपस्थे व्यवस्थितमिति ध्यातव्यमित्यर्थ इति । यत्त्वाचारमयूखे षोड-
शार्त्वित्यादिवरमनुस्मरन्नित्यन्तं याज्ञवल्क्यवाक्यं तथा

ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारेषु रतात्मनः ।

पर्ववर्ज्यं गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम् ॥

इति कौर्मवाक्यं चोदाहृत्य, एवंप्रकारेण गच्छतः श्राद्धादौ न च
ब्रह्मचर्यक्षतिदोष इति मिताक्षरायामिति विज्ञानेश्वरमतमुक्त्वा पञ्चदश-
दिनपर्यन्तं गमनाभावेऽन्त्यादिने च श्राद्धप्रसक्तौ ताहिने दोषाभावपर-
मिति हेमाद्रिरिति हेमाद्रिकृतमिताक्षराव्यवस्थामुपन्यस्य प्रमाणं त्वत्र
चिन्त्यमित्युक्तम् । तन्न । ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्त इति
प्रत्यक्षप्रश्नोपनिषच्छ्रुतेरेव तत्र प्रमाणत्वात् । श्रीमद्भाष्यकारचरणारवि-
न्दपरागैरेवमेव तदर्थकथनाच्च । तद्यथा—यद्रात्रौ संयुज्यन्ते रत्या
ऋतौ ब्रह्मचर्यमेव तादिति प्रशस्तत्वाद्ऋतौ भार्यागमनं कर्तव्यमि-
त्ययं प्रासङ्गिको विधिरिति । तस्माद्धेमाद्रिकृतव्यवस्थैव ज्यायसीति
दिक् । एतेन—

स्वस्त्रीं प्राङ्निद्रचतुष्कासमदिनविवरश्राद्धतत्प्राग्दिनानि
त्यक्त्वा मूलं मघान्त्ये वसुकलिजनिभाहानि पर्वाणि चर्तौ ।

याहीज्यार्केन्दुलग्नौर्विषमभलवगैरुद्धलैर्भोः सुतार्थिन्
व्यस्तैरैरिहैवायुगहनि मुदितः कन्यकेच्छो सुचन्द्रे ॥

इतिमुहूर्तमार्तण्डपद्यस्थश्राद्धतत्प्राग्दिनपदमपि व्याख्यातम् । अस्या-
यमर्थः—भोः सुतार्थिन्, त्वं विषमेति । विषमराशिविषमनवांशस्थितैरि-
त्यर्थः । तत्रापि । उदिति । उदुत्कृष्टं बलं येषां तैर्गणितशास्त्रसिद्धाधि-
कबलशालिभिरित्यर्थः । एतादृशैः । इज्येति । इज्यो गुरुः । अर्कः
सूर्यः । इन्दुश्चन्द्रः । लग्नं मेषादि । जटामिस्तापस इत्यादिवदेतैर्ज्ञापिते
मुहूर्ते मुदितः सन्स्वस्त्रीमृतौ सुचन्द्रे याहीत्यन्वयः । किं कृत्वा ।
प्रागिति । निद्र, निशा विवराणि तिथिनक्षत्रयोगानां संधिपूर्वोत्तरैकै-
कघटीमितकालस्वरूपाणि । अन्त्यं रेवती । वसुरष्टमी । कलिश्चतुर्दशी ।
जनिभं जन्मनक्षत्रम् । अहर्दिवसः । पर्वाणि दर्शपौर्णमासव्यतीपातवै-
धृतिसंक्रान्तिमहापातादीनि । एवं विष्ट्याद्युपलक्षणीयम् । स्पष्टमन्यत् ।
अथ रेतःसेकप्रकारः । गृह्यसूत्रे—भूः प्रजापतिनाऽत्यृषभेण स्कन्दयामि

वीरं धत्स्वासौ । भुवः प्रजापतिनाऽत्यृषभेण स्कन्दयामि वीरं धत्स्वासौ ।
 सुवः प्रजापतिनाऽत्यृषभेण स्कन्दयामि वीरं धत्स्वासाविति वीर* हैव
 जनयति सर्वाण्युपगमनानि मन्त्रवन्ति भवन्तीत्यात्रेयो यच्चाऽऽदौ यच्चर्ता-
 विति बादरायणः । इति । एवं चात्र बादरायणमते चतुर्थीकर्मणि
 विवाहचतुर्थदिवसे प्रथमं यद्गमनं तन्मन्त्रवत्कार्यमृतुकालिकं च तथेति
 सुव्यक्तमेव । तथा च ऋतुशब्दः प्राथमिकऋतुपरत्वेन संकोच्य इत्यत्र
 प्रमाणाभावात्प्रत्युत्तुगमनमपि तस्य तादृगेव संमतमिति निर्णय प्रधान-
 प्रतिबोधकसूत्रमेवात्रोदाहृतमवान्तराग(ङ्ग)मन्त्रादिकं तु गर्भाधानप्रकर-
 णीयसंस्काररत्नमालात एवावगन्तव्यमिति । तत्राप्यत्र मातृदत्ताचार्यैरुपा-
 ह्वयत इत्यनन्तरं विष्णुर्योनिमित्येताभिर्नवभिः सन्नाम्नश्चाक्रवाकमित्ये-
 ताभ्यां चेति तद्विधिरुक्त इति सत्त्वावश्यक एव । संभोगोत्तरं कृत्यं
 धर्मप्रश्ने—

उदकोपस्पर्शनम् । इति ।

ततो द्वयोरप्युदकोपस्पर्शनं स्नानं कर्तव्यम् । इदमृतुकाल इत्युज्ज्वला ।
 पुनश्च तत्रैव—

अपि वा लेपान्प्रक्षाल्य पादौ चाऽऽचम्य प्रोक्षणमङ्गनाम् । इति ।

यदि वा रेतसो रजसश्च ये लेपास्तानद्भिर्मुदा च प्रक्षाल्य तथा पादौ
 च प्रक्षाल्याऽऽचम्याङ्गानां शिरःप्रभृतीनां प्रोक्षणं कर्तव्यम् । अनृतौ
 व्यवस्था । यावता प्रयतो मन्यत इत्युज्ज्वला । पराशरोऽपि—

ऋतौ तु गर्भशङ्कित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ।

अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपूरीषवत् ॥ इति ।

मयूखेऽप्येतदेव । आचारार्के स्मृत्यर्थसारेऽपि—

ऋतौ तु मिथुने स्नायाद्गर्भसंभूतिशङ्कया ।

अनृतौ तद्भावाच्च शौचं त्रिर्मूत्रवच्चरेत् ॥ इति ।

एवं चात्र मैथुनिन इति पुंलिङ्गादिनिर्देशाच्छयनादुत्थिता नारी शुचिः
 स्यादशुचिः पुमानिति वचनाच्च पुंस एवर्तुगमने स्नानमिति प्रतिभाति ।
 उज्ज्वलाकृन्मते तूभयोरपि द्वंपत्योः । वस्तुतस्तु यथाश्रुतसूत्रतात्पर्येण
 यदि वेतिपदस्वारस्यसिद्धेन विकल्प एव प्रतीयत इति तत्त्वम् । कुर्वन्ति
 च प्रायः सर्वेऽपि शिष्टास्तथैव । प्रयोगपारिजाते तु कश्चिद्विशेषः—

एवं यथायोगमुपेत्य स्त्रियमनिरीक्षन्नुत्थाय सूत्रशौचाग्निगुणितशौचं पुरीषोत्सर्जनवच्छौचं च कृत्वा पादौ पाणी प्रक्षाल्य त्रिवारमाचम्य ऋतुकालगमने स्नानं कुर्यात् । अनृतुकाले गमनं कृतं चेत्स्नानवर्ज्यं सर्वं कुर्यात् । इति । एतच्च स्नानमशिरस्कम् । ऋतुगमननिमित्तकस्नानं प्रकृत्याशिरस्कमवमजनं कुर्यादिति वसिष्ठोक्तेः । एतस्य नैमित्तिकस्नानत्वात्कंचिद्विशेषमाह स्मार्तरत्नमालायां जातूकर्ण्यः—

अस्पृश्यस्पर्शने वान्ते अश्रुपाते क्षुरे भगे ।

स्नानं नैमित्तिकं कार्यं दैवपिड्यविवर्जितम् ॥

उद्धृतैरुदकैः स्नायान्न कुर्याद्दस्त्रपीडनम् ॥ इति ।

दैवेति । देवर्षिपितृतर्पण इत्यर्थः । इदं शीतोदकेन कर्तुमशक्तावुष्णोदकेनापि कर्तव्यम् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यमित्यत्र नैमित्तिकग्रहणात् । स्त्रीणां तु नैवोष्णोदकेनापि स्नानम् । तासामशुचित्वाभावात् । तथा च वृद्धशातातपः—

उभाष्यशुची स्यातां दंपती शयनं गतौ ।

शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ इति ।

इदं च मैथुनं सकृदेव । तत्प्रकृत्य, उपवीती मौनी सकृदुपगच्छेदिति प्रयोगपारिजातोक्तेः । ऋतुकालपरमेवैतदिति प्रागुक्ततादिच्छाप्रतिप्रसवात्प्रतीयते । ततः पृथक्शयनमुक्तं धर्मसूत्रे—

यावत्संनिपातं चैव सह शय्या ततो नाना ॥ इति ।

यावत्संनिपातमेव दंपत्योः सहाऽऽसनम् । ततश्च पृथक्शयीयातामित्युज्ज्वला । अध्ययनाध्यापनवर्ज्यं सहशयनमप्युक्तं तत्रैव—

मिथुनीभूय च तथा सह न सर्वां रात्रिं शयीत शयानश्चाध्ययनं वर्जयेन्न च तस्यां शय्यायामध्यापयेद्यस्यां शयीत । इति ।

मैथुनं कृत्वा भार्यया सह तां सर्वां रात्रिं न शयीत । [*दिवा नक्तं च शयानस्याध्ययनप्रतिषेधः । स्वयं तु धारणार्थमधीयानस्य न दोषः । यस्यां शय्यायां भार्यया सह रात्रौ शयीत तस्यां शय्यायामासीनोऽपि नाध्यापयेदित्युज्ज्वला । एवं च गुरोः सकाशात्तस्यां शय्यायामध्ययनं शिष्यं प्रत्यध्यापनं च न कार्यम् । रक्षणार्थं स्वयं वेदतदङ्गतन्मीमांसातत्प्रकरणतदितरास्तिकशास्त्रभिन्नतर्कालंकारादिप्रकरणादिविचारणं

काव्यनाटकादिविवेचनं च संचिन्तनपूर्वकं कार्यमेव । तथा पत्न्यै काम-
शास्त्रशृङ्गारशास्त्रालंकारशास्त्रतत्प्रकरणसत्काव्याद्यध्यापनमपि कार्य-
मेव । यदि चोक्तशास्त्राणामप्यार्षत्वादनौचित्यचिन्ता चेत्तर्हि तानि
स्थलान्तर एव शुभासने स्थित्वैव पाठ्यन्तां नाम । पौरुषेयाणां तत्प्रक-
रणानां तु न काऽपि तत्र तां प्रति पाठने क्षतिरिति दिक् । तदाह भग-
वान्वात्स्यायनः—तस्माद्वैश्वासिकाज्जनाद्रहसि प्रयोगाच्छास्त्रमेकदेशं
वा स्त्री गृह्णीयादिति । अभ्यासप्रयोज्यांश्चातुःषष्टिकान्योगाच्चहस्येका-
किन्यभ्यसेदिति च । अयमर्थः—तस्मात्पूर्वप्रतिपादितास्त्रीणां कामशा-
स्त्रादिपतिपरिचर्यैकपराखिलोपयुक्तशास्त्रपठनाधिकारस्य नित्यत्वाद्धेतो-
र्वैश्वासिकात्स्थायिविश्वासपात्राद्रहःसख्यादिजनात्तदसत्त्वे भर्तुः सका-
शादेव स्त्रीणां तदेकगुरुत्वात् । प्रयोगात्प्रकृष्टो योगोऽभ्यासस्तस्मात् ।
तत्रापि रहसि न तु प्रकटम् । स्पष्टमेवान्यत् । अत्रैकदेशे(श)पदं स्वकी-
याभिधपतिव्रतैकोपयुक्तोऽशस्तयाऽध्येयोऽन्याभ्यां परकीयासामान्याभ्यां
तु तत्तदुपयुक्त एवेति द्योतयितुम् । चातुःषष्टिकांश्चातुःषष्टिकलाप्रतिपाद-
कान् । अभ्यासेति । तेन प्रयोक्तुं योग्यान्योगांस्तत्प्रतिबोधकशास्त्रांशान् ।
स्पष्टमेवान्यत् । यदप्याचाररत्ने मैथुनोत्तरं सहशय्यानिषेधात्तदभावे सह
शय्या । संनिहितभर्तृकायाः पृथक्शयनस्य दण्डत्वात् ।

आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखण्डनम् ।

पृथक्शय्या च नारीणामशस्त्रवध उच्यते ॥

इति वचनादित्युक्तम्, तदपि येषां सूत्रे नैवं व्यवस्था तत्परमिति
बोध्यम् । स्त्रीगमनवस्त्रस्यान्यत्रानुपयोगित्वमुक्तं धर्मसूत्रे—

स्त्रीवाससैव संनिपातः स्यात् । इति ।

एवकारो भिन्नक्रमः । स्त्रीवाससा स्त्रीसंभोगकालिकपरिहितस्ववसने-
नेत्यर्थः । संनिपातो मैथुनमेव स्यान्नान्यदित्याशयः । तथा च तद्वस्त्रमन्यत्र
क्वापि शास्त्रीयादिव्यवहारादौ नैवोपयुज्यत इति । एवं धर्माविरुद्धो
भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभेति भगवद्वचनात्तादृक्कामोपभोगोऽपि यथा
गाढान्धकारे चक्षुर्व्यवहर्तुमसमर्थमेवं प्रचण्डमार्तण्डमण्डलादिबहुलप्र-
काशैकरसेऽपीत्यनुभूयत एव । तद्वच्चेतसोऽत्यन्तविषयसुखनिरासे सति
भूयान्विक्षेप एव दृष्टस्तथाऽत्यन्तपरिपोषेऽपीति प्रत्यक्षसिद्धमेव । तस्मा-

ञ्चक्षुरालोकन्यायेन चित्तधर्माविरुद्धविषयसुखोपभोगयोरनुग्राह्यानुग्राह-
कभावाद्गृहाश्रमिभिस्त एवाऽऽदरणीया इति । तदुक्तं धर्मसूत्रे—

भोक्ता च धर्माविरुद्धान्भोगान् । इति ।

धर्माविरोधिनो ये भोगा भुज्यन्त इति भोगा विषयाः स्रक्चन्दनव-
नितादयस्तेषां च भोगशीलः स्यात् ।

अनिषिद्धसुखत्यागी पशुरेव न संशयः ।

इतिनीतेरित्युज्ज्वला । स्त्रीणां स्वापकाले नियमविशेष उक्तः
सद्द्याद्रिखण्डे —

तस्मात्सर्वाः स्त्रियो बाले भर्त्रा सहापि वा पृथक् ।

निशि नो शयनं कुर्युः कञ्चुकीकर्णभूषणैः ॥

हारैश्च कण्ठसंसक्तैः सह चेद्विधवास्तु ताः ।

मविष्यन्ति न संदेहः कुर्युः शय्यां पतिव्रताः ॥

न हारादिभिः सहेति शेषः । अथ रतिवर्ज्यदिवसादि । तदाहाऽऽ-
चाररत्ने बोधायनः—

न पर्वणि न श्राद्धे न व्रती न दीक्षितश्च । इति ।

दीक्षितो यज्ञदीक्षाख्यसंस्कारवान् । [*सोऽप्यवभृथेष्टिपर्यन्तमिति
यावत् । धर्मप्रश्नेऽपि—

मैथुनवर्जनं च । इति ।

मैथुनवर्जनमप्येतस्मिन्नहनि कर्तव्यमित्युज्ज्वला ।] अत्र पर्वसु चोम-
योरुपवास इतिसूत्रात्पूर्वास्वित्यनुवृत्तम् । पक्षसंधिः पर्व । उभयोर्द-
पत्योः । उपवासो भोजनलोपः । अन्यदपि तत्रैव—

अधश्च शयीयाताम् । इति ।

रात्रौ खट्वादौ प्राप्तं शयनं परिचष्टे—स्थण्डिलशापिनौ भवत इत्यु-
ज्ज्वला । आचाररत्ने कात्यायनोऽपि—

पौर्णमास्याममावास्यामधःशय्या विधीयते ।

अनाहिताग्नेरप्येषा पश्चाद्ग्नोर्विधीयते ॥ इति ।

गोवर्धनाह्निके पुराणान्तरे—

एकादश्यां यदा राम पितुः सांवत्सरं दिनम् ।

भार्या ऋतुमती स्याच्चेत्कथं धर्मं समाचरेत् ॥

श्राद्धं कुर्याद्ब्रतं कुर्यात्पिण्डान्दद्यात्प्रयत्नतः ।

पूर्वरात्रे व्यतीते तु संगच्छेद्रतिमन्दिरम् ॥ इति ।

नैमित्तिको रतिनिषेध उक्तो धर्मप्रश्ने—

प्रवचनयुक्तो वर्षासु शरदि च मैथुनं न चरेत् । इति ।

प्रवचनमध्यापनं तेन युक्तो वर्षासु शरदि च मैथुनं वर्जयेदित्युज्ज्वला ।

आचाररत्ने यमः—

भुञ्जीत ह्यार्द्रपाणिस्तु नाऽऽर्द्रपाणिः स्वपेन्निशि ॥ इति ।

उपलक्षणमिदं पादादेरपि । तत्रैव विष्णुः—

निद्रासमयमासाद्य ताम्बूलं वदनात्त्यजेत् ।

पर्यङ्कात्प्रमदां भालात्पुण्ड्रं पुष्पाणि मस्तकात् ॥ इति ।

तत्रैव चन्द्रोदये स्मृत्यन्तरम्—

आसनं शयनं यानं जायाऽपत्यं कमण्डलुः ।

शुचीन्यात्मन एतानि परेषामशुचीन्यनु ॥ इति ।

देवात्तदुपलब्ध्युत्तरमपीत्यनुशब्दार्थः । अत एव धन्यं कुलस्त्रीरतामिति
शृङ्गारशतकेऽपि भर्तृहरिः । एवं स्वीयागमनमेव सर्वसुखहेतुरिति दर्शितं
रसमञ्जरीटीकायां शृङ्गारतिलके—

स्वकीया परकीया च सामान्यवनिता तथा ।

कलाकलापकुशलास्तिस्रस्ताश्चेह नायिकाः ॥

तासु स्वीयां प्रति प्रेम जायते पुण्यकारिणः ।

व्यापन्नं वा विपन्नं वा बल्लभं याऽनुसेवते ॥

सा स्वीया लभ्यते पूर्वपुण्यपुञ्जप्रसादतः ।

अहो भाग्यमहो भाग्यं मृत्युलोकनिवासिनाम् ॥

दुर्लभेन्द्रादिदेवानां स्वीया यैरुपभुज्यते ।

यस्याः प्राणप्रयाणेऽपि पतिः परमदैवतम् ॥

तामनाहत्य कः काममन्यत्र कुरुते रतिम् ॥ इति ।

एवं चात्र विष्णुवाक्ये पर्यङ्काद्धार्यापृथक्कारः प्रागुक्तवेदाध्ययनादि
चेद्देव । निरुक्तशुचिस्मृतेरिति । आचारकिरणे गर्गः—

रामं स्कन्दं हनूमन्तं वैनतेयं वृकोदरम् ।

शयने यः स्मरेन्नित्यं दुःस्वप्नं तस्य नश्यति ॥ इति ।

रामादीन्स्मृत्वा स्वपेदिति । इति शिवम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणेऽष्टमभागकृत्यात्मकेऽष्टमकिरणे शयनप्र-
करणं चतुर्थं संपूर्णम् ।

अथ प्रागुक्तरीत्या रात्रिसूक्तस्य नित्यपठनीयत्वात्तत्सभाष्यं लिख्यते ।
रात्रीत्यष्टचं पञ्चदशं सूक्तं सोभरिपुत्रस्य कुशिकस्याऽऽर्षम् । यद्वा भारद्वा-
जस्य सुता रात्र्याख्याऽस्य सूक्तस्य ऋषिका गायत्रं रात्रिदेवताकम् ।
तथा चानुक्रान्तम्—रात्री कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजी रात्रि-
स्तवं गायत्रमिति । दुःस्वप्नदर्शन उपोषितेन कर्त्रा पायसेन होतव्यम् ।
तत्रैतत्सूक्तं करणत्वेन विनियुक्तम् । तथा चाऽऽरण्यके श्रूयते—स यद्येतेषां
किञ्चित्पश्येदुपोष्य पायसं स्थालीपाकं श्रपयित्वा रात्रीसूक्तेन प्रत्यृचं
हुत्वेति । तत्र प्रथमासृचमाह—

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यश्क्षभिः । विश्वा अधि श्रियोऽ-
धित ॥ १ ॥

आयती, आगच्छन्ती । आङ्पूर्वादिभ्यः शतरि अदादित्वाच्छपो लुक् ।
इणो यण् [६-४-८१] इति यणादेशः । उगितश्च [४-१-६] इति ङीप् ।
शतुरनुमः [६-१-१७३] इति नद्या उदात्तत्वम् । अक्षभिरक्षस्थानीयैः प्रका-
शमानैर्नक्षत्रैः । छन्दस्यपि दृश्यते [७-१-७६] इति अक्षिशब्दस्यानङ्गा-
देशः । यद्वाऽक्षभिरञ्जकैस्तेजोभिः पुरुत्रा बहुषु देशषु देवी देवनशीला ।
देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यः [५-४-५६] इत्यादिना पुरुशब्दात्सप्तम्यर्थे
त्राप्रत्ययः । रात्रीयं रात्रिदेवता व्यख्याद्विचष्टे विशेषेण पश्यति । रात्रेश्वा-
जसौ [४-१-३१] इति ङीप् । ख्यातेश्छान्दसे लुङि अस्यतिवक्ति [३-१-५२]
इत्यादिनाऽङ्गादेशः । अपि चैषा विश्वाः सर्वाः श्रियः शोभा अध्यधित,
अधिधारयति । तथा दधातेर्लुङि स्थाध्वोरिञ्च [१-२-१७] इतीत्वम् ।
सिचः कित्त्वम् । ह्रस्वादङ्गात् । [८-२-२७] इति सिचो लोपः ॥ १ ॥
अथ द्वितीयासृचमाह—

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युश्द्वतः । ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥

अमर्त्या मरणरहिता देवी देवनशीला रात्रिरुरु विस्तीर्णमन्तारिक्षमाप्राः
प्रथमतस्तमसाऽऽपूरयति । प्रा पूरण अदादिकः । लुङि व्यत्ययेन मध्यमः ।

तथा निवतो नीचीनाल्लतागुल्मादीनुद्धत उच्छ्रितान्वृक्षादींश्च स्वकीयेन तेजसाऽऽवृणोति । तदनन्तरं तत्तमोऽन्धकारं ज्योतिषा ग्रहनक्षत्रादिरूपेण तेजसा बाधते पीडयति ॥ २ ॥ अथ तृतीयामाह—

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥

आयत्यागच्छन्ती देवी देवनशीला रात्रिः स्वसारं भगिनीमुषसं निरकृत निष्करोति प्रकाशेन संस्करोति निवर्तयतीत्यर्थः । तस्यामुषसि जातायां नैशं तमः, अपेद्धासते, अपैव गच्छति । ओहाङ्गतौ लेख्यडागमः । सिब्वहुलम् । [३-१-३४] इति सिप् ॥ ३ ॥ अथ चतुर्थी—

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्षमहि । वृक्षे न वसति वयः ॥ ४ ॥

अद्यास्मिन्काले नोऽस्माकं सा रात्रिदेवता प्रसीदतु । यस्या रात्रेर्यामन्यामनि प्राप्तौ सत्यां वयं न्यविक्षमहि निविशामहे । सुखेन गृह आस्महे । विशेर्लुङि नेर्विशः [१-३-१७] इति आत्मनेपदम् । छान्दसः शपो लुक् । तत्र दृष्टान्तः—वयः पक्षिणो वृक्षे न यथा वृक्षे नीडाश्रये वसति रात्रौ निवासं कुर्वन्ति तथा निवसाम इत्यर्थः ॥ ४ ॥ अथ पञ्चमी—

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः । नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥ ५ ॥

ग्रामासो ग्रामाः । अत्र ग्रामशब्दो जनसमूहे वर्तते । यथा ग्राम आगत इति । सर्वे जना न्यविक्षत । तथा रात्रावागतायां निविशन्ते शेरते निपूर्वाद्विशतेश्छान्दसे लुङि पूर्ववदात्मनेपदम् । शल इगुपधादनिटः क्सः [३-१-४५] क्सस्याचि [७-३-७२] इत्यकारलोपः । तथा पद्वन्तः पादयुक्ताः । गवाश्वाद्यश्च निविशन्ते तथा पक्षिणः पक्षोपेताश्च निविशन्ते । अर्थिनः । अर्तेरर्थो गमनं शीघ्रगमनयुक्ताः श्येनासश्चित् । श्येना अपि तस्यां रात्र्यां निविशन्ते । एषा रात्रिः सर्वाणि मूतान्यहनि संचारेण श्रान्तानि स्वयमागत्य सुखयतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अथ षष्ठी—

यावया वृक्यं१ वृकं यवय स्तेनमूर्धे । अथा नः सुतरा भव ॥ ६ ॥

हे ऊर्ध्वे । रात्रिनामैतत् । रात्रे वृक्यं वृकस्य स्त्रियं वृकं चास्मान्निहसन्तं यवयास्मत्तः पृथक्कुरु । अस्मान्बाधितुं यथा न प्राप्नोति तथा

स्तेनं तस्करं च यवयास्मत्तो वियोजय । अथानन्तरं नोऽस्माकं सुतरा
सुखेन तरणीया क्षेमकरी भव ॥ ६ ॥ अथ सप्तमी—

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । उष ऋणेव यातय ॥ ७ ॥

पेपिशद्भृशं पिंशत्सर्ववस्तुष्व्वाश्लिष्टं तमोऽन्धकारं कृष्णं कृष्णवर्णं व्यक्तं
विशेषेण स्वभासा सर्वस्याञ्जकं स्पष्टरूपं वेदृशं नैशं तमो मामुपास्थि-
तोपागच्छत् । संगतकरण आत्मनेपदम् । हे उष उषोदेवते त्वमृणेव
ऋणानीव तत्तमो यातयापगमय स्तोतृणामृणानि यथा धनप्रदानेना-
पाकरोपि तथा तमोऽप्यपसारयेत्यर्थः ॥ ७ ॥ अथाष्टमी—

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८॥

हे रात्रि रात्रिदेवते ते त्वां गा इव पयसो दोग्धीर्धेनुरिवोपेत्याकरं
स्तुतिभिरभिमुखी करोमि । करोतेश्छान्दसे लुङि कृमृदरुहिभ्यः
[३-१-५९] इति च्लेरङादेशः । दिवो दुहितर्द्योतमानस्य सूर्यस्य
पुत्रि यद्वा दिवसस्य तनये परमपिच्छन्दसि परस्य षष्ठ्यन्तस्य पूर्वाम-
न्त्रिताङ्गवद्भावात्पदद्वयस्याऽऽष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वम् । त्वत्प्रसादाज्जि-
ग्युषे शत्रूञ्जिग्युषो मम स्तोमं न स्तोत्रमिव हविरपि वृणीष्व त्वं भजस्व
जयतेर्लिटः क्रसुः सँल्लिटोर्जेः [७-३-५७] इत्यभ्यासादुत्तरस्य जका-
रस्य कुत्त्वम् । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्येति चतुर्थी । वसोः संप्रसारणम् ।
[६-४-१३१] इति संप्रसारणम् ।

इत्योकोपाह्वासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुञ्च्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणेऽष्टमस्य सप्तमे चतुर्दशो वर्गः ।

पुराणादिषु प्रसिद्धपक्षिराजमूर्तिधरं वेदं प्रार्थयते—

तत्पुरुषाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुडः प्रचोदयात् । इति ।
शोभनपतनसाधनपक्षोपेतः सुवर्णपक्ष इति ।

सुपर्णोऽसि गरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुस्तोम आत्मा साम ते
तनुर्वामदेव्यं बृहद्रथंतरे पक्षौ यज्ञायज्ञियं पुच्छं छन्दांस्यङ्गानि
धिष्णिष्याः शफा यजूंषि नाम । सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ सुवः
पत । इति ।

त्रिवृत्ते शिरो बहिष्पवमानस्तोत्रे योऽयं त्रिवृत्स्तोमः स स्तोमः
शिरस्थानीयः । यद्गायत्राख्यं साम तत्त्वदीयं चक्षुः । यः पञ्चदशादिस्तो-
मस्तव स जीवात्मा । यद्द्वामदेव्यं साम तच्छिरोव्यतिरिक्ततनुस्थानी-

यम् । यद्यज्ञायज्ञियाख्यं साम तत्त्वत्पुच्छस्थानीयम् । ये सौमिकवेद्यां होत्रियादिधिष्णियास्ते तव शफस्थानीया इतिविषमपदभाष्यमेवेदम-
लेखि । यतस्तैरेतन्मन्त्रयुगमग्निपरमेव व्याख्यातं प्रकरणात् । शिष्टास्तु
लिङ्गादिहापि पठन्तीति शिवम् ।

सुत्रामाणं पृथिवीं घामनेहस* सुशर्माणमदिति* सुप्रणीतिम् ।

दैवीं नाव* स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ इति ।

स्वस्तये क्षेमायादितिमारुहेम प्राप्नुयाम । कीदृशीम् । सुत्रामाणं
सुष्ठु त्रात्रीम् । पृथिवीं विस्तीर्णाम् । द्यां द्योतमानाम् । अनेहसं काला-
त्मिकां चिरकालस्थायिनीमित्यर्थः । दैवीं नावं यथा मनुष्यनिर्मिता
नौः समुद्रस्योपरि तिष्ठति तथा देवनिर्मिता भूमिर्महाजलस्योपरि
वर्तत इत्यर्थः । स्वरित्रां सुष्ठु शत्रुभ्यः पालयित्रीम् । अनागसं पापर-
हिताम् । अस्रवन्तीं छिद्ररहितामिति । अथ विष्णुर्योनिमित्यादि-
सुरतविनियुक्तसौत्रा मन्त्रास्तथा हरदत्तीयमेकाग्निकाण्डस्थं तद्भाष्यं च
लिख्यते-

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशतु ।

आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ १ ॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।

गर्भं ते अश्विनावुभावाधत्तां पुष्करस्रजौ(जा) ॥ २ ॥

हिरण्ययी अरणीयं निर्मन्थतो अश्विना ।

तं ते गर्भं* हवामहे दशमास्याय सूतवै ॥ ३ ॥

यथाऽग्निगर्भां पृथिवी द्यौर्यथेन्द्रेण गर्भिणी ।

वायुर्यथा दिशां गर्भं एवं गर्भं दधामि ते ॥ ४ ॥

व्यस्य योनिं प्रति रेतो गृहाण पुमान्पुत्रो जायतां गर्भो अन्तः ।

तं माता दशमासो विभर्तु स जायतां वीरतमः स्वानाम् ॥ ५ ॥

आ ते गर्भो योनिमेतु पुमान्बाण इवेषुधिम् ।

आ वीरो अत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥ ६ ॥

करोमि ते प्राजापत्यमा गर्भो योनिमेतु ते ।

अनूनः पूर्णो जायतामनन्धोऽश्लोणोऽपिशाचधीतः ॥ ७ ॥

यानि प्रभूणि वीर्याण्यृषभा जनयन्तु नः ।

तैस्त्वं गर्भिणी भव स जायतां वीरतमः स्वानाम् ॥ ८ ॥

यो षशायां गर्भो यश्च वेहतीन्द्रस्तं निदधे वनस्पतौ ।
तेन त्वं गर्भिणी भव सा प्रसूर्धनुका भव ॥ ९ ॥

सन्नाम्नश्चाक्रवाकमिति च । भूः प्रजापतिनाऽत्यृषभेण स्कन्दयामि
वीरं धत्स्वासौ । भुवः प्रजापतिनाऽत्यृषभेण स्कन्दयामि वीरं धत्स्वासौ ।
सुवः प्रजापतिनाऽत्यृषभेण स्कन्दयामि वीरं धत्स्वासाविति वीर* हैव
जनयति सर्वाण्युपगमनानि मन्त्रवन्ति भवन्तीत्यात्रेयो यच्चाऽऽदौ यच्च-
र्ताविति बादरायणः ।

अथ ऋतुसमावेशनकाले भार्याया अभिमन्त्रणम्—विष्णुर्विष्णु-
र्योनिं तव योनिं कल्पयतु गर्भधारणक्षमां करोतु । प्रजापतिश्च मा-
माविश्य तत्र रेत आसिञ्चतु । तत्र निषिक्तं रेतो धाताऽऽदित्यानाम-
न्यतमः प्रजापतिरेव गर्भं दधातु गर्भरूपेण परिणमतु । तस्य च रूपाणि
हस्तपादादीनि त्वष्टा पिंशतु । दीप्तिकर्माऽयम् । नक्षत्रेभिः पितरो द्याम-
पिंशन्निति दर्शनात् । दीप्तानि करोतु ॥ १ ॥ गर्भं धेहि सिनीवालि ।
सरस्वत्याऽधिष्ठिता वधूरेव तथाऽऽमन्त्रयते । धेहि धारय । अश्विनौ
देवौ गर्भमाधत्ताम् । पुष्करस्रजा पुष्करमालिनौ ॥ २ ॥ हिरण्ययी ।
तृतीयैकवचनस्य पूर्वसवर्णः । हिरण्यमय्याऽरण्या तत्सदृशेन प्रजनेन ।
यं यादृशं गर्भं निर्मन्थतः प्रयत्नेन जनितवन्तौ । अश्विनाऽश्विनौ । तं
तादृशं गर्भं हवामह आशंसामः । दशमे मासि सूतये(?) । कोऽर्थः ।
अश्विनौ रूपवन्तौ तत्पुत्रो रूपवान् । तादृशस्ते गर्भो भवत्वित्यर्थः ॥ ३ ॥
यथा पार्थिवेष्वरण्यादिषु अग्नेरवस्थानात्पृथिव्यग्निगर्भोच्यते । द्युलोक
इन्द्रः प्रधानभूतः स तस्य गर्भत्वेन रूप्यते । वायुश्च दिग्भ्यः प्रभवति
तेनासौ तासां गर्भः । आसामेते गर्भाः । एवं गर्भं दधामि ते ॥ ४ ॥ व्यस्य
मया निषिच्यमानं रेतः स्वां योनिं व्यस्य व्यवक्षिप्य वितत्य प्रतिगृहाण ।
तथा सति तद्गर्भो धार्यताम् । तच्च माता त्वं दश मासः । मासशब्दस्य
पद्मोमासूहद् [६-१-६३] इतिसूत्रेण मासादेशः । दश मासान्बिभर्तु पुरु-
षव्यत्ययः । बिभृहि । स च स्वानां ज्ञातीनां मध्ये वीरतमो भूत्वा जाय-
ताम् । आ ते तव योनिं पुमान्गर्भ आ एतु गच्छतु । बाण इवेषुधिम् ।
इषवो यत्र धीयन्ते त(तं)[य]था बाणः प्रविशति तद्वत् । तथा चासौ
दशमास्यो भवति दश मासान्भूतो भवति । ततस्ते पुत्रो वीरो वीर्ययुक्तो

१ क. 'रण्ययाऽर' । २ क. 'सुयते । को' । ३ क. 'स्तेन ग' ।

भूत्वा जायताम् ॥ ६ ॥ करोमि ते प्राजापत्यम् । प्रजापतिकर्म रेतस
 आसेचनम् । आसिञ्चतु प्रजापतिरिति दर्शनात् । तत्ते करोमि । ततश्च
 गर्भस्तव योनिमेतु । स चानूनोऽन्यूनाङ्गः पूर्णः कालतो दशमास्यो
 जायताम् । अश्लोणोऽपङ्कः । अपिशाचधीतः, धयतेर्ध्यायतेर्वा धीतः ।
 यः पिशाचैर्धीतो वा न भवति । तानि तादृशानि भद्राणि कल्याणानि
 बीजानि ऋषभा ऋषभवत्सेचनसमर्थाः । के पुनस्ते प्राजापत्या या
 ओषधयो माषादयो वृष्ट्या जनयन्तु । नावावयोर्यथा पुत्रा जायन्ते
 तादृशानि वीर्याणि उत्पादयन्तु । सा प्रसूः प्रसवशीला धेनुका धेनुस-
 हृशी भव । यथा धेनुर्वत्सेन पीयत एवं त्वं पुत्रेण नित्यं पीयमाना भव ।
 यद्यपीदं भाष्यमापस्तम्बसूत्रपठितमन्त्रपाठानुसार्येवास्त्यथापि प्रायः
 स्वसूत्रमन्त्राणामप्यनुकूलमेव बहुधा । क्वचित्तु न्यूनाधिकभावोऽपि
 योऽयं सोऽपि च्छाययाऽनुकूलनीयः सूरिभिरंशविशेषः स्वयमेव व्याख्ये-
 यश्च । तत्रापि यो वशायामित्यादिनवममन्त्रपूर्वार्धे छायाव्याख्यानस्या-
 प्यभावान्मयैव व्याख्यायते । वशा वन्ध्येतिकोशाद्वशायां वन्ध्यायां
 धेनौ तथा वेहतीतिसप्तम्यन्तं प्रसवद्गर्भायां च धेनौ यो गर्भो मैथुनका-
 लिकवीर्यानिषेकः । इन्द्रस्तं वनस्पतौ निदध इति तैत्तिरीयश्रुत्यादौ प्रसि-
 द्धम् । अतस्तयोर्गर्भधारणाद्यभावस्तद्वत्ते मा भवतु किं तु योऽयं तेन
 वनस्पतौ स्थापितो गर्भस्तेन त्वं गर्भिणी भवेत्युत्तरेणान्वयः । शिष्टं तु
 प्राग्व्याख्यातमेव । अथ सन्नान्नश्चाक्रवाकमिति चेतिप्रतीकेण सूत्रितौ
 चतुर्थीकर्मसूत्रे प्राक्पठितौ मन्त्रौ यथा—

सन्नान्नः संहृदयानि संनाभिः संत्वचः ।

सं त्वा कामस्य योक्त्रेण युजान्यविमोचनाय ॥

चक्रवाकः संवननं यन्नदीभ्य उदाहृतम् ।

यद्युक्तो देवगन्धर्वस्तेन संवनिनौ स्वके ॥

अत्र भाष्यानुपलब्धेर्मयैव यथामति दिङ्मात्रेण व्याख्यायते । सन्ना-
 न्न इति । हे पत्नि सन्नान्नः सम्यङ्नाम शिवशर्मेत्यादिरूपं नामकरणका-
 लिकं संज्ञापदं यस्य स तथा तादृशस्य म इत्यर्थः । सन्नान्न(म)इतिपा-
 ठेऽप्येष एवार्थः । मम नामापि तव प्राणप्रियमेव भवतु । तथा च वक्ष्य-
 माणानि हृदयादीनि अङ्गानि तादृशानि भवन्त्विति किमु वक्त-
 व्यमित्याशयः । हृदयानि हृदयाद्यङ्गानीत्याद्यार्थिकोऽध्याहारः । हृदय-
 स्यैकत्वेऽपि कण्ठादधो नाभ्यवधिस्तनादितत्तदवयवभेदाद्बहुत्वं बोध्यम् ।
 एवं च तानि तव संहृदयानि तथा नाभिः संनाभिस्त्वचः संत्वचश्च

सन्तु । त्वक्पदेऽपि बहुत्वं प्राग्वदेव व्याख्येयम् । उपलक्षणमिदं याव-
द्द्विहिरन्तरङ्गाणाम् । एवं च सर्वं मामकं तव रम्यमेव भवत्विति भावः ।
यतोऽहं त्वां कामस्य मदनस्य योक्त्रेण, तद्धि कर्मविशेषे पत्नीकटि-
बन्धनार्थं दर्भरज्जुत्वेन याज्ञिकानां प्रसिद्धमेवेति गौण्या वृत्त्याऽत्र योक्त्र-
पदेन प्रेमैव गृह्यते । तेन प्रेम्णाऽऽसंन्यासावधीत्यर्थः । युजानि योज-
यामि बध्नामीति यावत् । तत्र प्रयोजनम्—अविमोचनायेति । त्रिवर्गेऽ-
प्यत्यागार्थमित्यर्थः । चक्रवाकमिति । यन्नदीभ्यो गङ्गादिसरिन्धः सका-
शात् । चाक्रवाकं चक्रवाकसंबन्धि संवननं संचलनमुदाहृतं यत्प्रेमनि-
मित्तकमेव चक्रवाकदंपत्योर्नदीभ्यः सकाशाद्रात्रौ वियोगाद्विवा च संयो-
गात्संचलनमेकतरसंचलनेऽन्यतरसंचलनलक्षणं लोके प्रसिद्धमस्तीत्यर्थः ।
अत एव कविसमयेऽप्युक्तम्—

रथाङ्गनाम्नोरिव भावबन्धनं बभूव यत्प्रेम परस्पराश्रयम् ।

विभक्तमप्येकसुतेन तत्तयोः परस्परस्योपरि न व्यहीयत ॥ इति ।

तथा देवगन्धर्वः स एको देवगन्धर्वाणामानन्द इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धश्चि-
त्ररथादिः । यद्युक्तो येन स्वकीयैकविषयकप्रेम्णा युक्तो विशिष्टो भवती-
त्यर्थः । आवां दंपती तेन तादृशेन प्रेम्णा स्वके निजसुखविषय इत्यर्थः ।
संवनिनौ कायिकाद्यखिलव्यापारिणौ भवाव इत्यन्वयः । रात्रिविरह-
व्यावृत्त्यै निदर्शनान्तरम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे रात्रिसूक्तदिभाष्यप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ रात्रौ स्वप्नफलनिर्णयः । तत्राऽऽदौ स्वप्नदर्शनावस्थामाहाऽऽचा-
रमयूखे वैद्यः—

सर्वेन्द्रियव्युपरतौ मनोऽनुपरतं यदा ।

विषयेभ्यस्तदा स्वप्नं नानारूपं प्रपश्यति ॥ इति ।

स च स्वप्नो द्विविधः—इष्टफलोऽनिष्टफलश्चेति । तत्र सामान्यत
इष्टफलो यथा—

नदीसमुद्रतरणमाकाशगमनं तथा ।

भास्करोदयनं चैव प्रज्वलन्तं हुताशनम् ॥

ग्रहनक्षत्रताराणां चन्द्रमण्डलदर्शनम् ।

हर्म्यस्याऽऽरोहणं चैव प्रासादशिरसोऽपि वा ॥

एवमादीनि संवृष्टा नरः सिद्धिमवाप्नुयात् ।
 स्वप्ने तु मदिरापानं वसामांसस्य भक्षणम् ॥
 क्रिमिविष्ठानुलेपं च रुधिरेणाभिषेचनम् ।
 भोजनं दधिभक्तस्य श्वेतवस्त्रानुलेपनम् ।
 रत्नान्याभरणादीनि स्वप्ने दृष्ट्वा प्रसिध्यति ॥
 देवविप्रद्विजच्छत्रवृषपङ्कजपार्थिवान् ।
 शुक्लपुष्पाम्बरधरान्प्रशस्ताभरणाङ्गनाः ॥
 वृक्षेभपर्वतक्षीरं फणिवृक्षाधिरोहणम् ।
 दर्पणाभिषमाल्यातिस्तरणं च महाम्भसाम् ॥
 वृष्ट्वा स्वप्नेऽर्थलाभः स्याद्याधिमुक्तश्च जायते ॥ इति ।

सामान्यतोऽनिष्टफलो यथा—

यूपकिंशुकवल्मीकपारिभद्राधिरोहणम् ।
 तैलकार्पासपिण्याकलोहावाप्तिर्विपत्तये ॥
 विवाहकरणं स्वप्ने रक्तस्रग्वस्त्रधारणम् ।
 नै(ने)ष्टं पक्वस्य मांसस्य भोजनं स्वप्नं नृणाम् ॥ इति ।

तदेवं द्विविधस्यापि स्वप्नस्य दर्शनकालभेदेन फलेऽपि भेदः स्वप्ना-
ध्याये—

स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः ।
 द्वितीये चाष्टभिर्मासैस्तृतीये तु त्रिमासिके ।
 चतुर्थयामे यः स्वप्नो मासेन फलदः स्मृतः ॥
 अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं भवेत् ।
 गोविसर्जनवेलायां सद्य एव फलं भवेत् ॥ इति ।

अथ विशेषत इष्टफलाः स्वप्नाः—

यस्तु पश्यति वै स्वप्ने राजानं कुञ्जरं हयम् ।
 सुवर्णं वृषभं गां वा कुशलं तस्य वर्धते ॥

आरोहणं गोवृषकुञ्जराणां प्रासादशैलाग्रवनस्पतीनाम् ।
 विष्ठानुलेपो रुदितं मृतं वा स्वप्नेष्वगम्यागमनं च धन्यम् ॥
 क्षीरिणं फलिनं वृक्षमेकाकी यः प्रयच्छति ।
 तत्रस्थः स विबुध्येत धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥

यस्य श्वेतेन सर्वेषां ग्रस्यते दक्षिणः करः ।
 सहस्रलाभस्तस्य स्यादपूर्णे दशमे दिने ॥
 तुरंगो वृश्चिको वाऽपि जले ग्रसति पन्नगः ।
 विजयं चार्थसिद्धिं च पुत्रं तस्य विनिर्दिशेत् ॥
 प्रासादं शैलमारुह्य समुद्रं तरते नरः ।
 अपि दासकुले जातो राजा भवति वै ध्रुवम् ॥
 यस्तु मध्ये तडागस्य भुङ्क्ते च घृतपायसम् ।
 अखण्डे पुष्करे पत्रे तं विद्यात्पृथिवीपतिम् ॥
 लावकीं कुक्कुटीं कौश्रीं वृष्ट्वा यः प्रतिबुध्यति ।
 कुलजां लभते कन्यां भार्यां स प्रियवादिनीम् ॥
 निगडैर्बध्यते यस्तु बाहुपाशेन वा पुनः ।
 पुत्रो वा जायते तस्य धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥
 आसने शयने याने शरीरे वाहने गृहे ।
 जलमाने विबुध्येत तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥
 आदित्यमण्डलं स्वप्ने चन्द्रं वा यदि पश्यति ।
 व्याधितो मुच्यते रोगादरोगी श्रेयमाप्नुयात् ॥
 रुधिरं पिबति स्वप्ने सुरां वाऽपि तथा नरः ।
 ब्राह्मणो लभते विद्यामितरो लभते धनम् ॥
 शुक्लाम्बरधरा नारी शुक्लगन्धानुलेपना ।
 अवगूहति यं स्वप्ने श्रियं तस्य विनिर्दिशेत् ॥
 पादुकोपानहौ छत्रं लब्ध्वा यः प्रतिबुध्यते ।
 असिं वा निर्मलं तीक्ष्णं साध्वन्नं तस्य निर्दिशेत् ॥
 रथं गोवृषसंयुक्तमेकाकी यः प्ररोहति ।
 तत्रस्थः स विबुध्येत धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥
 दधिलाभे भवेदर्थो घृतलाभे भवेद्यशः ।
 घृताशने ध्रुवः क्लेशो यशस्तु दधिभक्षणे ॥
 आन्त्रैस्तु वेष्टितो यो वै नगरेऽपि गृहेऽपि वा ।
 गृहे माण्डलिको राजा नगरे पार्थिवो भवेत् ॥
 मानुषाणि तु मांसानि स्वप्नान्ते यस्तु पश्यति ।
 हरितानि तु पक्वानि शृणु तस्य च यत्फलम् ॥

यद्भक्षणे शतं लाभः सहस्रं बहुभक्षणे ।
राज्यं शतसहस्रं वा भवेद्वै शीर्षभक्षणे ॥

सर्वाणि शुक्लान्यपि शोभनानि
कार्पासमस्मौदनतक्रवर्ज्य(र्ज)म् ।

सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि •
गोहस्तिदेवद्विजवाजिवर्ज्य(र्ज)म् ॥
क्षीरं पिबति यः स्वप्ने सफेनं दोहने कृते ।
सोमपानं भवेत्तस्य भुक्त्वा भोगानशेषतः ॥
दधि वृष्ट्वा भवेत्प्रीतिर्गोधूमांश्च धनागमः ।
यवान्यज्ञागमं विद्यात्ताम्रं सिद्धार्थकान्यपि ॥
नागपत्रं लभेत्स्वप्ने कर्पूरमगरुं तथा ।

चन्दनं पाण्डुरं पुष्पं तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ इति ।

अथ विशेषानिष्टफलाः स्वप्नाः । तत्र शौनकः—

अथ स्वप्नानि वक्ष्यन्ते दुर्निमित्ताद्भुतानि तु ।
आदित्यं वाऽथ चन्द्रं वा विगतच्छविकं तथा ॥
पतन्तं वाऽथ नक्षत्रं तारकादींश्च वा यदि ।
वीक्षेत मानवः स्वप्ने मरणं शोकमाप्नुयात् ॥

स्वप्नाध्याये—अशोकं करवीरं वा पलाशं वाऽथ पुष्पितम् ।

स्वप्नान्तर्यस्तु पश्येत नरः शोकमवाप्नुयात् ॥
नावमारोहयेद्यस्तु नदीनां च समुत्तरे ।
प्रवासं निर्दिशेत्तस्य शीघ्रं च पुनरागमम् ॥
रक्ताम्बरधरा नारी रक्तगन्धानुलेपना ।
अवगूहति यं स्वप्ने मृत्युस्तस्य विनिर्दिशेत् ॥
केशा यस्य विशीर्यन्ते यदि दन्ताः पतन्ति वा ।
तैलेनाभ्यक्तकायश्च पयसाऽथ घृतेन वा ॥
स्नेहेन वा तथाऽन्येन व्याधिं तस्य विनिर्दिशेत् ।
अर्थनाशो भवेत्तस्य पुत्रो यदि विनश्यति ॥
खरोष्ट्रमाहिषरथमेकाकी यः प्ररोहति ।
तत्रस्थः स तु बुध्येत मृत्युं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥
कर्णनासाकरादीनां छेदनं पङ्कमज्जनम् ।
पतनं दन्तकेशानां पक्वमांसस्य भक्षणम् ॥
खरोष्ट्रमाहिषं यानं तैलाभ्यङ्गं च मृत्यवे ।

इतिस्वप्नफले निर्णीते तत्प्रसङ्गात्स्वशरीरस्थारिष्टसूचकचिह्नानि आ-
चारमयूख एव—

अरुन्धतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥
देहेऽप्यरुन्धती जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमुच्यते ।
ध्रुवोर्मध्यगतं मध्यं तारका मातृमण्डलम् ॥
आकीर्णे श्रवणे यस्तु न घोषं शृणुयात्तथा ।
नभोमन्दाकिनीमिन्दोच्छायां नेक्षेद्गतायुषः ॥
पांशुपङ्कादिषु न्यस्तं खण्डं यस्य पदा भवेत् ।
पुरतः पृष्ठतो वाऽपि सोऽष्टौ मासान्न जीवति ॥
स्नानाम्बुलिप्तगात्रस्य यस्याऽऽस्यं प्राक्प्रशुष्यति ।
गात्रेष्वार्द्रेषु सर्वेषु सोऽर्धमासं न जीवति ॥ इति ।

एवमादिसर्वदुःस्वप्नादिदुर्निमित्तसूचितारिष्टशान्त्यर्थत्रयम्बकं यजामह
इत्यादिमहामृत्युंजयमन्त्रस्य पूर्वोक्तभाष्यवर्णिताथानुसंधानपूर्वकं प्रति-
दिनं प्रातर्नित्यकृत्योत्तरमष्टोत्तरशतं सति च निमित्ते तत्तन्निमित्ततारत-
म्येनाष्टोत्तरसहस्रादिसंख्याकः साङ्गोपाङ्गो जपः कार्यः । तेन सर्वारिष्ट-
विनष्टिः सर्वेष्टपुष्टिश्च शीघ्रं स्यादिति शिवम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाठ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे स्वप्नफलादिप्रकरणम् ।

इत्थमाह्निकमष्टधाविभक्तकालानुष्ठेयभेदेन संक्षिप्य निरूपितम् । तस्य
करणे श्रेयोऽकरणे प्रत्यवायश्च माधवीये कूर्मपुराणे—

इत्येतदखिलं प्रोक्तमहन्यहनि वै मया ।
ब्राह्मणानां कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम् ॥
नास्तिकयादथ वाऽऽलस्याद्ब्राह्मणो न करोति यः ।
स याति नरकान्घोराङ्कालयोनौ प्रजायते ॥
नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाऽऽश्रमविधिं स्वकम् ।
तस्मात्कर्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः ॥ इति ।

भगवद्गीतास्वपि—स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।

स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ॥

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाऽऽप्नोति किल्बिषम् ॥ इति ।

श्रीमद्भगवत्पादपादारविन्दपरागैरप्युक्तं सोपानपरम्परापञ्चरत्ने—

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां

तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम् ।

पापौघः परिधूयतामित्यादि ।

इति श्रीमद्वासिष्ठकुलावतंसौकोपाह्वश्रीरामार्यसूनुना त्र्यम्बकशर्मणा संगृहीत आचारभूषणाख्ये सत्याषाढाहिरण्यकेश्याह्निकेऽष्टमभागकृत्यात्मकेऽष्टमकिरणे स्वप्नजनितफलनिरूपणप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ प्रकीर्णकात्मकनवमकिरणः प्रारभ्यते । तत्र नित्यकर्मणां संकटेऽङ्गवैकल्येऽपि चित्तशुद्ध्यादिफलसाकल्यमेवेत्यादि निर्णयिते । तदुक्तमाचाररत्ने माधवीये बोधायनेन—

यथाकथंचिन्नित्यानि शक्त्यवस्थानुरूपतः ।

येन केनापि कार्याणि नैव नित्यानि लोपयेत् ॥ इति ।

शैवागमे—अत्यन्तरोगयुक्तेऽङ्गे राजचोरभयादिषु ।

गुर्वग्निदेवकृत्येषु नित्यहानौ न दोषभाक् ॥ इति ।

चतुर्विंशतिमते—इक्षूनापः फलं मूलं ताम्बूलं पय औषधम् ।

भक्षयित्वाऽपि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ इति ।

मार्कण्डेये—देवार्चनादिकर्माणि तथा गुर्वभिवादनम् ।

कुर्वीत सम्यगाचम्य प्रयतोऽपि सदा द्विजः ॥ इति ।

विष्णुः—संकल्प्य च तथा कुर्यात्स्नानदानव्रतादिकम् ।

अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति वै ॥ इति ।

स्मरेत्सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा । इति ।

ब्रह्माण्डे—मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः ।

उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलमाप्नुयात् ॥ इति ।

चकाराद्ब्रह्मणादिग्रहः । बृहन्नारदीये—

विष्णवर्पितानि कर्माणि सफलानि भवन्ति हि ।

अनर्पितानि कर्माणि भस्मनि न्यस्तहस्तवत् ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यन्मोक्षसाधनम् ॥

विष्णौ समर्पितं सर्वं सात्त्विकं सफलं भवेत् ॥ इति ।

भारते—कृत्वा मूत्रपुरीषे च रथ्यामांकम्य वा पुनः ।

पादप्रक्षालनं कुर्यात्स्वाध्याये भोजने तथा ॥ इति ।

त्रिकाण्डमण्डनः—स्वकालादुत्तरः कालो गौणः सर्वस्य कर्मणः ॥ इति ।

भारते—बलिर्भिक्षा तथाऽर्घ्यं च पितृणां च तिलोदकम् ।

ताम्रपात्रेण दातव्यमन्यथाऽल्पफलं भवेत् ॥ इति ।

हारीतः—मार्जनार्चनबलिकर्मभोजनानि देवतीर्थेन कुर्यात् । इति ।

अग्निपुराणे—प्रचारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने ॥

स्नाने भोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत् । इति ।

बोधायनः—भोजनं हवनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः ।

बहिर्जानु न कार्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम् ॥ इति ।

ज्योतिर्निबन्धे—क्षुतस्खलनजृम्भासु नृणामायुः प्रहीयते ।

तदेतरेण कर्तव्यो जीवोत्तिष्ठाङ्गुलिध्वनिः ॥

मदनरत्ने विष्णुपुराणे—

जीवेति क्षुवतो ब्रूयाज्जीवेत्युक्तः सहेति च ।

जृम्भायां तु मयि दक्षक्रतू इति ब्रूयात् । तथा च तैत्तिरीयाः समा-
मनन्ति—प्राणो वै दक्षोऽपानः क्रतुस्तस्माज्जञ्जभ्यमानो ब्रूयान्मयि दक्ष-
क्रतू इति ॥ इति ।

स्मृतिसारे—अजारजः खररजस्तथा संमार्जनीरजः ।

दीपमश्रुकयोश्छाया हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ इति ।

चन्द्रोदये योगीश्वरः—यदि वाग्यमलोपः स्याज्जपादिषु कथंचन ।

व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥ इति ।

चन्द्रिकायां देवलः—

येषु स्थानेषु यच्छौचं धर्माचारश्च यादृशः ।

तत्र तन्नावमन्येत धर्मस्तत्रैव तादृशः ॥ इति ।

स्मृत्यन्तरे—मुख्यकाले यदावश्यं कर्तुं कर्म न शक्यते ।

गौणकालेऽपि कर्तव्यं प्रायश्चित्तमतः परम् ॥ इति ।

इत्योकोपाह्नवासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुड्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे प्रकीर्णकारुष्ये नवमकिरणे सामान्यप्र-
करणं संपूर्णम् ।

एवं नित्यकृत्ये निरूपिते सर्वे निमेषा जज्ञिर इत्यादौ निमेषादिसं-
वत्सरान्तस्य कालस्य परात्मजन्यत्वबोधिकायां नारायणीयश्रुतौ—अहो-
रात्राश्च सर्वशः । अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरश्च इत्युक्तेरहोरात्र-
नित्यकृत्यकथनोत्तरमर्धमासशब्दितप्रतिपक्षनित्यकृत्यकथनस्य क्रमप्राप्त-
त्वात्तदुच्यते । तत्र प्रतिपदि स्थालीपाकस्तु महेशमदृशादित एव
बोध्यः । तदन्यत्पक्षे पक्षे नित्यकृत्यं त्वेकादशीव्रतमेव । तदाहुः भीमाध-
वाचार्याः—

जयन्तीव्रतवन्नित्यं काम्यं चेकादशीव्रतम् ।
अरुणोदयवेधोऽत्र वेधः सूर्योदये तथा ॥
उक्तौ द्वौ दशमीवेधौ वैष्णवस्मार्तयोः क्रमात् ।
कलाकाष्ठादिवेधोऽपि ग्राह्योऽत्र त्रिमुहूर्तवत् ॥
वैखानसाद्यागमोक्तदीक्षां प्राप्तो हि वैष्णवः ।
विद्धा त्याज्या वैष्णवेन शुद्धाऽप्याधिक्यसंभवे ॥
एकादशी द्वादशी वाऽधिका चेत्यज्यतां दिनम् ।
पूर्वं ग्राह्यं तूत्तरं स्यादिति वैष्णवनिर्णयः ॥
एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्धते यदा ।
तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्तैर्ग्राह्यं परं दिनम् ॥
एकादशीमात्रवृद्धौ गृहीयत्योर्व्यवस्थितिः ।
उपोष्या गृहिभिः पूर्वा यतिभिस्तूत्तरा तिथिः ॥
द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धाविद्धे व्यवस्थिते ।
शुद्धा पूर्वोत्तरा विद्धा स्मार्तनिर्णय ईदृशः ॥
श्रवणेन युता चेतस्याद्वादशी सा हि वैष्णवैः ।
स्मार्तैश्चोपोषणीया स्यात्त्यजेदेकादशीं तदा ॥ इति ।

एवमरुणोदयस्वरूपं च तैरेवाग्रे तत्प्रकरणव्याख्यानग्रन्थे कथितम्—
अरुणोदयस्य प्रमाणं स्कन्दनारदाभ्यामुक्तम्—

उदयात्प्राक्चतस्रस्तु नाडिकाम(अ)रुणोदयः । इति ।

इतिस्मृतिमुदाहृत्याग्रे—तत्र रवेः प्रभासंदर्शनात्पूर्वं सार्धं घटिकात्रय-
मेकादश्या व्याप्तं ततः प्राचीने घटिकार्धेऽरुणोदयसंबन्धिनि दशमीस-
द्भावे वेध इत्युच्यत इति । अन्यञ्च सोऽयं कलाकाष्ठादिवेधोऽरुणोदये

सूर्योदये च समानः । तत्रारुणोदयवेधो वैष्णवविषयः । स च गारुडे
विस्पष्टमवगम्यते—

दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः ।

नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्धि नैकादशीव्रतम् ॥ इति ।

वैखानसपाश्वरात्रादिवैष्णवागमोक्तदीक्षां प्राप्तो वैष्णवः । अत एव
स्कन्दपुराणे वैष्णवस्वरूपमभिहितम्—

परामापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते ।

नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षाऽस्ति वैष्णवी ॥

समात्मा सर्वजीवेषु निजाचाराद्विप्लुतः ।

विष्णवर्षिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते ॥ इति ।

विष्णुपुराणेऽपि—न चलति निजवर्णधर्मतो यः

सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे ।

न हरति न च हन्ति कंचिदुच्चैः

स्थितमनसं तमवेहि विष्णुभक्तम् ॥ इति ।

यथोक्तगुणसंपन्नो वैष्णवदीक्षां प्राप्तो यस्तं प्रति तिथिरेवं
निर्णेतव्येति । अग्रेऽपि—इति वैष्णवदीक्षायुक्तानामेकादशी निर्णीता ।
अथ भौतस्मार्तपर्यवसितानां पाश्वरात्रादिदीक्षारहितानामेकादशी
निर्णीयत इति । ततः प्रतिज्ञातैकादशीं निर्णीयाग्रेऽप्युक्तम्—अथाधि-
कारी निरूप्यते । तत्र नारदः—

अष्टाब्दादधिको मर्त्यो ह्यपूर्णाशीतिहायनः ।

भुङ्क्ते यो मानवो मोहादेकादश्यां स पापकृत् ॥ इति ।

तथाऽत्रैवाग्रे—पतिमत्यास्तूपवासं निषेधति विष्णुः—

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ।

आयुष्यं हरते मर्तुर्नरकं चैव गच्छति ॥

मनुः—नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । इति ।

मार्कण्डेयः—नारी स्वल्पननुज्ञाता भर्त्रा पित्रा सुतेन वा ।

निष्फलं तु भवेत्तस्या यत्करोति व्रतादिकम् ॥ इति ।

आदिशब्दाद्वस्त्रालंकारगन्धधूपाञ्जनानामुपसंग्रहः । तदाह मनुः—

पुष्पालंकारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम् ॥ इति ।

पत्युरनुमत्या तु पत्नी व्रतादिव्यधिकारिणी भवति । तदाह कात्या-

यनः—

भार्या पत्युर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत्सदा । इति ।

तत्रैवाग्रे गृहस्थस्य तु शुक्लायामेव नित्योपवास इत्युक्तम् । नैमित्तिककाम्योपवासौ तु कृष्णायामपि कर्तव्यौ । तत्र नैमित्तिकः स्मृत्यन्तरे पठ्यते—

शयनीबोधिनीमध्ये यां कृष्णैकादशी मवेत् ।

सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥ इति ।

काम्यस्तु स्कन्दपुराणे—

पितृणां गतिमन्विच्छन्कृष्णायाम् समुपोषयेत् ॥ इति ।

तत्रैवाग्रतः—ईदृशे विषये किं कर्तव्यमित्याकाङ्क्षायां वायुपुराणे पठ्यते—

उपवासे निषिद्धे तु मक्ष्यं किञ्चित्प्रकल्पयेत् ।

न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलं लभेत् ॥

नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथाम्बु चाऽऽज्यम् ।

यत्पञ्चगव्यं यदि चापि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरं च ॥ इति ।

उपवासासमर्थस्तु एकभक्तादीनि कुर्यात् । तथा च स्मृतिः—

उपवासे त्वशक्तानामशीतेरुर्ध्वजीविनाम् ।

एकभक्तादिकं कार्यमाह बोधायनो मुनिः ॥ इति ।

तत्रैवाग्रे—नित्यकाम्ययोरशक्तास्तु प्रतिनिधिभिर्व्रतं कारयेयुः । तथा च विष्णुरहस्ये—

असामर्थ्ये शरीरस्य व्रते च समुपस्थिते ।

कारयेद्धर्मपत्नीं वा पुत्रं वा विनयान्वितम् ॥ इति ।

पैठीनसिः—भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिर्व्रतम् ।

असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते ॥ इति ।

स्कन्दपुराणे—पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा ।

एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं विनियोजयेत् ॥ इति ।

तत्रैव स्मृत्यन्तरे—पितृमातृगुरुभ्रातृश्वश्रूगुर्वादिभूभुजाम् ।

अदृष्टार्थमुषोषित्वा स्वयं च फलभाग्भवेत् ॥ इति ।

तत्रैव चाग्रे प्रतिनिधौ कश्चिद्विशेषः स्मर्यते—

काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः ।

काम्येषूपक्रमावूर्ध्वं केचित्प्रतिनिधिं विदुः ॥ इति ।

अयमर्थः—नित्यं नैमित्तिकं च प्रतिनिधिनाऽप्युपक्रम्य कारयेत् । काम्यं तु स्वसामर्थ्यं परीक्ष्य स्वयमेवापक्रम्य कुर्यात् । असामर्थ्यं उपक्रमादूर्ध्वं प्रतिनिधिनाऽपि तत्कारयेत् । तथा तत्रैवाग्ने—एकादश्यां श्राद्धं कृत्वाऽपि न भोक्तव्यम् । तदाह कात्यायनः—

उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं मवेत् ।

उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥ इति ।

तथा—मातापित्रोः क्षये प्राप्ते भवेदेकादशी यदा ।

अभ्यर्च्य पितृदेवांश्च आजिघ्रेत्पितृसेवितम् ॥ इति ।

यत्तु वचनम्—श्राद्धं कृत्वा तु यो विप्रो न भुङ्क्ते पितृसेवितम् ।

हविर्देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥ इति,

तदेकादशीव्यतिरिक्तविषयम् । आघ्राणेनापि भोजनकार्यं सिध्यति, तस्य भोजनकार्ये विधानादिति । तत्रैव स्थलान्तरे नित्योपवासप्रकारो विष्णुरहस्येऽभिहितः—

अथ नित्योपवासी चेत्सायं प्रातर्भुजिक्रियाम् ।

वर्जयेत्प्रीतिमान्विप्रः संप्राप्ते हरिवासरे ॥ इति ।

किं च तत्रैव द्वादशीपारणाविचारोऽपि—यदा त्रयोदश्यां द्वादश्याः कलाद्वयं [त्रयं] वाऽप्युदये संभवति तदा द्वादशीकाल एव पारणं कायम् । तदुक्तं नारदीये—

यदा यत्र त्रयोदश्यां द्वादश्यास्तु कलाद्वयम् ।

द्वादशद्वादशीं (!) हन्ति त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

कलाद्वयं त्रयं वाऽपि द्वादशीं त्वनतिक्रमेत् ।

पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ॥ इति ।

ननु द्वादश्यतिक्रमेऽपि नास्ति दोषः । सा तिथिः सकला ज्ञेयेति वचनेन साकल्याभिधानादिति चेन्मैवम् । साकल्यस्य स्नानादिविषयत्वात् । वाक्यशेषे स्नानदानजपादिष्वित्यभिधानात् । पारणे तु न साकल्यवचनं प्रवर्तते । तिथिस्तात्कालिकी ज्ञेयेति वचनात् । द्वादशीकाले यदा पारणं तदा ततः प्रागेव सर्वाः क्रियाः कर्तव्याः । तदुक्तं नारदीये—

अल्पायामपि विप्रेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये ।

स्नानार्चनक्रियाः कार्या दानहोमादिसंयुताः ।

एतस्मात्कारणाद्विप्रः प्रत्यूषे स्नानमाचरेत् ॥

पितृतर्पणसंयुक्तं स्वल्पां वृद्धा च द्वादशीम् ।

महाहानिकरी ह्येषा द्वादशी लङ्घिता नृणाम् ॥

करोति धर्महरणमस्नातेव सरस्वती ॥ इति ।

गारुडपुराणेऽपि—यदा स्वल्पा द्वादशी स्यादपकर्षो भुजेर्भवेत् ।

प्रातर्माध्याह्निकस्यापि तत्र स्यादपकर्षणम् ॥ इति ।

तत्र पारणासंभवेऽद्भिः पारणं कुर्यात् । तदाह कात्यायनः—

संध्यादिकं भवेन्नित्यं पारणं तु निमित्ततः ।

अद्भिस्तु पारयित्वाऽथ नैत्यकान्ते भुजिर्भवेत् ॥ इति ।

यदा कलयाऽपि द्वादशी नास्ति तदा त्रयोदश्यामपि पारणं कुर्यात् ।
तदुक्तं नारदीये—

त्रयोदश्यां तु शुद्धायां पारणं पृथिवीफलम् ।

शतयज्ञादिकं वाऽपि नरः प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ इति ।

पारणं च नैवेद्यतुलसीमिश्रितं कुर्यात् । तदुक्तं स्कन्दपुराणे—

कृत्वा चैवोपवासं तु योऽश्नाति द्वादशीदिने ।

नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटिविनाशनम् ॥ इति ।

एवं—श्रवणेन युता चेत्स्याद्द्वादशी सा हि वैष्णवैः ।

स्मार्तैश्चोपोषणीया स्यात्त्यजेदेकादशीं तदा ॥

इति श्रीमाधवाचार्यवचनाद्यदि द्वादशी श्रवणयुक्ता माद्रपदशुक्ला-
दाषुपलभ्यते तदैकादशीवद्वश्यमुपोष्यैव । तद्योगप्रकारस्तु निर्णीतः
पुरुषार्थचिन्तामणौ तत्प्रकरणे—तथा च दिवस एव द्वादशीयोगः सोऽपि
मुहूर्तत्रयात्मक उत्तमः । तदभावे वि(द्वि)कलो यदि लभ्येतेतिवचनादेकमु-
हूर्तात्मकोऽपि ग्राह्य इति । विस्तरस्तु तत्रैव द्रष्टव्यः । पारणाप्रकारोऽपि
तत्रैव संक्षिप्योक्तः—श्रवणद्वादश्युपवासाङ्गपारणं तु द्वितीयदिन उम-
यानुवृत्तावुभयान्त एवेति । अन्यतरान्ते पारणाप्रकारोऽपि तत्रैवोभया-
न्तासंभवे निरूपितः सप्रपञ्चमिति बोध्यम् ।

इत्योकोषाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुश्च्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे प्रकीर्णाख्ये नवमकिरणे प्रत्यर्धमासकृ-
त्यप्रकरणं संपूर्णम् ।

अथ प्रतिमासकृत्यम् । तत्र गृह्यसूत्रम्—अमावास्यायामपराह्णे मासि-
कमपरपक्षस्य वाऽयुक्ष्वहःसु पितृभ्योऽन्नं सःस्कृत्य दक्षिणाग्रान्दर्माना-

सनानि कल्पयित्वा ब्राह्मणाञ्छुचीन्मन्त्रवतः समाङ्गानयुज आमन्त्र-
यते योनिगोत्रमन्त्रासंबन्धान्नार्थापेक्षो भोजयेदग्निमुपसमाधाय दक्षिणा-
प्रागग्रैर्दग्धैः *परिस्तीर्यैकपवित्रान्तर्हितायामाज्यस्थाल्यामाज्य* स*स्कृत्य
प्रसव्यं परिषिच्यौदुम्बरमिधमभ्याधायौदुम्बर्या दृष्या जुहोत्याज्यमा-
गान्तं कृत्वा प्राचीनावीती पितृनावाहयति—

आयात पितरः सोम्या गम्भीरैः पथिभिः पूर्वैः ।

प्रजामस्मभ्यं ददतो रयिं च दीर्घायुत्वं च शतशारदं च ॥

इत्येतामेव दिशमभ्यपः प्रसिञ्चति ।

आपो देवीः प्रहिणुताग्निमेतं यज्ञं पितरो नो जुषन्ताम् ॥

मा सीमामूर्जमूतये मजन्ते ते नो रयि* सर्ववीरं नियच्छतु ।

इति यज्ञोपवीती व्याहृतिपर्यन्तं कृत्वा प्राचीनावीती जुहोति—

सोमाय पितृमते स्वधा नमो यमायाङ्गिरस्वते पितृमते स्वधा नमो
याः प्राचीः संभवन्त्याप उत्तरतश्च याः । अग्निर्विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री-
मिरन्तरन्यं पितुर्दधे स्वधा नमः । अन्तर्दधे पर्वतैरन्तर्मह्या पृथिव्या ।
दिवा दिग्भिरनन्तामिरूतिमिरन्तरन्यं पितामहादधे स्वधा नमः । अन्त-
र्दधे ऋतुमिरहोरात्रैः सुसंधिभिः । अर्धमासैश्च मासैश्चान्तरन्यं प्रपिताम-
हादधे स्वधा नम इत्यथ नामधेयैर्जुहोत्यमुष्मै स्वधा नमोऽमुष्मै स्वधा
नम इति यन्मे माता प्रलुलोभ चरत्यननुव्रता । तन्मे रेतः पिता वृङ्गामा-
मुरन्योऽवपद्यता* स्वधा नम इत्येवं द्वितीयां तथा तृतीयां यन्मे पिता-
मही प्रपितामही मन्त्र* संनमति ॥ १ ॥

ये चेह पितरो ये च नेह या*श्च विद्मया* उ च न प्रविद्म ।

अग्ने तान्वेत्थ यदि ते जातवेदस्तया प्रत्त* स्वधया मदन्तु स्वधा नमः ॥

यद्वः क्रव्यादङ्गमदहल्लोकानयं प्रणयं जातवेदाः ।

तद्वोऽहं पुनरावेशयाम्यरिष्टाः सर्वैरङ्गैः संभवत पितरः स्वधा नमः ॥

वहाऽऽज्यं जातवेदः पितृभ्यो यत्रैतान्वेत्थ निहितान्पराके ।

आज्यस्य कूल्या उप तान्क्षरन्तु सत्या एषामाशिषः सन्तु कामैः
स्वधा नमः ।

इत्येवं द्वितीयां तथा तृतीयां पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्य इति मन्त्र*
संनमत्येवमन्नस्य जुहोति वहान्नमिति मन्त्र* संनमत्यथ सौविष्टकूर्ती

जुहोत्यग्रये *कव्यवाहनाय स्वधा नम इत्यथान्नममिमृशति पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मा पितृणां क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिँल्लोके पृथिवी समा तस्याग्निरुपद्रष्टा वृत्तस्याप्रमादाय पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मा पितामहानां क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिँल्लोकेऽन्तरिक्ष* समं तस्य वायुरुपद्रष्टा वृत्तस्याप्रमादाय पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मा प्रपितामहानां क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिँल्लोके द्यौः समा तस्याऽऽदित्य उपद्रष्टा वृत्तस्याप्रमादायेति ब्राह्मणानुपस्पर्शयति प्राणे निविश्यामृतं जुहोमीति ॥ २ ॥

भुञ्जानान्समीक्षते ब्रह्मणि म आत्मा असृतत्वायेति मुक्तवतोऽनुप्रव्रज्य शेषमनुज्ञाप्योदकुम्भं वर्ममुष्टिं चाऽऽदाय दक्षिणपूर्वमवान्तरदेशं गत्वा दक्षिणाग्रान्दर्भान्स*स्तीर्य तेष्ववाचीनपाणिर्दक्षिणापवर्गाञ्चीनुदकाञ्जलीन्नियति मार्जयन्तां पितरः सोम्यासो मार्जयन्तां पितामहाः सोम्यासो मार्जयन्तां प्रपितामहाः सोम्यास इत्यसाववनेनिङ्क्ष्वासाववनेनिङ्क्ष्वेति वा तेष्ववाचीनपाणिर्दक्षिणापवर्गा+न्पिण्डान्ददात्येतत्ते ततासाविति पित्रे पिण्डं ददात्येतत्ते पितामहासाविति पितामहायैतत्ते प्रपितामहासाविति प्रपितामहाय तूष्णीं चतुर्थ* स कृताकृतोऽथ यदि नामधेयानि न विन्द्यात्स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषञ्च इति पित्रे पिण्डं दद्यात्स्वधा पितृभ्योऽन्तरिक्षसञ्च इति पितामहाय स्वधा पितृभ्यो दिविषञ्च इति प्रपितामहायात्राऽऽञ्जनाभ्यञ्जने वासश्चानुपिण्डं ददात्याङ्क्ष्वासावाङ्क्ष्वासाविति त्रिराञ्जनमभ्यङ्क्ष्वासावभ्यङ्क्ष्वासाविति त्रिरभ्यञ्जनमेतानि वः पितरो वासा*स्यतो नोऽन्यत्पितरो[मा]यूढमिति दशामूर्णास्तुकां वा छित्त्वा न्यस्यति पूर्वे वयसि स्वं लोम च्छित्त्वोत्तरेऽथ पात्र* संक्षाल्य पुत्रान्पौत्रानमितर्षयन्तीरापो मधुमतीरिमाः । स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहानाः । आपो देवीरुभया*स्तर्षयन्ति नदीरिमा उदन्वतीर्वेतस्विनीः सुतीर्थ्या अमुष्मिँल्लोक उप वः क्षरन्तु इति प्रसव्यं परिषिच्य न्युब्जपात्रं पाणी

* क्वचित्सूत्रपुस्तके—कव्यवाहनाय स्विष्टकृते स्वधा—इत्यपि पाठः + क्वचित्सूत्रपुस्तके—दक्षिणापवर्गाञ्चीन्पिण्डान्—इत्यपि पाठः ।

१ क. 'नं ब्राह्म' । २ क. 'नं ब्राह्म' । ३ क. 'नं ब्राह्म' । ४ क. 'वननेनेङ्क्ष्वासाववने-निङ्क्ष्वेति । ५ क. 'यन्तु न' ।

व्यत्यस्य दक्षिणमुत्तरमुत्तरं च दक्षिणं नमो वः पितरो रसायेति नम-
स्कारैरुपतिष्ठते तत उदकान्तं गत्वा त्रीनुदकाञ्जलीन्निनयति ॥ ३ ॥

एष ते तत मधुमा* ऊर्मिः सरस्वान्यावानग्निश्च पृथिवी च ताव-
त्यस्य मात्रा तावानस्य महिमा तावन्तमेनं भूतं ददामि यथाऽग्निरक्षितोऽ-
नुपदस्त एवं मह्यं पित्रेऽक्षितोऽनुपदस्तः स्वधा भवतां त* स्वधामक्षितं तैः
सहोपजीवासावृचस्ते महिमा । एष ते पितामह मधुमा* ऊर्मिः सरस्वा-
न्यावान्वायुश्चान्तरिक्षं च तावत्यस्य मात्रा[ता]वानस्य महिमा तावन्त-
मेनं भूतं ददामि यथा वायुरक्षितोऽनुपदस्त एवं मह्यं पितामहायाक्षितोऽ-
नुपदस्तः स्वधा भवतां त* स्वधामक्षितं तैः सहोपजीवासौ यजू*षि ते
महिमा । एष ते प्रपितामह मधुमा* ऊर्मिः सरस्वान्यावानादित्यश्च
द्यौश्च तावत्यस्य मात्रा तावानस्य महिमा तावन्तमेनं भूतं ददामि
यथाऽऽदित्योऽक्षितोऽनुपदस्त एवं मह्यं प्रपितामहायाक्षितोऽनुपदस्तः
स्वधा भवतां त* स्वधामक्षितं तैः सहोपजीवासौ सामानि ते महिमेति
प्रत्येत्य प्रतिष्ठितमुदपात्रेणोपप्रवर्तयति परायात पितरः सोम्या गम्भीरैः
पथिभिः पूर्यैः । अथ पुनरायात नो गृहान्हविरत्तु* सुप्रजसः सुवीरा
इत्येतेन माघ्यावर्षं व्याख्यातं तत्र मा*सं नियतं मा*साभावे शाकम् ।

इति हिरण्यकेशिसूत्रे विंशतिप्रश्ने चतुर्थः पटलः ।

अथात्र मातृदत्तवृत्तिः—अमा० हस्सु । मासे भवं श्राद्धं मासि-
कम् । तदमावास्यायां तिथावन्येष्वपरपक्षस्यायुङ्क्ष्व(युक्ष्व)हःसु अपराह्णे
कार्यम् । कालस्यानाम्नानादकर्मणि लोक उपालम्भाच्च मासिकादीनि
नित्यानि । अत्र कालनियमनिमित्ताद्भव्यनिमित्ताच्च फलविशेषादेव
विधयो धर्मेषूक्ताः । यथा प्रथमेऽहनि स्त्रीप्रायं तिलमाषत्रीहियवा उदी-
च्यवृत्तिस्त्वासनगतानामित्यादीनि तानि प्रेक्षयाणि ।

पितृबन्धात् । अत्र संबन्धा(न्धः) । अथ पितृभ्यो होमभोजनार्थमन्नं
संस्कृत्य दक्षिणाग्रान्दर्भान्ब्राह्मणानामासनार्थं कल्पयित्वा ब्राह्मणाञ्शु-
चीनागन्तुकसहजदोषरहितान्नियमवतश्च । मन्त्रवतो विद्यावतो निय-
मवत इत्येकेषाम् । शुचित्वं दोषाभाव एव । समाङ्गाननङ्गविकलान् ।
अयुजस्त्रिप्रभृतीनयुक्संख्याकान् । योनिगोत्रमन्त्रैरात्मनोऽसंबन्धान् ।
योनिंबन्धा मातुलमातामहप्रभृतयः । गोत्रसंबन्धाः सगोत्राः । मन्त्रसं-
बन्धा ऋत्विक्शिष्याचार्याः । एवंप्रकारानामन्त्रयते । ये धर्मेषूक्ताः ।
तृतीयमामन्त्रणं तदिह बह्वृचानाम् । त्रयाणामेकैकस्यैकैकस्त्रयस्त्रयो वा

पुरुषा उक्ताः । सर्वेषामेकः प्रतिषिद्धः षड्भ्यस्तस्माच्चिप्रभृतयः षड्भ्योऽ-
युजो ग्राह्याः । वृद्धौ फलभूयस्त्वमेव । दुर्भिक्षेऽभक्तदाने वा सर्वेषा-
मेकोऽपि प्रतिभूतः काममन्नाद्य इति ।

नार्था०येत् । अथार्थापेक्षः प्रयोजनापेक्षः । प्रयोजनमपेक्षमाणोऽस्मि-
न्भोजन इदं मम कार्यं भविष्यतीति न भोजयेत् । अण् कर्मणि
च [३-३-१२] इति भविष्यति काले क्रियार्यां क्रियार्थायामुपपदे
[अण्] । वैश्वदेवपूर्वकं च पितॄणां भोजनमेकेषामुक्तम् । द्वौ दैवे
त्रीन्पिड्य एकैकमुभयत्र वेति विरोधाभावादिच्छातस्तस्यापि संग्रहार्थः ।
तथा सति पूर्वं वैश्वदेवानामग्न्य पश्चात्पिड्यानामन्त्रयते । ब्राह्मणानां
गुणदोषबलाबलं च धर्मेषूक्तम् । तदुत्प्रेक्ष्यम् । पूर्वद्युर्बाह्मणान्निवेद्यो-
त्तरेद्युः प्रातः पुनर्निवेद्यैवं तृतीयमामन्त्रणं कृत्वा श्मश्रूणि वापयित्वाऽ-
भ्यञ्जनं स्नापनीयं च दत्त्वा स्नापयित्वा ।

अग्नि०होति । यज्ञोपवीत्यग्निमौपासनमुपसमाधाय तं दक्षिणाप्रागग्रै-
र्दर्भैः परिस्तीर्य प्रागुदगग्रपक्षवत्पश्चात्पुरस्ताच्च दक्षिणाग्रान्कृत्वा परि-
स्तीर्य पात्रप्रयोगकाल औदुम्बरमिधमौदुम्बरीं च दर्वीमुपस्तरणाभि-
घारणार्थं सुवं मेक्षणं वाऽधिकं प्रयुनक्ति । पूर्ववदेव परिधयः पवित्र-
करणकाल एकदर्भं पवित्रं कृत्वाऽऽज्यसंस्कारकाले तेनैव पवित्रेणान्तर्हि-
तायामाज्यस्थाल्यामाज्यं संस्कृत्यैकपवित्रेणाऽऽज्यं संस्कृत्येति वाच्ये
गुरुनिर्देशः प्रदर्शनार्थः । तेन प्रणीतादिपवित्रकार्यं तेनैव स्यात् । ततः
प्राचीनावीतिना ब्राह्मणान्कृतपादशौचानाचान्तान्दत्तेष्व्वासनेषूदङ्मुखा-
न्प्रागपवर्गान्पित्रे पितामहाय प्रपितामहायेति संकल्प्यैकैकस्य त्रींस्त्रीं-
स्त्रिर्वा प्रागपवर्गमुपवेशयेत् । प्राप्नोतु भवानिति कर्ता ब्रूयात् । प्राप्-
वानीतीतरे प्रत्याहुः । यदि सन्ति वैश्वदेवास्तानपि प्राङ्मुखान्पूर्वं पितृभ्य
उदगपवर्गं वृद्धक्रमेणोपवेशयति । पितृभ्यो यत्क्रियते तत्सर्वं वैश्वदेवेऽपि
प्रथमं कर्तव्यमिति । तिलोदकवर्ज्यं(र्जं) यज्ञोपवीतिनैवैष प्रदेशः ।
प्राचीनावीत्येकपवित्रान्तर्हिते तैजसे सृन्मये वा पात्रेऽप आनीय तिला-
नोप्य च्छादयति । नास्य प्रचलनमतस्तिलोदकं पात्रान्तरेणोपादायाऽऽ-
सनगतानां हस्तेष्वानयति । अमुष्मै स्वधाऽमुष्मै स्वधेति पित्रर्थेषु पितु-
र्नाम गृह्णाति पितामहार्थेषु पितामहस्य प्रपितामहार्थेषु प्रपितामहस्य ।
एकत्वे तस्यैव हस्ते त्रीण्युदकपात्राणि निनयति । त्रयाणां नामानि
गृहीत्वा ततः शुद्धोदकं प्रयच्छति । एतस्मिन्काले गन्धपुष्पधूपदीपा-

च्छादनादीनां दानं तेभ्यः कर्तव्यम् । ततोऽनुप्रकीर्य तिलानुद्धरिष्या-
म्यग्नौ च करिष्यामीति ब्राह्मणानामन्त्रयते । काममुद्ध्रियतां काममग्नौ
च क्रियतामिति तैः प्रत्युक्तो होमार्थमन्नमुद्धृत्य निधाय यज्ञोपवीती
परिधिपरिधानादि प्रपद्यते । एवं शास्त्रान्तरे दृष्टं प्रागुपसमाधानादुपवे-
शनाद्युद्धरणान्तं कार्यमिति सुवेण यागस्य होमकर्मणः कर्तव्यत्वादि-
त्येके । परिषेककाले देव सवितरित्यनेन यः परिषेकस्तं प्रसव्यं परिषि-
ष्यौदुम्बरमिध्ममभ्याधायौदुम्बर्या दर्व्या जुहोतीत्याघारादिहोमान् ।

आज्य०दं चेति । आज्यभागान्तं कर्म कृत्वा प्राचीनावीती भूत्वा
पितृनावाहयत्यायात पितर इत्यनेन । एतामेव० त्विति । एतामेव दिशं
दक्षिणां प्रत्यपः प्रसिञ्चति । यथा दूरं गच्छति तथाऽञ्जलिना सिञ्चति
आपो देवीरित्यनेन । दक्षिणाः पितरो दक्षिणा वृद्धिपितृणामितिदर्श-
नादेवेति दिशं दक्षिणामिति गम्यते । एवकारकरणममा(णमा)वाहन-
मपि तामेव दिशमाभिमुख्येन क्रियत इतिज्ञापनार्थम् ।

व्याह्र(यज्ञो)०म(इ)ति । अथ यज्ञोपवीती व्याह्रतिपर्यन्तं कृत्वा पुनः
प्राचीनावीत्याज्येनैव जुहोति सोमाय पितृमत इति । यथोक्तं षोड-
शाऽऽज्याहुतीः स्वधा । नमस्कारस्य प्रदानार्थत्वात्सर्वत्र तद्वत्सु नास्ति
स्वाहाकारः । अत्राथ नामधेयैर्जुहोतीति । इहाऽथशब्दः पूर्वसंबन्धार्थः ।
तेन पितृपितामहप्रपितामहनामधेयैश्चतुर्थ्यन्तैर्होतव्यम् । जुहोतिवचनं
द्विपितृकस्यापि होमाभ्यासनिवृत्त्यर्थम् । न तस्य द्वाभ्यां नामधेयाभ्यां
यथालक्षणं समस्तद्विचतुर्थ्यन्ताभ्यां होतव्यम् । यन्मे माता यन्मे पिता-
मही यन्मे प्रपितामहीति । अत्रोहप्रदर्शनार्थत्वात्पितृशब्दस्यापि पिता-
महप्रपितामहशब्दाभ्यामूहः कार्यः । पितामहो वृक्तां प्रपितामहो वृक्ता-
मिति । बह्वाज्यमित्यत्रापि पितामहेभ्यो यत्रैतानिति संनामः ।

एवं०नमति । यथैवाऽऽज्यस्याऽऽहुतयस्तथाऽन्नं चान्नस्य जुहोति । तत्रै-
तावान्विशेषः—वहान्नं जातवेदं इतिमन्त्रं संनमति । अत्रापि प्रदर्शनार्थ-
त्वादन्नस्य कूल्या इत्यूहः । केचित्तन्न सृष्यन्ति । भ्राद्धस्यौदनस्य कूल्या
अस्तीति न । अर्थवादत्वाद्द्वपाया मेदस इति शब्दान्तरदर्शनादुपस्तर-
णाभिघारणार्थेनाऽऽज्येन द्रव्यत्वस्य विद्यमाना(नत्वा)च्च । अत्रैके वर्ण-
यन्ति—पूर्वानुक्रान्ताः षोडशाऽऽज्याहुतीरन्नस्य जुहोतीति । अपर आन-

न्तर्याह्वयाऽऽज्यमित्येतासामेव तिसृणामिति उदीच्यानामपि पाठः । एवं ते पठन्त्यथाऽऽज्यस्य जुहोति । वह्नाऽऽज्यं जातवेद इति । तत्राथशब्द आज्यस्य ग्रहणं चैवमन्नस्य जुहोतीत्यत्र तासामेव संप्रत्ययार्थम् ।

अथ सौविष्टकृ० नम इति । अथ सौविष्टकृतीमाहुतिं जुहोति अग्नये कव्यवाहनायेत्यनेन । अत्रापि पूर्ववदथशब्दो वारुण्यादिनिवृत्त्यर्थम्(र्थः) । एवमन्नस्येत्यनुवर्तनादन्नेनैव सौविष्टकृतीमाज्येनेत्येके । ततो यज्ञोपवीती परिषेकादिकर्मशेषं समापयेत् ।

अथा० इति । अथ प्राचीनावीती ब्राह्मणभोजनार्थमन्नमभिमृशति पृथिवी त इत्येतैर्यदाऽग्नौ हुतशेषमन्नमभिमृशतीति । बह्वृचानां हुतशेषादपि किञ्चित्प्रक्षिप्यावमृशेत् । अथशब्दो होमार्थादन्नादस्यान्यत्वख्यापनार्थः ।

प्राणे० मीति । अथ पूर्ववद्ब्राह्मणेभ्यस्तिलोदकं प्रदाय शुद्धोदकं च ततोऽन्नं प्रदायाङ्गुष्ठेनोपस्पर्शयति प्राणे निविश्येत्यनेन प्रतिपुरुषमावर्त्य मन्त्रम् ।

भुञ्जा० येति । भुञ्जानानां ब्राह्मणानां ब्रह्मणि म इत्यनेन समीक्षते । तृप्तान्ब्राह्मणान्मधु वाता इत्येतामृचं यज्ञोपवीती श्रावयेत् । अक्षन्नमी मदन्तेत्येतां स्वधामुक्त्वाऽन्यानि ब्राह्मणानि शास्त्रान्तरे दर्शितानि ।

भुक्त० क्षेति । भुक्तवत्सु शेषादन्नार्त्किञ्चिदुपादाय निहितशेषेण सह पिण्डान्निधायावशिष्टमाचान्तेष्ववाशयेष्वन्नं प्रकीर्य तेभ्यस्तिलोदकं पूर्ववत्प्रदाय शुद्धोदकं च । ततोऽक्षतान्प्रदाय यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वाऽक्षय्यमस्त्विति वाचयित्वा तिलोदकशेषं निनीय स्वधाऽस्त्विति ब्रूयादस्तु स्वधेतीतरे । तत उत्थाप्य प्रसाद्योपसंगृह्य तान्भुक्तवतो गच्छतोऽनुप्रव्रज्य शेषमनुज्ञाप्यानुगतः प्रदक्षिणीकृत्य प्रत्येत्योदकुम्भं दर्भमुष्टिं चाऽऽदाय दक्षिणपूर्वमवान्तरदेशं गत्वा तान्दर्भान्दक्षिणपूर्वतोऽग्निं दक्षिणाग्रान्सस्तीर्य दक्षिणपूर्वमवान्तरदेशं गत्वेत्युदीच्यानां पाठात्तेषु दर्भेष्ववाचीनपाणिरध आवृत्तपाणिः पित्र्येण तीर्थेन दक्षिणापवर्गास्त्रीनुदकाञ्जलींस्त्रिषु देशेषु निनीय मार्जयन्तामित्येतैः प्रतिमन्त्रमसाववनेनिङ्क्ष्वेति एतैर्नामग्रहणम् ।

तेष्व० कृतः । तेषु नियतस्थानेष्ववाचीनपाणिर्दक्षिणापवर्गान्पिण्डान्ददाति । कथम् । एतत्तं ततासाविति पितुर्नाम गृहीत्वा पित्रे

पिण्डं ददाति । एतत्ते पितामहासाविति पितामहाय । एतत्ते प्रपितामहासाविति प्रपितामहाय । सर्वेषु ये च त्वामित्यनुषङ्गः । सर्वेषु चेहानुक्रान्तानुक्रंस्यमानेषु संबुद्ध्या नामग्रहणम् । तत्र तेष्ववाचीनपाणिर्दक्षिणापवर्गमेतत्ते ततासाविति पित्रे पिण्डं ददातीत्येवं लघुना सिद्धे पिण्डं ददातीतिवचनं चतुर्थस्यापि निनयनस्थान एव दानार्थम् । इतरथा त्रीनिति वचनात्तस्यानिनयनं स्याद्धि । तूष्णीं चतुर्थं पिण्डं दद्यात् । स कृताकृतः । स तु कृताकृतो वैकल्पिक इत्यर्थः । तूष्णींग्रहणं मन्त्रनिवृत्त्यर्थम् । अवचनादेव सिद्धिरिति चेत्तन्न । निनयनादीनामविशेषोपदेशान्मन्त्रप्रसङ्गात्प्रधानस्य तूष्णींवचनात्तद्वशवार्तित्वात्तेषामपि तूष्णीकत्वात् ।

अथ० हाय । अथ यदि पितृणां नामधेयानि न विन्द्यात्स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्य इत्येतैः पित्रादिभ्यः पिण्डान्दद्यात् । नामधेयानीत्येकशेषनिर्देशस्तेनैकस्य द्वयोस्त्रयाणां वा नाम्नो विस्मरण एतैरेव दानम् । अथशब्देन चेतृथगधिकारः । पूर्वेषां मन्त्राणां व्यतिषज्य क्रिया मा भूदित्येतदर्थम् । कुतः, अस्मिन्पक्षे मार्जयन्तामित्येव निनयनमन्त्रा भवेयुरर्थात् ।

अत्रा० दाति । अत्राञ्जऽऽनमभ्यञ्जनं वासश्च प्रतिपिण्डं ददाति । अथेतिवचनं कालनियमार्थम् । कालान्तरे पिण्डपितृयज्ञदर्शनात् । तेन ज्ञायते तत्रोक्तः पिण्डदानोपायो द्विपितृकादीनामिहापि भवतीति । अञ्जनाभ्यञ्जनयोरेव समासवचनं क्रमनियमार्थं तयोः । अनुपिण्डमिति वचनाच्चतुर्थे स्यात्प्राप्तिराशङ्क्येत तान्निवृत्त्यर्थं ददात्युच्यते ।

आङ्क्ष्व० जनम् । आङ्क्ष्वासावाङ्क्ष्वासाविति त्रिराञ्जनमनुपिण्डं ददाति तूष्णीं चतुर्थम् । त्रिग्रहणं प्रतिपिण्डं त्रितयार्थम् ।

अभ्य०जनम् । अभ्यङ्क्ष्वासावभ्यङ्क्ष्वासाविति त्रिस्त्रिरभ्यञ्जनम् । अनुपिण्डं दद्यात्तूष्णीं चतुर्थम् । तैलमभ्यञ्जनं *मस्त्वित्येके । अविदिते नामधेयानि लुप्यन्ते तदा(ता)दिभिर्वा शब्दैरुपलक्षयेत् ।

एता०यसि । एतानीत्यात्मनो वाससो दशामूर्णास्तुकां वा कम्बलस्य च्छित्वाऽनुपिण्डे न्यस्यति । पूर्वं आत्मनो वयसि पञ्चाशद्वर्षतायास्तूष्णीं चतुर्थम् ।

* क. पुस्तके समासे-घृतं देवानां मस्तु पितृणामित्यभ्यञ्जनप्रकरणश्रुतेर्मस्तु दधिमण्डोपरितन-
स्रह इति वैजयन्तीकाराः ।

स्वं लो०त्तरे । स्वं लोम च्छित्त्वोत्तरे वयसि पञ्चाशद्वर्षताया ऊर्ध्वं मन्त्रेणैव न्यस्यति । न दशोर्णास्तुकाऽप्यन्यतरवचनादेव सिद्धे पूर्वोत्तर-ग्रहणं वयस्त्रित्वं केषांचिदिहोक्तं तन्मा भूदिहोत्तर आयुषि तयोर्द्वित्वविषयत्वादिति ।

अथ०ष्टते । अथ यत्र पिण्डार्थं ओदन उद्धृतस्तत्पात्रं संक्षाल्योदकेन सम्यक्प्रक्षाल्य पुत्रानित्यनेन तेनोदकेन सर्वान्पिण्डानुपयम्य प्रसव्यं परिषिच्य तत्पात्रं न्युब्जं निवीतं कृत्वा पाणी व्यत्यस्य पाण्योरङ्गुलीनां व्यतिषङ्गं कृत्वा दक्षिणमुत्तरमुत्तरं च दक्षिणं बहिर्भूतपृष्ठौ पाणी कृत्वेत्येके । एवंभूतेन नमस्कारेणाञ्जलिना नमो वः पितर इत्येतैर्नमस्कारैः पितृनुपतिष्ठते । षडेते नमस्काराश्चतुर्थ्यन्तास्तेषु सर्वेषु पितरो नमो व इत्यादेरनुषङ्गः । प्राक्प्राजापत्या इत्येके । यथापाठमेव प्राक्प्राजापत्याया नमस्कारोऽन्त्य इत्यपरे । अथशब्दः पिण्डाधिकारनिवृत्त्यर्थः । तेनोक्तं तन्त्रेण सर्वेषां सकृत्परिषेक इति प्रतिपिण्डमपि केचिदिच्छन्ति । इह पिण्डापितृयज्ञपटले च तुल्यग्रन्थेषु तत्रोक्तं व्याख्यानमिह द्रष्टव्यमिहोक्तं च तत्रापि ।

तत उ०मेति । तत उदकसभीपं गत्वा, एष ते ततैष ते पितामहैष ते प्रपितामहेत्येतैः प्रतिमन्त्रं त्रीनुदकाञ्जलीन्दक्षिणापवर्गान्निनयति पित्रादिभ्यः । तत इतिवचनं तूष्णीं चतुर्थमित्याशङ्कानिवृत्त्यर्थम् ।

प्रत्ये०इति । प्रत्येत्योदकान्तात्प्रतिष्ठितं स्थालीनिष्काशमुदपात्रेण सहोदकमासिच्य सकृन्निष्कासस्तस्य सोदकं पात्रं पूरयित्वा परायात, इत्यनेनोपप्रवर्तयति पिण्डानां सभीपे दक्षिणापवर्गं निनयतीत्यर्थः । प्रत्येत्येतिवचनमुदकाञ्जलिदेश एवोपवर्तनं मा भूदिति । एतावत्कृत्वा सर्वेषु दत्तेषु सर्वात्मनः शेषं समवदायाश्रीयादित्येतत्कर्तव्यं समाप्तं मासिकम् ।

एतेन०ख्यातम् । एतेन मासिकेन माध्यावर्षं श्राद्धं व्याख्यातम् । माध्यावर्षः प्रोष्ठपदो मासस्तत्र भवं माध्यावर्षं तत्रापां प्रसेक उदपात्रोपवर्तनं च न स्तः । इदं मासिकं कर्तव्यम् ।

तत्र०नियतम् । न तु माध्यावर्षे श्राद्धे मांसं नियतं भवति मासिके च नियतम् । मांसस्याभावे शाकं प्रतिनिधित्वेन नियतं भवति ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुड्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढहिरण्यकेशि सू यि विंशतिप्रश्नीयचतुर्थपटलस्य मातृदत्तीयव्याख्या संपूर्णा ।

एवं चेदं गृह्योक्तं मासिकश्राद्धं स्मार्तसप्तसंस्थान्तर्गतं स्मार्ताग्निशा-
लिभिः प्रत्यमावास्यं कर्तव्यमेव । इदमेव च यावतां सौत्रश्राद्धानामष्ट-
कादीनां प्रकृतिभूतं सौत्रत्वाज्ज्ञेयम् । एतत्प्रयोगस्तु प्रायः सूत्रे सरल
एव तथाऽपि तत्र मातृदत्तवृत्तिरपि निरुक्ता संगृहीताऽस्त्येव । तत्रापि
वैशद्यातिशयाकाङ्क्षायां महेशभट्टीयप्रयोगरत्ने संस्कारशान्त्यभिधप्रयोग-
द्वयोत्तरं तृतीये श्राद्धप्रकरणेऽसौ बोद्धव्यः संस्काररत्नमालायामपि । एवं
स्मार्ताग्निमतां पिण्डपितृयज्ञस्यापि प्रतिमासममावास्यायां विधेयत्वा-
त्स्थालीपाकादिप्रयोगवत्तत्प्रयोगोऽपि तत एव ज्ञेयः । यत्तु स्मृतिमात्रप्राप्तं
दर्शश्राद्धं तत्प्रयोगं त्विह संक्षेपतोऽखिलशिष्टाः कुर्वन्त्येव सर्वत्र । विस्त-
रस्तु संस्काररत्नमालायामसौ प्रपञ्चित एवेति नैव तं वयमिह लिखि-
ष्यामः । नन्वेवं यदीदं सौत्रं मासिकश्राद्धं सौत्रश्राद्धानामेवाष्टकादीनां
सर्वेषां प्रकृतिस्तर्हि सवृत्तिकस्य तत्सूत्रस्यात्र संग्रहे कोपयोग इति
चेत्सत्यम् । अग्नौकरणादितद्विशेषस्य वक्ष्यमाणे स्मार्ते दर्शश्राद्धेऽनुपयो-
गेऽपि ब्राह्मणभोजनादेः स्मृत्यनुकूलस्य सामान्यशास्त्रार्थस्य स्वसूत्रीय-
त्वेन धर्मसूत्रस्थस्यैवाऽऽवश्यकत्वात् । ननु महेशभट्टादिभिरग्नौकरणमपि
सूत्रोक्तमासिकश्राद्धतन्त्रेणैवाथ तृतीयं श्राद्धप्रकरणमित्युपक्रम्य तत्र
प्रथमं सर्वश्राद्धप्रकृतिभूतं पितृपितामहप्रपितामहोद्देश्यकं मासिकश्राद्ध-
रुच्यत इत्यादि वदद्भिः सूत्रोक्तषोडशाज्याद्याहुतिरीत्यैव साधारण्येन
सर्वेष्वपि श्राद्धेषूक्तम् । गोपीनाथदीक्षितैस्तु प्रायः पिण्डपितृयज्ञोक्त-
रीत्यैवोक्तम् । तत्र कः पक्षः श्रेयानिति विशये सौत्रत्वान्महेशभट्टादि-
निखिलशिष्टैरुक्तत्वाच्चाऽऽद्य एवेति चेत् । अत्रोच्यते—विषयविभागेन
व्यवस्थितत्वाद्बुभयमपि श्रेयः । तथा हि—दर्शादियावत्स्मृतिमात्रप्राप्त-
श्राद्धेषु—

अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।

कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो हुत्वाऽग्नौ पितृयज्ञवत् ॥

इत्यादिमाधवाचार्योक्तयाज्ञवल्क्यवचनात्पिण्डपितृयज्ञविधानेनाग्नौ
जुहुयादित्यग्रे तैः कण्ठत एव पितृयज्ञशब्दितप्रकृतप्रकृतेर्व्याख्यातत्वाच्च
तत्तन्त्रत एव कार्यम् । कुर्वन्ति च प्रायः सर्वेऽपि शिष्टास्तथैव । मासिक-
श्राद्धादियावत्सु सौत्रेषु तेषु तु निरुक्तसूत्रोक्तरीत्यैवेति न कोऽपि

विरोधगन्धोऽपि । महेशमहादीनामपि सर्वशब्दप्रयोगाशयस्तेषां सूत्रप्रयो-
क्तत्वेन तत्रैव न तु दर्शादिस्मार्तश्राद्धसंग्रहेऽपि । तेषां तद्विचाराप्रवृत्तेः ।
गोपीनाथदीक्षितैरप्येवमेव विभज्य प्रयोगस्य कृतत्वात् । तस्माद्दर्श-
मातापित्राब्दिकद्वयसकृन्महालयादिस्मार्तेषु श्राद्धेषु निरुक्तमेवाग्नौकर-
णमिति दिक् । तथा च यावानंशः स्मार्तानुकूलस्तावान्स्मार्तश्राद्धेष्वपि
दर्शप्रभृतिषु स्वसूत्रीयोऽवश्यमेव ग्राह्य इति युक्त एवेह तत्संग्रह इति
ध्येयम् । [*अत्र देवतास्तु सपत्नीकं पितृपार्वणमथ पितरो यत्र पूज्यन्ते
तत्र मातामहादय इति धौम्यवचनान्मातामहपार्वणमपीति षडेव ।
मातापितरौ पितरावित्यमरात्पितृपदं मातृपरमपीति सपत्नीकत्वमुभ-
यत्रापीति ज्ञेयम् ।] इदं च दर्शश्राद्धं मासि पितृभ्यः क्रियत इत्यादि-
श्रुतेर्नित्यम् । माधवीयेऽपि—यस्मिन्दिने चन्द्रमा न दृश्यते साऽमावास्या
तत्र श्राद्धं नित्यमिति । सामान्यतः श्राद्धे कृत्यमुक्तं धर्मप्रश्ने—

त्रीणि श्राद्धे करणानि । होमो ब्राह्मणभोजनं पिण्डदानं च । इति ।

तत्र भोजने प्रधानत्वख्यापनार्थोऽयमर्थवाद इत्युज्ज्वलाख्याख्या ।
कोऽसावर्थवाद इति चेत्तत्रैव पूर्वसूत्रे—

तत्र पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीयार्थे ।

तत्र श्राद्धशब्दे कर्मणि पितरः पितृपितामहप्रपितामहा देवताः ।
ब्राह्मणस्तु मुञ्जान आहवनीयकृत्ये वेदितव्य इत्युज्ज्वला । तत्र द्रव्या-
ण्याह धर्मप्रश्न एव—

तत्र द्रव्याणि—तिलमाया व्रीहियवा आपो मूलं फलानि च । इति ।

तत्र श्राद्धे तिलादिद्रव्याणि यथायथमवश्यमुपयोज्यानीत्युज्ज्वला ।
तेषु फलविशेषो ब्राह्मणेनाऽऽह—

एतानि मासं प्रीणन्ति पितृलोके विज्ञायते स्नेहवति त्वेवान्ने तीव्रतरा
पितृणां तृप्तिर्द्राघीयांसं च कालमिति ।

यद्वा तद्वाऽन्नं भवतु स्नेहवति तु तस्मिन्नाज्यादिभिरुपसिक्ते पितृणां
तीव्रतरा प्रकटतरा प्रीति(तृप्ति?)र्भवति । सा च द्राघीयांसं दीर्घकाल-
मनुवर्तत इत्युज्ज्वला । पुनस्तत्रैव—

तथा धर्माहतेन द्रव्येण तीर्थे प्रतिपन्नेन । इति ।

* नायं ग्रन्थः ख. पुस्तके ।

धर्मार्जितं यद्द्रव्यं पात्रे च प्रतिपादितं तेनापि पूर्वोक्ता प्रीति(तृप्ति?)-
रित्युज्ज्वलाव्याख्या । अथ कर्तृभोक्त्रोरपि लक्षणं तत्रैव—

प्रयतः प्रसन्नमनाः सृष्टो भोजयेद्ब्राह्मणान्ब्रह्मविदो योनिगोत्रमन्त्रान्ते-
वास्यसंबद्धान् । इति ।

प्रयतः स्नानादिना शुद्धः । प्रसन्नमना अव्याकुलचित्तः । सृष्ट उत्सा-
हवान् । सृष्टश्चेद्ब्राह्मणवधे अहत्वाऽपीति दर्शनात् । वृत्तिसर्गतायनेषु
क्रमः [१-३-३८] सर्ग उत्साहः । एवंभूतो ब्राह्मणान्भोजयेत् ।
कीदृशो ब्रह्मविदः । योन्यादिभिरसंबद्धान् । योनिसंबद्धा मातुलादयः ।
गोत्रसंबद्धाः सगोत्रादयः । मन्त्रसंबद्धा ऋत्विग्याज्याध्वर्वाद्यः ।
द्विजन्माश्यां(श्या)श्च । अन्तेवास्यसंबद्धाः शिष्याश्चाऽऽचार्याश्चेत्यु-
ज्ज्वला । पुनस्तत्रैव—

नार्थापेक्षो भोजयेत् । इति ।

द्रव्याद्यपेक्षया न भोजनीय इत्युज्ज्वला । उक्तालाम्भे पुनस्तत्रैव—

गुणहान्यां तु परेषां* समुदेतः सोदर्योऽपि भोजयितव्यः । इति ।

यदि परेऽगोत्रसंबद्धा वृत्तादिगुणहीना एव लभ्यन्ते तदा समुदेतो
वृद्धादिभिर्युक्तः सोदर्योऽपि भोजयितव्यः किमन्ये मातुलाद्य इत्यपि-
शब्दार्थ इत्युज्ज्वला । पुनस्तत्रैव—

एतेनान्तेवासिनो व्याख्याताः । इति ।

एतेन सोदर्येणान्तेवासिनः । बहुवचननिर्देशाद्योन्यादिसंबन्धो व्या-
ख्यातः । अन्येषामलाभे समुदेता भोजयितव्या इत्यत्र मनुः—

एष वै प्रथमः कल्पः प्रधाने हव्यकव्ययोः ।

अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥

मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।

दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यांश्च भोजयेत् ॥ इति ।

इत्युज्ज्वला । विट्पतिर्जामातेति माधवाचार्याः । माधवीये तु विशेषो
मनुनैवोक्तः पितुः श्रोत्रियत्वेन पुत्रस्य श्रेष्ठ्यरूपः—

अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः ।

अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥

ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता । इति ।

तत्रैव ब्रह्माण्डपुराणे—अलाभे यतिभिक्षूणां भोजयेद्ब्रह्मचारिणम् ।

तदलाभेऽप्युदासीनं गृहस्थमपि भोजयेत् ॥

उदासीनो ह्यसंबन्धः । इति । सुलभः पङ्क्तिपावन उक्तः—अथातः पङ्क्तिपावना भवन्ति त्रिणाचिकेतास्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णव्रतश्छन्दोगो ज्येष्ठ-सामगो ब्रह्मदेयानुसंतानः सहस्रदो वेदाध्यायी चतुर्वेदषडङ्गवित् । अथ-र्षशिरसोऽध्यायी पञ्चाग्निर्वेदजापीति चेति तेषामेकैकः—पुनाति पङ्क्ति-युक्तो मूर्धनि सहस्रैरप्युपहतामिति पैठीनसिवचनेन दुर्लभपङ्क्तिपावना-स्तत्सामान्यार्थमुक्त्वा—

ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः ।

ब्रह्मदेयापतिश्चैव ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥

इति शङ्खवचनेन । ब्रह्मदेया तु प्राङ्माधवाचार्यैरेव ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्राह्मविवाहोत्थपुत्र इति कथयद्भिरर्थादेव निरूपिता । विस्तरस्तु तत्र संस्काररत्नमालायां च ज्ञेयः । बहुषु तुल्यगुणेषु प्राप्तेषु सत्सु तूक्तं धर्मप्रश्ने—

तुल्यगुणेषु वयोवृद्धः श्रेयान्द्रव्यकृशश्चेप्सन् । इति ।

यो वयोवृद्धः स तावद्ब्राह्मस्तत्रापि यो द्रव्यकृश ईप्सल्लिप्समानश्च भवति स ग्राह्यः । यद्वा वयोवृद्धो ग्राह्योऽद्रव्यकृशोऽपि द्रव्यकृशोऽप्य-वृद्धोऽपीति । द्वयोस्तु समवाये यथारुचीत्युज्ज्वला । अन्यच्च तत्रैव—
पूर्वेद्युर्निवेदनम् । इति ।

श्राद्धदिनात्पूर्वेद्युरेव ब्राह्मणेभ्यो निवेदितव्यम् । श्वः श्राद्धं भविता तत्र भवताऽऽहवनीयार्थे प्रसादः कर्तव्य इतीत्युज्ज्वला ।

[अ]परेद्युर्द्वितीयमामन्त्रणम् । इति ।

अपरेद्युः श्राद्धदिने द्वितीयमामन्त्रणं निवेदनं कर्तव्यमित्युज्ज्वला ।
यदा श्राद्धमिति । इति ।

ततस्तृतीयमामन्त्रणमिति गम्यते । अन्यथाऽपरेद्युरामन्त्रणमित्येव ब्रूयात् । स्पष्टमाहेदमापस्तम्बः—अपरेद्युर्द्वितीयं तृतीयमामन्त्रणम् । इति । आमन्त्रणमाह्वानं भोजनकाले सिद्धमागम्यतामिति तृतीयं भवतीत्यु-ज्ज्वला । अग्नौकरणपूर्वाङ्गादि धर्मप्रश्ने—

उद्धरिष्याम्यग्नौ च करिष्यामीत्यामन्त्रयते । इति ।

होमकालेऽनेन मन्त्रेण ब्राह्मणानामन्त्रयत इत्युज्ज्वला ।

काममुद्ध्रियतां काममग्नौ च क्रियतामित्यतिसृष्ट उद्धरेज्जुहु-
याच्च । इति ।

अथ ब्राह्मणाः काममुद्ध्रियतां काममग्नौ च क्रियतामित्यतिसृजेयुः ।
तैश्चातिसृष्ट उद्धरेज्जुहुयाच्च । उद्धरणं नाम ब्राह्मणार्थपक्वादन्यदृष्टं
कृत्वा तदन्यास्मिन्पात्रे पृथक्करोतीत्युज्ज्वला । श्राद्धे वर्ज्यानि धर्मप्रश्ने-
विलयनं मथितं पिण्याकं मधु मांसं च वर्जयेत् । इति ।

विलयनं नवनीतमलम् । यस्य दध्नी हस्तादिना मथनमात्रं न जलेन
मिश्रणं तन्मथितम् ।

तथा च नैघण्टुकाः—तक्रं ह्युदश्विन्मथितं पादाम्बुधाम्बु निर्जलम् ।
इति ।

यन्त्रपीडितानां तिलानां कल्कः पिण्याकम् । मधुमांसे प्रसिद्धे ।
मांसमप्रतिषिद्धमपि । एतद्विलयनादिकं वर्जयेदित्युज्ज्वला ।

कृष्णधान्यं शूद्रान्नं च ये चान्येऽनाश्यसंमताः । इति ।

कृष्णधान्यं कृष्णकुलित्थादि । न कृष्णघ्नीहयः । शूद्रान्नं शूद्रवत्तमन्नं
पक्वमपक्वं च । ये चान्येऽनाश्यत्वेनाभोज्येन संमताः । तांश्च वर्जयेदि-
त्युज्ज्वला ।

अहविष्यमनृतं क्रोधं येन च क्रोधयेत् । इति ।

अहविष्यं कोद्रवादि । अनृतं मिथ्यावादम् । क्रोधः कोपः । येन च
कृतेन क्रोधयेत्तद्वर्जयेदित्युज्ज्वला । एवं संक्षेपतः प्रायः श्राद्धधर्माः संगृ-
हीता एव । विस्तरस्तु श्राद्धमाधवे तथा संस्काररत्नमालायां च तत्प्र-
करणे द्रष्टव्य इति शिवम् ।

इत्योकोपाह्निसिद्धकुलावतंसरामार्यसूनुड्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे प्रकीर्णकाख्ये नवमकिरणे मासकृत्य-
प्रकरणम् ।

एवं मासकृत्ये निरूपितेऽथ प्रागुक्तश्रुतिक्रमप्राप्तं प्रत्यृतुकृत्यं तु

मासे मासे गृहस्थानां पक्षे पक्षे च यज्विनाम् ।

ऋतावृतौ यतीनां च यथेष्टं ब्रह्मचारिणाम् ॥

इति क्षौरं प्रकृत्य वचनात्तेषां यतीनां तस्य प्रत्यृतावेव संप्राप्तत्वे
तदनुकूलं नापितानयनं तस्मै द्रव्यप्रदानं पलाशादिपत्ररचितविस्तीर्ण-

पत्रावलीद्वयं तथा पुटकद्वयं चेत्यादिसामग्रीसंपादनमेव प्रत्यृतु गृहस्था-
दिभिस्तत्तद्वतुपूर्णमास्याः प्राग्दिनादेव सावधानतयाऽवश्यं संपादनीयम् ।
अकरणे प्रत्यवायस्य प्रतिप्रघट्टकधर्मशास्त्रेषु संभावितत्वादन्यथाऽनुप-
पत्त्या निरुक्तसामग्र्या गृहस्थाद्येकसाध्यत्वस्यावश्यवाच्यत्वाच्च । तस्मा-
दिदमेव तेषां प्रत्यृतु नित्यं कृत्यमिति बोध्यम् । न च देवदत्तेन तत्संपा-
दन एकस्य यतेः कृते यज्ञदत्तस्य तत्संपादने यत्यन्तराभावे तस्य प्रत्य-
वायित्वापत्तेरिति वाच्यम् । मनुष्ययज्ञमुख्यीभूतातिथिपूजनाविवत्संम-
वेऽनुपेक्षणीयत्व एव विधेस्तात्पर्यादिति दिक् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुऽयम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
हिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे नवमकिरण ऋतुकृत्यप्रकरणं समाप्ति-
मगमत् ।

अथ क्रमप्राप्तं संवत्सरकृत्यं लिख्यते । तत्र गृह्याग्निसाध्यानां श्रौता-
ग्निसाध्यानां च नित्यं प्रत्यहःप्रभृतिकृत्यानां प्रपञ्चस्तु तत्तन्निबन्धेषु
प्रसिद्ध एवेति तदितरसंवत्सरनित्यकृत्यमेव प्रकृते विवेचनीयम् । तच्च
मृतपितृकस्य मातुः पितुश्च सांवत्सरिकं सकृन्महालयश्राद्धं चेति । नित्या-
नामपि श्राद्धानां प्रायः शताधिकत्वेऽपि तथैव सकलशिष्टाचारात् । तत्र
मात्राद्याब्दिकमुक्तं माधवीये—तथा च लौगाक्षिः—

श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रमीतपितृको द्विजः ।

इन्दुक्षये मासि मासि वृद्धौ प्रत्यब्दमेव च ॥ इति ।

वृद्धिः पुत्रजन्मादिस्तेन तद्विशिष्टः कालो लक्ष्यत इति तत्रैव नैमि-
त्तिकमपि तद्व्याख्यातम् । अत्र मातापितरौ पितरावित्यमरादपि प्रमीत-
पितृक इत्यत्र प्रमीतौ मृतौ पितरौ यस्य स तथेति व्युत्पत्त्या मातुरप्या-
ब्दिकस्य संग्रहः । एवं महालयश्राद्धमपि नित्यमिति तत एवावगन्त-
व्यम् । एवं भाद्रपदापरपक्षीयान्वष्टकाभिधाक्षयनवमीश्राद्धं जीवात्पितृ-
ककर्तृकमाश्विनशुक्लप्रतिपदि मातामहश्राद्धं चान्यदपि यथाधिकारं
माधवीये संस्काररत्नमालायां च ज्ञेयम् । विस्तरभयान्नेहोक्तमिति ।

अथ श्राद्धाङ्गं तिलतर्पणम् । तदुक्तं संस्काररत्नमालायाम्—तच्च
दर्शश्राद्धे तदहरेव पूर्वं विधाय श्राद्धारम्भः कार्यः ।

पूर्वं तिलोदकं दत्त्वा अमाश्राद्धं तु कारयेत् ।

इति गर्गवचनादिति । श्राद्धस्य द्वाहकालत्वे नित्यतर्पणस्य तत्र
मध्यपातित्वात्तेनैव प्रसङ्गसिद्धिः । सद्यस्कालपक्षेऽप्येवम् । अन्याङ्गैरन्या-

ङ्गानां प्रसङ्गसिद्धेः पशुपुरोडाशादावभ्युपगमादिति । यदा तु सप्त-
म्यादौ नित्यतर्पणं तिलरहितं क्रियते तदा तन्त्रप्रसङ्गयोरभावादिदं
तिलसहितं पृथक्कार्यमेवेति । वार्षिकश्राद्धे तु परेद्युरेव ।

प्रत्यब्दे न भवेत्पूर्वं परेऽहनि तिलोदकम् ।

इति स्मरणात् । बृहन्नारदीयेऽप्याब्दिकं प्रक्रम्य—

परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितृन् ।

तस्य ते पितरः क्रुद्धाः शापं दत्त्वा व्रजन्ति हि ॥

इति गर्गेण प्रत्यवायस्योक्तेश्च । मातापित्रोर्वार्षिके विशेषं स्मृति-
रत्नावल्यां वृद्धमनुराह—

सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोः क्षयेऽहनि ।

तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत्पितृघातकः ॥ इति ।

श्राद्धाङ्गभूतं तु परेद्युस्तिलसहितमेव । तदुक्तं संग्रहे—

प्रत्यब्दाङ्गं तिलैर्दद्यान्निषेधेऽपि परेऽहनि ॥ इति ।

[*नन्वेवमपि सांवत्सरिकश्राद्धादौ भवतु परेद्युरेव तिलसहितं पितृ-
तर्पणमथापि पितृवत्तत्र भोजितानां तत्तद्विश्वदेवानामपि कुतो न तर्प-
णमिति चेन्न । तर्पणविधिवाक्ये पितृनितिपदेन बृहन्नारदीये प्रधानी-
भूतपितृमात्रुद्देशाद्विश्वदेवानां तु तदङ्गत्वाच्च ।] तत्र श्राद्धाङ्गतर्पणे
विधिरुक्तः संग्रहे—

स्नात्वा तीरं समागत्य उपविश्य कुशासने ।

संतर्पयेत्पितृनिज्यान्स्नात्वा वस्त्रं च धारयेत् ॥

तर्पणोत्तरं नित्यस्नानं कृत्वेत्यर्थः । तत्रैवाग्रे संतर्पयेत्पितृन्सर्वानिति
पाठो महालयाभिप्रायेण । तत्र सर्वेषां पित्रादिगुर्वन्तानां श्राद्धाद्याना-
दित्युक्तम् । तेन सकृन्महालयेऽपि परेद्युरेव तिलतर्पणं सिद्धम् । पक्ष-
श्राद्धादौ तु तत्रैव गर्गः—

पक्षश्राद्धे हिरण्ये च अनुव्रज्य तिलोदकम् ।

सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि ॥ इति ।

पक्षश्राद्धे हिरण्यश्राद्धे च ब्राह्मणविसर्जनोत्तरं तर्पणं कर्तव्यमित्यर्थः ।
अन्ते श्राद्धसमाप्तौ ।

* नायं ग्रन्थः ख. पुस्तके ।

गर्गः—कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् ।

पितृणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् ॥ इति ।

जीवत्पितृकेणापि मातृसृताहश्राद्धोत्तरदिने तद्वर्गमात्रस्य शुक्लतिलै-
स्तर्पणं कार्यमेव । परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्य इति तर्पणाकरणे प्रत्यवायश्रव-
णात् । एवमाश्विनशुक्लप्रतिपदादिश्राद्धादिष्वपि ज्ञेयम् । तीर्थश्राद्धे
दर्शश्राद्धवदिति । तत्रैवाग्रे यत्तु—

विवाहव्रतचूडासु वर्षमधं तदर्धकम् ।

पिण्डदानं सृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति,

तन्महालयाष्टकालभ्ययोगश्राद्धव्यतिरेकेण द्रष्टव्यम् ।

तिथितीर्थविशेषेण गयायां प्रेतपक्षके ॥

निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् । इतिवचनात् ।

तिथिविशेषोऽष्टकादिः ।

शौनकः—मातापित्रोः क्षयाहे तु परेऽहनि तिलोदकम् ।

कारुण्यश्राद्धविषये सद्यो दद्यात्तिलोदकम् ॥ इति ।

कारुण्यश्राद्धं पितृव्यादिश्राद्धम् । नन्वेवमपि पित्राद्याब्दिकश्राद्धाङ्गं
परेद्युः कार्यं तिलतर्पणं नित्यस्नानं संध्यां च विधायैव कर्तव्यम् ।
संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मस्विति वाक्यात् । न च तर्पण-
पर्यन्तं श्राद्धप्रयोगानुवृत्तेर्मध्ये संध्या नानुष्ठेयेति वाच्यम् । श्राद्धविनसायं-
संध्याननुष्ठानप्रसक्तेः । ततश्च स्नानसंध्यादीनां सर्वकर्मार्थत्वेन तदपि
तत्पूर्वकमेवेति चेन्न । श्राद्धदिनसायंसंध्यादेरग्रे कालान्तरासत्त्ववत्प्रकृते
प्रातःसंध्यायाः संप्राप्ततर्पणोत्तरं कालस्यासत्त्वासत्त्वेन त्वदुक्तापत्तेरप्रयो-
जकत्वात्तदनुष्ठानस्य तु दुर्भिक्षकोद्रवभक्षणन्यायेनागतिकत्वाच्च । तस्मा-
त्पूर्वेद्युःकृतश्राद्धाङ्गतर्पणमुक्तरीत्या कृत्वैव पश्चान्नित्यस्नानं विधाय
संध्याद्याह्निकं कार्यमिति दिक् । मन्वादिश्राद्धे कपिलः—

मन्वादिषु युगाद्यासु दर्शे संक्रमणेऽपि वा ।

पौर्णमास्यां व्यतीपाते दद्यात्पूर्वं तिलोदकम् ॥

अर्धोदये गजच्छायाषष्ठीयुगमहालये ।

भरण्यां च मघाश्राद्धे तदन्ते तर्पणं विदुः ॥ इति ।

नान्दीश्राद्धादौ तर्पणं निषिद्धं बृहन्नारदीये—

वृद्धिश्राद्धे सपिण्डे च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके ।

संवत्सरविमोके च न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ इति ।

एवं सप्तम्यां भानुवारे चेत्यादिप्रागुक्तवचनेन पित्रादिसांवत्सरिका-
दिश्राद्धदिने तिलतर्पणनिषेधात्तिलरहितं नित्यतर्पणं तु प्रातरेव ब्रह्म-
यज्ञोत्तरं मध्याह्ने वा मध्याह्नस्नानसंध्योत्तरं श्राद्धात्पूर्वमेव कार्यम् । यत्तु
धर्मप्रवृत्तौ—

पित्रोः प्रत्याब्दिके प्राप्ते तर्पणं तु कथं भवेत् ।
जलेनैव प्रकर्तव्यं निवृत्ते पितृकर्मणि ॥
श्राद्धं कृत्वा तु विधिवद्वैश्वदेवादिकं ततः ।
ब्रह्मयज्ञं ततः कुर्यात्तर्पणं तु तिलैर्विना ॥ इत्युक्तम् ।

तथाऽऽश्वलायनस्मृतावपि—

कुरुते ब्रह्मयज्ञं च श्राद्धात्पूर्वं सृतेऽहनि ।
निराशाः पितरस्तस्य श्राद्धान्नं न लभन्ति ते ॥
तर्पणं कुरुते पित्रोः श्राद्धात्पूर्वं सृतेऽहनि ।
निराशाः पितरस्तस्य स च गच्छेदधोगतिम् ॥
कुर्यात्पञ्च महायज्ञान्निवृत्ते श्राद्धकर्मणि ।
पित्रोराब्दिक एवाऽऽहुराचार्याः शौनकादयः ॥

इति चोक्तं तदाश्वलायनपरम् । तेषां ब्रह्मयज्ञस्य सूत्रोक्तत्वेन
तत्कर्त्रैवोक्तस्मृतौ तथोक्तत्वेन तयोर्बाध्यबाधकभावाभावाद्धर्मप्रवृत्तेरपि
तत्संमतत्वाद्ब्रह्मयज्ञतर्पणयोरङ्गाङ्गीभावे(व)स्य तेषामेव सत्त्वाच्च ।
अस्माकं तु ब्रह्मयज्ञः श्रुतावेवोदित आदित्य इति सूर्योदयोर्ध्वं प्रातरे-
षोक्त इति तर्पणावशेषेऽप्येकसत्त्वेऽपि द्वयं नास्तीत्युभयाभाव इति-
न्यायात्तयोक्तस्मृत्यादेर्बाध एवेति ध्येयं धीरैः ।

अथ सांवत्सरिकश्राद्धतिथिनिर्णयस्तत्रैव । तत्र या मुख्यापराह्-
व्यापिनी पूर्वा परा वा सैव ग्राह्या ।

अपराह्णव्यापिनी या पार्वणे सा तिथिर्भवेत् ।

इति वृद्धगौतमवचनात् ।

अहो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा ।
तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतुपः स्मृतः ॥
अष्टमे भास्करो यस्मान्मन्दी भवति सर्वदा ।
तस्मादनन्तफलदस्तत्राऽऽरम्भो विशिष्यते ॥

ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतुपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् ।

मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधाभावनमिष्यते ॥ इति ।

तत्रापि पादन्यूनाऽपराह्लान्त्यमुहूर्तस्य चतुर्थप्रहरान्तर्गतत्वात् । चतुर्थप्रहरस्य

चतुर्थे प्रहरे प्राप्ते यः श्राद्धं कुरुते द्विजः ।

आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं दाता च नरकं व्रजेत् ॥

इति निषिद्धत्वात्कुतपमारभ्य मुहूर्तचतुष्टयं पावर्णस्य मुख्यः कालः ।
यदा दिनद्वये मुख्यापराह्लव्याप्तिस्तदा पूर्वेव । तदाह मनुः—

यस्यामस्तं रविर्याति पितरस्तामुपासते ।

सा पितृभ्यो यतो दत्ता ह्यपराह्ले स्वयंभुवा ॥ इति ।

अत्रापराह्लशब्दोऽपराह्लैकदेशपर इति हेमाद्रिः ।

सुमन्तुरपि—द्यहे सुव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य तु या तिथिः ।

पूर्वस्यां निर्वपेत्पिण्डानित्याङ्गिरसभाषितम् ॥ इति ।

नारदीयेऽपि—दर्शं च पौर्णमासं च पितुः सांवत्सरिकं(रं)दिनम् ।

पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ इति ।

यदा दिनद्वयेऽपि साम्येनैकदेशेन व्याप्तिस्तथा(दा) तिथिवृद्धावुत्तरा ।
तिथिक्षये पूर्वा । तदाह बोधायनः—

अपराह्लद्वयव्यापिन्यतीतस्य च या तिथिः ।

क्षये पूर्वा तु कर्तव्या वृद्धौ कार्या तदोत्तरा ॥ इति ।

अत्र क्षयवृद्धी उत्तरतिथिगते ज्ञेये न ग्राह्यतिथिगते । दिनद्वये संपूर्णापराह्लादिव्याप्तेर्वृद्धयेकनियम्यत्वेन तत्र क्षयोदाहरणम् । यदा प्रति पदष्टादशघटिका द्वितीया चतुर्विंशतिघटिका तृतीया द्वाविंशतिघटिका तदा द्वितीयाश्राद्धं प्रतिपदि कार्यम् । वृद्ध्युदाहरणम्—यदि प्रतिपद्वितीये यथास्थिते तृतीयाऽष्टाविंशतिघटिका तदा द्वितीयायां तदिति माधवादयः । वैषम्येणोभयापराह्लैकदेशव्याप्तौ तु यत्राधिकाऽपराह्लव्याप्तिः सा ग्राह्या । तदाह माधवीये मरीचिः—

द्यपराह्लव्यापिनी चेदाब्दिकस्य यदा तिथिः ।

महती यत्र विद्वांसः प्रशंसन्ति महर्षयः ॥ इति ।

यदा दिनद्वयेऽप्यपराह्लसंबन्धाभावस्तदाऽपि पूर्वेव । तदाह मनुः—

न द्यहव्यापिनी चेत्स्यान्मृताहस्य यदा तिथिः ।

पूर्वस्यां निर्वपेत्पिण्डानित्याङ्गिरसभाषितम् ॥ इति ।

एतेन दर्शकालनिर्णयोऽपि व्याख्यातः । दर्श आब्दिकवन्मत इति माधवाचार्यवचनात् । अथैकोद्दिष्टेऽसौ संस्काररत्नमालायामेव—एकोद्दिष्टस्य तु मध्याह्नो मुख्यः कालः ।

आमश्राद्धं तु पूर्वाह्ण एकोद्दिष्टं तु मध्यमे ।

पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ॥

इतिवचनात् । अत्र मध्याह्नशब्देन मध्याह्नैकदेशः कुतपरीहिणा-
ख्यमुद्धर्तद्वयात्मको गृह्यते । अत एव श्लोकगौतमः—

आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारौहिणं बुधः ।

विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लङ्घयेत् ॥ इति ।

कुतपपूर्वभाग एवाऽऽरम्भः । तदाह व्यासः—

कुतपप्रथमे भाग एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् ।

आवर्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान् ॥ इति ।

तत्रैव कुतप एव । अत्रापि तिथिद्वैधे पार्वणतिथिवन्निर्णयो ज्ञेय इति । स त्वेकोद्दिष्टविधिरेकदैवत्य एव । महालयः सकृच्चेत्सर्वदैवत्य एव । मातृपितृसांवत्सरिके तु पार्वण एव त्रिदैवत्ये प्रसिद्ध एव । दर्शस्तु षाड्दैवत्यः ।

महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च ।

नवदैवत्यमत्रेष्टमन्यत्षाट्पौरुषं विदुः ॥

इतिवचनात् । एवं वैशाखशुक्लतृतीयायामक्षय्यतृतीयाख्यायां पितृ-
तृप्त्यर्थं जलकुम्भप्रदानमपि दर्शवत्षड्दैवत्यमेव । तत्प्रकारश्चोक्तो
निर्णयसिन्धावक्षय्यतृतीयां प्रकृत्य—अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—
वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च । गङ्गातोये नरः स्नात्वेत्याद्यु-
क्त्वाऽग्रे—अत्र दानविशेषस्तत्रैव भविष्य इमां प्रकृत्य—

उदकुम्भान्सकनकान्सान्नान्सर्वरसैः सह ।

यवगोधूमचणकान्सक्तुदध्योदनं तथा ॥

त्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते ॥ इति ।

अथ फलाश्रवणान्नित्यत्वम् । तदुक्तं कालमाधवीये संग्रहे—

नित्यं सदा यावदायुर्न कदाचिदतिक्रमेत् ।

इत्युक्त्याऽतिक्रमे दोष श्रुतेरत्यागचोदनात् ॥

फलाश्रुतेर्वीप्सया च तन्नित्यमिति कीर्तितम् ॥ इति ।

न चैवमपि निर्णयसिन्धावेवाग्रेऽत्र देवीपुराणेऽपि—

तृतीयायां तु वैशाखे रोहिण्यर्क्षे प्रपूज्य तु ।
उदकुम्भप्रदानेन शिवलोके महीयते ॥

इति काम्यत्वमस्योक्तमिति वाच्यम् । तस्य दानस्य वैविकत्वात् ।
पूर्वोक्तदानस्य तु तत्रैवाग्रे

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
अस्य प्रदानात्तृप्यन्तु पितरोऽपि पितामहाः ॥
गन्धोदकतिलैर्मिश्रं साक्षं कुम्भं फलान्वितम् ।
पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

इतिलिखितमन्त्रलिङ्गाच्चेति दिक् । अत्र व्याप्तिनिर्णयस्तु तत्रैव
प्रागिमां प्रकृत्योक्तः—सा च पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वयेऽपि
सद्यस्तौ परैव । तदुक्तं निर्णयामृते नारदीये—

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीया रोहिणीयुता ।
दुर्लभा बुधवारेण सोमेनापि युता तथा ॥
रोहिणी बुधयुक्ताऽपि पूर्वविद्धा विवर्जिता ।
भक्त्या कृताऽपि मांधात्रा पुण्यं हन्ति पुरा कृतम् ॥ इति ।
गौरी विनायकोपेता रोहिणी बुधसंयुता ।
विनाऽपि रोहिणीयोगात्पुण्यकोटिफलप्रदा ॥ इति ।

गौरी तृतीया विनायकश्चतुर्थी तयोस्तद्वत्स्यैव प्रसिद्ध्या तदभिधाना-
दिति । एवं मातामहस्य मातामह्याश्च सांवत्सरिकश्राद्धादि कश्चित्कर्तुम-
धिकारी न चेज्जीवत्पितृकेणापि तद्वौहित्रप्रतिपच्छ्राद्धवत्कार्यमेव ।
किमुत प्रमीतपितृकेण । तयोर्माधवाद्याकरेषु पितृतुल्यत्वाभिधानात् ।
एतेन पितृव्यादयोऽपि व्याख्याताः । आदिपदात्

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ॥

इत्युक्तोपनेत्रादयो गौणपितरो ग्राह्याः । एवं सति वित्ते सर्वं यथो-
क्तमनुष्ठातुं युक्तमेव यदि तन्न तदा परममुख्यतमं मातापितृसांवत्सरिक-
महालयाख्यश्राद्धत्रयं तु केनापि शास्त्रविहितोपायेन मुख्यकल्पाभिध-
पाकेनैव कार्यमन्यत्तु षण्णवत्यादिकं तिलोदकदानेनापि । स्वीयधर्मसू-
त्रे—तत्र द्रव्याणि तिलमाषघ्नीहियवा आपो मूलं फलानि च । इति

तिलप्राधान्यस्यैवोक्तत्वात् । तथा धर्माहृतेन द्रव्येण चेति तत्रैवाग्रेऽध-
र्माहृतद्रव्यस्य निन्दितत्वाच्च । षण्णवत्यस्तूक्ताः कमलाकरेण—

अमामनुयुगक्रान्तिधृतिपातमहालयाः ।

अन्वष्टक्यं च पूर्वद्युः षण्णवत्यः प्रकीर्तिताः ॥ इति ।

चकारादष्टकाग्रहणमिति । अमाऽमावास्याः १२, मनवो मन्वा-
दयः १४, युगानि युगादयः ४, क्रान्तयः संक्रान्तयः १२, धृतयो वैधु-
तयः १३, पाता व्यतिपाताः १३, महालयाः भाद्रपदकृष्णप्रतिपदमार-
भ्याऽऽश्विनशुक्लप्रतिपदन्ताश्रन्द्रक्षयसाम्यात्षोडश श्राद्धतिथयः १६,
अन्वष्टक्यं च पूर्वद्युरिति मार्गशीर्षपौषमाघफाल्गुनकृष्णसप्तम्यष्टमीन-
वम्यः १२, एवं मेलनेन ९६ । तत्र मन्वादयो युगादयश्च तथैव निर्णीताः
संस्काररत्नमालायामनध्यायप्रकरणे पद्मपुराणे—

अश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिकी द्वादशी सिता ।

तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥

फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता ।

आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा आषाढस्य च पूर्णिमा ।

कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पञ्चदशी तथा ॥

मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः । इति ।

अश्वयुगाश्विनः । भाद्रपदस्य चेत्यत्र चकारः सितेत्यस्यानुवृ-
त्त्यर्थः । तथाशब्दो भाद्रपदस्येत्यत्रापि तृतीयान्वयार्थः । आषाढ-
स्यापीत्यत्रापिशब्दः सितेत्यस्यानुवृत्त्यर्थः । अयमपिशब्दो माघमासस्ये-
त्यत्रापि योज्यः । तेनात्रापि सितेत्यस्यानुषङ्गः सिध्यति । युगादयो
विष्णुपुराणे—

वैशाखमासस्य सिता तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।

नभस्यमासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥ इति ।

नभस्यो भाद्रपद इति । एवं यथामति पैतृकं संवत्सरगतमत्यावश्य-
कनित्यकृत्यं निरूपितम् । अथ दैविकं तन्निरूप्यते । तत्र चैत्रशुक्लन-
वमी श्रीरामनवमी । सा च मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्या-
प्त्यादौ तूक्तं निर्णयसिन्धौ तां प्रकृत्य—दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तद-
भावे वा पूर्वदिने पुनर्धस्वृक्षर्युतामपि त्यक्त्वा परैव ग्राह्या । तदुक्तं
माधवीयेऽगस्तिसंहितायाम्—

नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।
उपोषणं नवम्यां च दशम्यां चैव पारणम् ॥ इति ।

रामार्चनचन्द्रिकायामपि—

विद्धैव चेदक्षयुता व्रतं तत्र कथं भवेत् ।
विद्धानिषेधश्रवणान्नवमी चेति वाक्यतः ॥
वैष्णवानां विशेषात्तु तत्र विष्णुपरैरपि ।
दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद्विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः ॥
तदन्येषां च सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम् ॥ इति ।

अत्र दशम्यादिषु वृद्धिश्चेदिति च वदन्यदा प्रातस्त्रिमुहूर्ता नवमी
दशमी च क्षयवशात्सूर्योदयात्प्रागेव समाप्यते तदा स्मार्तानां तत्रैवै-
कादशीनिमित्तोपवासान्नवमीव्रताङ्गपारणालोपः स्यादतोऽष्टमीविद्धैव
स्मार्तैः कार्या । वैष्णवानां त्वरुणोदयविद्धैकादश्या हेयत्वान्न पारणा-
लोपप्रसङ्ग इति द्वितीयैव तैः कार्येति सूचयतीत्युक्तम् । एवं—

नवमी पूर्वविद्धैव पक्षयोरुभयोरपि ।
मध्याह्ने रामनवमी पुनर्वसुसमन्विता ॥
ग्राह्या नैवाष्टमीविद्धा सनक्षत्राऽपि वैष्णवैः ।

इति माधवीयकारिकाव्याख्याने निर्णयदीपे रामनवमी तु—

चैत्रशुद्धां तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ॥
नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।
उपोषणं नवम्यां वै दशम्यां पारणं भवेत् ॥

इतिवचनादष्टमीविद्धा सनक्षत्राऽपि नोपोष्येत्युक्तम् । एवं कौस्तु-
भेऽपि रामनवमीं प्रकृत्य मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । पुनर्वसुयोगस्तु तत्रैव
प्राशस्त्यार्थः ।

तिथिः शरीरं देवस्य तिथौ नक्षत्रमाश्रितम् ।
तस्मात्तिथिं प्रशंसन्ति न नक्षत्रं तिथिं विना ॥

इति वचनाद्दिनद्वये तद्याप्तौ तदव्याप्तौ च परैव ग्राह्या । अष्टमीविद्धाया
निषेधात् । इत्युक्त्वा नवमीचाष्टमी विद्धेत्याद्यगस्तिसंहितावाक्यं तत्र
प्रमाणीकृत्य दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वद्युः पुनर्वसुयोगेऽपि परैवेति

माधवः । अग्रेऽत एव वैष्णवान्प्रति विशिष्य निषेधादष्टमीविद्धां मध्याह्न्यापिनीं पुनर्वसुयुक्तामपि परित्यज्य परेद्युस्त्रिमुहूर्तायामप्युपोषणं कार्यमिति केचित् । अन्ये तु कर्मकालव्यापिशान्त्रानुरोधेनैव शास्त्रान्तरस्य नेतुमुचितत्वात्परदिने मध्याह्न्यापिन्यामसत्यां पूर्वविद्धैव ग्राह्येत्याहुः । अविद्धाया अलाभे तु विद्धायामप्युपोषणं निःसंदेहमेव । गुणानुरोधेन प्रधानस्य लोपासंभवादित्युक्तम् । एवं पुरुषार्थचिन्तामणौ तु रामनवमीं प्रकृत्य सा चोपवासव्रतादिषु पूर्वविद्धा ग्राह्या । वसुरन्धयोरितियुग्मवाक्यात् ।

न कुर्यान्नवमीं तात द्शम्या तु कदाचन । इति ।

हेमाद्रौ स्कान्दात् ।

नवम्येकादशी चैव दिशा विद्धा यदा भवेत् ।

तदा वर्ज्या विशेषेण गङ्गाम्भःश्वहतौ यथा ॥ इति ।

इति तत्रैव पाश्चात् ।

द्वितीया पञ्चमी वेधाद्दशमी च त्रयोदशी ।

चतुर्दशी चोपवासे हन्युः पूर्वापरे तिथी ॥

इतिबृहद्वासिष्ठाच्चेति सामान्यतो नवमीं निर्णयि धीरामनवमीव्रतं विशेषतः प्रपञ्चयान्ते

यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते स च नराधमः ।

कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः ॥

इति मदनरत्नेऽगस्त्यसंहितायां रामनवमीव्रतमुक्तम् । अत्रंशब्दस्याकरणे प्रत्यवायस्य फलस्य च श्रवणान्नित्यकाम्यमिदम् । अत्र लग्ने कर्कटाह्वय इत्यनेन मध्याह्नस्य जन्मकालत्वाभिधानात् ।

सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ॥

इति वचनाच्च मध्याह्न्यापिनी ग्राह्या । उभयत्र तद्याप्तावव्याप्तौ वा

पुनर्वस्वृक्षसंयोगः स्वल्पोऽपि यदि लभ्यते ।

चैत्रशुक्लनवम्यां तु सा पुण्या सर्वकामदा ॥

इति मदनरत्नेऽगस्तिसंहितावचनाद्या पुनर्वसुयुता सैव ग्राह्या । यदैकत्र मध्याह्ने पुनर्वसुयोगोऽन्यत्र मध्याह्नं विहाय पुनर्वसुयोगस्तदा मध्याह्ने पुनर्वसुयुता ग्राह्या । यदा दिनद्वयेऽपि मध्याह्ने पुनर्वसुयोगो मध्याह्नं

विहायैव वा पुनर्वसुयोगस्तदोत्तरा । यदा दिनद्वयेऽपि पुनर्वसुयोगो नास्ति केवलनवम्येव दिनद्वयेऽपि मध्याह्नव्यापिनी तदेकदेशव्यापिनी मध्याह्नास्पर्शिनी वा तदाऽप्युत्तरैव ।

नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ।

उपोषणं नवम्यां वै दशम्यां पारणं भवेत् ॥

इति माधवोदाहृतागस्तिसंहितावचनादिति रामनवमीत्युपसंहृतम् । तत्र प्राक्तनग्रन्थत्रितयग्रन्थस्यापि तात्पर्यतोऽनुग्राहकं सुव्यवस्थापकं च पुरुषार्थचिन्तामणिमतमेव यथार्थनामकमिति दिक् । अथ श्रावण्यां पौर्णमास्यामुत्सर्जनोपाकर्म समकालमेवाऽऽचरन्ति प्रायोऽखिलशिष्टा इति सा निर्णीयते । तदुक्तं पुरुषार्थचिन्तामणाविमां प्रकृत्य पूर्णिमा तु यदा पूर्वसूर्योदयमारभ्य प्रवृत्ता तदा पूर्वैव सर्वेषाम् । यदा तु पूर्वदिने मुहूर्ताद्यनन्तरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयादिपरिमिता भवति तदा तैत्तिरीयैरुत्तरा ग्राह्या तद्भिन्नयाजुषैः पूर्वैति व्यवस्था । यदा द्वितीयदिने षण्मुहूर्तपरिमिता तदा सर्वेषामुत्तरैव । यदा पूर्वदिने मुहूर्तानन्तरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयाद्भूना तदा सर्वेषां पूर्वैवेतीति । संस्काररत्नमालायां त्विमां प्रकृत्योक्तम्—तत्र यदा सूर्योदयमारभ्य पौर्णमासी प्रवृत्ता तदा संदेह एव नास्ति । यदा तु पूर्वदिने मुहूर्तत्रयानन्तरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने संगवात्परतो न भवति तदा

श्रावणी पौर्णमासी तु संगवात्परतो यदि ।

तदैवौदयिकी ग्राह्या नान्या त्वौदयिकी भवेत् ॥

इतिवचनेन संगवात्परतो विद्यमानाया एवौदयिक्या ग्राह्यत्वोक्तेः प्रकृते तादृश्या अभावात्पूर्वैव । संप्राप्तवाञ्छुतीर्ब्रह्मेति निषेधस्तु परदिने संगवात्परतः सत्त्व एवेति द्रष्टव्यम् । यदा तु पूर्वदिने मुहूर्तत्रयानन्तरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने संगवात्परतो न भवति तदा—पर्वण्यौदयिके कुर्युः । धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तम् । संप्राप्तवाञ्छुतीर्ब्रह्मेतिवाक्येभ्यः श्रावणी पौर्णमासी त्वितिवाक्याच्च परैव । यत्तु—

श्रावणः श्रावणं कर्म संगवस्पृग्यदा भवेत् ।

तदैवौदयिकं ग्राह्यं नान्यदौदयिकं भवेत् ॥

इति सिद्धाभट्टीयं वचनं तदपि संगवं संगवकालं सर्वं स्पृशतीति संगवस्पृक् । संगवमभिव्याप्याग्रे वर्तमानमित्यनापत्त्या लक्षणाध्याहार-

निष्पन्नमर्थं स्वीकृत्य श्रावणी पौर्णमासी त्वित्येतत्समानार्थं कार्यमिति ।
न चैवं ग्रन्थद्वयविरोधान्नैकः सिद्धान्त इति वाच्यम् ।

श्रावणी पौर्णमासी तु संगवात्परतो यदि ॥

तदैवौदयिकी ग्राह्या नान्या त्वौदयिकी भवेत् ।

इत्येकस्यैव वाक्यस्यानुग्रहार्थमेतैरेवानेकवाक्यानां कण्ठत एव स्वार्थ-
संकोचकरणस्योपपादितत्वेन बह्वनुग्रहस्य न्याय्यत्वविदां तत्स्फुटत्वात् ।
परमप्राचीनमहाप्रामाणिककालनिर्णयदीपिकाकृताऽपि कण्ठत एवैवमे-
वोक्तत्वाच्च । तद्यथा—

वेदोपाकृतिरोषधिप्रजनने पक्षे सिते श्रावणे

स्याद्ब्रह्मवतिनां गृहाश्रमजुषां चाथो यजुःशाखिनाम् ।

श्रावण्यां ह्यहगा तु कर्मसमयं व्याप्नोति सा चेन्न वा

कार्या तित्तिरिशाखिभिः परदिने पूर्वैतरैर्याजुषैः ॥ इति ।

विस्तरस्त्वत्र सप्रपञ्चं सोपपत्तिकं सप्रमाणं च पुरुषार्थचिन्तामणा-
वेव ज्ञेय इत्यलं पल्लवितेन । अथ श्रावणकृष्णाष्टम्यां जन्माष्टमीव्रतं
तदपि नित्यकाम्यमेव । तत्रापि व्याप्त्यादिनिर्णय उक्तो माधवीयका-
रिकाग्रन्थे—

व्रतमात्रेऽष्टमी कृष्णा पूर्वा शुक्लाष्टमी परा ।

दुर्गाष्टमी तु शुक्लाऽपि पूर्वविद्धा विधीयते ॥

पक्षद्वयेऽप्युत्तरैव शिवशक्तिमहोत्सवे ।

ज्येष्ठर्क्षयोगे पूर्वाऽपि ग्राह्या ज्येष्ठाव्रते तिथिः ॥

मध्याह्नादूर्ध्वसूक्ष्मं चेत्यरेद्युः सा प्रशस्यते ।

ज्येष्ठर्क्षभानुवाराभ्यां योगोऽष्टम्याः सुदुर्लभः ॥

इत्यष्टमीसामान्यनिर्णयमन्यतद्व्रतनिर्णयं चोक्त्वा

जयन्त्याख्यव्रतं भिन्नं कृष्णजन्माष्टमीव्रतात् ॥

शुद्धा च सप्तमीविद्धेत्येवं जन्माष्टमी द्विधा ।

सप्तमी चेन्निशीथात्प्राग्विद्धा शुद्धाऽन्यथा भवेत् ॥

शुद्धायां नास्ति संदेहो विद्धा च त्रिविधेष्यते ।

निशीथयोगः पूवेद्युः परेद्युर्वा द्वयोरुत ॥

पूर्वैव प्रथमे पक्षे परैवोत्तरपक्षयोः ।

अष्टमी रोहिणीयुक्ता जयन्ती सा चतुर्विधा ॥

शुद्धा शुद्धाधिकेत्येवं विद्धा विद्धाधिकेति च ।
 शुद्धायामपि विद्धायां न संभाव्योत्तरा तिथिः ॥
 शुद्धाधिकायां योगश्चेदेकस्मिन्वा दिनद्वये ।
 नैकयोगेऽस्ति संदेहो द्वियोगे प्रथमं दिनम् ॥
 सदा निशीथे पश्चाद्वेत्युत्तमो मध्यमोऽधमः ।
 योगस्त्रिधाऽपि पूर्वेद्युः संपूर्णत्वादुपोषणम् ॥
 विद्धाधिकायामप्येकदिनयोगे स गृह्यताम् ।
 द्वयोर्योगस्त्रिधा भिन्नो निशीथे वृत्तिभेदतः ॥
 तद्वृत्तिर्दिन एकस्मिन्नुभयोर्नोभयोरिति ।
 एकस्मिंश्चेत्तद्विनं स्यात्पक्षयोरन्त्ययोः परम् ॥
 बुधे सोमे जयन्ती चेद्वारे साऽतिफलप्रदा ।
 तिथ्यर्क्षयोर्द्वयोरन्त उत्तमं पारणं भवेत् ॥
 एकस्यान्ते मध्यमं स्यादुत्सवान्तेऽधमं स्मृतम् ।
 यस्मिन्वर्षं जयन्त्याख्ययोगो जन्माष्टमी तदा ।
 अन्तर्भूता जयन्त्यां स्याद्वृक्षयोगप्रशस्तितः ॥ इति ।

अत्र विस्तरस्त्वेतदीयाग्रिमग्रन्थ एव बोद्धव्यः । एवं माघकृष्णचतु-
 र्वश्यां शिवरात्रिव्रतम् । तदप्यत्रैवोक्तं प्राग्बत्

प्रदोषे वा निशीथे वा द्वयोर्वा याऽस्ति सा भवेत् ।
 शिवरात्रिव्रते तत्र द्वयोः सत्ता प्रशस्यते ॥
 तदभावे निशीथैकव्याप्ताऽपि परिगृह्यताम् ।
 तस्याश्वासंभवे ग्राह्या प्रदोषव्यापिनी तिथिः ॥
 तिथ्यन्ते पारणं यामत्रयादर्वाक्समाप्यते ।
 अन्यथा पारणं प्रातरन्यतिथ्युपवासवत् ॥ इति ।

अत्रापि विस्तरस्त्वेतदीयाग्रिमग्रन्थे वेदितव्य इति संक्षेपः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुञ्जयम्बकसंगृहीते सत्याषाठ-
 हिरण्यकेशिनित्याचारशिरोभूषणाभिधाह्निके प्रकीर्णकारुण्यनवमकिरणे
 संवत्सरकृत्यनिरूपणप्रकरणम् ।

एवमन्तःशुद्धिसाधनान्युक्तानि प्रतिहायनान्तानि यथामति नित्यक-
 माणि कुर्वन् गृही यदि बहिर्द्व्याणाममेध्यादिनोपघातस्तर्हि कथं
 तच्छुद्धिं विद्ध्यादित्यपेक्षायां तत्प्रकारोऽभिधीयते । स चोक्तः प्रयोग-
 पारिजाते—यद्यपि मूरितरं तथाऽपि तमेव सारतोऽत्र यावदुपयुक्तं

संगृह्णीमः । सुवर्णरजतताम्रपात्राणामस्पृश्यस्पर्शनेन निर्लेपोपहतौ त्रिरात्रं
 भस्मघर्षणजलप्रक्षालनाभ्यां शुद्धिः । तत्रापि ताम्रमम्लेन शुध्यतीति
 वचनात्तथाऽनुभवञ्च ताम्रपात्रस्याम्लोदकेनैव शुद्धिः । सलेपोपहताव-
 ग्न्युत्तापनजलप्रक्षालनाच्छुद्धिः । अयोविकाराणां सर्वेषां भस्मघर्षणज-
 लप्रक्षालनाच्छुद्धिः । शङ्खशुक्त्योर्गन्धलेपक्षयपर्यन्तं मृद्घर्षणजलाभ्यां
 शुद्धिः । शङ्खशृङ्गदन्तमयानां तु गौरसर्षपप्रक्षेपणगोमूत्रजलप्रक्षालनाभ्यां
 शुद्धिः । शृङ्गदन्तमयानां च चण्डालादिस्पर्शोपहतौ संतक्षणेन शुद्धिः ।
 शङ्खशुक्तिमौक्तिकपात्राणां क्षालितेनैव शुद्धिः । स्फाटिकादेरप्येवमेव ।
 अश्ममयानां सर्वोपहतौ भस्ममृद्घर्षणजलप्रक्षालनाभ्यां शुद्धिः ।
 सौवर्णराजतजलपात्राणां शूद्रजलपानेनोपहतौ जलप्रक्षालनेन शुद्धिः ।
 ताम्रादीनां तु तापलेखनाभ्यां शुद्धिः । अमेध्याक्तानां सर्वेषां गन्धले-
 पनक्षयपर्यन्तं मृद्घर्षणजलप्रक्षालनाभ्यां शुद्धिः । इति पात्रशुद्धिः ।
 अथ वस्त्रशुद्धिः । कार्पासिकवस्त्रस्य विण्मूत्ररेतःप्रभृतिभिर्निर्लेपोपहतौ
 प्रोक्षणेन शुद्धिः । चण्डालादिस्पर्शे विण्मूत्रादिभिः सलेपोपहतौ रज-
 केन क्षालनाच्छुद्धिः । बहुवस्त्राणां चण्डालादिभिर्निर्लेपोपहतौ प्रोक्षणे-
 नैव शुद्धिः । सलेपोपहतौ प्रक्षालनेन शुद्धिः । पट्टक्षौमवस्त्रयोर्निर्ले-
 पोपहतौ गौरसर्षपप्रक्षेपणेन शुद्धिः । सलेपोपहतौ तु प्रक्षालनेन शुद्धिः ।
 रजकहस्तास्थितवस्त्रग्रहणे दोषो नास्ति । अविरोमनिर्मितकम्बलकौशे-
 ययोर्मूत्रपुरीषादिना निर्लेपोपहतौ प्रोक्षणेन शुद्धिः । तत्र कौशेयस्य
 विशेषेण श्वेतसर्षणप्रक्षेपणेन शुद्धिः । सलेपोपहतौ गोमूत्रजलप्रक्षाल-
 नातपशोपणाभ्यां शुद्धिः । पार्वतीयच्छागरोमनिर्मितनेपालकम्बलस्य
 निर्लेपोपहतौ गोवालघर्षणेन शुद्धिः । सलेपोपहतौ तु पुत्रजीवीफलसं-
 युक्तोदकक्षालनेन शुद्धिः । गोणीनामस्पृश्यस्पर्शने निर्लेपोपहतौ प्रोक्षणेन
 शुद्धिः । सलेपोपहतौ प्रक्षालनेन शुद्धिः । गोणी तु मानविशेषः । तथा
 चोक्तम्—

पलं प्रकुञ्चकं मुष्टिः कुडवस्तच्चतुष्टयम् ।

चत्वारः कुडवाः प्रस्थश्चतुष्प्रस्थमथाऽऽढकम् ॥

अष्टाढको भवेद्द्वोणो द्विद्रोणः सूर्प उच्यते ।

सार्धसूर्पो भवेत्खारी द्विसूर्पा गोण्युदाहृता ॥

तामेव भारं जानीयाद्वाहो भारचतुष्टयम् ॥ इति ।

पलस्य मानमुक्तममरासिंहेन—गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः । ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयमिति । एवं च गोणीपरिमितधान्याधान्येव शण-सूत्रादिनिर्मिताऽत्र गोणीशब्देन ग्राह्येति । महार्हचित्रकम्बलस्य चण्डालव्यतिरिक्तास्पृश्यस्पर्शनेनोपहतावग्न्यर्केन्दुरश्मिभिर्वायुना च संशोष्य त्रिवारं संप्रोक्ष्य सर्षपप्रक्षेपणेन च शुद्धिः । चण्डालादिस्पर्शोपहतौ प्रक्षालनेन शुद्धिः । कार्पासनिर्मितशय्योच्छीर्षकासनानामस्पृश्यस्पर्शने निर्लेपोपहतावर्कतापनत्रिः प्रोक्षणश्वेतसर्षपप्रक्षेपणैः शुद्धिः । कार्पासस्य प्रोक्षणेन शुद्धिः । कार्पासतन्तुसमूहस्य निर्लेपोपहतौ प्रोक्षणेन शुद्धिः । सलेपोपहतौ प्रक्षालनेन शुद्धिः । इति वस्त्रादिशुद्धिः । अथ मुञ्जादि-शुद्धिः । मुञ्जादितृणनिर्मितविष्टरवल्कलचीराणां रेतःकीटशवादिभिर्नि-र्लेपोपहतावभ्युक्षणश्वेतसर्षपप्रक्षेपणाभ्यां शुद्धिः । सलेपोपहतौ तु गोमू-त्रक्षीरवारिभिर्गोवालघर्षणैः शुद्धिः । कटकव्यञ्जनशूर्पादीनां चण्डाला-दिस्पर्शोपहतौ निर्लेपे प्रोक्षणेन शुद्धिः । सलेपोपहतौ तु प्रक्षालनेन शुद्धिः । काष्ठानामत्यन्तोपहतौ प्रक्षालनेन शुद्धिः । छत्रपादुकादण्डानां तु निर्लेपोपहतौ प्रोक्षणेन शुद्धिः । सलेपोपहतौ तु प्रक्षालनेन शुद्धिः । आन्दोलिकादियानरथ्याजलकर्दमतृणनावामस्पृश्यस्पर्शनेनोपहतौ वा-युना सोमसूर्यांशुभिश्च शुद्धिः । इति मुञ्जादिशुद्धिः । अथ धान्यादि-शुद्धिः । एकपुरुषोद्धार्याणां व्रीह्यादिधान्यानां विण्मूत्रश्वादिभिरुप-हतौ तत्रोपहतमात्रधान्यं परित्यज्य शेषस्य कण्डनप्रक्षालनाभ्यां शुद्धिः । अनेकपुरुषोद्धार्याणां व्रीहियवगोधूमानां चण्डालादिभिरुपहतौ यथा-क्रमं प्रोक्षणपर्यग्निकरणप्रक्षालनैः शुद्धिः । मूत्रादिसंपर्के तावन्मात्रेण शुद्धिः । श्वादिस्पर्शे निस्तुषीकरणेन शुद्धिः । व्रीह्यादिसंबन्धितण्डु-लानां मुद्गमांषादिकानां कराघर्षणेन शुद्धिः । भाण्डस्थधान्यानामस्पृ-श्यस्पर्शनेनोपहतौ धान्यस्य मार्जनेन शुद्धिः । भाण्डस्य तु पूर्वोक्त-शुद्धिः । इति धान्यशुद्धिः । अथ स्वल्पा शरीरशुद्धिः । वसाशुक्रासृ-ङ्मज्जामूत्रविट्कर्णविणेत्रविडश्रुनासिकाविट्श्लेष्मस्वेदानां स्पर्शने यथायोगं शुद्धिं कुर्यात् । तत्रायं क्रमः—वसादिषण्मलस्पर्शने गन्धा-पकर्षणपर्यन्तं मृज्जलाभ्यां शुद्धिः कार्या । कर्णविडादिषण्मलस्पर्शने शुद्धाभिरद्भिरेव शुद्धिः । ग्रामसंयुक्तरथ्याजलकर्दमबिन्दवो नाभेरधो-भागं स्पृशन्ति चेत्तत्स्थाने त्रिवारं मृद्घर्षणजलप्रक्षालनाभ्यां शुद्धिः ।

नाभेरूर्ध्वभागे स्पृशन्ति चेत्तदा स्नानेन शुद्धिः । इति स्वल्पदेहशुद्धिः ।
 अथ रजस्वलाशुद्धिः । सा चोक्ता सौभाग्यकल्पद्रुमे स्मृत्यर्थसारे—
 रजस्वला षष्टिपलमृत्तिकादिभिः शौचं कुर्यात् । ततो मलं प्रक्षाल्य
 संगवे स्नायादिति । स्मृत्यन्तरे—चतुर्थेऽहनि कुर्वीत स्नानमभ्युदिते रवा-
 वित्युदयानन्तरमेव स्नानमुक्तं तेन विकल्प इति । तन्नैमित्तिकग्रहणादि-
 स्नानादिविस्तरस्तु तत एव ज्ञेयः । अत्रापि शौचप्रकरणोक्तस्वसूत्रादि-
 सिद्धगन्धलेपक्षयान्त एव शौच आवश्यको मृत्प्रमाणं त्वाभ्यौदयिकमे-
 वेति दिक् । इति रजस्वलाशुद्धिः । अथ दोषापवादः । यज्ञगृहविवाह-
 गृहगोष्ठतिलयन्त्रेक्षुयन्त्रे देवयात्रासु श्वकाकाद्युपहतिनिमित्तरूपहत-
 कांस्यादिद्रव्याणां दोषो नास्ति । पतिव्रतासुवासिनीवृद्धाबालानां
 स्नानाद्यभावे सदा शुद्धिः । सिध्यसिद्धिसमभूतब्राह्मणधर्मपरराजतञ्ज-
 त्यवैद्यशिल्पिकारुदासीदासानामस्पृश्यदर्शने दोषो नास्ति । प्रादप्रक्षाल-
 नादावापतितबिन्दवो महीं स्पृष्ट्वा प्रत्यागत्य शरीरं स्पृशन्ति चेत्तदा
 दोषो नास्ति । अन्योन्यसंभाषणजनितबिन्दुस्पर्शने दोषो नास्ति । भुक्त-
 हस्तलग्नभुक्तस्नेहावशिष्टस्पर्शने दोषो नास्ति । ताम्बूलभक्षणकालेऽस्पृ-
 श्यत्वाभक्षणोच्छिष्टदोषो नास्ति । वत्सस्तूधोगतक्षीराकर्षणे शुचिः ।
 ब्रह्मचारिहस्तस्थितभिक्षान्नस्यास्पृश्यस्पर्शने दोषो नास्ति । उष्ट्रास-
 भाजाश्वकाकवराहोलूककुक्कुटवस्त्रजनितरजोव्यतिरिक्तरणूनां दोषो
 नास्ति । अश्वगोरथयानानां रेणवो विप्रपादगोष्ठाजाश्वमुखानि बाल-
 स्पृष्टद्रव्यं च प्रशस्ताः । गर्जसूर्यचन्द्ररश्मिवृक्षादिच्छायानिलनीहारबिन्दु-
 क्षीरभस्मक्षौद्रसुवर्णदर्भतिलयवप्रियङ्गुधान्यसर्षपलाजाक्षतापामार्गशिरी-
 षपद्मामलकपालाशखदिरवटवृक्षपुष्पितवृक्षलोध्रदूर्वाहरिद्रामाल्यमणि-
 सिकतानामस्पृश्यस्पर्शने दोषो नास्ति । इति दोषापवादः ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्र्यम्बकसंगृहीते सत्याषाढ-
 हिरण्यकेश्याचारशिरोभूषणाभिधाह्निकीयप्रकीर्णाख्यनवमाकिरणे शुद्धि-
 प्रकरणं संपूर्णम् ।

श्रीशं वन्दे । एवं यथामति नित्यकृत्यं निरूपितम् । अथ किञ्चिन्नै-
 मित्तिकं शुद्धिप्रसङ्गागतं निरूप्यते । तत्र ग्रहणकृत्यं हि तादृशमेवेति
 संक्षेपतस्तद्यथा माधवीये—रात्रौ प्रथमयामादूर्ध्वं चन्द्रग्रहणं चेदा-
 वर्तनान्मध्याह्नात्पूर्वं भुञ्जीतेति ।

वृद्धगौतमः—सूर्यग्रहे तु नाश्रीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम् ।

चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन्बालवृद्धातुरैर्विना ॥ इति ।

बालादौ मत्स्यः—

अपराह्णे न मध्याह्णे मध्याह्णे न तु संगवे ।

भुञ्जीत संगवे चेत्स्यान्न पूर्वं भुजिमाचरेत् ॥ इति ।

अथात्रोपवासः । पापक्षयकामो ग्रहणदिनमुपवसेत् । तदाह दक्षः—

अयने विषुवे चैव ग्रहणे सूर्यचन्द्रयोः ।

अहोरात्रोषितः स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

पुत्री तु नोपवसेत् । तदाह नारदः—

संक्रान्त्यामुपवासं च कृष्णैकादशिवासरे ।

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ॥ इति ।

ग्रस्तास्तमये तु पुत्रिणोऽप्युपवास एव । अहोरात्रं न मोक्तव्यमिति भोजननिषेधात् । अपरेऽहनि विमुक्तिं विज्ञाय स्नात्वा कुर्वति भोजनमिति । तत्र स्नानाद्युक्तं माधवीय एव—

ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते ।

मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते ॥ इति ।

ब्रह्मवैवर्ते—स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमः सुरार्चनम् । इति ।

तत्रैवोष्णोदकस्याऽऽतुरविषयत्वं व्याघ्र आह—

आदित्यकिरणैः पूतं पुनः पूतं च वह्निना ।

अतो व्याध्यातुरः स्नायाद्ग्रहणेऽप्युष्णवारिणा ॥ इति ।

एवं पुत्रजन्मनिमित्तकस्नानाद्यपि शास्त्रान्तरप्रसिद्धं यथाविधि विधेयमित्यलं प्रसक्तानुप्रसक्त्या । तस्माच्छुद्धैवैदिकनिष्ठेन स्वशाखाद्युक्तरीतिकप्रागुक्तनित्यकर्माद्यन्तर्याम्येकार्पणबुद्ध्या निरन्तरमनुष्ठेयमेव तत्प्राप्त्यर्थमिति रहस्यम् ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढहिरण्यकेश्याह्निक आचारभूषणे प्रकीर्णकारुये नवमकिरणे नैमित्तिकप्रकरणं संपूर्णम् ।

एवं शुद्धैवैदिकनिष्ठेनेश्वरप्रीतिमात्रफलकतया नित्यकर्माद्यनुष्ठेयमि-

त्युक्तं स च वेदोऽनध्यायेषु नैवाभ्यसनीय इत्यनध्यायाः संक्षेपतो निरूप्यन्ते । तत्र संस्काररत्नमालायामुशना—

अयने विषुवे चैव शयने बोधने तथा ।

अनध्यायं प्रकुर्वीत मन्वादिषु युगादिषु ॥ इति ।

विषुवं तुलामेषसंक्रान्ती । शयनबोधने आषाढकार्तिकशुक्लैकादश्या । तत्रैवायनविषुवप्रयुक्तानध्याये विशेषः स्मृत्यन्तरे—

निशाद्वयं दिवा रात्रौ संक्रमे वासरद्वयम् ।

अनध्यायं प्रकुर्वीत अयने विषुवे तथा ॥ इति ।

दिवाऽयनविषुवसंक्रान्तौ रात्रिद्वयं रात्रावयनविषुवसंक्रान्तौ दिनद्वयमनध्याय इत्यर्थ इति गोपीनाथदीक्षिताः । मन्वादयो युगाद्यश्चाधस्ताद्वेवोक्ताः श्राद्धप्रकरणे । तत्रैव मनुरप्यनध्यायं प्रकृत्य—

अमावास्याचतुर्दश्याः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥ इति ।

हारीतः—प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्यां पर्वणोर्द्वयोः ।

श्वोऽनध्यायेऽद्य शर्वयां नाधीयीत कदाचन ॥ इति ।

प्रतिपत्स्वित्यादिपूर्वार्धं प्रतिपदादिष्वनध्याय इति भिन्नार्थविधायकं न तु श्वोऽनध्याय इत्युत्तरार्धेनैकार्थकम् । स्मृतिरत्नावल्याम्—

चतुर्दश्यां यदा पर्व प्रागस्ताद्दृश्यते रवेः ।

अनध्यायं प्रकुर्वीत त्रयोदश्यां तु धर्मवित् ॥

अमितश्रेदनध्यायस्तत्राप्येके प्रकुर्वते ।

संदेहेऽपि त्वनध्यायं मन्वते हि द्विजोत्तमाः ॥ इति ।

उक्ततिथीनामहोरात्रानध्यायनियामकपरिमाणं स्मृत्यर्थसारे—

उदयेऽस्तमये वाऽपि मुहूर्तत्रयगामि यत् ।

तद्दिनं तद्दहोरात्रमनध्यायविदो विदुः ॥

प्रतिपल्लेशमात्रेण कलामात्रेण चाष्टमी ।

दिनं दूषयते सर्वं सुरा गव्यघटं यथा ॥

इतिवचनं तु प्राच्याचारमूलकं ज्ञेयम् । कालादर्शं स्मृतिः—

चातुर्मास्यद्वितीयासु वेदाध्यायं विवर्जयेत् ॥ इति ।

ता आह गार्ग्यः—

शुचावूर्जे तपस्थे च या द्वितीया विधुक्षये ।

चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ इति ।

विधुक्षयः कृष्णपक्षः । आषाढच्युत्तरा कार्तिक्युत्तरा फाल्गुन्युत्तरा-
चेत्यर्थ इति । त्रयोदश्यादिप्रदोषनिर्णयसंक्षेपस्तूक्तोऽस्त्यच्युतविरचि-
तेऽनध्यायप्रदोषनिर्णये—

अस्तोर्ध्वमर्धरात्रान्तं नवनाड्यन्तमेव च ।

प्रदोषोऽनङ्गसप्तम्योश्चतुर्थ्याश्च प्रवेशतः ॥

दिनद्वयेऽपि तत्सत्त्वेऽनध्यायोऽपि दिनक्षये ।

श्रीमाधवादितात्पर्यान्निर्णयोऽयं विनिर्मितः ॥ इति ।

विस्तरस्तु तत्रैव बोध्यः । पुनरपि संस्काररत्नमालायामेवानध्यायवि-
शेषा उक्ता धर्मसूत्रे—

श्रावण्यां पूर्णमास्यामध्यायमुपाकृत्य मासं प्रदोषे नाधीयीत ॥ इति ।

प्रदोषोऽत्र प्रथमो रात्रिभाग इत्युज्ज्वलाकृतः । उपाकर्मात्तरं त्र्यहमे-
काहं वाऽनध्यायः कार्यः । त्र्यहमेकाहं वा क्षम्य यथाध्यायमध्येतव्य-
मिति वदन्तीति । क्षम्याध्ययनाद्विरम्येत्यर्थः । धर्मसूत्रे—

तैषीपक्षस्य रोहिण्यां विरमेर्धपञ्चमाश्चतुरो मासानित्येक इति ।

गृह्योक्तेन विकल्पोऽनयोः पक्षयोः पञ्च मासानधीते । अर्धः पञ्चमो
येषां तेऽर्धपञ्चमाः । अर्धाधिकांश्चतुरो मासावधीयीतित्येवमेके मन्यन्ते ।
अस्मिन्पक्षे प्रोष्ठपद्यामुपाकरणम् । शास्त्रान्तरदर्शनात् । उत्सर्जनस्य
चाप्रतिकर्षः । उत्सर्जने च कृते श्रावण्याः प्राक्शुक्लपक्षेषु धारणाध्ययनं
वेदस्य । कृष्णपक्षेषु व्याकरणाद्यङ्गाध्ययनम् । श्रावण्यामुपाकृत्या-
गृहीतस्य ग्रहणाध्ययनमिति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । धर्मसूत्रे—

मातरि पितर्याचार्य इति द्वादशाहाः । इति ।

मात्रादिषु मृतेषु द्वादशाहमनध्याय इत्यर्थः । अयं विधिर्गृहस्थाना-
मपि । केचिदाशौचं तावन्तं कालमिच्छन्ति । नेति वयम् । अनध्यायप्रक-
रणादिति व्याख्यातमुज्ज्वलाकृता । याज्ञवल्क्यः—

त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यात्विग्गुरुबन्धुषु ।

उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा ॥

संध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातने ।

समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च ॥

पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके ।

ऋतुसंधिषु मुक्त्वा तु श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ इति ।

निर्घात आन्तरिक्ष उत्पातध्वनिः । द्युनिशमहोरात्रम् । यजु-
त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ।

इति राहुसूतकविषये त्र्यहानध्यायकीर्तनं तद्ब्रस्तास्तविषयम् । ऋतु-
संधिषु ऋतुसंधिगतासु प्रतिपत्सु इति विज्ञानेश्वरः । श्राद्धिकं भुक्त्वा
प्रतिगृह्य चेत्येतत्पार्वणविषयम् । एकोद्दिष्टभोजनादौ मन्वादिभिरुयहो-
क्तेरिति गोपीनाथदीक्षिताः । वस्तुतस्त्वत्र ऋतुः संक्रान्तिमानत एव
ग्राह्यः । अन्यथा, ऋतुसंधीतरप्रतिपत्स्वनध्यायानापत्तेः । मुहूर्तमार्त-
ण्डेऽपि पर्वाद्यनध्यायानुक्त्वा तन्निर्णयः शार्दूलविक्रीडितेनोक्तः—

योऽनध्यायतिथिः स पूर्वदिवसेऽस्तात्प्राङ्मुहूर्तोन्मितोऽ-
न्यस्मिन्वोदयतः क्षणत्रयगतो ब्रह्मेह नैवाभ्यसेत् ।

पर्वाद्यादियुगष्टमीति च तिथींस्त्यक्त्वैव शास्त्रस्मृती-

वेदाङ्गानि समभ्यसेच्च निखिलेषूक्तं पठेन्नैत्यकम् ॥ इति ।

अत्रैतद्वीकाऽपि । पर्व, अमा पूर्णिमा च । किलक्षणं पर्व, अग्रादि-
युक् । अग्रं प्रतिपत्, आदिश्चतुर्दशी ताभ्यां युग्युक्तम् । उक्तमिति ।
यथाऽमावास्यायाम्—अश्रत्सु जपेद्याहृतिपूर्विकां गायत्रीं सप्रणवां
सकृच्चिर्वा राक्षोग्नपितृमन्त्रान्पुरुषसूक्तं प्रतिरथमन्यानि च पवित्राणीति ।
नैत्यकं संध्याहोमब्रह्मयज्ञादि । तथा च मनुः—

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।

न निरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रांस्तथैव च ॥ इति ।

वेदोपकरणान्यङ्गानि ।

नित्ये जपेऽर्चनाङ्गे च क्रतौ पारायणेऽपि च ।

नानध्यायोऽस्ति वेदानां ग्रहणे ग्रहणे स्मृतः ॥

देवार्चनस्य मन्त्राणां नानध्यायः स्मृतः सदा ।

नानध्याये जपेद्वेदान्द्रुद्रांश्चैव विशेषतः ।

पौरुषं पावमानं च गृहीतनियमाहृते ॥ इति ।

स्मृत्यर्थसारे—चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपद्वर्जितेषु च ।

वेदाङ्गन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ॥ इति ।

कूर्मपुराणे—इन्दौ वृद्धिक्षयं प्राप्ते ब्रह्मयज्ञं न कारयेत् ।

न जपेद्वैदिकं मन्त्रं गायत्र्यष्टोत्तरं शतम् ॥ इति ।

स्मृतिरत्न्यावल्याम्—अल्पं जपेदनध्याये पर्वण्यल्पतरं जपेत् ॥ इति ।

मुहूर्तक्षणयोः स्वरूपमुक्तममरसिंहेन—

अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ।

तास्तु त्रिंशत्क्षणस्ते तु मुहूर्तो द्वादशास्त्रियाम् ॥ इति ।

पुनरपि संस्काररत्नमालायां याज्ञवल्क्यः—

पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः ।

कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये ॥ इति ।

शक्रपातोच्छ्रयकालस्त्वाश्विनशुक्लपञ्चम्यामिन्द्रध्वजोत्थापनं विजय-
दशम्यां तद्वरोहणमिति । धर्मसूत्रे—श्वगर्दभनादाः सालावृक्येकसृ-
कोलूकशब्दाः सर्वे षादितशब्दा रोदनगीतसामशब्दाश्च ॥ इति ।

शुनां गर्दभानां बहूनां नादाः । बहुवचननिर्देशात् । सालावृकी
वृकावान्तरजातिविशेषः । क्रोष्ट्रीत्यन्ये । लिङ्गस्याविवक्षितत्वात्पुंसोऽपि
ग्रहणम् । इन्द्रो यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छदित्यादिदर्शनात् । एक-
सृक एकवचनः शृगालः । उलूको दिवाभीः । एषां शब्दाः । वादि-
तानि वीणावेणुमृदङ्गादीनि तेषां च शब्दाः । रोदनशब्दा गीतशब्दाः
सामशब्दाश्च । एते श्रूयमाणास्तात्कालिकानध्यायहेतव इति व्याख्या-
तमुज्ज्वलाकृता । तथा—

संदर्शने चारण्ये श्मशाने सर्वतः शम्याप्रासाच्छ्रमशानवच्छूद्रप-
तितौ ॥ इति ।

अरण्ये च यावति प्रदेशे शवश्चाण्डालो वा दृश्यते तावत्कालमन-
ध्यायः । श्मशानेऽध्ययनं वर्जयेत् । सर्वतः सर्वासु दिक्षु शम्याप्रासाद-
र्वागित्यर्थः । पञ्चमीनिर्देशाद्वर्वागिति गम्यते । शूद्रपतितसकाशेऽपि
शम्याप्रासादवर्वाङ्नाध्येयमिति व्याख्यातं तेनैव । तथा—

पृष्ठारूढः पशूनां नाधीयीत तावन्तं कालम् ॥ इति ।

हस्त्यश्वादीनां पशूनां पृष्ठारूढः पृष्ठासीनः सन्नाधीयीत तावन्तं
कालमिति व्याख्यातं तेनैव । याज्ञवल्क्योऽपि—

श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने ।

अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके ॥

देशेऽशुचावात्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे ।

भुक्त्वाऽऽर्द्रपाणिरम्भोन्तरर्धरात्रेऽतिमारुते ॥

पांशुवर्षे च दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु ।

धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥

स्वरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे ।

सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः ॥ इति ।

सामानि आरण्यकसामानि । बाणो वंश इति विज्ञानेश्वरः । शत-
तन्तुर्वीणेति हरदत्तः । आर्तः पीडितः । अमेध्याः सृतिकादयः ।
स्तनितं गर्जितम् । संध्यागर्जने विद्युति च विशेषो धर्मसूत्रे—

संधावनुस्तनिते रात्रिं स्वप्नपर्यन्तां विद्युत्युपव्युषं यावता वा कृष्णा*
रोहिणीमिति शम्याप्रासाद्विजानीयादेतस्मिन्काले विद्योतमाने सप्र-
दोषमहरनध्याया(यो) दह्ने(ह्ने) चापररात्रे स्तनयित्नुनोर्ध्वमर्धरात्रादि-
त्येके । इति ।

संधौ संध्यायामन(नु)स्तमि(नि)ते मेघगर्जिते सर्वां रात्रिं नाधी-
यीत । संधौ विद्युति सत्यां स्वप्नपर्यन्तां रात्रिम् । इदं च सायंसंध्या-
याम् । उषः समीपमुपव्युषम् । तत्र विद्युति सत्यामपरेद्युः सप्रदोषमह-
रध्यायः । प्रदोषादूर्ध्वमध्येयम् । यावता कालेन शम्याप्रासाद[र्वांग]
वस्थितां गां कृष्णामिति वा रोहिणीमिति वा विजानीयात् । (ए)-
तस्मिन्काल उपव्युषे(षं) विद्योतमान इत्यन्वयः । रात्रेस्तृतीयो
भागोऽपररात्रः । तस्य त्रेधा विभक्तस्याऽऽद्यांशो महारात्रः । तदन्त्यो
दह्णः(ह्णः) । तस्मिन्नु दह्ण(ह्ण) अपरात्रे स्तनयित्नुना मेघगर्जितनिमित्तेन
सप्रदोषमहरनध्यायः । अर्धरात्रादूर्ध्वमनन्तररात्रावधिरित्येक आचार्या
मन्यन्ते । स्वपक्षस्तूदह्ण(स्तु दह्ण) एव । इदं च वर्षतो ज्ञेयमिति व्याख्या-
तमुज्ज्वलाकृता । हारीतस्तु सायंसंध्यास्तनिते रात्रिः प्रातःसंध्यास्त-
नितेऽहोरात्रमित्याह । विद्युति विशेषमाह गौतमः—विद्युति नक्तं
चापररात्राग्निभागादिप्रवृत्तौ सर्वमिति । पूर्वरात्रौ विद्युति अपररात्रा-
वधिरनध्यायः । दिनतृतीयांशोत्तरं तस्यां सत्यां रात्रिसमाप्तिपर्यन्तम् ।
अर्धरात्रे मध्ययामद्वय इति विज्ञानेश्वरः । मध्यदण्डचतुष्टय इति निर्ण-
यासृतम् । एतद्वर्षातिरिक्तविषयम् । वर्षासु तु तात्कालिक इति व्यवस्था
बोध्या । धर्मसूत्रे—

छर्दित्वा स्वप्नपर्यन्तम् । इति ।

छर्दित्वा वमनं कृत्वा स्वप्नपर्यन्तं नाधीयीतेति व्याख्यातमुज्ज्वला-
कृता । अत्राऽऽपस्तम्बेन विशेष उक्तः—छर्दयित्वा स्वप्नान्ते घृतं वा
प्राश्य । इति । विष्णुः—न वादित्रशब्दे न शूद्रपतितयोः समीपे न

देवायतनश्मशानचतुष्पथरथ्यासु नोदकान्ते न पीठोपहितपादो न हस्त्य-
श्वोष्ट्रनौगोयानेषु न वान्तो न विरक्तो नाजीर्णी न पञ्चनखान्तरागमने ।
इति । पीठोपहितपादः पीठोपस्थापितपादतलः । यानेष्वित्यत्राऽऽ-
सीन इति शेषः । वान्तः कृतवमनः । विरक्तः कृतविरेकः । अजीर्णी
मुक्तपाकपर्यन्तम् । पञ्चनखाः श्वादयः ।

मनुः—शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ।

नाधीयीताऽऽमिषं जग्ध्वा सूतकान्नं तथैव च ॥ इति ।

प्रौढपादः पादोपरि पादतल आसनाखण्डपादो वेति हरदत्तः ।

मनुः—इयहं न कीर्तयेद्ब्रह्म सपिण्डीकरणे तथा ॥ इति ।

यमः—आगतं चातिथिं दृष्ट्वा नाधीयीतैव बुद्धिमान् ।

अभ्यनुज्ञापितस्तस्मिन्नध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥ इति ।

तस्मिन्नतिथ्यागमनसमये । अभ्यनुज्ञापितः । अतिथिनेति शेषः ।
आरण्यमार्जारान्तरागमने विशेषः स्मृत्यर्थसारे—आरण्यमार्जारसर्प-
नकुलपञ्चनखादेरन्तरागमने त्रिरात्रम् । अरण्यश्वशृगालवानरादेर्द्वादश-
रात्रम् । खरवराहोष्ट्रचण्डालसूतिकोदक्यादेर्मासम् । शशमेषश्वपचादेः
षण्मासम् । गजसारससिंहव्याघ्रमहापातकिकृतघ्नादेरब्दमिति । अन्यञ्च
शोभमानदिने चानध्यायः । विवाहप्रतिष्ठोत्थापनादिष्व्वासमाप्तेः सगो-
त्राणामिति । विवाह इत्युपनयनोपलक्षणम् । तथा—

श्रवणद्वादशीमहाभरण्योः प्रेतद्वितीयायां रथसप्तम्यामाकाशे शव-
दर्शने चाहोरात्रम् । इति ।

महाभरणी महालयान्तर्गता । प्रेतद्वितीया यमद्वितीया । आकाशे
शवदर्शनमुद्राहितशवदर्शनम् ।

कौर्मै—श्लेष्मातकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च ।

कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः ॥ इति ।

श्लेष्मातकं भाषया भोंकरीति प्रसिद्धम् । एवं शाल्मली सांवरी
मधुको मोह इति च । कोविदारः काञ्चनारः । अश्विने शुक्लपक्षे

मूलेनाऽऽवाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् ।

इतिवचनात्प्रथमत्यागे मानाभावाच्च मूलाद्यपादे पुस्तकस्थापने कृते
यावच्छ्रवणाद्यपादे तद्विसर्जनं क्रियेत तावत्लेखनादेरपि निषेधादसौ
महानध्यायः । तदुक्तं संस्काररत्नमालायामेव देवीपुराणे—

नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन ।

पुस्तके स्थापिते देवि विद्याकामो द्विजोत्तमः ॥ इति ।

एवमन्येऽप्यनध्याया धर्मसूत्रादौ द्रष्टव्याः । अनध्यायाध्ययने दोष उक्तो बृहन्नारदीये—

अनध्यायेष्वधीतानां प्रजां प्रजां यशः श्रियम् ।

आयुष्यं बलमारोग्यं निकृन्तति यमः स्वयम् ॥

अनध्याये तु योऽधीते तं विद्याद्ब्रह्मघातकम् ।

न तेन सह भाषेत न तेन सह संविशेत् । इति ।

चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिस्वेव सर्वदा ।

दुर्मेधसामनध्यायस्त्वन्तरागमनेषु च ॥

तत्र विस्मृतिशीलानां बहुवेदप्रपाठिनाम् ।

चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपद्वर्जितेषु च ॥

वेदाङ्गन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ।

इति हेमाद्र्युक्तानध्यायप्रकरणस्थस्मृतिवाक्यवशेन कलौ पुरुषान्दुर्मेधसो मन्यमानाः शिष्टा वेदाध्ययन एतानेवानध्यायान्नियमेन कुर्वन्तीति गोपीनाथदीक्षिताः । इत्यनध्यायाः । अथैतदपवादाः । तत्रेदं धर्मसूत्रम्—

विद्यां प्रत्यनध्यायः श्रूयते न कर्मयोगे मन्त्राणाम् । इति ।

विद्यां प्रतिवेदाध्ययनं प्रति अनध्यायः श्रूयते न पुनः कर्मयोगे मन्त्राणामनध्यायो हेतुरित्यर्थ इत्युज्ज्वला ।

मनुः—वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चापि नैत्यके ।

निरोधो नास्त्यनध्याये होममन्त्रजपेषु च ॥ इति ।

वेदोपकरणान्यङ्गानि । कौर्मेऽपि—

नैत्यके नास्त्यनध्यायः संध्योपासन एव च ।

उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि ॥

अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ।

न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत् ॥

एष धर्मः समासेन कीर्तितो ब्रह्मचारिणाम् ।

ब्रह्मणाऽभिहितः पूर्वमृधीणां भावितात्मनाम् ॥

अधीयीत सदा सर्वा ब्रह्मविद्यां समाहितः ।

सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदान्तांश्च विशेषतः ॥

अभ्यसेत्सततं युक्तो भस्मस्नानपरायणः । इति ।

सदेत्यनेन पर्वसु प्रतिपत्सु चापि ब्रह्मविद्याया अनध्यायो नेति सूच्यत इति गोपीनाथदीक्षिताः । अत्र ब्रह्मविद्याशब्देन यावच्छब्दब्रह्मण्यद्वैतात्मतत्त्वप्रतिपादको यावानंशः स सर्वोऽपि गृह्यते । तेन वेदान्तांश्च विशेषत इति विशेषेण सर्वदोषनिषदध्ययनविधायकवाक्यशेषेण सह न पौनरुक्त्यम् । वस्तुतस्त्वदमपि यत्येकपरम् । अभ्यसेत्सततं युक्त इति निरुक्ताग्रिमवाक्योक्तायाः सततयुक्तशब्दितनिरन्तराद्वैतनिष्ठतायाः स्वाध्यायाध्ययनतदुक्ताखिलकर्मानुष्ठानचान्द्रायणादितपोमात्रसंपादनरूपब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थोक्तविक्षेपराहित्येन तत्रैव संभवात्तथैव शिष्टाचाराच्च । तेषामपि तत्र तन्मननमेव न त्वध्ययनाद्यपि । अत एवाऽऽहुः—

आसुप्तेरामृतैः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया । इति ।

न तु पठनादिनाऽपीति । अत एव स्मृत्यर्थसारे—

चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपद्वर्जितेषु तु ।

वेदाङ्गन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ॥ इति ।

इत्योकोपाह्ववासिष्ठकुलावतंसरामार्यसूनुत्रयम्बकसंगृहीते सत्याषाढहिरण्यकेश्याचारशिरोभूषणनामकाह्निकीयप्रकीर्णकाख्यनवमकिरणेऽनध्यायतदपवादप्रकरणं संपूर्णम् ।

[* ननु किमिदमाह्निकं हिरण्यकेशिसूत्रानुसार्यैव किं वा हिरण्यकेशिशाखीयमपीति चेच्छृणु । कलौ शाखाभेदावशेषप्रकारस्तु तत्तद्देशविशेषावच्छेदेनोक्तोऽस्ति चरणव्यूहटीकायां महार्णवे—

पृथिव्या मध्यरेखा च नर्मदा परिकीर्तिता ।

दक्षिणोत्तरयोर्भागे शाखाभेदश्च उच्यते ॥ १ ॥

नर्मदादक्षिणे भागे आपस्तम्ब्याश्वलायनी ।

राणायनी पैप्पलादी यज्ञकन्याविभागिनः ॥ २ ॥

माध्यंदिनी शाङ्गायनी कौथुमी शौनकी तथा ।

नर्मदोत्तरभागे च यज्ञकन्याविभागिनः ॥ ३ ॥

तुङ्गा कृष्णा तथा गोदा सह्याद्रिशिखरावधि ।

आ आन्ध्रदेशपर्यन्तं बह्वृचश्चाऽऽश्वलायनी ॥ ४ ॥

उत्तरे गुर्जरे देशे वेदो बह्वृचकीर्तितः ।

कौषीतकी ब्राह्मणं च शाखा शाङ्गायनी स्थिता ॥ ५ ॥

* धनुश्चिह्नान्तर्गतं प्रकरणं ख. पुस्तके नास्ति ।

आन्धादिदक्षिणाग्रेयां(ग्रेय्यां?) गोदायाः सागरावधि ।

यजुर्वेदस्तैत्तिरीय आपस्तम्बी प्रतिष्ठिता ॥ ६ ॥

सह्याद्रिपर्वतारम्भान्नैर्ऋत्यां दिशि सागरात् ।

हिरण्यकेशी शाखा स्यात्परशुरामस्य संनिधौ ॥ ७ ॥

मयूरपर्वताच्चैव यावदुर्जरदेशतः ।

व्याप्ता वायव्यदेशात्तु मैत्रायणी प्रतिष्ठिता ॥ ८ ॥

अङ्गवङ्गकलिङ्गाश्च कानीनो गुर्जरस्तथा ।

वाजसनेयी शाखा च माध्यंदिनी प्रतिष्ठिता ॥ ९ ॥

ऋषिणा याज्ञवल्क्येन सर्वदेशेषु विस्तृता ।

वाजसनेयी(यि)वेदस्य प्रथमा काण्वसंज्ञका ॥ १० इति ।

पृथिव्या भरतवर्षभूमेरित्यर्थः ॥ १ ॥ आपस्तम्बीत्यादि । आप-
स्तम्बी यजुर्वेदस्य शाखेति शेषः । आश्वलायनी ऋग्वेदस्य । राणा-
यनी सामवेदस्य । पैप्पलादी अथर्वणवेदस्येति बोध्यम् । यज्ञेति ।
एते प्रागुक्ताश्चतुर्वेदशाखिनोऽपि परस्परं यज्ञसंबन्ध्यात्विज्यविभागि-
नस्तथा कन्यासंबन्धिदानप्रतिग्रहविभागिनश्चान्योन्यं भवती(न्ती)ति
भावः । एवं चात्राऽऽपस्तम्बीत्यादावापस्तम्बाश्वलायनाख्यसूत्रयोरेव
तैत्तिरीयशाकलशाखावाचकत्वेन ग्रहणं कृतमिति ध्येयम् । एतेनैव
प्रायोऽव्या(द्या)पि तैत्तिरीया अपि वयमप्यापस्तम्बशाखिन इति
वदन्ति । तेनेदमपि ज्ञायते—यदध्ययनैक्येऽपि सूत्रभेदादपि शाखा-
भेदः शिष्टैर्व्यवहियत इति । अत एव वक्ष्यति चात्रैवानुपदं हिरण्य-
केशी शार(खा) स्यादिति । तथा च सूत्रभेदाध्ययनभेदाभ्यामपि प्राच्य-
यजुर्वेदस्य चरणव्यूहोक्तशाखा षडशीतिसंख्येति ॥ २ ॥ माध्यंदिनी-
त्यादि । अत्रापि माध्यंदिनी शाख्या(खा) यजुर्वेदस्य । शाङ्खायनी
ऋग्वेदस्य । कौथुमी सामवेदस्य । शौनक्यथर्वणवेदस्येति प्राग्वदेव
शेषपूरणं बोध्यम् । एवं शाङ्खायनीत्यत्रापि शाङ्खायनसूत्रनाम्नैव वाष्क-
लाख्याया ऋग्वेदशाखाया व्यवहारः ॥ ३ ॥ एवमेव, आश्वलाय-
नीति । अत्राप्याश्वलायनसूत्रनाम्नैव शाकलशाखाव्यवहारः प्राग्वत् ।
एवं चास्याः शाखाया ऐतरेयाख्यं ब्राह्मणमप्यस्तीत्यार्थिकं ग्राह्यम् ॥४॥
बह्वृचकीर्तित इति । अत्र बह्वृचेत्यजन्तमपि । शाङ्खायनीत्युक्तार्थ-
मेव ॥ ५ ॥ आपस्तम्बीति । तैत्तिरीय इत्यनेनैव शाखानामसिद्धा

वाऽऽपस्तम्बीति विशेषणं शाखाया आर्थिक्याः सूत्रकथनार्थमेव । साग-
 रात्सागरपर्यन्तमित्यर्थः ॥ ६ ॥ हिरण्यकेशीति । आदित्यमण्डलस्थस्य
 पारमेश्वरलीलाविग्रहस्य हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्वत एव
 सुवर्ण इत्यादिच्छान्दोग्यश्रुतिप्रसिद्धस्यासंग्रहोपासनात्सत्याषाढमुने-
 र्हिरण्यात्मकाश्च ते केशास्ते सन्त्यस्येति यौगिकं हिरण्यकेशित्वं संग्रहं
 तेन तत्प्रणीतसूत्रभेदादपि तन्नाम्नैव तैत्तिरीयशाखाऽपि हिरण्यकेशीति
 सुकेशीत्यादिवदभिधीयत इति विज्ञेयम् । परशुरामस्य संनिधाविति
 च्छन्दोनुरोधादेव महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरंदर इत्यादाविवा-
 क्षराधिक्यमप्यार्षत्वेन निर्दोषमेव ॥ ७ ॥ काण्वेति । शाखेत्यार्थिकम् ।
 एवं च रेवाया उत्तरे भागे प्रागुक्तं माध्यंदिनी शाङ्गायनी कौथुमी
 शौनकी तथेति शाखाचतुष्टयमनया काण्वशाखया सह तत्पञ्चकं पञ्च-
 गौडानामेवेति पर्यवस्यति । तद्दक्षिणभागे तु प्रागुक्तमेवाऽऽपस्तम्ब्या-
 श्वलायनी राणायनी पैप्पलादीति शाखाचतुष्टयमनया मैत्रायणी-
 यशाखया मयूरपर्वताच्चेत्यादिनोक्तया सह तत्पञ्चकं पञ्चद्रविडानामे-
 वेति सिद्धं भवति ॥ ८-१० ॥ ननु भवत्वेवं किं ततः प्रकृत इति
 चेच्छृणु । तदिदमुपाख्यायते शंकरानन्दविरचित उपनिषद्ब्रह्मनाख्य
 आत्मपुराणे पञ्चमाध्याये बृहदारण्यविवरणमुपक्रम्यैवमेव—

शाकल्यश्च विद्ग्धाख्यो वावदूकोऽतिमानभाक् ।
 याज्ञवल्क्याय यो द्वेष्टि सर्वदा पापमोहितः ॥
 याज्ञवल्क्यश्च मतिमान्यजुर्वेदविशारदैः ।
 बहुभिः स वृत्तः(तः)शिष्यैर्भास्करो भगणैरिव ॥
 आश्वलाद्याश्च मुनयः शिष्यैः स्वैः स्वैः समावृताः ।
 अन्ये च शिष्यसहिता मिलिताः कोटिशोऽभवन् ॥

इत्यादिना जनकसभामध्ये वादमाखिलप्रसिद्धमुपाक्षिप्य—

आदित्यात्प्राप्तविद्योऽयं याज्ञवल्क्यो यदा श्रुतः ।
 असूयया तदाऽऽरभ्य दग्धो विविधया द्विजः ॥
 आदित्याद्याज्ञवल्क्योऽयं शुक्लं यजुरवाप्तवान् ।
 एवं प्रसङ्गतो वाक्यं विद्ग्धश्चेच्छृणोत्ययम् ॥
 तदा तं भाषते विप्रो वचनं कर्णकर्कशम् ।
 रक्तमाथर्वणं सोमात्काण्डमेव समाप्तवान् ॥
 इत्येवमादि कठिनं भाषतेऽहर्निशं जनान् ।

इत्यादिना विदग्धाख्येन शाकल्येन बह्वृचाश्वला[य]नापराभिधशा-
कलशाखीयेन कृता याज्ञवल्क्यनिन्दा हि तत्प्रवर्तितपञ्चदशशुक्लयजुः—
शाखास्वपि पर्यवसन्ना तथाऽपीदानीं तासां मध्ये काण्वमाध्यंदिन्याख्य-
शाखाद्वयमेवोपलभ्यते तत्रापि प्रथमत्वात्कण्वशाखैवांऽऽचार्यैः समुदाह-
तेति ध्येयम् । ननु किं कारणं योगीश्वरस्यापि याज्ञवल्क्यस्य स्वगुरुं
विहाय सूर्यादेव तपःप्रसादिताद्वेदोपादानस्येति चेन्न । तस्य पुराणप्र-
सिद्धत्वात् । तथा हि श्रीमद्भागवतीयद्वादशस्कन्धसंबन्धिषष्ठाध्याये
तावदुपाख्यायते—

शौनक उवाच—पैप्यलादिभिव्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ।

वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥

अत्र टीका श्रीधरी—इमां संहितामध्यगामित्युक्तं तत्र पुराणसंहि-
ताविभागं विशेषतो बुभुत्सुर्वेदभागमपि प्रसङ्गात्पृथक्पृच्छति—पैप्य-
लादिभिरिति । हे सौम्य ।

सूत उवाच—समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेश्चिनः ।

हृदाकाशाद्भून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥

टी०—तत्र प्रथमं वेदाविर्भावप्रकारमाह—समाहितात्मन इत्यष्टमिः ।
ब्रह्मणो हृदि य आकाशस्तस्मान्नादोऽभूत् । यः कर्णपुटपिधानेन श्रोत्र-
वृत्तिरोधादस्मदादिष्वपि विभाव्यते वितर्क्यते ।

यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः ।

द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ॥

टी०—प्रसङ्गान्नादोपासकानां मोक्षफलमाह—यस्य नादस्योपास-
नयाऽऽत्मनो मलं धूत्वाऽपोह्य । कथंभूतं मलं तमाह—द्रव्यमधिभूतं
क्रियाऽध्यात्मं कारकमधिदैव[तम्] एवं त्रिधातुभूताऽऽख्या यस्य तम् ।

ततोऽभूत्त्रिवृदोकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराद् ।

यत्तलिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥

टी०—अयं त्रिवृत्त्रिमन्त्रः । कण्ठोष्ठादिभिरुच्चार्यमाणस्योकारस्या-
क्षरसमाम्नानान्तर्भावात्सूक्ष्मतया तं विशिनष्टि—अव्यक्तात्प्रभवो
यस्य सः । तदेवाऽऽह—स्वराद् । स्वत एव हृदि प्रकाशमानः । तमेव कार्येण
लक्षयति—यत्तदिति । नपुंसकत्वं लिङ्गशब्दविशेषणत्वात् । लिङ्गं
गमकम् ।

शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ।

येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥

टी०—कोऽसौ परमात्मा तमाह—शृणोतीति । इमं स्फोटम् । अव्यक्तमोंकारम् । ननु जीवस्तं शृणोतु नेत्याह—सुप्तश्रोत्रे कर्णपिधानादिनाऽवृत्तिकेऽपि श्रोत्रे सति जीवस्तु करणाधीनज्ञानत्वान्न तदा श्रोता । तदुपलब्धिस्तु तस्य परमात्मद्वारिकैवेति भावः । ईश्वरस्तु नैवम् । यतः शून्यदृक् । शून्येऽपीन्द्रियवर्गे दृग्यस्य । तथा हि—सुप्तो यदा शब्दं श्रुत्वा प्रबुध्यति तेन तदा जीवः श्रोता । लीनेन्द्रियत्वात् । अतो यस्तदा शब्दं श्रुत्वा जीवं प्रबोधयति स यथा परमात्मैव तद्वत् । कोऽसावोंकारस्तं विशिनष्टि सार्धेन वाग्बृहती व्यज्यते । यस्य च हृदयाकाश आत्मनः सकाशाद्यक्तिरभिव्यक्तिः ।

स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ।

स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥

टी०—किं च स्वधाम्नः स्वस्याऽऽश्रयः कारणं यद्ब्रह्म तस्य । किं च परमात्मांशभूतः समस्तदेववाचकोऽपीत्याशयेनाऽऽह—स इति । सर्वमन्त्राणामुपनिषद्ब्रह्मस्यं सूक्ष्मं रूपमित्यर्थः । तत्र हेतुः—वेदानां बीजं कारणम् । बीजत्वेऽप्यविकारितामाह—सनातनं सदैकरूपम् । तस्य ब्रह्मरूपत्वात् ।

तस्य ह्यासंख्यो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ।

धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥

इदानीं ततः सर्वप्रपञ्चोत्पत्तिप्रकारमाह—तस्य हीति । यत्र त्रिसंख्यायुक्ता भावाः । यैरकारोकारमकारैः । धार्यन्ते तत्कारणत्वात् । तानेवाऽऽह—गुणाः सत्त्वादयः । नामानि ऋग्यजुःसामानि । अर्था भूर्भुवः—स्वर्लोकाः । वृत्तयो जाग्रदाद्याः ।

ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्गवानजः ।

अन्तःस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥

टी०—ततस्तेभ्यो वर्णेभ्योऽक्षराणां समाम्नायं समाहारम् । तमेवाऽऽह—अन्तःस्था यरलवाः । उष्माणः शषसहाः । स्वरा अकाराद्याः । स्पर्शाः कादयः । ह्रस्वदीर्घाश्च । आदिशब्दाजिह्वामूलीयादयः । त एव लक्षणं स्वरूपं यस्य तम् ।

ततोऽसौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ।

सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥

टी०—विभुश्चतुर्मुखरूपो भगवान् । असृजदिति पूर्वस्यैवानुषङ्गः । चातुर्होत्रविवक्षया । चत्वारो होत्रोपलक्षिता ऋत्विजश्चतुर्होतारस्तैरनुष्ठेयं हौत्राध्वर्यवादिकं कर्म चातुर्होत्रं तद्विवक्षया ।

पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ।

ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥

टी०—पुत्रान्मरीच्यादीन् । तान्वेदान् । ब्रह्मकोविदान्वेदोच्चारणादिनिपुणान् ।

ते परम्परया प्राप्तास्ततः शिष्यैर्धृतव्रतैः ।

चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥

टी०—एवं चतुर्युगेषु प्राप्ता द्वापरादौ द्वापरमादिर्यस्य तदंशलक्षणकालस्य तस्मिन् । द्वापरान्ते वेदविभागप्रसिद्धेः शंतनुसमकालव्यासावतारप्रसिद्धेश्च । व्यस्ता विभक्ताः ।

क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ।

वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतनोदिताः ॥

टी०—तत्र हेतुः—क्षीणायुषो जनान् । तत्रापि क्षीणसत्त्वान् । दुष्टामेधा धारणाशक्तिर्येषाम् । तर्हि पुरुषबुद्धिप्रभवत्वाद्नादरणीयं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—हृदिस्थेति ।

अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन्भगवाल्लोकभावनः ।

ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥

टी०—एवं सामान्यतो वेदविभागक्रममुक्त्वा वैवस्वतमन्वन्तरे विशेषतो निरूपयितुमाह—अस्मिन्नपीति ।

पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ।

अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥

टी०—अंशो माया तस्या अंशः सत्त्वं तस्य कलयांऽशेनावतीर्णः सन् ।

ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ।

चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव ॥

टी०—चातुर्विध्यमेवाऽऽह—ऋगिति । ऋगादिमन्त्राणां राशीन्वर्गशस्तत्प्रकरणभेदैरुद्धृत्य यथाऽनेकविधमणिराशेर्मणिगणाः पद्मरागादयो विविच्योद्ध्रियन्ते तद्वदुद्धृत्य तैर्मन्त्रैश्चतस्र ऋगादिसंहिताश्चक्रे ।

तासां स चतुरः शिष्यानुपाहृत्य महामतिः ।

एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विमुः ॥

टी०—तासां संहितानां मध्य एकैकाम् ।

पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ॥

वैशंपायनसंज्ञाय निगदाख्ययजुर्गणम् ।

टी०—ऋक्समुदायरूपत्वाद्बह्वृचाख्याम् । नितरां प्रश्लेषण गद्य-
मानत्वान्निगदाख्यम् ।

साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम् ।

अथर्वाङ्गिरसं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ॥

टी०—साम्नां संबन्धिनीं छन्दःसु गीयमानत्वाच्छन्दोगाख्यां संहिताम् ।

पैलः स्वसंहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः ।

बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥

टी०—तत्र ऋग्वेदशाखाविभागमाह—पैल इति । स्वसंहितां द्वेषा
विमज्येन्द्रप्रमितये बाष्कलाय चोचे ।

चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ।

पाराशरायामिमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ।

टी०—स बाष्कलोऽपि स्वसंहितां चतुर्धा व्यस्य बोध्यादिभ्यः शिष्येभ्य
आह । हे भार्गव ।

अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयसृषिं कविम् ।

तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ।

टी०—इन्द्रप्रमितिरपि स्वां संहितां स्वसुतं माण्डूकेयमध्यापयामास ।
तस्य माण्डूकेयस्य शिष्यो देवमित्रः ।

शाकल्यस्तत्सुतस्तां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम् ।

वात्स्यमुद्गलशालीयगोरवल्पशिरेष्वधात् ॥

टी०—तत्सुतो माण्डूकेयसुतः शाकल्यो वात्स्यादिषु पञ्चस्वधात् ।
तानध्यापयामासेत्यर्थः ।

जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः स्वनिरुक्तां स्वसंहिताम् ।

बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ।

टी०—तच्छिष्यः शाकल्यशिष्यः स्वसंहितां त्रेधा विमज्य चतुर्थं
वैदिकपदव्याख्यानरूपं निरुक्तं च कृत्वा बलाकादिभ्यश्चतुर्थ्यो ददौ ।

बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो बालखिल्याख्यसंहिताम् ।

चक्रे बालाय निर्मज्य काशाराश्चैव तां दधुः ॥

टी०—बाष्कलिः पूर्वोक्तस्य बाष्कलस्य पुत्रः प्रतिशास्त्राभ्य उक्त-
सर्वशास्त्राभ्यो बालायन्यादयस्तामादधुरधीतवन्तः ।

बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ।

श्रुत्वैतच्छन्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

टी०—ऋक्सशाखोपसंहारपूर्वकं तच्छ्रवणफल माह—बह्वृचा इति ।
एतच्छन्दसामेतेषां छन्दसाम् ।

वैशंपायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ।

तच्चैरुर्ब्रह्महत्यांहः क्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥

टी०—यजुर्वेदतैत्तिरीयशाखोत्पत्तिप्रस्तावमाह—वैशंपायनशिष्या इत्या-
दिना । चरकनामनिरुक्तिमाह—यस्माच्चैरुरिति । ब्रह्महत्यारूपं म(पमं)हः
क्षपयतीति तथा तत्स्वगुरोरनुष्ठेयव्रतं तच्चरणाच्चरका इत्यर्थः ।

कदाचिज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षिणां समागमे ।

ऋषियोऽत्र महामेरौ समाजे नाऽऽगमिष्यति ॥

तस्य वै सप्तरात्रान्ते ब्रह्महत्या भविष्यति ।

पूर्वमेवं मुनिगणैः समयोऽयं कृतो द्विजैः ॥

वैशंपायन एवैकस्तं व्यतिक्रान्तवांस्तदा ।

स्वस्त्रियं बालकं सोऽथ पदा स्पृष्टमघातयत् ॥

शिष्यानाह च भोः शिष्या ब्रह्महत्यापहं व्रतम् ।

चरध्वं मत्कृते सर्वे न विचार्यमिदं द्विजाः ॥

याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवान्कियत् ।

चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥

टी०—तच्छिष्यो वैशंपायनशिष्यः । अल्पसाराणामेतेषां चरितेन
कियत् । सुदुश्चरमहं करिष्यामीति ।

इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ।

विप्रावमन्त्रा शिष्येण मद्धीतं त्यजाऽऽश्विति ॥

टी०—विप्राणामवमन्त्राऽवज्ञाकर्त्रा मत्तोऽधीतमाद्यु त्यज, इति ।

देवरातसुतः सोऽपि छर्दित्वा यजुषां गणम् ।

ततो गतोऽथ मुनयो बृहद्युस्तान्यजुर्गणान् ॥

टी०—देवरातसुतो याज्ञवल्क्यः ।

यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽवदुः ।

तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ॥

टी०—छर्दितस्याऽऽदानं विप्ररूपेणानुचितमिति मत्त्वा तित्तिराः पक्षि-
विशेषा भूत्वाऽऽदुः । ततश्च तित्तिरीया इति प्रसिद्धाः । सुपेशलाः
प्रतिरम्याः । बहुवचनमवान्तरभेदविवक्षया ।

याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मंश्छन्दांस्यधि गवेषयन् ।
गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥

टी० काण्वमाध्यंदिनादिशाखाप्रसङ्गमाह—याज्ञवल्क्य इत्यादिना ।
गुरोर्वैशंपायनस्य व्यासेन विभज्यानुक्तत्वादविद्यमानानि । अधि अधि-
कानि । गवेषयन्मृगयन् । सूपतस्थे सम्यक्तुष्टाव । ईश्वरं वृत्त्याऽच्छिन्नं
वेदानाम् । तथा च श्रुतिः—

ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते । यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः । साम-
वेदेनास्तमये महीयते । वेदैरशून्यास्त्रिभिरेति सूर्य इति ।

याज्ञवल्क्य उवाच—ॐ नमो भगवत आदित्यायाखिलजगतामा-
त्मस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु
बहिरपि चाऽऽकाश इवोपाधिना व्यवधीयमानो भगवानेक एव क्षण-
लवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोक-
यात्रामनुवहति ।

टी०—नमो भगवते तुभ्यमादित्याय यो भवानेक एवेमां लोकयात्रा-
मनुवहतीत्यन्वयः । तदेव दर्शयति—अखिलजगतामात्मस्वरूपेणान्तर्हृ-
दयेषु कालस्वरूपेण बहिरपि वर्तमान इति । अखिलजगतामित्य-
स्य प्रपञ्चः—चतुर्विधेति । हृदयान्तर्वर्तित्वेऽपि जीववत्तेनोपाधिना
व्यवधीयमानः । अनाच्छाद्यमानः । कालस्वरूपेण चेत्यस्य प्रपञ्चः—
क्षणेति । क्षणलवादयो येऽवयवास्तैरुपचिताः संवत्सरास्तेषां गणेन ।
प्रत्यब्दमपामादानं शोषणं विसर्गो वृष्टिस्ताभ्याम् । अनेन गायत्रीप्रथ-
मपादोक्तवरेण्यताऽनुवर्णिता ।

यदुह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहराम्नायविधिनोप-
तिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तप-
नमण्डलम् ।

टी०—द्वितीयपादार्थवर्णनेन स्तौति—यदुहेति । हे विबुधर्षभ हे
सवितः । तदप्यदो भगवतस्तव मण्डलं तपसि(ति) तत्समभिधीमहि सम्य-
गाभिमुख्येन ध्यायेम । पुनस्तस्यैव संबोधनम्—प्रत्यहं त्रिषवणं वैदिकक-
र्ममार्गेण स्तुवतां भक्तानां यान्यखिलानि दुरितानि तत्फलानि च वृजि-

नानि दुःखानि तेषां बीजमज्ञानं च तेषामवभर्जनं विनाशकं हे तपनेति ।

य इह वाच स्थिरचरनिकराणां निजकेतनानां मनइन्द्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्माऽन्तर्यामी प्रचोदयति ।

टी०—तृतीयपादेन स्तौति—य इहेति । यो भगवान्स्थावरजङ्गमसमूहानां स्वाश्रयाणां जीवानां मनइन्द्रियप्राणगणाननात्मनो जडान्स्वयमात्मैवान्तर्यामी सन्प्रचोदयति प्रवर्तयति ।

य एवेमल्लोकमतिकरालवदनान्धकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव चेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ।

टी०—तृतीयपादमेव मण्डलस्थपरतया व्याचक्षाणः स्तौति—य एवेति । य एक एव भवानतिकरालवदनो योऽन्धकारसंज्ञोऽजगरग्रहस्तेन गिलितमत एव मृतकमिव विचेतनम् । स्वधर्मख्यं यदात्मावस्थात्वं प्रत्यक्प्रवणत्वं तदेव श्रेयस्तस्मिन्प्रवर्तयति ।

किं च । यो भवानवनिपतिरिवाटति गच्छति । परित आशापालैस्तत्र तत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ।

टी०—आशापालैरिद्रादिभिः कमलकोशयुक्तैस्तत्तुल्यैर्वाऽञ्जलिभिरुपहृतार्हणो दत्तार्हः ।

अथ ह भगवतस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वन्दितमयातयामयजुःकाम उपसरामीति ।

टी०—यत एवंभूतस्त्वम् । अथातः । ह स्फुटम् । अयांतयामानि अन्यैर्धथावदविज्ञातानि यजुंषि तत्कामोऽहमुपसरामि भजामि ।

सूत उवाच—एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूपधरो हरिः ।

यजुंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥

टी०—एवं स्तुतः प्रसादितश्च ।

यजुर्भिरकरोच्छाखा दशपञ्च शतैर्विभुः ।

जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यंदिनादयः ॥

टी०—पञ्चदश शाखा याः शतैरपरिमितैर्यजुर्भिरकरोत् । स तैरितिपाठे स एष याज्ञवल्क्यस्तैर्यजुर्भिरकरोदिति । जगृहुरधीतवन्तः । रविणाऽश्वरूपेण वाजेभ्यः केसरेभ्यो वाजेन वेगेन वा संन्यस्तास्त्यक्ताः शाखा

वाजसनीयसंज्ञास्ताः शाखा इति वा । इति । विष्णुपुराणेऽप्येवं प्रपञ्चितं भवति । ननु भवत्वेतावतोदाहृतग्रन्थसंदर्भैर्बह्वृचाश्वलायनकृतं काण्वशाखायां तदुपलक्षितायां माध्यंदिनशाखायामप्यप्राशस्त्यकथनकारणमथापि वाजसनेयिनस्तु वैपरीत्येनेत्याचार्यैर्मूले यद्वाजसनेयिशब्दवाच्यैर्वाजिवेषधरसूर्येण वाजशब्दवाच्यस्वग्रीवास्थकेशैः केसरापराभिधैर्ग्रीवाकम्पनाश्वजातिस्वाभाव्याद्वाजशब्दवाच्येन वेगेन वा त्यक्तानि यजुष्यधीयानैः काण्वैर्माध्यंदिनैर्वैपरीत्यपदवाच्यशाकलाख्याश्वलायनबह्वृचशाखाया अप्राशस्त्यकथने को हेतुरिति चेच्छृणु । यदा काण्वादिवाजसनेयिनां यजुषि प्रागुक्तात्मपुराणादिरीत्या शुक्लानि । चरणव्यूहटीकायां वाजसनेयियजुर्गणं प्रकृत्य—एतत्सकलं शुक्रियं मध्याह्ने शुक्लाश्वरूपेण दत्तं सच्छुक्रयजुः परिसंख्यातमित्यर्थ इत्युक्तत्वात् । तथा तत्रैवाग्रे वेदोपक्रमणे चतुर्वशीयुक्तपौर्णिमाग्रहणाच्छुक्रं यजुः । प्रतिपदायुक्तपौर्णिमाग्रहणात्कृष्णं यजुरित्यपि तदुक्तेश्च । तथा चाऽऽत्मपुराणे वृशमाध्याये तैत्तिरीयसारार्थप्रकाशेऽपि—

वान्त्या च भक्षणेनापि कृष्णान्यासन्यजुष्यपि ।

इति तैत्तिरीयकयजुषां वान्त्यादिना कृष्णत्वाभिधानात् । एवं यातयामोऽन्यवज्जीर्णे परिमुक्तोजिह्वेऽपि चेतिमेदिन्यास्तैत्तिरीययजुषां यातयामत्वेन कृष्णत्वं वाजसनेयियजुषां त्वयातयामत्वेन शुद्धत्वं चाऽऽसीत्तदा यजुर्मिर्यजन्तीतिश्रुतेः शुक्रयजुःशालिनोऽस्मानध्वर्युन्विहाय कृष्णयजुःशालिनस्तैत्तिरीयानेवाध्वर्युन्कुर्वाणानां बह्वृचानामाश्वलायनसूत्राभिधशाकलशाखैव कथं न मध्यमेति सर्वैर्वाजसनेयिभिः प्रायेण द्वितीयमन्त्रपठनाद्यर्थं कलहं कुर्वाणैर्ध्वनिमर्यादयैवाऽऽश्वलायनशाखाऽपि निन्द्यत एव । एतत्सूचनार्थमेव मूले वाजसनेयिनस्तु वैपरीत्येनेत्युक्तम् । तस्माद्वियमाश्वलायनवाजसनेयिनोः परस्परं वेदनिन्दः सर्वथाऽनुचितैव ब्राह्मण्यहानिकरत्वादिति परमरहस्यं मूलस्य । वस्तुतस्त्वस्थान एवमुक्ताश्वलायनापराभिधशाकलबह्वृचकर्तृककाण्वादिशाखानिन्दा । तथाऽपि (था हि) । काण्वादिशाखयोस्तावद्वेदत्वे तु नैवाऽऽवयोर्विरोधगन्धोऽपि । अन्यथा सर्वत्रानाश्वासप्रसङ्गः । तद्यथा । वाजसनेयिनां काण्वादिशाखाद्वयमिदं भगवता याज्ञवल्क्येन भगवतो मास्करादासादितं तपोमहिम्नैवेति तु निर्विवादमेव । तत्र यद्यपि याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मंश्छन्दांस्यधिगवेषयन् । गुरोरविद्यमानानीति प्रागुदाहृतश्रीमद्भागवतीयश्लोकस्य

तृतीयपादव्याख्याने श्रीधरस्वामिभिर्गुरोर्वैशंपायनस्य व्यासेन विमज्यानु-
 क्तत्वादविद्यमानानीति विवृतत्वेन वैशंपायनाय षडशीतिशाखात्मको
 योऽयं यजुर्वेदो भगवता वेदव्यासेनोक्तः स सर्वोऽपि मन्त्रब्राह्मणसंमिश्रणा-
 त्मक एवोक्तो न तु केवलमन्त्रभागः पृथगेव तथा केवलब्राह्मणभागश्च पृथ-
 गेवोक्त इति । प्रकृतानि तु पञ्चदशशाखात्मकयजूंषि मन्त्रा(न्त्र)ब्राह्मणभा-
 गाभ्यां विमज्य सूर्येण मध्याह्ने शुक्लवर्णवाजिरूपेण स्वकेसरेभ्यो वेगेन वा
 याज्ञवल्क्यायोक्तानीति ब्राह्मणविभक्तत्वावच्छेदेनैवोक्तयजुषां वैशंपाय-
 नेऽविद्यमानत्वम् । तथाऽपि संमिश्रितयजुष्टे तत्र विद्यमानत्वमेवेति पार-
 मार्थिकविचारेणैवास्य यजुर्गणस्य नवीनत्वं किं तु प्राच्यत्वेनानादिसि-
 द्धत्वमेव । तथा च कोक्तनिन्दावकाशः । एतदेव मन्त्रब्राह्मणभागा-
 भ्यामव्यामिश्रत्वं वाजसनेयियजुषां शुक्लत्वं तैत्तिरीययजुषां तु ताभ्यां
 मिश्रत्वमेव कृष्णत्वमिति सांप्रदायिकाः । युक्तं चैतत् । वेदनिन्दायाः
 किञ्चिदप्यभावात् । प्रागुक्तशुक्लादिव्यवस्थापक्षेषु तु तत्संभवाच्च । एवं
 यदिदं शाकलापराभिधसूत्रप्राधान्यमूलकाश्वलायनाख्यबह्वृचशाखाया
 मध्यमत्वे काण्वादिवाजसनेयिसंमते मूलं तु याज्ञवल्क्यवान्तत्वेन कृष्ण-
 यजुःसंज्ञकतैत्तिरीयैकाध्वर्युकत्वमेव प्रागुक्तं तदपि मन्दमेव । विचारा-
 सहत्वात् । तथा हि । किं वान्तत्वावच्छेदकावच्छेदेन तत्र निन्द्यत्वं किं
 वा वान्तत्वविशेषेण । नाऽऽद्यः । क्षुद्राणामपि वान्ते देवसमुपभोग्ये
 माक्षिके व्यभिचारात् । नान्त्यः । विशेषाणामानन्त्येन स्वरूपानिर्ण-
 यात् । तस्मादविचारमूलकमेवेदं निन्दनम् । परमार्थतस्तु प्रागुदाहृत-
 महार्णववचनेन नर्मदादक्षिणतीरवर्तिशाकलशाखिनामाश्वलायनसू-
 त्रिणां बह्वचानां तैत्तिरीयशाखिन एव यज्ञकन्याविभागित्वेनाध्वर्यवः ।
 नर्मदोत्तरवर्तिनां बाष्कलशाखिनां शाङ्ख्या(खा ?)यनसूत्रिणां बह्वृ-
 चानामेव वाजसनेयिन एव यज्ञकन्याविभागित्वादाध्वर्यवकर्तार इति
 प्रसिद्धमेव । नन्वेवं तर्हि शाकलशाख्याश्वलायनसूत्रिबह्वृचैस्तैत्तिरीयैश्च
 सह प्रायः क्वचिद्देशे लोके च वाजसनेयिनः सर्वे द्वितीयमन्त्रपठनाद्यर्थं
 किमिति कलहं कुर्वन्तीति चेदत्र त एव राज्ञाऽभिज्ञमध्यस्थेन वा प्रष्टव्याः
 किमस्माकमेतद्वाक्षिण्येन ।]

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदस्त्रिगुणो यत्र पठ्यते ।

यजुर्वेदः स विज्ञेयो अन्ये शाखान्तराः स्मृताः ॥ १ ॥

इति श्रीचरणव्यूहवचनादिनिरूपितः ।
 मुख्यो यस्तैत्तिरीयात्मा यजुर्वेदः सतां मतः ॥ २ ॥
 तस्याः श्रितैत्तिरीयाख्यशाखायाः कल्पसूत्रकृत ।
 हिरण्यकेशी भगवान्सत्याषाढापराह्वयः ॥ ३ ॥
 यः ख्यातस्तन्मतैकानुसार्याह्निकमिदं मया ।
 आचारभूषणाख्यं यत्स्वीयत्वाद्यत्नतः कृतम् ॥ ४ ॥
 तत्र शीघ्रप्रबोधार्थमुच्यतेऽनुक्रमः स्फुटम् ।
 नवसंख्याककिरणेष्वभूत्प्रकरणैस्तु यः ॥ ५ ॥
 ग्रन्थारम्भप्रतिज्ञानमुषःकृत्यं तदुत्तरम् ।
 अथाजपाजपः प्रातःस्मरणं तु ततः परम् ॥ ६ ॥
 अथ मूत्रपुरीषादि शौचमाचमनं ततः ।
 अथ दन्द्रावनं तेषां प्रयोगोऽपि यथाक्रमम् ॥ ७ ॥
 ततः स्त्रीनित्यकृत्यं च विधिर्हेम्नः पवित्रके ।
 प्रातःस्नानमथो यज्ञोपवीतस्य प्रपञ्चनम् ॥ ८ ॥
 वस्त्रस्य परिधानं च प्रयोगः स्नानकर्मणः ।
 तदुक्तमन्त्रभाष्यादि ततस्तिलकधारणम् ॥ ९ ॥
 तत्प्रयोगोऽथ तत्प्राप्तमन्त्रार्थकथनं ततः ।
 अथ संध्याविचारोऽनु प्रातःसंध्याप्रयोगकः ॥ १० ॥
 तदुक्तमन्त्रभाष्यादि तत औपासने विधिः ।
 अभिवादनमित्याद्ये किरणे तानि विंशतिः ॥ ११ ॥
 द्वितीये निगमाभ्यासो ब्रह्मयज्ञविधिस्ततः ।
 तत्प्रयोगोऽथ तन्मन्त्रभाष्यपुष्पाद्युपाह्वतिः ॥ १२ ॥
 इति पञ्चैव तु ततस्तृतीये द्रव्यसंग्रहः ।
 ततश्चतुर्थे क्षौरं च काभ्यादिस्नानसूचनम् ॥ १३ ॥
 अथ माध्याह्निकस्नानं तत्संध्या तत्प्रयोगकः ।
 तदुक्तमन्त्रभाष्यं च तर्पणं तत्प्रयोगकः ॥ १४ ॥
 देवपूजा तत्प्रयोगस्ततस्तन्मन्त्रभाष्यकम् ।
 वृद्ध्यादौ देवपूजा च गुर्वर्चेति त्रयोदश ॥ १५ ॥
 अथोत्तरार्धे किरणे पञ्चमे वैश्वदेवकम् ।
 तत्प्रयोगोऽथ तन्मन्त्रभाष्यं भिक्षाप्रदानकम् ॥ १६ ॥

ततोऽतिथ्यर्चनं भुरिाविधानं तत्प्रयोगकः ।
 तदीयमन्त्रभाष्यं चेत्यष्टौ प्रकरणान्यलम् ॥ १७ ॥
 अथ षष्ठे पुराणादिश्रवणस्तोत्रचिन्तनम् ।
 शास्त्राभ्यासः सप्तमे तु पठनादिः प्रकीर्तितः ॥ १८ ॥
 अष्टमे देवयात्रादि सायंसंध्यासमन्वितम् ।
 ध्रुवे श्रीशिशुमारोपस्थानं भाष्यसमन्वितम् ॥ १९ ॥
 पत्नीधर्मास्ततः प्रोक्ताः शयनं च ततः परम् ।
 रात्रिसूक्तं सभाष्यं च स्वप्नस्य फलनिर्णयः ॥ २० ॥
 अथाऽऽह्निकानुष्ठानस्य फलोक्तिरिति सप्त वै ।
 प्रकीर्णकारव्ये नवमे धर्मसामान्यचिन्तनम् ॥ २१ ॥
 अथार्धमासकृत्यं च मासकृत्यं ततः परम् ।
 ऋतुकृत्यं ततः संवत्सरकृत्यं समीरितम् ॥ २२ ॥
 शुद्धिप्रकरणं नैमित्तिकप्रकरणं ततः ।
 अनध्यायः सापवादोऽनुक्रमश्च नवेत्यलम् ॥ २३ ॥
 पिता मे धर्मज्ञः सकलजनविरव्यातसुयशाः
 पुरा प्रत्यकूसिन्धोर्निकटमपि वासिष्ठकुलजः ।
 लघुग्रामेऽवासीन्मलन इति चोकान्वय इतः
 सुखं वस्तुं चागात्सह परिजनैर्नासिकपुरे ॥ १ ॥
 ममानुजः कचेश्वरः पिशाचलिपिलेखक-
 स्तथाऽहमप्यधीत्य कोशकाव्यकौमुदीः पुनः ।
 स्वकीयधर्मसूत्रमुज्ज्वलायुतं तथाऽऽदरा-
 द्विलोक्य चाऽऽह्निकं त्विदं समुत्सुकोऽभवं पटुः ॥ २ ॥
 सन्त्याह्निकान्यपि बहूनि तथाऽपि तानि
 साधारणान्यत उपेक्ष्य सुसंगृहीतम् ।
 ग्रन्थान्विलोक्य सुधिया पृथगल्पबुद्ध्या
 श्रीत्रयम्बकेण विबुधैस्तदिदं विशोध्यम् ॥ ३ ॥
 शाके चन्द्रसमुद्रवाजिधरणीसंख्ये १७४१ प्रमाध्याह्नये
 वर्षेऽप्याश्विनशुक्लपक्षललितापञ्चम्युपेते कवौ ।
 संशोध्याच्युतशर्मणा द्विजवरं श्रीशामशारुयाह्वयं
 प्राप्यैव सहायमेतद्नयत्संपूर्णतां सौहृदात् ॥ ४ ॥

५१८ ओकोपाह्वयम्बकविरचितं हिरण्यकेश्याह्निकमाचारभूषणम् ।

आचारभूषणमिदं कलयन्तु हिरण्यकेशिनः सर्वे ।
विहरन्तु मोक्षलक्ष्म्या सह सततं धर्मदुग्धाब्धौ ॥ ५ ॥

इत्योकोपाह्वयश्रीमद्वासिष्ठकुलावतंसश्रीरामार्यसूनुना त्र्यम्बकशर्मणा
संगृहीते सत्याषाढापराभिधहिरण्यकेश्याह्निकात्मकाचारभूषणे नवमः
किरणस्तदुत्तरार्धस्तथाऽसौ ग्रन्थश्च संपूर्णः ।

